भारतीय इतिहास का परिचय

भारतीय इतिहास का परिचय

लेखक

पी० एन० त्रिपाठी, एम० ए०

भूमिका लेखक

लक्ष्मी नाथ मिश्र

प्रिन्सिपल तथा अध्यक्ष इतिहास विभाग

दयानन्द सुभाष नेशनल कालेज, उन्नाव (यू० पी)

यंग मैन एण्ड कम्पनी

राजकीय प्रकाशक दिल्ली - ६

प्रकाशक : यंग मैन एण्ड कम्पनी, नई सड़क, दिल्ली-६

मुद्रक : अरुण प्रेस, माडल बस्ती, नई दिल्ली-५

भूमिका

हायर सेकण्डरी स्कूलों के लिए अच्छी पाठ्य-पुस्तकों की प्रायः कमी है। उचित सामग्री, मँजी हुई चुस्त तथा सुबोध भाषा, सुचारु वर्णनात्मक शैली तथा ऐतिहासिक घटनाओं की व्यवस्था कुछ ही पाठ्य-पुस्तकों में उपलब्ध होती है। इनके अभाव में अध्यापक तथा विद्यार्थी को इतिहास पढ़ने में कठिनाई का अनुभव होता है और इतिहास पढ़ने की ओर अरुचि तथा उदासीनता का भाव धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। ऐसी परिस्थिति में इतिहास लेखकों को बड़ी सावधानी, सतर्कता तथा विशेष परिश्रम से पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करना चाहिये।

सन्तोष का विषय है कि कुछ लेखकों ने इस कमी की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। श्री प्रताप शंकर त्रिपाठी ने 'भारतीय इतिहास का परिचय' पाठ्य-पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी है। उन्होंने बड़े परिश्रम से स्वयं सम्बन्धित ग्रन्थों को पढ़कर और सूझ के साथ वास्तविक तथ्यों का निर्णय किया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह पाठ्य-पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी और उन्हें अनेक भ्रमात्मक बातों, तथा कठिनाइयों से छुटकारा मिलेगा। ऐसी पुस्तक का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ।

लक्ष्मी नाथ मिश्र
प्रिंसिपल तथा अध्यक्ष इतिहास विभाग
दयानन्द सुभाष नेशनल कालेज
उन्नाव

कुछ महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थों की सूची

1. Early History of India —*V. A. Smith*
2. Studies in Indian Antiquities —*Raychaudhuri*
3. Ancient India —*S. K. Aiyanger*
4. Hindu Civilization —*R. K. Mukerjee*
5. Oxford History of India —*V. A. Smith*
6. Gautam Buddha —*Dr. Radhakrishnan*
7. Early History of the Deccan —*Bhandarkar*
8. Medieval India —*Thamas*
9. Medieval India —*Dr. Ishwari Prasad*
10 Medieval India Under Muhamdan Rule —*Lane Poole*
11. Muhammadan India —*Smith*
12. Sher Shah —*Qanungo*
13. An Advanced History of India —*Mojumdar, Raychaudhuri & Dutta*
14. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास —डा० सत्यकेतु विद्यालंकार
15. Mughal Administration —*Sarkar*
16. Aspects of Mughal Administration —*R. S. Tripathi*
17. A Survey of Indian History —*K. M. Panikkar*
18. Cambridge History of India Vol. I to VI
19. Main Currents of Maratha History—*Sardesai*
20. History of British India —*P. E. Roberts*
21. अट्ठारह सौ सत्तावन —सुरेन्द्र नाथ सेन
22. भारत १९५७ —पब्लिकेशन्स डिवीजन
23. Constitutional History of India —*Keith*
24. Indian Constitutional Development —*P. Mukerjee*
25. India Today —*Palme Dutt*

विषय-सूची

अध्याय १

भारत की भौगोलिक स्थिति और इतिहास

१. **परिचय**—भारत की भौगोलिक स्थिति अर्थात् इसके पर्वतों, नदियों, रेगिस्तान एवं जलवायु का देश के इतिहास पर बहुत प्रभाव पड़ा है। उत्तर की हिमालय श्रेणियों ने इसे शेष एशिया महाद्वीप से बिल्कुल अलग कर दिया है। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में सागर से घिरा हुआ यह भूखण्ड एक उपमहाद्वीप है। इस उप-महाद्वीप में सभी प्रकार की जलवायु पाई जाती है। जहाँ एक ओर राजपूताने का रेगिस्तान है वहाँ दूसरी ओर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियाँ हैं और जहाँ दक्षिण भारत की भूमि पथरीली व पठारी है वहाँ बंगाल की भूमि अति-उर्वरा है। पूर्व से पश्चिम तक लगभग २५०० मील लम्बे और उत्तर से दक्षिण तक लगभग २००० मील चौड़े इस भूखण्ड को चार प्राकृतिक भागों में बांटा जा सकता है : (१) उत्तर में हिमालय श्रेणी (२) उत्तरी भारत का बड़ा मैदान (३) दक्षिण का पठार या दक्खिन और (४) समुद्र तट। प्रत्येक भाग की अपनी पृथक्-पृथक् विशेषताएं हैं, जिनका देश के इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

२. **उत्तर में हिमालय श्रेणी** - भारत के उत्तर की पर्वतीय श्रेणी में हिमालय, हिन्दूकुश, सफेद कोह, सुलेमान कोह और किरथर पहाड़ हैं। इन श्रेणियों की सबसे ऊँची चोटी का नाम गौरीशंकर या एवरेस्ट है, जो २९ हजार १४१ फीट ऊँची है। हिमालय श्रेणी संसार की सबसे ऊँची चोटी है। हिमालय के पश्चिमी भाग में कुछ दर्रे हैं, जिनका भारत के इतिहास में बहुत महत्त्व है। मुख्य-मुख्य दर्रों के नाम हैं:—खैबर, कुर्रम, गोमल और टोची। इन्हीं दर्रों से होकर विदेशियों ने भारत पर कई बार आक्रमण किये। आर्य, यूनानी

हूण, सिथियन, तुर्क और मंगोल सब इन्हीं मार्गों से भारत में आये। हिमालय श्रेणियों से निकली नदियों—सिंधु और उसकी सहायक नदियों, गंगा और उसकी सहायक नदियों तथा ब्रह्मपुत्र—पर ही भारत की समृद्धि निर्भर है। हमारे देश में वर्षा भी हिमालय पर्वत की मदद से होती है। यदि हिमालय न होता तो हमारे देश की उत्तरी सीमा बिल्कुल अरक्षित रहती और संभवतः हमारे देश की धरती सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र के न होने पर सोना न उगलती। अतः स्पष्ट है कि भारत के इतिहास पर हिमालय श्रेणियों का बहुत बड़ा प्रभाव है।

३. उत्तरी भारत का बड़ा मैदान—अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ यह मैदान लगभग २००० मील लम्बा और लगभग २०० मील से ३०० मील तक चौड़ा है। सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियां तथा इनकी सहायक नदियां इस मैदान को सींच कर उपजाऊ बनाती हैं। यदि ये नदियां न होतीं तो संभवतः यह विशाल मैदान भी राजस्थान की ही भांति रेगिस्तान होता। इस मैदान की समृद्धि तथा सम्पन्नता देखकर ही विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किये। नदियों की उपजाऊ मिट्टी से बने इस मैदान में बड़े-बड़े साम्राज्यों की राजधानियां रहीं। इन्हीं नदियों की घाटियों में भारतीय सभ्यता विकसित हुई। इस मैदान को आर्यावर्त भी कहते हैं क्योंकि यह भारतीय संस्कृति का केन्द्र रहा है। विदेशी आक्रमणकारियों से देश की रक्षा के लिए अनेक भीषण युद्ध इसी मैदान में लड़े गये। इस मैदान की उर्वरा भूमि में हमारी कलाओं तथा कारीगरी का भी विकास हुआ।

४. दक्षिण का पठार या 'दक्खिन'—विन्ध्याचल पहाड़ से लेकर कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ भाग दक्षिण का पठार है। यह पठार पश्चिम से पूर्व की ओर ढालू है। बरसाती होने के कारण यहाँ की नदियां गर्मी के दिनों में प्रायः सूख जाती हैं, जिससे इस क्षेत्र के लोगों को बड़ी कठिनाई होती है। नर्वदा, ताप्ती, गोदावरी,

कृष्णा और कावेरी नामक नदियाँ इस भाग की मुख्य नदियाँ हैं। पश्चिम की ओर के पहाड़ों का नाम पश्चिमी घाट है और पूर्व की ओर के पहाड़ों का नाम पूर्वी घाट है। उत्तर के बड़े मैदान और दक्षिण के पठार को विन्ध्याचल पर्वत दो पृथक्-भू भागों में बाँट देता है। यही कारण है कि जो आर्य सभ्यता उत्तरी भारत (आर्यावर्त) में आई और विकसित हुई वह दक्षिण भारत में शीघ्रता से नहीं जा सकी। विन्ध्याचल पर्वत दक्षिण भारत को आक्रमणकारियों से प्रायः बचाता रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से विन्ध्याचल पर्वत एवं विशाल वनों ने ही उत्तर भारत और दक्षिण भारत की सभ्यता को बहुत समय तक अलग रखा। विदेशी आक्रमणकारी भी आर्यावर्त में आकर रुक गये क्योंकि दक्षिण भारत की ओर बढ़ने में पहाड़ी तथा जंगली मार्गों को पार करना कोई आसान काम नहीं था। इस भाग में जिस कला और सभ्यता का विकास हुआ, उसका अपना पृथक् महत्त्वपूर्ण स्थान है।

५. समुद्र तट—भारत के पूर्व और पश्चिम दोनों ओर समुद्र के किनारे सँकरे मैदानी भाग हैं जिन्हें समुद्र तट कहा जाता है। समुद्र के तट पर होने के कारण इस क्षेत्र के लोग बहुत उद्यमी तथा परिश्रमी रहे हैं। नौकावहन तथा समुद्री व्यवसाय में इनकी रुचि का प्रमाण प्राचीन कालीन इतिहास में मिलता है। समुद्र इस प्रदेश का रक्षक तथा व्यवसाय देने वाला है। यद्यपि भारत का समुद्र तट बन्दरगाहों के लिए अच्छा नहीं है फिर भी तट को काट-छाँट कर अनेक अच्छे बन्दरगाह बना लिये गये हैं। पश्चिमी तट पर कोंकण, कनारा और मालाबार के प्रदेश हैं, जो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध हैं। पूर्वी तट में चोल प्रदेश (कारोमण्डल) और मदुरा तथा तिनिवेली के मैदान हैं, जिनमें कभी प्राचीन पांड्य राज्य था।

इतिहास पर भूगोल का प्रभाव

संसार के अन्य देशों की ही भाँति भारत की भौगोलिक स्थिति ने भी भारत के इतिहास पर बहुत प्रभाव डाला है।

६. एकता का अभाव—क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से भारत रूस को छोड़कर लगभग सारे यूरोप के बराबर है। बड़े-बड़े पहाड़ों, उपजाऊ मैदानों, नदियों और सुन्दर घाटियों से पूर्ण इस देश में हर प्रकार की जलवायु भी पाई जाती है। चारों ओर से प्राकृतिक सीमाओं से घिरे होने के कारण भारत में एक भिन्न प्रकार की सभ्यता का विकास हुआ जो संसार की अन्य सभ्यताओं से विलक्षण थी। देश के भीतर अनेक प्राकृतिक रुकावटों के कारण सम्पूर्ण देश कभी भी एक सूत्र में संगठित नहीं हो सका। सैकड़ों छोटे-छोटे राज्य बने रहे। अनेक सम्राटों ने सम्पूर्ण देश को संगठित करने का प्रयत्न भी किया पर कुछ सीमा तक ही उन्हें सफलता मिली। इस प्रकार प्राकृतिक कारणों ने देश को कभी भी एक सूत्र में संगठित नहीं होने दिया।

७. विदेशी आक्रमण—यद्यपि भारत की प्राकृतिक सीमायें उसकी रक्षा भी करती हैं फिर भी भारत पर विदेशियों के अनेक आक्रमण होते रहे। उत्तर की पर्वतमाला तथा पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम के सागर को देख कर भारतीय काफी निश्चित रहते थे कि उनके देश की रक्षा के लिए ये प्राकृतिक साधन पर्याप्त हैं। अपनी सीमा की रक्षा के मामले में भारत प्रायः बहुत उदासीन रहा। विशेष रूप से उस समय जब राजनीतिक एकता का अभाव था। परिणामस्वरूप अनेक विदेशी आक्रमणकारी बिना किसी रोक-टोक के भारत में आते रहे। अपनी सीमा की रक्षा, सेना के संगठन तथा अस्त्र-शस्त्र मँगाने के बारे में भारतीय राज्यों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया।

८. समृद्धि—अनुकूल जलवायु, उपजाऊ भूमि और उद्योगशील तथा बुद्धिमान लोगों के बसने से यह देश प्राचीन काल में ही अपार सम्पत्ति का घर बन चुका था। यहाँ अनेक विद्याओं और कलाओं की उन्नति हुई और इस कारण यह सारे संसार में इतना प्रसिद्ध हो गया कि विदेशी लोगों की दृष्टि इस पर पड़ने लगी। देश के महत्वाकांक्षी सम्राटों को विजय करने के लिए भारत स्वयं बहुत बड़ा देश था; उन्हें बाहर जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसी कारण भारत

ने प्रायः बाहर जाकर अपने साम्राज्य के विस्तार की कोशिश नहीं की। इसके विपरीत भारत की समृद्धि को लूटने के लिए अनेक विदेशी आक्रमणकारी समय-समय पर आते रहे। विदेशी आक्रमण-कारी आरम्भ में दक्षिण भारत की ओर नहीं गये। इसके दो कारण थे—एक, विन्ध्याचल पर्वत एवं विशाल वन को पार करके दक्षिण भारत में पहुँचना एक टेढ़ी खीर थी और दूसरे, उत्तरी भारत में इतनी काफी सम्पत्ति थी कि वे उसी से बहुत समय तक सन्तुष्ट रहे।

९. व्यापार और वाणिज्य—देश के आन्तरिक समृद्धि के साथ ही भारत का बाह्य व्यापार भी काफी विकसित था। हमारे समुद्र तटों पर अनेक बन्दरगाह थे, जिनसे विदेशों के साथ व्यापार होता था। रोम साम्राज्य के साथ हमारा व्यापार बहुत ही उन्नत अवस्था में था। हमारे देश के कुछ सम्राटों ने देश के बाहर कुछ उपनिवेश भी बसाये थे। इस प्रकार भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रसार में भी सहायता मिली। सच पूछा जाय तो उन दिनों समुद्र ही हमारी व्यापारिक व वाणिज्यिक उन्नति का साधन था। अतः स्पष्ट है कि प्राकृतिक स्थिति ने भारत के इतिहास के निर्माण को बहुत काफी प्रभावित किया है।

प्रश्न

1. Explain the main physical features of India. How have they affected the history of this country?

भारत की मुख्य-मुख्य प्राकृतिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इस देश के इतिहास पर उनका क्या प्रभाव पड़ा है?

2. How has the history of India been influenced by its geography?

भारत के भूगोल ने भारत के इतिहास पर क्या प्रभाव डाला है?

3. Into how many natural divisions can

India be divided ? Describe the main features of each division.

भारत को कितने प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है ? प्रत्येक भाग की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

4. "Geography is the foundation of history". Comment with special reference to India.

"भूगोल इतिहास का आधार है," भारत की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए इस कथन पर टिप्पणी कीजिये ।

5. Draw a physical map of India showing the mountain ranges, rivers, plains, and deserts etc.

भारत का एक प्राकृतिक चित्र बनाइये और उसमें पर्वत श्रेणियाँ, नदियाँ, मैदान और रेगिस्तान दिखाइये ।

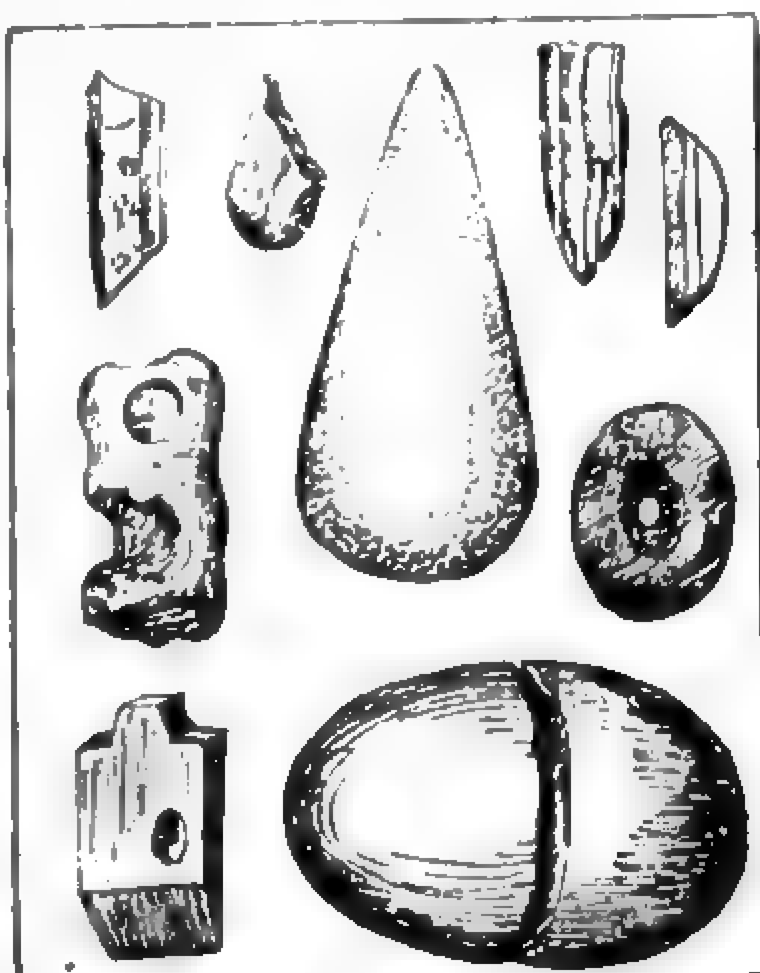
—: o :—

अध्याय २

भारत की सभ्यता और उसका क्रमिक विकास

१. प्रागैतिहासिक काल—आर्यों के आने से पहले का इतिहास बहुत कुछ अन्धकारमय है। फिर भी मानव-विज्ञान-वेत्ताओं ने किसी प्रकार इस बात का पता लगाया है कि सर्व प्रथम दक्षिणी भारत में काले रंग के कुछ मनुष्य रहा करते थे। इन लोगों के कुछ हथियार मिले हैं, जो पत्थर के बने हुए हैं। इतिहास के इस काल को प्रागैतिहासिक काल माना जाता है। प्रागैतिहासिक काल को दो भागों में बांटा जा सकता है—(१) पूर्व प्रस्तर-युग, (२) उत्तर प्रस्तर युग। प्रस्तर युग को पाषाणकाल भी कहते हैं।

२. पूर्व प्रस्तर-युग—पूर्व प्रस्तर-युग प्राचीन काल से लेकर ईसा से १२००० वर्ष पूर्व तक माना जाता है। प्रमाणों से ज्ञात होता है कि भारत का आदि निवासी सम्भवतः पूर्व प्रस्तर-युग का व्यक्ति था। उस युग का मनुष्य पूर्वतः जंगली था। वह वृक्षों के नीचे या गुफाओं और कन्दराओं में रहता था। उसे खेती करनी नहीं आती थी और सम्भवतः उसे अग्नि के विषय में भी कुछ ज्ञान नहीं था। धातुओं का उसे पता नहीं था। उसकी भाषा हमारी भाषा से बिल्कुल भिन्न थी। छोटे कद, चपटी नाक और ऊन जैसे



बालों वाले ये लोग जंगली जानवरों का मांस या कंद, मूल, फल आदि खा लिया करते थे। कुछ लोगों का कहना है कि ये बिल्कुल नंगे रहा करते थे पर कुछ विद्वानों का मत है कि ये पेड़ों की पत्तियों और छालों से अपने शरीर को ढक लिया करते थे। अपने मुर्दों को ये लोग न जलाते थे और न गाड़ते थे। इस युग का मनुष्य किसी स्थान पर टिक कर नहीं रहता था। जहाँ आखेट की सुविधा मिली वहीं चला जाता था। इस युग के मनुष्यों के औजार तथा हथियार पत्थर के बने होते थे और देखने में बड़े भोंडे और भद्दे होते थे। उन पर न पालिश होती थी न उन्हें घिस कर नोकीला किया जाता था। दक्षिण भारत के मद्रास, कड़पा और चिंगलपट जिलों में उन व्यक्तियों के जो औजार आदि मिले हैं, उनके नाम हैं—बाण, फलक, भल्ल, खुदाई के हथियार, काटने वाले हथियार, छुरियाँ और पत्थर के हथौड़े। इस युग के कुछ हथियार हड्डी के भी बने हुए मिले हैं।

२ उत्तर प्रस्तर-युग—इस युग का मनुष्य भी पत्थरों के ही हथियार बनाता था। परन्तु अब उसके औजार-हथियार भोंडे और भद्दे नहीं होते थे। अब उन पर पालिश भी की जाने लगी थी और उनको घिस कर पैना भी कर लिया जाने लगा था। अब ये लोग नितान्त जंगली नहीं रह गये थे और न पेड़ों के नीचे एवं कन्दराओं में रहते थे, बल्कि अब ये अपने लिये मकान बना कर रहने लगे थे। इनकी झोंपड़ियाँ फूस और घास की बनी होती थीं, जिन्हें मिट्टी से लीप दिया करते थे जिससे वर्षा से उनकी रक्षा हो सके। अग्नि का प्रयोग करना उन्हें आ गया था और वे अब अपना भोजन पका कर खाते थे। शिकार करना, मछली मारना, पशु पालन और कृषि उनके मुख्य उद्यम थे। इनके पशुओं में गाय, बैल, भेड़ और बकरी होते थे। कृषि के अतिरिक्त शहद प्राप्त करना भी वे सीख गये थे। आग पत्थरों के टुकड़ों को आपस में रगड़ कर तैयार करते थे। उत्तर प्रस्तर-युग के आरम्भ में तो ये लोग पत्ते, पेड़ों की छाल और पशु-चर्म पहनते थे पर आगे चल कर सम्भवतः इन्हें सूत कातना भी आ गया



धातु युग के शस्त्र

था। इस प्रकार उन्हें कपड़ा बुनने का ज्ञान हो गया था। कृषि और पशु पालन के लिए अब उन्हें एक स्थान पर टिक कर रहना पड़ता था। अतः उनमें परस्पर व्यवहार बढ़ गया और सामाजिक जीवन की नींव पड़ी। लोग एक-दूसरे की सहायता करने लगे थे और इनमें सहयोग की भावना पैदा हो गयी थी। आने-जाने और सामान ढोने की सुविधा के लिए इन लोगों ने पहियेदार गाड़ियों और नावों का आविष्कार किया। बाद में समुद्री यात्रा भी करने लगे। पहले तो ये लोग हाथ से ही मिट्टी के बर्तन बनाते थे पर बाद में कुम्हार के चाक पर सुन्दर बर्तन बनने लगे। बर्तनों पर नक्काशी भी की जाती थी। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि वे अपने मुर्दों को जलाते भी थे और गाड़ते भी थे। उनका विश्वास था कि चट्टानों और वृक्षों में देवताओं का निवास है। अतः वे उनकी पूजा करते थे और उन पर बलि चढ़ाते थे। वास्तव में ये लोग प्रकृति के उपासक थे। प्रो० रंगाचार्य का कहना है कि मृतक दाह सम्बन्धी और नामकरण आदि अनेक सामाजिक रीतियों का जन्म इसी काल में हुआ।

४. उत्तर प्रस्तर-युग के लोग कौन थे, इस सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें पूर्व प्रस्तर-युग के लोगों के वंशज मानते हैं। डा० ईश्वरीप्रसाद ने इन लोगों को एक नवीन जाति का माना है। मध्यप्रदेश के संथाल, कोल, और मुण्डा जाति के लोग, आसाम के खासी और निकोबार द्वीप समूह के लोग इन्हीं के वंशज हैं। डा० स्मिथ का कहना है कि उत्तर प्रस्तर-युग के लोग पूर्व प्रस्तर-युग के लोगों की ही सन्तान थे। यदि दोनों में कोई अन्तर था तो केवल उनकी सभ्यता का। पूर्व प्रस्तर-युग सभ्यता की पहली मंजिल थी और उत्तर-प्रस्तर युग सभ्यता की दूसरी मंजिल।

५. धातु युग—उत्तर प्रस्तर-युग के मनुष्यों ने कई शताब्दियों के पश्चात् धातुओं का प्रयोग करना सीखा। सोने का ज्ञान उन्हें शायद काफी पहले हो गया था पर सोने का प्रयोग केवल आभूषण बनाने के लिए ही किया जाता था। प्राचीन अवशेषों से पता लगता है कि

दक्षिण भारत में तो प्रस्तर-युग के बाद सीधे लोहे का युग आ गया। परन्तु उत्तर भारत में ऐसी बात नहीं थी। यहाँ प्रस्तर-युग और लोहे के युग के बीच तांबे का भी युग हुआ था। अभिप्राय यह है कि उत्तर भारत में प्रस्तर-युग के बाद तांबे के फरसे, तलवार, बर्छे और खंजर आदि बने और बाद में लोहे का प्रयोग शुरू हुआ। जिस युग में लोहे और तांबे का प्रयोग होने लगा था, उसे धातु-युग कहा जाता है। तांबे का युग लगभग ४००० वर्ष ई० पू० था और लोहे का युग लगभग १००० वर्ष ई० पू० था। ऋग्वेद की रचना इसी काल की मानी जाती है। स्मरण रखने की बात है कि सिन्ध को छोड़कर भारत के अन्य किसी भी भाग में कांसे का युग नहीं हुआ जब कि अन्य देशों में प्रस्तर-युग और लोह-युग के बीच एक कांसे का युग भी हुआ था। कांसा, तांबा और टिन (रांग) के मिश्रण से बनता है और हथियारों के बनाने के लिए बहुत उपयोगी होता है। पर भारत के लोगों को उस काल में इसका पता नहीं था। इस प्रकार मानव सभ्यता अपनी तीसरी मंजिल पार कर गई। इस समय तक मनुष्यों के रहन-सहन का स्तर और भी ऊँचा हो चुका था।

६. द्रविड़—भारत की प्राचीनतम सभ्य जाति द्रविड़ मानी जाती है। अनेक विद्वानों का मत है कि द्रविड़ भारत की उन जातियों के वंशज थे, जिन्होंने सभ्यता की प्रस्तर युगीन तथा धातु युगीन मंजिलें पार की थीं। पर कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि द्रविड़ बिलोचिस्तान की ओर से भारत में आये थे। बिलोचिस्तान के एक भाग में द्रविड़ बोली की एक जबान बोली जाती है। पर इस सम्बन्ध में यह भी तर्क हो सकता है कि द्रविड़ों ने बिलोचिस्तान पर विजय की हो। द्रविड़ चाहे जहाँ से आये हों, पर यह बात सत्य है कि उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों में ये फैले हुए थे। वे धातु का उपयोग जानते थे। कृषि उनका मुख्य धन्धा था। सिंचाई के लिए नदियों का पानी प्रयोग करते थे। मकान और किले बनाने का भी उन्हें ज्ञान था। गाँवों का शासक मुखिया होता था। लिंग पूजा

तथा बलि प्रथा उनमें प्रचलित थी। कुछ विद्वानों की धारणा है कि सिन्धु घाटी सभ्यता भी द्रविड़ सभ्यता ही थी।

प्रश्न

1. Describe the different stages of the development of the ancient civilisation of India.

भारत की आदि सभ्यता के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

2. Describe the life in the Neo-Lithic or New Stone Age.

उत्तर प्रस्तर-युग के निवासियों के रहन-सहन का वर्णन कीजिए।

3. "The New Stone Age was a great epoch in the progress of civilisation." Explain.

"उत्तर प्रस्तर-युग सभ्यता के विकास में महान् पग था।" समझाइये।

4. Write short notes on :—

(i) Palaeolithic Age or Old Stone Age.

(ii) Metal Age.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए :—

(१) पूर्व प्रस्तर-युग,

(२) धातु-युग।

— : ● : —

अध्याय ३

सिन्धु घाटी की सभ्यता

१. प्राचीन इतिहास जानने के साधन—भारत के प्राचीन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें ऐतिहासिक सामग्री का बहुत कुछ अभाव है। तत्कालीन साहित्य पूर्णतः धार्मिक है। उसमें न तो ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है और न ही उससे किसी घटना के समय आदि का ठीक पता लगाया जा सकता है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में उस काल के सामाजिक जीवन, रहन-सहन तथा आचार-विचार पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है किन्तु इतिहास के विद्यार्थी के लिये इनमें कोई विशेष सामग्री नहीं है। पुराणों में जो सामग्री है वह प्रायः काल्पनिक और पौराणिक कथाओं के रूप में है। अतः उसका ऐतिहासिक महत्व कम ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संस्कृत और पाली साहित्य में कुछ ऐतिहासिक सामग्री यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हुई है परन्तु उसमें भी क्रमबद्धता का अभाव है।

२. अतः भारत की इतिहास सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें अन्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है। मेगस्थनीज और चीनी यात्री ह्वेनसांग और फाह्यान ने भारत के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसमें तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण मिलता है। इस दृष्टि से इनके लेखों का काफी ऐतिहासिक महत्व है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में पाये गये असंख्य शिला-लेखों, स्तम्भों और ताम्र-लेखों का भी पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व है। क्योंकि इन पर अंकित नामों और तिथियों से काफी जानकारी प्राप्त होती है। प्राचीन शासकों के सिक्कों से भी इस सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। पर कठिनाई यह है कि बहुत से शासकों ने अपने समय के सिक्कों पर न तो नाम का और न तिथियों का उल्लेख किया है।

३. सिंधु घाटी सभ्यता—सिन्धु घाटी की सभ्यता का पता लगने से पहले भारत की सभ्यता के इतिहास का आरम्भ आर्यों के भारत आगमन के समय से माना जाता था। पर लगभग २५ वर्ष हुए हरप्पा और मोहनजोदड़ो में हुई खुदाई के फलस्वरुप जो ऐतिहासिक सामग्री मिली है उससे एक नई सभ्यता का पता लगा है, जिसे सिन्धु-घाटी-सभ्यता कहते हैं। हरप्पा पंजाब के मांटगोमरी जिले में है और मोहनजोदड़ो सिंध के लरकाना जिले में। सिन्धु घाटी की यह सभ्यता लगभग ५००० वर्ष पुरानी मानी जाती है। अभी हाल में अहमदाबाद जिले के लोथल (Lothal) नामक स्थान पर हुई खुदाई में वैसी ही चीजें मिली हैं जैसी कि हरप्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में निकली थीं। अतः यह सम्भव है कि इस सभ्यता का विस्तार गंगा की घाटी से लेकर समस्त राजपूताना, काठियावाड़, सिंध और पंजाब तक रहा हो।

४. वास्तुकला—मोहनजोदड़ो की खुदाई में एक विशाल नगर मिला है। पाये गये अवशेषों से पता लगता है कि भवनों के निर्माण में पक्की ईंटों का प्रयोग किया जाता था। नगर में एक बड़े सार्वजनिक स्नानागार के अवशेष भी मिले हैं, जो ३९ फीट लम्बा २३ फीट चौड़ा और ८ फीट गहरा है। रहने के मकान दो प्रकार के होते थे। छोटे-छोटे मकानों में एक या दो कमरे होते थे और अमीर लोगों के मकान बहुत बड़े-बड़े होते थे। लगभग सभी मकानों में कुएं होते थे। प्रत्येक घर के सामने कूड़ा-करकट इकट्ठा करने के लिए कूड़ादान होता था। मकानों में बड़े-बड़े आंगन होते थे। घरों का गंदा पानी आबादी से बाहर ले जाने के लिए नगर भर में पक्की नालियां बनी थीं। गलियां और सड़कें सीधी और साफ सुथरी थीं। "रहने के मकानों के अतिरिक्त मोहनजोदड़ो में कई बड़े-बड़े भवन भी मिले हैं। इनका क्या उपयोग होता रहा हो, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है कि वे मन्दिर या देवालय आदि रहे हों किन्तु उनमें मूर्तियां जैसी कोई चीज नहीं मिली है।"*

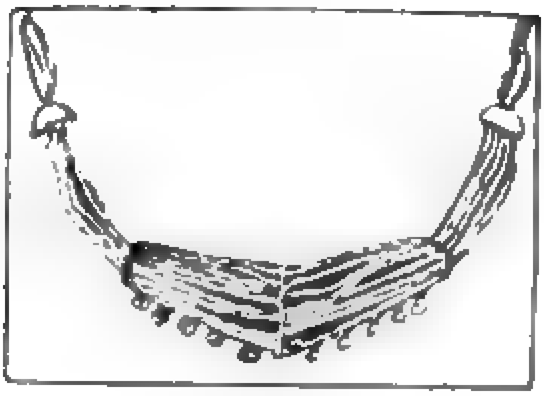
**The Cambridge Shorter History of India.*

५. निवासियों का जीवन — इन स्थानों पर जो अवशेष पाये गये हैं उनसे ही हम इस सभ्यता के जन्मदाताओं के बारे में कुछ जान सकते हैं। सम्भवतः कोल, भील तथा द्रविड़ जाति के लोग इस सभ्यता के निर्माता थे। किन्तु कुछ लोगों का मत है कि ये लोग बेबीलोनिया के सुमेरियन लोगों के सम्बन्धी थे। ये लोग लगभग ४००० वर्ष ई० पू० बिलोचिस्तान या भारत के उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों से आकर यहाँ बस गये थे। "इस प्रकार सिन्धु घाटी की सभ्यता सर्व देशीय थी। वास्तुकला में निर्मित खोपड़ियाँ वैसी ही हैं, जैसी खोपड़ियों की हड्डियाँ पाई गई हैं।"* खुदाई में पाये गये मनुष्यों के ढांचों से पता लगता है कि वे लोग नाटे कद और सुदृढ़ शरीर के होते थे। उनका मुख्य भोजन गेहूं, जो और शाक इत्यादि होता था। बहुतेरे लोग मांस-मछली भी खाते थे। स्त्री-पुरुष सभी आभूषण पहनते थे। अमीरों के आभूषण सोने चांदी के होते थे और गरीबों के तांबे के। ऊनी-सूती दोनों प्रकार के वस्त्र काम में लाये जाते थे। संगीत, आखेट और जुआ मनोरंजन के मुख्य साधन थे।

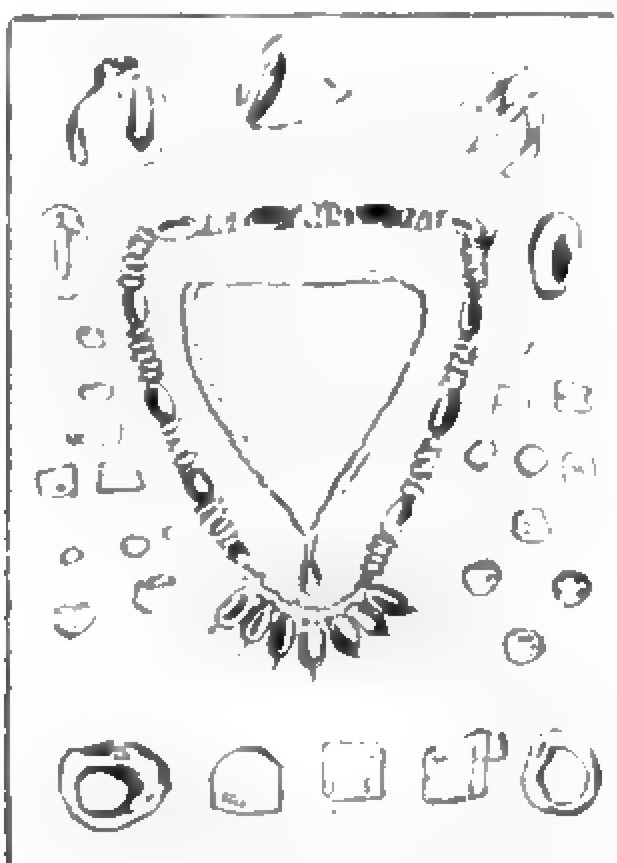
६. व्यवसाय— ये लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। भेड़, सुअर और मुर्गी भी पालते थे। अवशेषों से यह भी प्रमाण मिलता है कि उनके यहाँ भैंस, ऊंट, हाथी, बैल तथा हरिण भी होते थे। लोगों का मुख्य उद्यम कृषि था। खुदाई में तराजू और बाँट का मिलना यह सिद्ध करता है कि वे इनका प्रयोग करते थे और व्यापार उन्नत दशा में था। खजूर के भी बीज मिलते हैं। इससे पता लगता है कि खजूर की भी खेती होती थी। शहर व्यापार के केन्द्र थे और दूर-दूर के स्थानों से माल यहाँ बिकने आता था। पहियेदार गाड़ियों और नावों द्वारा यातायात होता था। गाड़ियों के चित्र धातु-पत्रों पर खुदे पाये गये हैं। मिट्टी के बर्तन और खिलौने बनाने तथा उस पर तरह-तरह की चित्रकारी व नक्काशी का काम भी होता था।

७. शस्त्र और बर्तन—सिन्धु घाटी की सभ्यता के लोगों को तांबे

Hindu Civilisation by R. K. Mukerjee.







सिन्धु घाटी सभ्यता के प्रतीक

तथा ब्रांज धातु का ज्ञान था पर लोहे का इन्हें ज्ञान नहीं था। इनके अधिकांश शस्त्र जैसे भाला, कुल्हाड़ी, छुरा, तीर-कमान और गोफन तांबे या ब्रांज के बने होते थे। ढाल; कवच और तलवार उस समय प्रचलित नहीं थे। चूंकि इन्हें धातुओं का ज्ञान था अतः इनके अधिकांश बर्तन तांबे और ब्रांज धातु के बनते थे। मिट्टी के बर्तनों का भी काफी इस्तेमाल होता था। वहां पाये गये बर्तनों में प्याला, रकाबी, थाली, लोटा और घड़ा मुख्य हैं।

८. धर्म—इनके धर्म के विषय में पर्याप्त जानकारी नहीं है। खुदाई में देवी-देवताओं या मन्दिरों के कोई अवशेष नहीं मिले हैं। परन्तु मुद्राओं पर कुछ ऐसे चित्र अंकित हैं, जिनसे पता लगता है कि वे एक देवी (संभवतः दुर्गा) की पूजा करते थे। दूसरा चित्र एक त्रिमुख देवता का है, जिसके चारों ओर अनेक पशु हैं। यह संभवतः पशुपति शिव का चित्र है। इस बात का भी काफी प्रमाण मिलता है कि शिव लिंग की पूजा होती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्षों और पशुओं की भी पूजा करते थे। मृतकों को जलाने या दफनाने की प्रथा थी। मृतक की अस्थियों को मिट्टी के बर्तन में बन्द करके जमीन में गाड़ दिया जाता था।

९. लिपि—खुदाई में प्राप्त कई मुद्राओं पर कुछ संकेत-चित्र अंकित हैं। पर इन संकेतों को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। इनकी लिपि में ३९६ संकेत पाये गये हैं। चीनी भाषा की वर्तमान लिपि इस लिपि से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है और ऐसा लगता है कि सिन्धु घाटी के लिपि-परिवार में अब केवल चीनी लिपि ही शेष रह गई है। यह बात तो निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि इनकी भाषा संस्कृत नहीं थी और इसमें भी संदेह नहीं है कि वह कोई द्रविड़ी थी।

१०. कलाकौशल—इस काल में चित्रकला की बड़ी उन्नति हो चुकी थी। लोग मिट्टी के बर्तनों को रंग कर उन पर सुन्दर चित्र बनाते थे। अवशेषों में कई प्रकार के खिलौने भी मिले हैं। लकड़ी और मिट्टी के खिलौनों के अतिरिक्त हाथी दांत का काम भी होता था।

आभूषण और सुन्दर मूर्तियां बनाने में भी ये लोग बहुत कुशल थे। ये लोग ऊनी और सूती कपड़ा बुनना और कपड़ों को रंगना भी जानते थे। मोहनजोदड़ो और हरप्पा की खुदाई में जो मकान निकले हैं, उनको देखने से पता लगता है कि वहां के निवासियों की नगर-योजना तथा वास्तुकला बहुत उच्चकोटि की थी।

११. **अन्य समकालीन सभ्यताओं से सम्बन्ध**—ऐसे ही अवशेष और खण्डहर चीन, मिस्र, क्रीट और मेसोपोटामिया में भी पाये गये हैं। सुमेरियन तथा एलामाइट की खुदाई में भी इसी प्रकार की कारीगरी की वस्तुएं मिली हैं। अब यह सिद्ध हो चुका है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता केवल सिन्ध, बिलोचिस्तान, पंजाब, काठियावाड़, भारत के समुद्र तटों और गंगा की घाटी तक ही सीमित न थी वरन् भारत के बाहर के देशों में भी फैली हुई थी। इन्हीं सभ्यताओं की तुलना करके हम सिन्धु घाटी की सभ्यता का काल निर्धारित कर सकते हैं। यह सभ्यता संसार के अन्य देशों में चलने वाले एक बहुत बड़े सभ्यता आन्दोलन का एक भाग थी। उस समय चीन की तारिम घाटी में जो महान् सभ्यता विद्यमान थी, वह देश के अन्य भागों में भी फैल गयी थी। मेसोपोटामिया में दजला और फरात की घाटी में, मिस्र में नील की घाटी में और पश्चिमी फारस तथा सीस्तान में भी खुदाई होने पर ऐसी ही सभ्यताओं का पता लगा है। क्रीट द्वीप में भी ऐसी सभ्यता के कुछ चिन्ह पाये गये हैं। इन सभी सभ्यताओं में कई बातें समान हैं फिर भी सिंधु घाटी की सभ्यता संसार की अन्य प्राचीन सभ्यताओं से श्रेष्ठ थी। इस सभ्यता में वास्तुकला और नगर योजना काफी विकसित स्थिति में थी जबकि अन्य देशों के लोगों को मकान बनाने व नगर बसाने का ज्ञान नहीं था। इसके अतिरिक्त सिंधु घाटी के लोगों में एक विकसित धर्म भी प्रचलित था, जिसमें हिन्दू धर्म के भी कुछ लक्षण थे। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दू धर्म संसार का सबसे प्राचीन धर्म है। स्पष्ट है कि सिंधु घाटी की सभ्यता एक विशेष प्रकार की उच्च, श्रेष्ठ तथा राष्ट्रीय सभ्यता थी।

प्रश्न

1. What do you know about the civilisation and culture of the people living in the Indus Valley ?

सिंधु घाटी के निवासियों की सभ्यता तथा संस्कृति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

2. "The Indus Valley Civilisation was distinctive in characteristics and outlook." Discuss this statement.

"सिंधु घाटी सभ्यता अपने स्वरूप तथा दृष्टिकोण में एक विशिष्ट सभ्यता थी।" इस कथन की विवेचना कीजिये।

3. What light do the excavations in Mohanjodaro and Harrapa throw on the ancient history of India ?

मोहनजोदड़ो और हरप्पा में हुई खुदाई में जो सामग्री मिली है उससे भारत के प्राचीन इतिहास पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

4. Compare in brief the earliest civilisations of Mesopotamia, Egypt and China with the civilisation of India in the earliest times.

भारत की प्राचीनकालीन सभ्यता की तुलना मैसोपोटामिया, मिश्र तथा चीन की प्राचीनकालीन सभ्यताओं से संक्षेप में कीजिए।

—:o:—

अध्याय ४

भारत में आर्यों का आगमन और वैदिक सभ्यता

आर्य

१. आर्यों का आदि-स्थान—सिन्धु घाटी सभ्यता के पश्चात् वैदिक सभ्यता का युग आया। वैदिक सभ्यता के निर्माता कौन थे और वे कहाँ से आये आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो विवादास्पद हैं। पौराणिक प्रमाणों के आधार पर कुछ विद्वान भारत को ही आर्यों का आदि स्थान मानते हैं। किन्तु इसके विरुद्ध इस बात को सिद्ध करने के लिये प्रबल प्रमाण रखे गये हैं कि वे भारत में बाहर से आकर बसे। सर विलियम जोन्स ने १८७६ में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी में आर्यों के आदि स्थान के सम्बन्ध में भाषण देते हुए कहा कि ग्रीक, लैटिन, संस्कृत, गोथिक, कैल्टिक, फारसी आदि भाषाओं में काफी समानता है। भाषा का साम्य इस बात का प्रमाण है कि उनका मूल स्रोत एक ही है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन भाषाओं को बोलने वाले लोग प्राचीनकाल मे किसी समय साथ रहे होंगे। उनके इस मूल सम्मिलित निवासस्थान के बारे में आज भी विद्वानों का मत एक नहीं है। अनेक भारतीय विद्वानों का, जैसे श्री० एल० डी० काला और श्री डी० एस० त्रिवेदी का मत है कि आर्यों का मूल तथा सम्मिलित निवासस्थान भारत ही था। उनका कथन है कि वेदों में भी इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि भारत में आने के पूर्व आर्यों का निवासस्थान किसी अन्य स्थान पर था। अतः उनका विचार है कि आर्य बाहर से नहीं आये बल्कि भारत ही उनका मूल निवास स्थान था।

(क) उपरोक्त धारणा भावुकता पर आधारित है। आर्यों के आगमन से पूर्व भारत में अनार्य रहा करते थे। अनार्यों एवं आर्यों के युद्धों और संघर्षों का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। सरदार के०एम०

पनिक्कर की भी यही धारणा है कि आर्य भारत के मूल निवासी नही थे, वरन् वे ईरान से यहां आये थे।

(ख) श्री बालगंगाधर तिलक ने अपनी पुस्तक "आर्कटिक होम इन दी वेदाज" (Arctic Home in the Vedas) में यह तर्क प्रस्तुत किया है कि आर्यों का मूल और सम्मिलत निवासस्थान उत्तरी ध्रुव प्रदेश था। इस सम्बन्ध में उन्होने ऋग्वेद के प्रमाण दिये हैं। अधिकांश विद्वानों ने उनके इस मत को ठीक नही माना है, क्योंकि यह असम्भव प्रतीत होता है कि ऐसे शीत प्रदेश में आर्य सभ्यता जीवित रह सकी होगी। कुछ विद्वान आर्यों का मूल निवास स्थान पामीर पर्वत मानते हैं। परन्तु इस कथन के पक्ष में समुचित प्रमाणों का अभाव है। पींका (Penka) नामक यूरोपीय विद्वान का मत है कि आर्यों का मूल निवास स्थान जर्मनी था। इस धारणा को भी अतर्कपूर्ण माना जाता है।

(ग) आर्यों का आदि-स्थान-रूस—अधिकांश विद्वानो ने इस मत को स्वीकार किया है कि आर्यों का मूल निवासस्थान रूस के दक्षिणी भाग का घास का मैदान था। नेहरिंग (Nehring), पोकार्नी (Pokorny), गाइल्स (Giles), मोलर (Moller) और ब्रान्डे-स्टीन (Brandestein), आदि विद्वानों का भी यही मत है कि आर्य दक्षिणी रूस के किसी स्थान के मूल निवासी थे। इन विद्वानों ने भाषा-शास्त्र के आधार पर अनेक तर्क और प्रमाण उपस्थित किये हैं, जिन्हें स्वीकार कर लिया गया है।

(२) आर्यों का आगमन एवं प्रसार—ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि दक्षिणी रूस के अपने मूल स्थान से चलने के बाद आर्य ईरान में आये। ईरानियों की धार्मिक पुस्तक अवस्ता (Avesta) और ऋग्वेद में अनेकों बातों में काफी समानता है। प्राचीन ईरानियों और वैदिककालीन आर्यों के कुछ देवताओं में भी काफी समानता है। अनुमान है कि कुछ समय बाद ईरान में बसे आर्यों में परस्पर मतभेद पैदा हो गया। परिणामस्वरूप उनमें से कुछ लोग वहां से पूर्व की ओर

चले और भारत आ गये। आर्य लोग भारत में रहने के विचार से आये थे। आर्यों के छोटे-छोटे समूह एक-एक करके भारत आये। ऋग्वेद में भी इस बात का उल्लेख है कि अफगानिस्तान पर आर्यों का अधिकार था और वे खैबर दर्रे से होकर भारत में आये थे। भारत में उन्हें अनार्यों से काफी समय तक संघर्ष करना पड़ा। आर्य अपने शारीरिक बल से अनार्यों को परास्त करके पंजाब में, जिसे उस समय 'सप्तसिंधु' कहा जाता था, बस गये। संघर्षों का अन्त यहीं नहीं हुआ। अनार्य चप्पे-चप्पे भूमि के लिए लड़े और उन्होंने अपना और अपने शत्रुओं का खून बहाया। पर जब आर्यों ने उनके 'पुर' और 'दुर्ग' नष्ट कर दिये, तो उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा। पराजित अनार्यों को आर्यों ने दास बनाकर रखा।

ऋग्वेद आर्यों का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। आर्यों के साहित्य में इसका अत्यन्त महत्त्व है। ऋग्वेद की तिथि अथवा उसमें प्रगटित आर्य सभ्यता के काल के बारे में काफी मतभेद है। ज्योतिष के आधार पर तिलक और जेकोबी इस काल को ई० पू० ४००० वर्ष रखते हैं। इसके विपरीत मैक्समूलर की राय में ऋग्वेद की रचना का प्रारम्भ-काल १२००-११०० ई० पू० है। अधिकांश लोग इस मत से सहमत हैं कि आर्य सभ्यता ई० सन् से लगभग ३,००० वर्ष पूर्व आरम्भ हुई थी। किन्तु, ये सब बातें अनुमान पर आधारित हैं और ऋग्वेद की रचना का कोई निश्चित समय नहीं बताया जा सकता।

वैदिक सभ्यता

(१) पारिवारिक जीवन—ऋग्वैदिक काल के आर्यों में पारिवारिक जीवन की नींव पड़ चुकी थी। स्त्री और पुरुष के बीच विवाह का बन्धन पवित्र माना जाता था। प्रायः लोग एक ही विवाह करते थे। पर अभिजात कुलीनों में बहुविवाह भी सम्मत था। बाल-विवाह की प्रथा नहीं थी। लड़कियों का विवाह युवावस्था में कर दिया जाता था। लड़कियों को मन-चाहे व्यक्ति से विवाह करने की छूट थी। विवाह के पश्चात् वे पति की रक्षा में रहती थीं। उनके बाहर निकलने,

आने-जाने पर कोई रोक न थी और वे यज्ञों और त्योहारों में सम्मिलित होती थीं। स्त्री-शिक्षा का प्रचार था और सदाचार का स्तर काफी ऊंचा था। दहेज की प्रथा उस समय भी प्रचलित थी। परिवार का प्रत्येक सदस्य पिता या घर में सबसे बड़ी उम्र वाले पुरुष के आधीन रहता था।

आर्यों का जीवन बहुत सरल था। लोग परिवारों में रहते थे। संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। पति-पत्नी के अतिरिक्त माता-पिता भाई-बहन और पुत्र-पुत्री भी परिवार के सदस्य होते थे। संयुक्त परिवार प्रणाली से परस्पर स्नेह और सहृदयता बनी रहती थी। परन्तु कभी-कभी भूमि, पशु, आभूषण आदि के बंटवारे के झगड़े पैदा हो जाते थे। लड़कियां ही अधिकतर गाय दुहती थी, इसी कारण उन्हें 'दुहिता' कहा जाने लगा था। स्त्रियां घरो में सीने-पिरोने और कपड़ा बुनने का काम करती थी।

४. व्यवसाय व व्यापार—आर्यों का मुख्य उद्यम पशुपालन था। पशु ही उनकी सम्पत्ति थे। उनके पशुओं में गाय-बैल के अलावा घोड़े भेड़-बकरियां, कुत्ते और गधे भी थे। उनका दूसरा काम कृषि था। हल में बैल जोते जाते थे। खेतों की सिंचाई के लिए कुएँ बनाये जाते थे। ये लोग खेतों में 'यव' (जौ) और 'धान्य' उपजाते थे। कुछ लोग बहुधा युद्ध की तैयारी में ही व्यस्त रहते थे। आर्यों की सेनाओं में रथ और पैदल सैनिक दोनों होते थे। रथों में घोड़े जोते जाते थे। आर्यों के मुख्य अस्त्र-शस्त्र धनुष-बाण, बरछे, भाले, फरसे और तलवार थे। युद्ध के समय नगाड़े बजाये जाते थे।

सिक्कों का प्रचलन न था। अतः लेनदेन आपस में सामान बदल कर किया जाता था। लोगों की आवश्यकताएं सीमित थीं और आसानी से पूरी हो जाती थीं। बढ़ई और लुहार का पेशा हेय न समझा जाता था, क्योंकि ये युद्ध की सामग्री और रथ आदि बनाते थे। ऋग्वेद में भी लुहार का उल्लेख मिलता है। चर्मकार चमड़े को साफ करके धनुष की प्रत्यंचा बनाता था। सबसे बड़ी बात यह है कि उस समय इन

पेशों में से कोई भी पेशा हीन या नीचा नहीं समझा जाता था। वर्ण व्यवस्था का जन्म अभी हुआ नहीं था।

५. राजनैतिक संगठन—आर्यों के संगठन का आधार परिवार था। कई परिवारों से मिलकर एक ग्राम बनता था। कई ग्रामों को मिलाकर एक 'जन' बनता था। 'जन' के नेता को राजा कहते थे। अनुमान है कि पहले राजा निर्वाचित होता था, पर बाद में राजा वंश-परम्परा से बनने लगा। ऋग्वेद में एक ही वंश के कई राजाओं का उल्लेख मिलता है। युद्ध में राजा 'जन' का नेतृत्व करता था और शत्रु से संघर्ष की योजना बनाता था। प्रजा उसका अनुशासन मानती थी और उसे उपहार देती थी। राजा के अधिकारियों में मुख्य पुरोहित, सेनानी और ग्रामणी होते थे। इनमें पुरोहितों का स्थान बहुत ही उच्च था। राजा निरंकुश न होता था। उसके ऊपर 'जन' का नियन्त्रण होता था। सभा और समिति नाम की दो संस्थाएँ उसके शासन पर अंकुश रखती थीं। सभा वृद्धजनों की और समिति सारी जनता की राजनैतिक संस्थाएँ थीं। भारत का राजनैतिक संगठन मिस्र और मैसोपोटामिया से अधिक जनतन्त्रवादी था। वैदिककालीन राजनैतिक संगठन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि शासन में जनमत का आदर होता था। जनपद राज्यों का सूत्रपात हो चला था।

६. शिक्षा और सम्पत्ति—शिक्षा की कोई निश्चित प्रणाली न थी। प्राय: घरों में ही शिक्षा दी जाती थी। कहीं-कहीं पर विद्वान पंडितों ने पाठशालाएँ खोल रखी थीं जहाँ बच्चों को शिक्षा दी जाती थी। प्रारम्भ में शिक्षा मौखिक थी। लिपि का आविष्कार बाद में हुआ। आर्यों की सम्पत्ति उनके बैल, गाय, घोड़े, दास और भूमि थी। अपने पुत्रों को आर्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति मानते थे। सम्पत्ति में पुत्रों को ही हिस्सा मिलता था, पुत्रियों को नहीं। पुत्र न होने पर पिता को गोद लेने का अधिकार था।

७. भोजन, वस्त्र और मनोरंजन—वैदिककालीन आर्य मांसाहारी और शाकाहारी दोनों थे। भेड़ और बकरों का मांस खाया और

देवताओं पर चढ़ाया जाता था। गो-वध निषिद्ध था। दूध से बनी अन्य वस्तुएं आर्यों का मुख्य भोजन थी। इनके भोजन में फल और तरकारियाँ भी शामिल थीं। धार्मिक अवसरों पर 'सोमरस' का पान किया जाता था। अन्न से तैयार की गई एक प्रकार की सुरा का भी व्यवहार होता था, परन्तु इस मदिरा का प्रयोग पुरोहित आदि नहीं करते थे। आर्य बहुत साधारण कपड़े पहनते थे। स्त्रियाँ एक धोती एक अन्य वस्त्र और एक ढीला अँगरखा पहनती थीं। स्त्री-पुरुष दोनों ही आभूषणों का प्रयोग करते थे। अँगूठी, गले का हार, कंगन, नूपुर आदि खास-खास आभूषण थे। स्त्रियाँ केशों को बंटकर वेणियाँ बनाती थीं। कुछ लोग डाढ़ी मुंडवा लेते थे और कुछ लोग डाढ़ी रखना पसंद करते थे।

आर्यों का सब से प्रिय मनोरंजन रथों और घोड़ों की दौड़ थी। उनका जीवन नीरस नहीं था। त्योहारों तथा अन्य अवसरों पर नृत्य-गायन आदि का आयोजन किया जाता था। नगाड़े, ढोलक, वीणा और बाँसुरी आदि वाद्यों का प्रचार था। जुआ भी मनोविनोद का साधन समझा जाता था। स्त्री को दांव पर लगाकर हार जाने का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।

८. **धर्म**—आर्यों का धार्मिक जीवन बहुत सादा था। उन दिनों कोई मन्दिर या मूर्तियाँ नहीं होती थीं। आर्य आकाश, पृथ्वी, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु आदि की आराधना करते थे। देवताओं को बलि चढ़ाई जाती थी। वरुण और इन्द्र का बहुत सम्मान था। इनकी भक्ति और महिमा का गान किया जाता था। यज्ञ द्वारा देवताओं को घी, दूध, जौ, तिल, सोम आदि पदार्थ अर्पण किये जाते थे। वैदिक काल में स्त्रियों की बहुत प्रतिष्ठा थी और यज्ञ जैसे धार्मिक कार्यों में वे समान हिस्सा लेती थीं। वैदिक धर्मावलम्बी यह समझते थे कि स्त्री के सुखी रहने पर ही घर में सुख की वर्षा हो सकती है। इस कारण वैदिक काल में स्त्रियों का आसन बहुत ऊँचा और सम्माननीय था। जीवन की शुद्धता और पवित्रता पर बहुत जोर दिया जाता था और

प्रामाणिक जीवन धर्म का एक अंग समझा जाता था । मृतकों को जलाने और दफनाने की प्रथा थी ।

९. उत्तर वैदिक कालीन सभ्यता — प्राचीन आर्य ऋग्वेद युग के आर्य थे । उनकी सभ्यता को वैदिक सभ्यता कहा जाता था, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है । महाकाव्य कालीन आर्य सभ्यता के विकसित रूप को उत्तर-वैदिक कालीन सभ्यता कहा जाता है । वैदिक-कालीन सभ्यता और उत्तरवैदिक कालीन सभ्यता में बहुत अन्तर है । प्राचीन आर्यों का जीवन अत्यन्त सादा था और वे पंजाब (सप्तसिंधु) में रहते थे । पर उत्तर-वैदिक काल में आर्य लोग पूर्व की ओर काफी आगे आकर बस चुके थे । इस समय उत्तरी भारत के आर्य प्रदेश को आर्यावर्त्त कहा जाने लगा था । कोशल, विदेह, मगध और अंग आदि स्थान काफी प्रसिद्ध हो गये थे । कुरुक्षेत्र आर्य संस्कृति का केन्द्र था । इससे पता लगता है कि इस समय तक हिमालय और विन्ध्याचल के बीच का लगभग सारा भारत आर्यों के आधीन आ गया था । रामायण और महाभारत इस काल के दो महान महाकाव्य हैं । अतः उत्तर-वैदिक काल को महाकाव्य-काल भी कहा जाता है ।

१०. सामाजिक अवस्था — उत्तर-वैदिक काल की सामाजिक अवस्था में वैदिक काल की सामाजिक अवस्था की अपेक्षा काफी परिवर्तन हो चुके थे । आर्यों के परिवार बहुत बड़े हो गये थे, फिर भी परिवार समाज की इकाई माने जाते थे । सामाजिक जीवन में एक बड़ा परिवर्तन यह हो गया था कि वर्ण व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी । यह वर्ण-व्यवस्था कैसे शुरू हुई यह एक रहस्यपूर्ण बात है । प्राचीन आर्यों ने भी इस प्रथा के बारे में कुछ नही कहा है । अतः इस सम्बन्ध में निश्चित और अन्तिम रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । ऐसा लगता है कि आर्यों की जटिल सामाजिक आवश्यकताओं के कारण इसका जन्म हुआ हो । कर्म-काण्ड और अनुष्ठान कराने वाले ब्राह्मण कहलाये । युद्ध करने वाले, भूमि के स्वामी और राजनीति में सक्रिय भाग

लेने वाले क्षत्रिय कहलाये। वणिक्, कृषक और शिल्पी वैश्य कहलाये। दासों और दस्युओं से बना विजित वर्ग शूद्र कहलाया। शूद्र वर्ग का कर्त्तव्य उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा करना था। वर्ण-व्यवस्था में अभी भी बहुत कड़ाई नहीं आई थी। अन्तर्जातीय विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। पर जैसे-जैसे ब्राह्मणों की सत्ता बढ़ती गई, वर्ण-व्यवस्था भी कठोर होती गई। तरह-तरह के काम धन्धे बढ़ रहे थे। अतः काम-धन्धों के आधार पर जातियाँ भी बनने लगीं और इसी प्रकार जातियों में उप-जातियाँ भी बनीं। एक जाति को छोड़ कर दूसरी जाति में जाना कठिन था और बाद में तो वह असम्भव हो गया।

(क) शूद्रों के साथ बुरा व्यवहार किया जाता था और उनकी दशा दयनीय हो गयी थी। उन्हें अछूत समझा जाता था और यज्ञ तथा अनुष्ठान में भाग लेने का उन्हें कोई अधिकार न था। आर्यों ने शूद्रों के साथ सभी प्रकार के सम्बन्ध वर्जित कर दिये थे। उन्हें अपनी सम्पत्ति पर अधिकार नहीं था। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में तो एक स्थान पर यह भी कहा गया है 'शूद्र दूसरे का सेवक है, जिसका इच्छानुसार निष्कासन तथा वध भी किया जा सकता है।'

(ख) उत्तर-वैदिक काल में स्त्रियों की दशा काफी खराब हो गई थी। अब उनको अपने पतियों के समान स्थान प्राप्त नहीं था। राजा और बड़े-बड़े धनी लोग एक से अधिक विवाह करते थे। दहेज की प्रथा बहुत व्यापक हो गयी थी और बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ दहेज में दी जाती थीं। लड़कियों का सम्मान कम हो गया था। बहुपत्नीत्व प्रथा के सबसे बड़े प्रमाण स्वयं मनु थे, जिनके दस पत्नियाँ थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियों के दृष्टान्त मिलते हैं कि वे शिक्षित थीं और शिक्षा का प्रचार था। सम्पत्ति पर स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं होता था और उनकी अर्जित सम्पत्ति भी पिता या पति की सम्पत्ति मानी जाती थी। पुरुषों के लिए नैतिक आचरण के कोई बन्धन न थे जबकि स्त्रियों के लिए नैतिकता के

बन्धन बहुत कठोर बना दिए गये थे। कन्या का जन्म 'दुःख का कारण' और पुत्र का जन्म अत्यन्त हर्षप्रद समझा जाता था।

११. व्यवसाय— इस युग में कृषि के क्षेत्र में बहुत उन्नति हो चुकी थी। अच्छी फसल पैदा करने के लिए खाद की उपयोगिता का भी ज्ञान हो चुका था। जौ (यव) के अतिरिक्त धान, गेहूँ और तिल आदि की भी खेती होने लगी थी। इस समय आर्यों का आर्थिक जीवन और उद्योग भी काफी विकसित हो चुका था। इस काल के साहित्य में कुछ नये पेशों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे सारथी, गड़रिये, टोकरी बनाने वाले, धोबी, रंगसाज, जुलाहे, खटिक, बधिक, रसोइये, कुम्हार, नट, गायक इत्यादि। ज्योतिषियों और नाइयों का समाज में विशिष्ट स्थान था। वैद्य लोगों की चिकित्सा करते थे। स्त्रियाँ अधिकतर रंगसाजी, कढ़ाई, सीना-पिरोना आदि करती थीं। सिक्कों का प्रचलन अबतक नहीं था। इस काल के साहित्य में शीशा, टिन, चाँदी, सोना, तांबे और लोहे का भी उल्लेख मिलता है।

१२. धर्म— उत्तरवैदिक काल में ऋग्वेद काल के कुछ देवताओं की प्रतिष्ठा बढ़ गई थी और कुछ की कम हो गई थी। रुद्र और विष्णु नामक देवताओं के प्रति जनता का विश्वास बहुत बढ़ गया था। देवताओं की बहुलता अब भी बनी हुई थी। समाज पर ब्राह्मणों का प्रभाव इतना गहरा हो गया था कि वे पृथ्वी के देवता माने जाने लगे थे। ब्राह्मणों ने कर्मकाण्ड को बहुत जटिल बना दिया था। धनी-मानी और बड़े-बड़े राजा समारोह-पूर्वक यज्ञ करते थे। इस प्रकार के यज्ञों में राजसूय और अश्वमेध प्रसिद्ध हैं, जिनका उल्लेख रामायण और महाभारत में मिलता है। हिन्दू षट्-दर्शनों, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा और उत्तर-मीमांसा की रचना भी इसी काल में हुई। आध्यात्मिक चिन्तन की परिपाटी भी इसी समय चली।

१३. राजनैतिक दशा—इस काल में भी युद्ध में राजा ही सेना का नेतृत्व करता था, यद्यपि सेना का संचालक सेनानी होता था। सभा और समिति नामक संस्थाएँ पूर्णतया नष्ट तो नहीं हुई थीं

परन्तु उनका प्रभाव काफी घट गया था । इस काल के बड़े-बड़े सुव्यवस्थित राज्य और अच्छे शासकों की जानकारी मिलती है । गंगा के किनारे कुरु राज्य था । इसकी राजधानी पहले आसन्दीवन्त थी, बाद में हस्तिनापुर हो गई । कुरु कुल के राजा परीक्षित के शासन के बारे में कहा जाता है कि राज्य में दूध और मधु की नदियाँ बहती थीं । उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था । वर्तमान अवध प्रदेश में गंगा के किनारे कोशल राज्य था । इस पर इक्ष्वाकु वंश के राजा शासन करते थे । अयोध्या के पूर्व तिरहुत में विदेहों का राज्य था । इसकी राजधानी मिथिला थी । विदेह का सबसे बड़ा राजा जनक था । मत्स्य राज्य जयपुर, अलवर और भरतपुर रियासतों में था । सिन्धु नदी के दोनों तटों पर गान्धार जनपद था । इसके अलावा मगध, विदर्भ, काशी, कौशाम्बी भी सुप्रसिद्ध राज्य थे । अधिकाधिक राज्यों को अधीनस्थ करके अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञों का अनुष्ठान करना गौरव की बात समझी जाती थी ।

प्रश्न

1. What different views have been expressed about the original home of the Aryans ? Which view do you think to be a rational one ?

आर्यों के मूल निवासस्थान के सम्बन्ध में प्रचलित मतों को प्रस्तुत करते हुए बतलाइये कि कौन सा मत आप को तर्कयुक्त मालूम होता है ?

2. How and when did the Aryans come to India ?

आर्य भारत में कैसे और कब आये ?

3. What do you know about the social, economic and religious conditions of the Vedic Aryans ?

वैदिककालीन आर्यों की सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशा के

बारे में आप क्या जानते हैं ?

4. Describe the social, economic and religious conditions of the later Vedic Period.

उत्तर-वैदिक काल के आर्यों की सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

5. Give a brief description of the system of Government prevailing among the ancient Aryans.

प्राचीन आर्यों की शासन व्यवस्था का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

—: o :—

अध्याय ५

आर्य साहित्य

१. परिचय—वैदिक साहित्य एक बहुत व्यापक शब्द है। इसमें केवल चारों वेद ही नहीं आते वरन् आर्यों की सभी महत्वपूर्ण पुस्तकें शामिल हैं। इस प्रकार ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदान्त आदि सभी वैदिक साहित्य की श्रेणी में आते हैं। यह पूरा साहित्य हजारों वर्षों के परिश्रम से तैयार हुआ होगा। फिर भी, इसमें से किसी ग्रन्थ की रचना का निश्चित काल नहीं बताया जा सकता। ऋग्वेद की रचना का समय सम्भवतः २००० वर्ष ई० पूर्व रहा होगा।

२. श्रुति और स्मृति—श्रुति का अर्थ है सुना हुआ। कहा जाता है स्वयं ईश्वर ने सन्तों को श्रुतियाँ बताई थीं। यह साहित्य एक ऋषि से दूसरे ऋषि तथा दूसरे से तीसरे के पास जाता रहा। काफी समय बाद इसे लिपिबद्ध किया गया। श्रुति साहित्य अत्यन्त पवित्र समझा जाता है और इसमें चारों वेद; ब्राह्मण, आरण्यक, उपवेद तथा उपनिषद् महत्वपूर्ण हैं। स्मृति साहित्य ऋषियों ने लिखा था, अतः इसे ईश्वरीय साहित्य नहीं माना जाता। आर्य काल का शेष साहित्य स्मृति साहित्य में ही गिना जाता है।

३. वेद—वेद आर्यों के सबसे अधिक पवित्र और आदि ग्रन्थ हैं। इनके संकलन में कई सौ वर्ष लगे होंगे ऐसा अनुमान है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद में १०२८ मन्त्र हैं, जो यज्ञ सम्बन्धी हैं। ऋग्वेद का गायत्री मन्त्र सबसे अधिक प्रसिद्ध है। साम वेद में कुल १५४९ गान हैं। अनेक मन्त्र और गान ऋग्वेद से भी लिए गए हैं। यजुर्वेद में यज्ञ की विधियों का उल्लेख है। अथर्ववेद में मोहन, आकर्षण और वशीकरण आदि मन्त्र दिये हुए हैं। इसमें कुल ७३१ मन्त्र हैं।

(क) ब्राह्मण—वेदों की भाषा काफी कड़ी थी । अतः साधारण जनता को वेदों का अर्थ समझाने के लिए व्याख्यात्मक पुस्तकें लिखी गईं, जिन्हें ब्राह्मण कहते हैं । ये गद्य ग्रन्थ हैं । ऋग्वेद के मंत्रों की व्याख्या ऐतरेय तथा कौशीतकि ब्राह्मणों में की गई है । ताण्ड्य और जैमिनीय ब्राह्मणों में सामवेद की व्याख्या की गई है । तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मणों में यजुर्वेद तथा गोपथ में अथर्व वेद की व्याख्या की गई है । इन पुस्तकों को वन में पढ़ी जाने वाली पुस्तकें भी कहा जाता है । ब्राह्मण ग्रन्थों के उस भाग को आरण्यक कहते हैं जिसमें दर्शनशास्त्र का वर्णन है ।

(ख) उपनिषद्—हिन्दू धर्म के दर्शन साहित्य को उपनिषद् कहते हैं । उपनिषदों की संख्या लगभग ३० है और इन्हीं उपनिषदों के फलस्वरूप आर्य-काल में हिन्दू धर्म में काफी परिवर्तन हो गये ।

(ग) वेदांग—वेदांग का अर्थ है वेद का अंग । इनमें धार्मिक अवसरों के संस्कार की रीति-विधि का वर्णन है । इनमें आर्यों का सामाजिक जीवन भी वर्णित है । महत्वपूर्ण वेदांग छः हैं ।

(घ) उपवेद—उपवेदों में विशेष ज्ञान की बातें दी गई हैं । जिस प्रकार आयुर्वेद में औषधि विज्ञान का वर्णन है, उसी प्रकार धनुर्वेद में युद्ध-कला का वर्णन है । गन्धर्व वेद में संगीत का वर्णन मिलता है ।

(४) षट्दर्शन—उत्तर-वैदिक काल में भारतीत दर्शन की छः विचार-धाराओं का जन्म हुआ और उनका आर्य साहित्य में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है ।

(१) कपिल का सांख्य दर्शन—ऋषि कपिल ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते । उनका मत है कि आत्मा और प्रकृति दो ही पदार्थ हैं और उन्हीं के मिलने से सृष्टि का जन्म होता है । इन्हीं पदार्थों अर्थात् आत्मा और प्रकृति के अलग होने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है ।

(२) पातंजलि का योग दर्शन—योगदर्शन में पातंजलि ने इस विचारधारा का प्रतिपादन किया है कि ईश्वर का अस्तित्व है और

ईश्वर प्राप्ति के लिये चिन्तन और योगाभ्यास आवश्यक हैं।

(३) गौतम का न्याय दर्शन—गौतम की धारणा है कि केवल सत्-ज्ञान और सद्विचार से ही ईश्वर प्राप्त हो सकता है।

(४) कणाद् का वैशेषिक दर्शन—वैशेषिक दर्शन में कणाद् ने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है कि संसार की सभी वस्तुएं अणु से बनी हुई हैं और तत्व अविनाशी है। उनकी धारणा है कि संसार के चक्र की नियता एक अज्ञात शक्ति है।

(५) जैमिनी की पूर्व मीमांसा—उन्होंने वैदिक कर्मकाण्डों को महत्त्व दिया है और वैदिक मंत्रों के पाठ का समर्थन किया है।

(६) व्यास की उत्तर मीमांसा—व्यास ने एक नये दर्शन को चलाया। उनके दृष्टिकोण से संसार मिथ्या है। सत्य केवल ईश्वर या ब्रह्म है। वह महान् और सर्वशक्तिमान है।

५. महाकाव्य—आर्यों के साहित्य में रामायण और महाभारत नामक संस्कृत महाकाव्यों का बहुत महत्व है। रामायण की रचना महाभारत से पहले हुई थी और रामायण में जिस काल का वर्णन है वह काल भी महाभारत के काल से पूर्व का है। इन महाकाव्यों की रचना के समय का ठीक-ठीक पता नहीं फिर भी ऐसा अनुमान है कि इनकी रचना उत्तर-वैदिक काल के बाद और बुद्ध-काल के पूर्व किसी समय हुई थी। स्मिथ का विचार है कि यह काव्य (रामायण) कल्पना-जन्य है और कोशल साम्राज्य तथा अयोध्या की परिपाटियों पर आधारित है। मैकडानल्ड और जेकब जैसे विद्वान भी रामायण और महाभारत को कवि कल्पना-प्रसूत मानते हैं। पर इस प्रकार की धारणाएं सही नहीं हैं। आधुनिकतम खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि रामायण और महाभारत के पात्र राम और कृष्ण कल्पित नहीं हैं अपितु वास्तव में वे थे। हां, यह सच हो सकता है कि इन महाकाव्यों के प्रणेताओं ने अधिकृत घटनाओं के साथ अपने पास से भी कुछ मिलाया हो।

६. रामायण—रामायण की कथा अयोध्या के राजा दशरथ और

उनके चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के बारे में है। बड़े पुत्र राम का विवाह मिथिला के राजा जनक की पुत्री सीता से हुआ था। राजा दशरथ अपनी वृद्धावस्था में शासन-कार्य अपने बड़े पुत्र राम को सौंपना चाहते थे। पर कैकई ने अपने षड्यंत्र से कौशल्या के पुत्र राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास और अपने पुत्र भरत के लिए अयोध्या का राज्य दशरथ से मांगा। वचन-पूर्ति के लिए दशरथ को कैकेयी की बात माननी पड़ी। अपनी पत्नी और अनुज लक्ष्मण के साथ राम वन को गये। जब वे पंचवटी में थे तो लंका का राजा रावण छल से सीता को उठा ले गया। इसी आधार पर राम ने लंका पर चढ़ाई कर दी और रावण का वध कर सीता को छुड़ाया। जिस दिन सीता और लक्ष्मण सहित राम अयोध्या लौटे भरत ने राज्य राम को सौंप दिया। अयोध्या की जनता ने सीता की पवित्रता के बारे में संदेह व्यक्त किया। अतः राम ने जनमत का आदर करते हुए सीता को वनवास दे दिया। सीता वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगी और वहीं लव और कुश नामक दो पुत्रों को उन्होंने जन्म दिया। राम के अश्वमेध यज्ञ के अश्व को लव और कुश ने पकड़ लिया था। इस प्रकार पिता और पुत्रों का मिलाप हुआ।

७. महाभारत—इस महाकाव्य की रचना व्यास मुनि ने की थी। १००,००० श्लोकों का यह महाकाव्य १८ पर्वों में बंटा हुआ है। इसकी कथा इस प्रकार है। राजा पाण्डु गंगा और यमुना के बीच के एक छोटे से राज्य के शासक थे। इनकी जब मृत्यु हुई तब इनके पांच पुत्र थे। इन्हें ही पांडव कहा जाता है। पाण्डु के निधन के बाद उनके भाई धृतराष्ट्र राजा बने। धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव पांडवों से अत्यन्त ईर्ष्या करते थे। कौरवों ने पांडवों से राज्य का पैतृक अधिकार छीन लेने के लिए षड्यंत्र रचे। कौरवों का सबसे बड़ा भाई दुर्योधन था जिसने पांडवों को द्यूत में हराकर वनवास के लिए भेज दिया। वन में पांडवों को अनेक कष्ट सहने पड़े। उनकी मित्रता मत्स्य के राजा विराट और भगवान् कृष्ण से हुई। कौरवों और पाण्डवों दोनों पक्षों के बीच कुरुक्षेत्र (पंजाब) के मैदान में एक भयंकर महायुद्ध हुआ, जिसे

महाभारत का युद्ध कहते हैं। १८ दिन के घमासान युद्ध के बाद पांडवों की विजय हुई। पांडवों ने हस्तिनापुर में राज्य किया और अश्वमेध यज्ञ किया।

८. महाकाव्य काल—वैदिक और उत्तर वैदिक काल की सभ्यता महा काव्यों के युग तक आते-आते काफी उन्नत हो गई थी।

(क) राजनैतिक स्थिति—आर्यावर्त्त के विस्तृत क्षेत्र में छोटे-मोटे अनेकों राज्यों की स्थापना हो चुकी थी, जिनमें परस्पर संघर्ष और झगड़े हुआ करते थे। प्रत्येक शासक की भावना अन्य राज्यों को जीतने की होती थी। राजा यद्यपि निरंकुश होते थे पर प्रजा की रक्षा को वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। वे स्वेच्छाचारी नहीं होते थे। सम्पूर्ण शासन उनके हाथ में होता था पर अपनी सहायता के लिए वे अनेक पदाधिकारी व मंत्री रखते थे। उस समय की कूटनीति आज की कूट-नीति से कुछ कम न थी। महाभारत में कृष्ण की कूटनीति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। युद्ध में छल, बल और प्रपंच सब ठीक माना जाता था। अग्नेयास्त्रों और विषैले बाणों का भी प्रयोग होता था। महा-काव्य का युग शौर्य और वीरता का युग था। युद्ध में कतिपय विशेष नियमों का पालन किया जाता था। निहत्थों और स्त्रियों पर आक्रमण वर्जित था। उस समय के मुख्य-मुख्य राज्य अंग, बंग, कलिंग, कोशल और काशी आदि थे।

(ख) सामाजिक स्थिति—सामाजिक जीवन में धार्मिक कृत्यों का बड़ा महत्व था। प्रत्येक आर्य के लिए सोलहों संस्कारों का आयोजन आवश्यक था। यज्ञों की प्रधानता थी। पंच महायज्ञ-ब्रह्मयज्ञ, देव यज्ञ, पितृ-यज्ञ, अतिथि-यज्ञ और भूत यज्ञ—हुआ ही करते थे। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास—निहित थे। इनका पालन किया जाता था। सारी जनता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार प्रधान जातियों में बंटी हुई थी। इनके अलावा अनेकों उपजातियां थीं। ब्राह्मण और क्षत्रिय सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। जात-पांत और वर्ण-व्यवस्था आदि के बन्धन

काफी कड़े थे। राजा और श्रीमन्त कई विवाह करते थे। मदिरा पान की प्रथा भी शिष्टसम्मत थी। जुआ और पासे का खेल मनोरंजन का मुख्य साधन समझा जाता था। समाज में नारी का स्थान काफी ऊंचा था। वे शिक्षित होती थी और प्रत्येक धार्मिक कार्य में हिस्सा लेती थीं विधवा विवाह और बहुविवाह भी प्रचलित थे। स्त्रियों को अपना पति वरण करने का अधिकार होता था।

(ग) धार्मिक स्थिति—इस काल में बलि एवं तपस्या की प्रधानता थी। ब्राह्मणों का प्रत्येक धार्मिक कार्य पर अधिकार था। इस विचार-धारा के अतिरिक्त चिन्तन और मनन भी हुआ। उपनिषदों की रचना इसी काल में हुई। ये उपनिषद् दर्शन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान पा चुके हैं। इस काल में सम्पूर्ण हिन्दू समाज आध्यात्मिकता की ओर झुका हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि यह युग हिन्दू धर्म की क्रांति का युग था। आज के हिन्दू समाज का ढांचा इसी प्राचीन दर्शन पर आधारित है। वैदिक देवताओं के स्थान पर अब ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा होने लगी थी। यह भी विश्वास किया जाने लगा था कि धर्म की रक्षा के लिये विष्णु भगवान बार-बार अवतार लेते हैं। आत्मा के आवागमन के सिद्धान्त को भी पूर्ण मान्यता मिल चुकी थी।

(घ) राज्य की आय के साधन—कृषि की उपज का छटा भाग कृषि कर के रूप में लिया जाता था। मालगुजारी से राज्य को बड़ी मात्रा में धन मिलता था। विजेता हारे हुये राज्यों से कर वसूल करते थे और कभी-कभी पराजित राज्य विजयी राज्य में मिला दिया जाता था। राज्य की आय का एक और साधन जुर्माना था। व्यापारियों से वाणिज्य-कर लिया जाता था। वाणिज्य-कर प्रायः वस्तुओं के रूप में प्राप्त होता था। इनके अतिरिक्त मवेशी, औषधि, ईंधन, फल-फूल आदि पर भी साधारण कर लिया जाता था।

प्रश्न

1 What light does the Vedic Literature throw on the social life of the Aryans ?

आर्यों के सामाजिक जीवन पर वैदिक साहित्य क्या प्रकाश डालता है ?

2 What do you understand by the term 'Vedic Literature ? Write a short note on Vedic Literature.

'वैदिक साहित्य' से आप क्या समझते हैं ? वैदिक साहित्य पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए ।

3. Give a short account of the social, political and economic life of the Aryans in the Epic Age.

महाकाव्य युग की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति का संक्षिप्त विवरण दीजिए ।

4. What is the historical value of the two ancient Epics:—Ramayan and Mahabharat ?

रामायण और महाभारत नामक महाकाव्यों का ऐतिहासिक महत्त्व क्या है, बतलाइये ।

5. Write short notes on;

(1) Brahmanas;
(2) Upnishadas;
(3) Vedangas; and
(4) Six Schools of Philosophy (Shat-Darshan).

निम्नलिखित पर नोट लिखिए:

(१) ब्राह्मण;
(२) उपनिषद्;
(३) वेदांग; और
(४) षट्-दर्शन ।

—:०:—

अध्याय ६

जैन धर्म और बौद्ध धर्म

उत्तर वैदिक काल में धर्म की प्रतिक्रिया—उत्तर वैदिक काल में धर्म का स्वरूप काफी बदल चुका था। धर्म में पाखण्ड, बाह्य आडम्बर और कर्मकाण्ड आदि को प्रधानता दी जाने लगी थी। इन सब अवांछनीय तत्वों के विस्तार के नीचे धर्म की आत्मा दबी जा रही थी। धर्म-पालन साधारण लोगों के लिए बहुत कठिन हो रहा था। शुरू में यज्ञ सरल थे और कोई भी व्यक्ति इन्हें कर सकता था। बाद में अनेक प्रकार के यज्ञों का सूत्रपात हुआ। इनमें से कुछ तो बारह वर्ष तक चलते थे। इस प्रकार खर्चीले यज्ञ केवल राजा या सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते थे। यज्ञों में निरपराध पशुओं की बलि भी सहृदय व्यक्तियों के मन में ग्लानि उत्पन्न करती थी। ऐसे धर्म के विरोध में जनता किसी सर्वसुलभ और आडम्बरहीन धर्म के लिए खोज करने लगी तो इसमें आश्चर्य ही क्या।

२. सुधारक सम्प्रदायों का उदय—उत्तर वैदिक काल में कर्मकाण्ड के आधिक्य ने कई विचारकों को धर्म के सच्चे स्वरूप पर विचार करने के लिए विवश कर दिया। धर्म विरोधी प्रतिक्रिया का प्रादुर्भाव इसी काल में उपनिषद जैसे ग्रन्थों से हो चुका था। कुछ उपनिषदों ने तपस्या, पशुबलि आदि की भर्त्सना करते हुए उन्हें निर्वाण के लिए अनावश्यक बताया। साथ ही उन्होंने नैतिक सदाचार पर जोर दिया। किन्तु, उपनिषदों की शैली दार्शनिक होने के फलस्वरूप सामान्य जनता उनकी शिक्षाओं को सरलता से ग्रहण न कर सकी। उपनिषदों से किसी नये धार्मिक सम्प्रदाय का उदय तो नहीं हुआ, किन्तु धीरे-धीरे ब्राह्मण धर्म विरोधी आन्दोलन ने जोर पकड़ा और देश में कई ऐसे सम्प्रदाय अस्तित्व में आये, जो ब्राह्मण धर्म के आलोचक और क्रान्तिकारी विचारों के प्रवर्तक थे। इन सम्प्रदायों का विश्वास था कि

सदाचार से निर्वाण प्राप्त करना सम्भव है और इसके लिए कर्म-काण्ड आदि आवश्यक नहीं है। कई साधुओं ने देशाटन कर इन आधारभूत सिद्धान्तों का प्रचार किया। धर्म के तत्कालीन स्वरूप से त्रस्त लोगों ने इन सम्प्रदायों का सहर्ष स्वागत किया और अल्पकाल में ही ये सम्प्रदाय अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। इनमें से दो प्रमुख सम्प्रदाय जैन धर्म और बौद्ध धर्म हैं।

जैन धर्म

३. जैन और बौद्ध धर्म कई बातों में समान हैं, किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि जैन धर्म का उदय बौद्ध धर्म से पहले हुआ था। जैन धर्म को संगठित रूप महावीर ने दिया। किन्तु जैन धर्मावलम्बी कहते हैं कि महावीर चौबीसवें तीर्थंकर थे। आरम्भ के बाईस तीर्थंकरों के बारे में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे और प्रोफेसर जेकब के कथनानुसार पार्श्वनाथ ही जैन धर्म के मुख्य संस्थापक थे। पार्श्वनाथ राजा अश्वसेन के पुत्र थे। इन्होंने अपने अनुयायियों को अहिंसा, सत्य, चोरी न करना तथा अपरिग्रह इन चार व्रतों की दीक्षा दी थी।

४. **महावीर**—जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर महावीर का जन्म ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व उत्तरी बिहार के वैशाली नामक नगर में हुआ था। महावीर के जन्म के समय वहाँ क्षत्रियों का गण-राज्य था। महावीर के पिता गण के प्रधान थे। महावीर का विवाह यशोदा नामक राजकुमारी से हुआ था, जिससे एक कन्या हुई। माता-पिता के निधन के पश्चात् महावीर तीस वर्ष की आयु में तपस्वी बन गये। बारह वर्ष तक कठोर तपस्या करने के बाद तेरहवें वर्ष में उन्हें ज्ञान-प्राप्ति हुई और चूंकि उन्होंने अपनी इन्द्रियों पर विजय पा ली थी इसलिए उन्हें 'जितेन्द्रिय' कहा जाने लगा। पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने पर महावीर ने 'निर्ग्रन्थ' सम्प्रदाय को जन्म दिया। इस सम्प्रदाय के अनुयायी निर्ग्रन्थ (ग्रन्थियों अथवा बन्धनों से मुक्त) कहलाते थे।

महावीर ने अपने सिद्धान्तों का प्रसार उत्तर भारत में किया और अनेक लोगों ने इस धर्म की दीक्षा ली। बहत्तर वर्ष की आयु में कुशीनगर के समीप महावीर का निर्वाण हुआ।

५. **महावीर के सिद्धान्त और उनकी शिक्षाएं** महावीर स्वामी ने ईश्वर के अस्तित्व को अमान्य किया। वेदों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में भी उनका विश्वास न था। उनकी शिक्षा में अहिंसा का सर्वोपरि महत्त्व था। पार्श्वनाथ के चार व्रतों में महावीर ने ब्रह्मचर्य का व्रत भी जोड़ दिया। इस धर्म के अनुयायियों को कठोर आत्म-निग्रह से रहना पड़ता था। महावीर उपवास और तपस्या से शरीर को अधिकाधिक दुर्बल बनाने की शिक्षा देते थे। जैन साधना में तपस्या का स्थान बहुत ऊंचा है। जैन धर्म मानने वालों को सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् कर्म इन तीन नियमों का पालन करना पड़ता है। ये तीनों नियम "त्रिरत्न" कहलाते हैं।

६. **जैन सम्प्रदाय की अवनति**—महावीर के जीवनकाल में जैन धर्म का काफी प्रचार हुआ। फिर भी जैन धर्म की शिक्षाओं का प्रचार उसके समकालीन बौद्ध धर्म जितना नहीं हो सका। इसके कई कारण थे। महावीर जब तक जीवित थे, तब तक यह सम्प्रदाय संगठित रहा। उनके निर्वाण के पश्चात् जैनियों में दिगम्बर और श्वेताम्बर दो विरोधी वर्गों का जोर बढ़ा। इस प्रकार जैन सम्प्रदाय में फूट के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। दूसरा कारण यह था कि जैन धर्म का आचरण अत्यन्त कठिन होने से वह जन-साधारण को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका। जैन मत अहिंसा का प्रबल समर्थन करता था जबकि तत्कालीन ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र वर्ण के लोगों के लिए अहिंसा का पालन संभव न था। इसलिए जैन धर्म को मुख्यत: वैश्य अर्थात् व्यापार करने वालों ने अपनाया।

बौद्ध धर्म

७. **भगवान् बुद्ध**—बौद्ध धर्म के संस्थापक सिद्धार्थ गौतम कपिल-वस्तु (नेपाल) के शाक्य राजा शुद्धोधन के पुत्र थे। उनका जन्म



भगवान बुद्ध की प्रतिमा, सारनाथ

५६३ ईसा पूर्व हुआ था। इनके जन्म पर जो पुरोहित उपस्थित थे, उन्होंने भविष्यवाणी की कि वह या तो चक्रवर्ती राजा होगा या साधु। यथा समय गौतम का विवाह यशोधरा से हुआ और उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम राहुल रखा गया। कहा जाता है कि उनके पिता ने उन्हें किसी भी दुःख का अनुभव नहीं होने दिया था। तब भी संयोग से एक दिन रास्ते में एक वृद्ध, एक रोगी, एक शव और एक साधु को देखकर सिद्धार्थ का मन बहुत व्याकुल हो उठा और एक रात को सभी सांसारिक बन्धनों को त्याग कर वह सत्य की खोज में चल पड़े।

८. **सत्य की खोज में सिद्धार्थ की तपस्या**—सत्य की खोज करते हुए गौतम पहले तपस्वी ब्राह्मणों के शिष्य हुए। किन्तु उनकी शिक्षा दीक्षा से सिद्धार्थ को संतोष नहीं हुआ और वे पांच शिष्यों के साथ उरुवेला नामक सुन्दर वन में तपस्या के लिए गये। इस वन में गौतम ने बड़ी कठोर तपस्या की। योगाभ्यास आदि से उन्होंने अपना शरीर सुखा डाला। इस तपस्या से उन्हें कुछ मानसिक शांति मिली, किन्तु उनका लक्ष्य था ज्ञान प्राप्ति। एक बार तो वह मरणासन्न हो गये। तब उन्होंने थोड़ा सा दूध पी कर प्राण रक्षा की। अब उन्होंने निश्चय किया कि देह-दण्ड और कठोर तपस्या ज्ञान प्राप्ति के साधन नहीं हैं। अतः निराश होकर उन्होंने तप, उपवास आदि का त्याग कर दिया। तपस्या छोड़ने के बाद गौतम गया के निकट एक पीपल के वृक्ष के नीचे समाधि लगाकर बैठ गये। रात्रि के अन्तिम पहर में उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो गई और तब से वे बुद्ध कहलाने लगे।

९. **बौद्ध धर्म के सिद्धान्त और शिक्षाएँ**—बुद्ध के उपदेश व्यवहारिक और सरल भाषा में होने के कारण जनता ने उन्हें आसानी से ग्रहण किया। बुद्ध ने स्वयं वह जीवन अपनाया जिसकी सीख वह लोगों को देते थे। उन्होंने भिक्षु का जीवन ग्रहण किया। सबसे पहले उन्होंने उन पांच शिष्यों को उपदेश दिया जो तपस्या काल में उनके साथ थे। बुद्ध की कीर्ति चारों तरफ फैलने लगी। तीन महीने के अन्त

तक उनके साठ शिष्य हो गये । इनमें आनन्द भी थे, जो यात्रा में बुद्ध के साथ रहते थे । धर्म-प्रचार के लिए भिक्षुओं का संघ बनाया गया। बुद्ध ने इन भिक्षुओं को 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के लिए भ्रमण कर धर्म प्रचार करने का उपदेश दिया।

१०. **अष्टांगिक मार्ग**—महात्मा बुद्ध ने सभी प्रकार की वासनाओं को जीत लेने के लिए अष्टांगिक मार्ग बताया। इस मार्ग को मध्यम मार्ग कहा जाता है। इसमें "अति सर्वत्र वर्जयेत" इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य को जहां भोग-विलास में लिप्त न होना चाहिए वहां उसे तप, उपवास से अपने शरीर को निरर्थक कष्ट भी न देना चाहिए। मध्यम मार्ग के आधारभूत आठ मार्ग इस प्रकार हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् जीविका, सम्यक् उद्योग, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि ।

११. **बौद्ध धर्म के मुख्य सिद्धान्त**—उपरोक्त आठ मार्गों के अतिरिक्त बौद्ध धर्म के कुछ मूलसिद्धांत भी हैं। बुद्ध ने सर्वप्रथम अपने अनुयायियों के समक्ष 'निर्वाण' अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति का आदर्श रखा। ईश्वर आत्मा को न मानते हुए भी वह पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। उनका कथन था कि मनुष्य की वासनाएं नष्ट होने पर उसका अहंकार भी मिट जाता है और तब जाकर उसे निर्वाण प्राप्त होता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए बुद्ध ने नैतिक आचरण और ज्ञान को ही आवश्यक बताया। उन्होंने अहिंसा का प्रचार करते हुए जीव हत्या को अनुचित बताया। नैतिक आचरण के लिए उन्होंने 'दस शील' बताये, जो इस प्रकार हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, नृत्य गायन का त्याग, सुगन्ध मालादि का त्याग, असमय में भोजन का त्याग, कोमल शैया का त्याग और कामिनी-कंचन का त्याग। इनमें से पहले पांच शील गृहस्थ के लिए और दसो शील भिक्षु के लिए विहित थे।

१२. **बौद्ध धर्म का प्रचार**—बौद्ध धर्म का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ और असंख्य लोग इसके अनुयायी बन गये। इसके कई कारण

थे। पहला कारण यह था कि जन साधारण की हिन्दू धर्म में श्रद्धा कम होती जा रही थी। लोग वैदिक कर्मकाण्ड और धर्म के आडम्बरों से ऊब गये थे। दूसरा कारण यह था कि बौद्ध धर्म के सिद्धान्त पाली जैसी सुगम भाषा के द्वारा बताये जाते थे। इस धर्म में न तो कोई झंझट थे और न इनका पालन ही कठिन था। तीसरा कारण यह था कि बुद्ध का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और प्रभावशाली था। उनकी कथनी और करनी में यत्किन्चित भी अन्तर न था। चौथा कारण यह था कि बौद्ध धर्म में जात-पात, ऊँच-नीच और वर्ण जैसे कोई विभेद न थे। अतः शूद्र वर्ण के लोग बौद्ध धर्म को ईश्वर का वरदान मानने लगे। पांचवां कारण यह था कि बुद्ध एक अच्छे नेता और कुशल सयोजक थे। उन्होंने भिक्षु और भिक्षुणियों के संघ स्थापित किए और इन संघों ने दूर-दूर तक इन सिद्धान्तों को फैलाया। उल्लेखनीय है कि अशोक और कनिष्क जैसे महान सम्राटों ने भी इस धर्म की दीक्षा लेकर इसे प्रसारित करने में पूर्ण योग दिया था। अशोक ने यदि इतना प्रयत्न न किया होता तो सम्भव है कि बौद्ध धर्म भारत में एक स्थानीय सम्प्रदाय ही रह जाता। "स्वयं अशोक के कथनानुसार उसने देश भर में और पड़ोसी ग्रीक देशों में प्रचारक दल भेजे थे; यद्यपि ग्रीक देशों के बारे में यह बात स्पष्ट नहीं है कि परिव्राजक धार्मिक थे अथवा राजनैतिक या सम्भवतः दोनों ही थे।" *

१३. बौद्ध धर्म का लोकतन्त्रात्मक संगठन—बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ स्थापित संघों का संगठन और उनकी कार्य प्रणाली प्रजातन्त्रात्मक थी। इनके कार्य सम्बन्धी नियम बना दिए गए थे, जिनका पालन अनिवार्य होता था। संघ की बैठकों के लिए गणपूर्ति आवश्यक होती थी। महत्वपूर्ण विषयों को मतदान द्वारा निबटाया जाता था। संघ का सभापति "विनयधारा" कहलाता था। देश में इस प्रकार अनेक लोकतन्त्रात्मक संघ थे और बौद्ध सम्प्रदाय में उचित व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व इन पर सौंपा गया था। इस प्रकार इन धार्मिक संगठनों में लोकतन्त्र

* *The Cambridge Shorter History of India.*

के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रयोग होता था। बुद्ध पर कई बार यह भार आ पड़ा कि मठ के अनुशासन सम्बन्धी छोटे-छोटे मामलों पर अपना निर्णय दें।......गौतम के भाई देवदत्त उन्हें हटा कर संघ के नेता बनना चाहते थे, और उनके विरुद्ध षड्यन्त्र करते थे। पर, उन्हें भी क्षमा दी गयी।' *

१४. बौद्ध धर्म का पतन—भारत में बौद्ध धर्म के पतन के मुख्य कारण ये हैं। मौर्य राजवंश के पतन और पुष्यमित्र के उत्थान के साथ बौद्ध धर्म को शासकों की जो सहायता प्राप्त थी वह घटती गयी। भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् सम्प्रदाय का उचित मार्ग दर्शन कोई नहीं कर सका। धीरे-धीरे सम्प्रदाय शिथिल होता गया। बौद्ध धर्म के उदय के समय भिक्षु निःस्वार्थ सेवा और सदाचार का पालन करते थे। किन्तु कालान्तर में उनमें स्वार्थ और भ्रष्टाचार जैसी कुप्रवृत्तियाँ पनपने लगीं। धर्म प्रसार की ओर से उसका ध्यान हट गया। बौद्ध धर्म सुगम होने के कारण ही अल्पावधि में लोकप्रिय हो गया था। बाद में बौद्ध धर्म में मूर्ति-पूजा का समावेश हुआ। इसके अलावा बौद्ध धर्म में अन्य देशों के जो लोग सम्मिलित हुए, उन्होंने धर्म के मूल सिद्धान्तों में भी परिवर्तन कर दिये। मूर्ति-पूजा करने वाले महायानी बौद्ध कहलाते थे। बौद्ध धर्म के प्रसार से हिन्दू धर्म का महत्त्व कम हो गया था। इस बात का प्रतिकार करने के लिए कुमारिल और शंकर आदि ने हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान किया। दक्षिण भारत में वैष्णव और लिंगायत जैसे सम्प्रदायों के उदय और उत्तर में बौद्ध भिक्षुओं पर विदेशियों के आक्रमणों ने बौद्ध धर्म को समाप्त कर दिया।

१५. हिन्दू सभ्यता को बौद्ध धर्म की देन—बौद्ध धर्म ने देश के सांस्कृतिक जीवन पर बहुत प्रभाव डाला। बौद्ध धर्म नैतिक शील एवं सदाचार पर जोर देता था और इसी कारण वह जनता के नैतिक स्तर को हिन्दू धर्म की अपेक्षा अधिक ऊँचा उठा सका। हिन्दू

* *Gautama Buddha (Hindi) by Dr. Radhakrishnan.*

धर्म की शिक्षा संस्कृत में दी जाती थी। किन्तु बौद्ध धर्म के सिद्धान्त प्राकृत भाषा के माध्यम से प्रसारित किये गये। इस भाषा के प्रयोग से एक नया साहित्य विकसित हुआ। भारत की वस्तुकला तथा शिल्पकला पर बौद्ध धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा। आज संसार के प्रायः सभी संग्रहालयों में बौद्ध कालीन कला देखी जा सकती है। कार्ले और नासिक (बम्बई राज्य) के गुफा मंदिर और अशोक के स्तम्भ और स्तूप बौद्ध कालीन कला के परम उत्कर्ष के प्रतीक हैं। प्रसिद्ध गांधार शैली की कला का विकास बौद्ध धर्म की ही देन है। बौद्ध धर्म ने जनता को हिन्दू धर्म के अन्ध-विश्वासों से मुक्त किया। इस काल में दार्शनिक चिंतन में काफी उन्नति हुई। बौद्ध धर्म के प्रचार काल में भारतीय सभ्यता चीन, जापान, मंगोलिया, जावा, इन्डोचीन जैसे दूरस्थ देशों में फैल गयी।

१६. जैन, बौद्ध और वैदिक धर्म का परस्पर सम्बन्ध—जैन और बौद्ध ये दोनों धर्म हिन्दू धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में अस्तित्व में आये। इन दोनों धर्मों में कई समानताएं हैं। ये दोनों वेदों के प्रमाण को स्वीकार नहीं करते। इनका कर्म-काण्ड और जातिभेद में कोई विश्वास न था। इन्होंने यज्ञों और पशुवध का विरोध किया और नैतिक सदाचार और अहिंसा को महत्व दिया। जैनों में यती और बौद्धों में भिक्षु धर्म का प्रचार करते थे। इन दोनों धर्मों को तत्कालीन क्षत्रिय राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ। इनके प्रसार के लिये स्थानीय भाषाओं का प्रयोग किया गया। पुनर्जन्म, कर्म का फल, मोक्ष या निर्वाण इन सिद्धान्तों को दोनों मानते थे। जैन धर्म के त्रिरत्न थे—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र; बौद्धधर्म के त्रिरत्न थे—बुद्ध, संघ और धर्म।

१७. किन्तु इन समानताओं के बावजूद दोनों धर्मों में कुछ बुनियादी अन्तर थे। बौद्ध धर्म को ईश्वर और आत्मा का अस्तित्व अमान्य था जब कि जैन धर्म नास्तिक होते हुए भी आत्मवादी था। दोनों का लक्ष्य निर्वाण ही है किन्तु उसे प्राप्त करने के उपाय भिन्न

हैं। बौद्ध धर्म, मध्यमार्गी है और उसमें शरीर को कष्ट देना निषिद्ध है। इसके विपरीत जैन धर्म कठोर तप, व्रत, उपवास आदि को आवश्यक मानता है। अहिंसा का समर्थन दोनों करते हैं, लेकिन जैन धर्म उसे बहुत अधिक महत्व प्रदान करता है। जहाँ तक सामाजिक बातों का सम्बन्ध है, जैन धर्म वैदिक धर्म के अधिक निकट था। उसने वर्ण, जाति, धर्म आदि की कोई आलोचना नहीं की। बौद्ध धर्म ने भी सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार नहीं किया। किन्तु इसके सिद्धान्त क्रान्तिकारी थे और सामाजिक जीवन को भी उन्होंने काफी प्रभावित किया। कालान्तर में हिन्दू धर्म और जैन धर्म के मतभेद घटते गये। अन्त में जैन धर्म हिन्दुओं का ही एक सम्प्रदाय हो गया। बौद्ध मतावलम्बियों ने हिन्दू धर्म में सम्मिलित होने का कभी प्रयत्न नहीं किया। यही कारण है कि बौद्ध धर्म भारत से लुप्त हो गया।

प्रश्न

1. Give a life history of Lord Buddha and explain his main teachings.

गौतम बुद्ध का जीवन परिचय देते हुये उनकी मुख्य-मुख्य शिक्षाओं की चर्चा कीजिये।

2. Who was the real founder of Jainism? Give an account of his life and explain what were his main teachings.

जैन धर्म का वास्तविक प्रवर्तक कौन था? उसके जीवन का वर्णन करते हुए उसकी मुख्य-मुख्य शिक्षाएं बताइए।

3. What were the main factors which contributed to the rapid development of Buddhism in India?

भारत में बौद्ध धर्म के इतने तेजी से प्रचार होने के क्या कारण थे?

4. Say in what respects the teachings of Buddhism resembled and differed from the teachings of Jainism ?

बौद्ध धर्म और जैन धर्म की शिक्षाओं में क्या समानताएं और भिन्नताएं थीं; समझाइये।

5. What were the causes of decline of Buddhism and what has been its contribution to Indian culture ?

बौद्ध धर्म के पतन के क्या कारण थे और भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की कौन-कौन सी देन थी ?

—: ■ :—

अध्याय ७

मगध का उत्थान और सिकन्दर का आक्रमण

मगध का उत्थान

१. वी० ए० स्मिथ का कहना है कि भारत का क्रमबद्ध इतिहास छठी शताब्दी ई० पू० से ही प्राप्त होता है। सिंधु घाटी सभ्यता काल और वैदिक काल में कई शताब्दियों का अन्तर है; इसी प्रकार वैदिक काल और महाकाव्य काल के बीच का इतिहास भी कई शताब्दियों का इतिहास है। इस प्रकार वी० ए० स्मिथ का कथन काफी हद तक ठीक मालूम होता है। छठी शताब्दी ई० पू० में पश्चिम में काश्मीर से लेकर पूर्व में बंगाल तक कोई भी एक छत्र राज्य नहीं था। उस समय सम्पूर्ण उत्तरी भारत में १६ राज्यों का, जिन्हें 'जनपद' कहा जाता था उल्लेख मिलता है। इनके नाम थे:—काशी, कोशल, अंग, वज्जि, मगध, मल्ल, चेदि, वंश, कुरु, पंचाल, मच्छ अथवा मत्स्य, सूरसेन अस्सक, अवन्ति, गधार और कम्बोज। इनके अतिरिक्त कुछ और भी छोटे-छोटे राज्य थे। वैदिक काल में कुरु और पंचाल काफी उन्नति पर थे पर अब उनकी अवस्था अवनत हो गई थी।

२. मगध—मगध राज्य का क्रमबद्ध इतिहास बिम्बिसार (५४७ ई० पू० से ४९३ ई० पू०) के समय से मिलता है। कहा जाता है कि उसके ५०० रानियां थीं। यह बात त्रुटिपूर्ण मालूम होती है। फिर भी इतना तो सत्य है ही कि उसने कोशल, लिच्छिवी राज्य और मध्य पंजाब आदि की राजकुमारियों से विवाह किये थे। अपने विवाह-सम्बन्धों द्वारा उसने अपनी राज्य शक्ति को खूब बढ़ाया। काशी का राज्य तो उसे दहेज में मिला था। लगभग ४९१ ई० पू० बिम्बिसार के बाद उसका पुत्र अजातशत्रु मगध की गद्दी पर बैठा। अजातशत्रु ने अपने पिता की हत्या करके गद्दी प्राप्त की थी। वह एक महत्वा-

कांक्षी राजा था। उसने कोशल के राजा प्रसेनजित को पराजित करके उनकी पुत्री से विवाह किया, जिसमें दहेज के रूप में उसे बहुत सम्पत्ति मिली। अजातशत्रु का सबसे महान् कार्य लिच्छवियों को परास्त करना था, इस काम में उसे १६ वर्ष लगाने पड़े। लिच्छवियों के राज्य को अपने राज्य में मिलाने के बाद उसने अवन्ति को भी जीत लिया। इस प्रकार अजातशत्रु ने मगध को उत्तर भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य बना दिया।

३. **अजातशत्रु और बौद्ध धर्म**—अजातशत्रु ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। अपने पिता का वध स्वयं किया था, इसका उसे बड़ा पश्चाताप था। भगवान् बुद्ध के सामने उसने अपने इस अपराध को स्वीकार किया था। बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए अजातशत्रु ने अनेक मठ तथा स्तूप बनवाये। अपनी राजधानी राजगृह में उसने बौद्ध धर्म का प्रथम सम्मेलन कराया था, जिसमें ५०० बौद्ध भिक्षु इकट्ठे हुए थे।

४. **अजातशत्रु के उत्तराधिकारी**--अजातशत्रु के पश्चात् उसका पुत्र उदायिन लगभग ४५६ ई० पू० मगध की गद्दी का स्वामी बना। उसने अपने पिता द्वारा स्थापित नगर पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी बनाया और उसका विकास किया। उदायिन के बाद क्रमशः अनरुद्ध, मुन्ड और नागदासक गद्दी के उत्तराधिकारी बने। उनकी दुर्बलता और अप्रियता ने अमात्य (मंत्री) शिशुनाग का लोभ जगा दिया। उसने मगध का राज्य शीघ्र ही हस्तगत कर लिया। इस प्रकार शिशुनाग वंश की नींव पड़ी।

५. **नन्द वंश**—चौथी शती के लगभग मध्य में महापद्मनन्द नामक एक व्यक्ति ने शिशुनाग वंश का अन्त करके गद्दी पर कब्जा कर लिया। महापद्मनन्द ने जिस कुल की स्थापना की, वह इतिहास में नन्द वंश कहा जाता है। वह एक योद्धा सम्राट था। पंजाब को छोड़ कर लगभग शेष पूर्ण उत्तरी भारत पर उसका अधिकार था। कुरु, पंचाल, मैथिल, अस्सक, सूरसेन और कलिंग आदि अनेक राज्य उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे। सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व मगध एक

बहुत शक्तिशाली साम्राज्य बन गया था। राजा महापद्म नन्द के बाद उसके ८ पुत्र गद्दी पर बैठे। धीरे-धीरे नन्द वंश का शासन बहुत बदनाम हो गया। जिस समय सिकन्दर का आक्रमण भारत पर हुआ (३२६-३२५ ई० पू०) उस समय मगध की गद्दी पर धननन्द था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने धननन्द की हत्या करके गद्दी पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार नन्द वंश का अन्त हो गया और मौर्य वंश का श्रीगणेश हुआ।

सिकन्दर का आक्रमण

६. **सिकन्दर**—मकदूनिया (यूनान) के शासक फिलिप की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सिकन्दर गद्दी पर बैठा। वह बड़ा महत्वाकांक्षी तथा साहसी शासक था। वह विश्व-विजेता बनना चाहता था। ३३० ई० पू० में वह फारस विजय के लिए निकला और ३२७ ई० पू० तक उसने पूर्वी फारस पर विजय प्राप्त कर ली। सीस्तान को जीतने के बाद उसने अफगनिस्तान पर चढ़ाई की। अफगानिस्तान में "आराकोसियों-का-सिकन्दरिया" नगर उसी का बसाया हुआ है, जिसे अब 'कन्दहार' कहा जाता है। अगले वर्ष वह अपनी विशाल सेना लेकर काबुल की घाटी में आ पहुँचा। पर भारत पहुँचने के पहले उसे बह्लीक (बाख्त्री) तथा उसके समीपवर्ती भू-भाग को जीतना था। बह्लीक को परास्त करने के बाद हिन्दुकुश को पार करके वह सिकन्दरिया पहुँचा। यहाँ से वह निकाइया की ओर बढ़ा जो सिकन्दरिया और काबुल नदी के बीच स्थित था। यहाँ उसने अपनी सेना दो भागों में बांट दी। एक भाग को अपने सेनापति हेफिस्तियन और पारडिक्स की अध्यक्षता में सिन्धु पर पुल बनाने के लिए भेजकर दूसरे भाग को स्वयं लेकर भारत की सीमावर्ती वीर जातियों से युद्ध करने के लिए चल पड़ा। भारत के उत्तर-पश्चिम में कुछ पहाड़ी कबीले थे, जो बहुत शक्तिशाली थे। अस्पशी, नीसा, अस्सकनी और पुशकलवती के कबीले काफी लड़ाकू थे। इन कबीलों को हराने में सिकन्दर को बहुत कठिनाई हुई। कहा जाता

है कि एक आक्रमण में तो सिकन्दर स्वयं घायल हो गया था।

७. भारत पर आक्रमण—३२६ ई० पू० में अटक से १६ मील चढ़ाई की ओर ओहिन्द नामक स्थान पर सिकन्दर ने सिन्धु नदी पार की। तक्षशिला के राजा आम्भी ने सिकन्दर का भव्य स्वागत किया और उसकी सहायता के लिए अपने ५००० सैनिक दिये।

८. पोरस से युद्ध—पोरस का राज्य झेलम और चिनाब नदियों के बीच था। सिकन्दर ने पोरस के पास यह संदेश भेजा कि वह उसकी अधीनता स्वीकार कर ले। उत्तर में पोरस ने कहलाया कि युद्धक्षेत्र में इसका जवाब दूंगा। फिर क्या था सिकन्दर तुरन्त पोरस के राज्य की ओर बढ़ चला। झेलम नदी खूब चढ़ी हुई थी। एक ओर सिकन्दर की सेना के डेरे पड़े थे और दूसरी ओर पोरस की सेना डटी थी। एक तूफानी रात को ११,००० सैनिकों को लेकर १७ मील चढ़ाव पर जाकर सिकन्दर ने झेलम पार किया। पोरस की असावधान सेना पर सिकन्दर के सैनिकों ने आक्रमण कर दिया। पोरस की विशाल सेना का व्यूह देखकर एक बार तो सिकन्दर की भी हिम्मत पस्त हो गई। युद्ध में वर्षा के कारण पोरस के रथों ने ठीक काम नहीं दिया और उसके हाथियों ने अपनी ही सेना को कुचल डाला। अन्ततः हार पोरस की हुई। जब उसे सिकन्दर के सामने लाया गया तो सिकन्दर ने पूछा, 'पोरस! तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय।' पोरस ने उत्तर दिया, 'जैसा एक राजा के साथ किया जाना चाहिए'। पोरस के इस उत्तर का सिकन्दर पर बहुत प्रभाव पड़ा और उसने पोरस का राज्य उसे लौटा दिया। इस प्रकार पोरस को उसने अपना एक विश्वासपात्र मित्र बना लिया।

पोरस को परास्त करने के बाद अनेक शहरों पर विजय करता हुआ सिकन्दर चिनाब पार तक आ पहुंचा। यहां पोरस द्वितीय को परास्त किया और फिर रावी नदी की ओर बढ़ा। संगल में एक भयानक युद्ध हुआ जिसमें सिकन्दर को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। यदि पोरस इस युद्ध में सिकन्दर की मदद न करता तो शायद

पासा पलट जाता। इस विजय के बाद वह व्यास के तट तक बढ़ आया। पर उसकी सेना ने यहां से आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। सिकन्दर ने अपनी सेना को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक उपाय किये पर उसकी सेना अनवरत युद्धों से थक चुकी थी; अपना देश छोड़े उसे काफी समय हो गया था और साथ ही मगध की सेना की विशालता की बात सुनकर उसकी सेना में कुछ भय भी पैदा हो गया था। अतः सेना ने आगे बढ़ने से बिल्कुल इन्कार कर दिया।

९ वापसी – सेना के आगे बढ़ने से इन्कार करने पर सिकन्दर ने वापस लौटने की आज्ञा दे दी। लौटते समय झेलम के किनारे आकर राजा आम्भी और पोरस को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके वह आगे जाने के लिए रवाना हुआ। सिकन्दर का विचार था कि वह पंजाब की नदियों को पार करके मेकरान और बिलोचिस्तान होकर वापस जाये। मार्ग में सिबाई और अलगसी के कबीलों से सिकन्दर की मुठ-भेड़ हो गयी। इन कबीलों के बहुत से आदमी मारे गये। आगे सिन्धु के मुहाने के पास सिकन्दर की सेना को मोलोई और आक्षिद्रकाई कबीलों का सामना करना पड़ा। आक्षिद्रकाई कबीले के लोगों ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली। आगे बढ़ने पर सोद्रयी और मोसदिग्रोई कबीलों ने भी आक्रमणकारियों की अधीनता स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् राजा मोसीकनस को परास्त करता हुआ सिकन्दर पत्तल पहुंचा। पत्तल से सिकन्दर की सेना का एक भाग उसके समुद्री सेनाध्यक्ष नियरकस के अधीन समुद्री मार्ग से रवाना हुआ और दूसरा भाग सिकन्दर की अध्यक्षता में स्थल मार्ग से चला। ३२३ ई० पू० बेबीलोन पहुंच कर अकस्मात ही सिकन्दर का देहान्त हो गया।

१०. सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव— भारत में सिकन्दर दो वर्ष से भी कम रहा था। इस काल में उसने केवल पंजाब के छोटे-मोटे राजाओं को ही परास्त किया। उसके सैनिकों ने व्यास को पार करने से इन्कार कर दिया। इस कारण वह मगध के सम्राट पर आक्रमण नहीं कर सका। वरना उसे अपना उद्देश्य पूरा करने मे काफी कठिनाई

होती। सिकन्दर के आक्रमण को कई यूरोपीय विद्वान भारत के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना मानते हैं। परन्तु यह सही नहीं है क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण का भारतीय जीवन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

(क) राजनैतिक प्रभाव—सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत में कई छोटे राज्य थे, जो आपस में लड़कर एक दूसरे की शक्ति को क्षीण कर रहे थे। सिकन्दर ने सीमान्त प्रदेश, पश्चिमी पंजाब और सिन्ध पर यूनानी सत्ता स्थापित कर दी। किन्तु यह सत्ता सिकन्दर की मृत्यु के बाद समाप्त हो गई। सिकन्दर के आक्रमण से देश के उत्तरी भाग की राजनैतिक एवं सैनिक दुर्बलता प्रकाश में आई। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सिकन्दर के आक्रमण ने भारतीय एकता और सैनिक प्रवृति को अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहित किया।

(ख) सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर प्रभाव—सिकन्दर के आक्रमण से पहले भी भारत का यूनान से सम्पर्क एवं सम्बन्ध था। किन्तु यूनानियों के भारत में विजेता के रूप में आने से और पश्चिमी तथा मध्य-एशिया में यूनानी सत्ता स्थापित हो जाने से भारत-यूनानी व्यापार की काफी वृद्धि हुई। भारत में कुछ समय तक यूनानी सिक्के चले। तत्कालीन अवशेषों में एक ऐसा सिक्का मिला है, जिसके एक ओर सिकन्दर का चित्र और दूसरी ओर पोरस का पीछा करने वाले घुड़सवार का चित्र है।

(ग) भारतीय सभ्यता और सिकन्दर—भारतीय सभ्यता पर सिकन्दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण यह है कि यूनानी इस देश में अधिक काल तक टिक न सके। दूसरे भारतीयों को यूनानी लोगों से कोई लगाव न था। विजितों के साथ यूनानी अत्यन्त बर्बर व्यवहार करते थे। नगर तबाह कर दिये जाते थे, लोगों को लूट कर उन्हें या तो मौत के घाट उतार दिया जाता था या गुलाम बना लिया जाता था। यूनानी सैनिकों की बर्बरता, उनके द्वारा किया गया रक्तपात

आदि जानकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सिकन्दर और तैमूर-लंग व नादिरशाह जैसे अत्याचारी शासकों में कोई अन्तर न था। अतः यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि सिकन्दर ने जिस साम्राज्य की कल्पना की थी उसे वह साकार न कर सका। भारत में सिकन्दर का शासन थोड़े समय के लिए रहा। तथापि उससे उत्तरी भारत के छोटे-छोटे राज्य मगध साम्राज्य के साथ संगठित हो गये। भारत में राजनीतिक एकता की दिशा में यह पहला कदम था।

प्रश्न

1. What were the main states in Northern India before Alexander's invasion ?

सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व उत्तरी भारत में कौन-कौन से मुख्य-मुख्य राज्य थे ?

2. Bring out the rise of Magadha under King Ajatshatru.

अजातशत्रु के अधीन मगध साम्राज्य के उत्थान का वर्णन कीजिए।

3. What was the Political, social and economic condition of India on the eve of Alexander's invasion ?

सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा कैसी थी ? समझाइए।

4. Who was Alexander the Great ? Give an account of his invasion of India.

सिकन्दर महान् कौन था ? उसके भारत आक्रमण का वर्णन कीजिए।

5. How do you explain the fact that Alexander's invasion had practically no effect on Indian Culture.

आप कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि सिकन्दर के आक्रमण का भारतीय सभ्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ?

6. Describe the return journey of Alexander. What tribes he had to fight against in the Punjab and Sind ?

सिकन्दर की वापसी यात्रा का वर्णन कीजिए। पंजाब तथा सिन्ध में उसे किन-किन कबीलों से युद्ध करना पड़ा ?

—:o:—

अध्याय ८

मौर्य साम्राज्य

चन्द्रगुप्त मौर्य

१. चन्द्रगुप्त मौर्य—चन्द्रगुप्त के जन्म के संबंध में विद्वानों में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त को किसी नीच जाति का मानते हैं और कुछ लोग उसे क्षत्रिय मानते हैं। सर जान मार्शल और डा० हेमचन्द्र राय चौधरी उसे क्षत्रिय वंश का मानते हैं। यूनानी इतिहासकार जस्टिन उसे 'साधारण कुल' में जन्मा हुआ मानता है। अनुमान है कि चन्द्रगुप्त का जन्म लगभग ३४५ ई० पू० में हुआ था। अपनी प्रतिभा के कारण वह नन्द राजा का सेनापति बन गया था। किन्हीं कारणों से राजा से उसकी खटपट हो गई। इसी समय नन्द राजा से चिढ़ा हुआ एक विद्वान चाणक्य भी चन्द्रगुप्त के साथ हो गया। दोनों ने मिलकर राजा के विरुद्ध एक षडयंत्र रचा, जो सफल नहीं हो सका। इस प्रकार चन्द्रगुप्त को मगध छोड़ कर भागना पड़ा।

२. चन्द्रगुप्त की विजय—मगध से भाग कर चन्द्रगुप्त पंजाब की ओर चला गया। कहते हैं कि जब सिकन्दर भारत आया था तो पंजाब में चन्द्रगुप्त ने उससे भेंट की थी। सिकन्दर भारत से लौटा तो यूनानी फौज की एक टुकड़ी पंजाब में छोड़ गया था। चन्द्रगुप्त ने थोड़ी सी सेना इकट्ठी करके यूनानी सिपाहियों को मार भगाया। इस प्रकार पंजाब को अपने आधीन कर लिया। मगध साम्राज्य पर चन्द्रगुप्त की दृष्टि पहले से ही थी। बाद में मौका पाकर उसने मगध पर आक्रमण कर दिया। नन्द राज्य के सेनापति भद्रशील की पराजय हुई और ३२१ ई० पू० चन्द्रगुप्त मगध की राजधानी पाटलीपुत्र के सिंहासन पर बैठा। गद्दी पर बैठने के बाद उसने अपनी सेना का बहुत सुन्दर संगठन किया। उसकी सेना में ६,००,००० पैदल, ३०,००० घुड़सवार

और ९,००० लड़ाकू हाथी थे। चन्द्रगुप्त का राज्य केवल मगध और पंजाब तक ही सीमित नहीं था। जूनागढ़ के शिलालेख से तो यह भी प्रमाण मिलता है कि सौराष्ट्र भी उसके राज्य के अधीन था। जैन अनुश्रुति और कुछ अभिलेखों से पता लगता है कि उत्तर मैसूर के साथ भी चन्द्रगुप्त के संबंध थे। प्लूटार्क का कहना है कि ६ लाख सेना लेकर चन्द्रगुप्त दक्षिण विजय को गया था। जस्टिन भी इस कथन से सहमत है कि दक्षिणी भारत पर चन्द्रगुप्त का अधिकार था।

३. **सेल्यूकस से युद्ध**—पहले ही यूनानी सैनिकों को भगाकर चन्द्रगुप्त ने पंजाब पर कब्जा कर लिया था। सिकन्दर का एक सेनापति सेल्युकस नेकटर सिकन्दर द्वारा जीते गये पंजाब पर फिर से कब्जा करने के लिए चला। ३०५ ई० पू० सेल्युकस और चन्द्रगुप्त की मुठभेड़ हुई। सेल्युकस की पराजय हुई। विवश होकर उसे सन्धि करनी पड़ी। सन्धि में उसने काबुल, कन्धार, हिरात और बिलोचिस्तान के प्रदेश चन्द्रगुप्त को दिये और अपनी पुत्री का विवाह भी चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया। इसके बदले में चन्द्रगुप्त ने उसे ५०० हाथी दिये। उसी समय सेल्युकस ने अपना एक राजदूत मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने के लिए भेजा। मेगस्थनीज के लिखे हुए लेखों से उस समय का हाल जानने में काफी सहायता मिलती है।

४. **चन्द्रगुप्त के अन्तिम दिन**—जैन अनुश्रुतियों का कहना है कि वह जैन धर्मावलम्बी था और एक बार उसके राज्य में बहुत जोर का अकाल पड़ा। उसी समय वह जैन आचार्य भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत की ओर चला गया और उधर ही २९८ ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गयी।

५. **चन्द्रगुप्त का शासन प्रबन्ध**—मेगस्थनीज के वर्णन से हमें पता लगता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन व्यवस्था बहुत अच्छी थी। साम्राज्य के सम्पूर्ण शासन को चार अंगों में बाँटा गया था:—

(क) केन्द्रीय शासन (ख) प्रान्तीय शासन (ग) नगर शासन और (घ) जनपद (देहात) शासन

(क) केन्द्रीय शासन—शासन का प्रधान स्वयं राजा था। शासन के सामान्य कार्यों के संचालन के लिए वह मंत्रि-परिषद की नियुक्ति करता था। युद्ध के समय वह सेना का संचालन स्वयं करता था। युद्ध न्याय, व्यवहार (कानून) आदि के सम्बन्ध में उसका निर्णय या आदेश अन्तिम होता था। अभियोगों को सुनकर वह न्याय शीघ्रता से करता था। उसका गुप्तचर विभाग बहुत कार्य कुशल था और राज्य की सभी बातों की सूचना उसे मिला करती थी। दंड काफी कठोर थे। छोटे-छोटे जुर्माने से लेकर प्राणदंड तक दिये जाते थे। राजा निरंकुश होते हुए भी स्वेच्छाचारी नहीं था। सम्राट की मंत्रि-परिषद का प्रत्येक मन्त्री अपने काम के लिए उत्तरदायी था। उसकी सहायता के लिए दो अन्य सेक्रेटरी तथा कुछ क्लर्क होते थे। चाणक्य के अर्थशास्त्र में १८ प्रमुख तथा २७ छोटे-छोटे विभागों का उल्लेख मिलता है। सभी विभागों में एक-एक अध्यक्ष होता था।

(ख) प्रान्तीय शासन—साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था। समीप के प्रान्तों का शासन स्वयं सम्राट करता था और दूर के मुख्य-मुख्य प्रान्तों का शासन-प्रबन्ध राजकुल के 'कुमार' करते थे। प्रान्तीय शासकों को १२०० पण वार्षिक वेतन मिलता था। प्रान्तीय शासन पर गुप्तचर विभाग काफी कड़ी नजर रखता था और छोटी-छोटी घटनाओं की सूचना भी सम्राट के पास पहुँचती थी।

(ग) नगर शासन—पाटलीपुत्र के नगर शासन के सम्बन्ध में मेगस्थनीज ने सुन्दर वर्णन किया है। पर अनुमान है कि अन्य बड़े नगरों में भी ऐसी ही व्यवस्था रही होगी। मेगस्थनीज लिखता है कि नगर का शासन छः समितियों द्वारा होता था और प्रत्येक समिति में ५ सदस्य होते थे।

पहली सीमिति औद्योगिक शिल्पों की देखभाल करती थी। कारीगरों तथा शिल्पकारों की देखभाल करना तथा उनका पारिश्रमिक निर्धारित करना इसी समिति का काम था।

दूसरी समिति विदेशियों की गतिविधियों तथा उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखती थी। ऐसा लगता है कि चन्द्रगुप्त के राज्य में विदेशियों की संख्या काफी थी।

तीसरी समिति नगर में होने वाले जन्मों तथा मृत्युओं का हिसाब रखती थी।

चौथी समिति सामान्य व्यापार तथा वाणिज्य के लिए उत्तरदायी थी। लेन-देन में सही नापों तथा बाटों का प्रयोग किया जाये इस बात की निगरानी यही समिति करती थी। एक से अधिक वस्तुओं का व्यापार करने वालों को अपेक्षाकृत अधिक कर देना पड़ता था।

कारखानों तथा उत्पादकों का निरीक्षण करना पाँचवीं समिति का काम था। यह समिति ध्यान रखती थी कि नई व पुरानी वस्तुयें एक साथ मिलाकर न बेची जायें। ऐसा करने वालों को दण्ड दिया जाता था।

छठी समिति का काम कर वसूल करना था। धोखा देकर या जालसाजी से कर से बचने वालों को प्राणदण्ड दिया जाता था। तैयार माल की कीमत का १० प्रतिशत कर लिया जाता था।

नगर के शासन का प्रधान 'नागरिक' अथवा 'नगराध्यक्ष' कहा जाता था। उसके नीचे के पदाधिकारी 'स्थानिक' तथा 'गोप' कहे जाते थे। नगर के मंदिरों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों का प्रबन्ध भी यही नगर समितियां करती थीं।

(घ) जनपद (देहात) शासन – शासन की सबसे छोटी इकाई गांव थे। गाँव का प्रबन्ध कर्त्ता 'ग्रामिक' कहलाता था, जो गाँव का प्रबन्ध ग्राम-वृद्धों की सहायता से करता था। पाँच अथवा दस गाँव का अधिकारी गोप कहलाता था और जनपद के चौथे-भाग का पदाधिकारी स्थानिक कहलाता था, जो कि गोप से बड़ा पदाधिकारी होता था।

३. **सेना का संगठन**—चन्द्रगुप्त ने एक विशाल सेना रखी थी। इसकी सेना में ६००,००० पैदल सैनिक, ३०,००० घुड़सवार, ९,०००

हाथी और ८,००० रथ थे। इतनी बड़ी सेना के प्रबन्ध के लिये एक युद्ध-परिषद थी। इसमें ३० सदस्य थे और पांच-पांच सदस्यों की ६ समितियां थीं। सेना के निम्नलिखित छः विभाग एक-एक समिति के आधीन थे—नौसेना, सेना यातायात एवं युद्ध सामग्री, पैदल सेना, अश्व सेना, रथ सेना और हस्ति सेना।

७. न्याय की व्यवस्था—चन्द्रगुप्त की दण्डनीति बहुत कठोर थी। चाणक्य और मेगस्थनीज दोनों ने चन्द्रगुप्त की दण्डनीति की आलोचना की है। साधारण अपराधों पर जुर्माना होता था पर शिल्पी की अंगहानि करने और कर अपवचन के अपराधों में मृत्यु दण्ड दिया जाता था। व्यभिचारी का अंग-भंग कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त अन्य कड़ी यातनायें भी दी जाती थीं। दण्ड की कठोरता इसीलिये थी कि लोग अपराध न करें। इस उद्देश्य में सफलता भी काफी मिली।

८. राजधानी – पाटलीपुत्र—मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी पाटलीपुत्र थी। मेगस्थनीज लिखता है कि यह नगर ९½ मील लम्बा और लगभग १½ मील चौड़ा था। यह नगर गंगा और सोन के सगम पर बसा हुआ था। नगर की रक्षा के लिए ६०० फीट से अधिक चौड़ी तथा तीस हाथ गहरी खाई इसके चारों तरफ थी। इसके अलावा एक ऊंची प्राचीर भी थी, जिसमें ५७० बुर्जियां और ६४ द्वार थे। अनुमान है कि साम्राज्य के अन्य बड़े नगरों की रक्षा का भी ऐसा ही प्रबन्ध रहा होगा।

९. चन्द्रगुप्त महान—प्रथम भारतीय सम्राट तथा राष्ट्र निर्माता चन्द्रगुप्त मौर्य का स्थान भारत के इतिहास में बहुत ऊंचा है। साधारण से परिवार में पैदा होकर नेपोलियन की ही भांति चन्द्रगुप्त भी अपने बाहु-बल के पराक्रम से भारत का सम्राट बना। वह एक महान् विजेता, कुशल शासक, राजनीतिज्ञ तथा प्रतिभा शाली व्यक्ति था। यूनानियों को भारत से निकाल कर उत्तर भारत के छोटे-छोटे

राज्यों को संगठित करके इतना विशाल साम्राज्य बनाने का श्रेय चन्द्रगुप्त को ही है। दक्षिण-विजय के भी प्रमाण उपलब्ध हैं जो, उसके पुरुषार्थ के प्रमाण हैं। अपनी शासन व्यवस्था का सुन्दर संगठन करके चन्द्रगुप्त ने अपने महान व्यक्तित्व का परिचय दिया। कृषि, व्यापार, वाणिज्य तथा दण्ड व्यवस्था के विकास में चन्द्रगुप्त ने सराहनीय कार्य किया। मेगस्थनीज का कहना है कि उसके शासन में प्रजा सुखी थी। लोग सम्पन्न थे और अपराध नहीं होते थे। लोगों का जीवन पवित्र एवं शुद्ध था। चन्द्रगुप्त का नाम भारतीय सम्राटों में बहुत ऊंचा है।

१०. बिन्दुसार—चन्द्रगुप्त की मृत्यु २९९ ई० पू० हुई थी। उसके बाद उसका पुत्र बिन्दुसार गद्दी पर बैठा। बिन्दुसार के सम्बन्ध में हमें बहुत थोड़ा हाल मालूम है। उसने २९८ ई० पू० से २७३ ई० पू० तक शासन किया। कुछ विद्वानों का कहना है कि वह एक महान विजेता था और संभवतः दक्षिण भारत के कुछ भाग पर उसने विजय की थी। "मौर्य साम्राज्य दक्षिण में मैसूर तक फैला हुआ था और कलिंग के शक्तिशाली राज्य को छोड़ कर सारा भारत या तो मौर्य साम्राज्य के प्रशासन में था या उसकी अधीनता में"* सेल्युकस के पुत्र एन्टीओकस के साथ उसके राजनैतिक सम्बध थे और मिश्र के सम्राट का राजदूत भी उसके दरबार में था। उसके शासन काल में तक्षशिला में एक विद्रोह हुआ था, जिसे राजकुमार अशोक ने, जो उस समय उज्जैन में था, दबाया था।

अशोक महान

११. अशोक और कलिंग युद्ध—बिन्दुसार के कई पुत्र थे। यद्यपि अशोक सबसे बड़ा पुत्र नहीं था। पर बिन्दुसार के बाद गद्दी पर वही बैठा। अपने पिता के समय तक्षशिला का विद्रोह उसी ने दबाया था। उसे शासन का काफी अनुभव था। अशोक २६९ ई० पू० गद्दी

*K. M. Panikkar—A Survey of Indian History.

पर बैठा। कुछ ग्रन्थों का कहना है कि वह अपने भाइयों की हत्या करके गद्दी का अधिकारी बना। पर यह बात गलत है क्योंकि उसके कुछ भाई तो बाद में भी उसके साथ रहते थे, पर गद्दी पर बैठने के समय अशोक को संघर्षों का सामना अवश्य करना पड़ा था क्योंकि वह २६९ ई० पू० में गद्दी पर बैठा जब कि बिन्दुसार की मृत्यु २७३ ई० पू० में हो चुकी थी। बीच के तीन-चार वर्ष संघर्ष के कारण अशोक का राज्याभिषेक नहीं हो पाया। कलिंग युद्ध उसके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। यह युद्ध उसके राज्याभिषेक के ८ वर्ष बाद २६१ ई० पू० में हुआ था। दिग्विजय की लालसा को पूरी करने के लिए अशोक ने एक विशाल सेना लेकर कलिंग पर आक्रमण किया। कलिंग बड़ी वीरता से लड़ा पर अन्त में उसकी हार हो गयी। इस युद्ध में भयानक रक्तपात हुआ। "१,५०,००० शत्रु बन्दी हुये, १००,००० हत हुये, और उससे कई गुना मर गये।"* स्पष्ट है कि बहुत ही भीषण संग्राम हुआ होगा। युद्ध के निर्मम रक्तपात से अशोक के हृदय को बहुत ठेस लगी और उसने निश्चय कर लिया कि भविष्य में वह दिग्विजय के स्थान पर धर्म-विजय करेगा। कलिंग युद्ध की घटना अशोक के जीवन में एक बहुत बडा मोड़ थी।

१२. **अशोक का धम्म (धर्म)**—कलिंग युद्ध के बाद अशोक पर बौद्ध धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा। ४ वर्ष बाद भिक्षु उपगुप्त ने अशोक को बौद्ध धर्मावलम्बी बना लिया। अशोक का धर्म सभी धर्मों का निचोड़ था। अशोक अपने धर्म द्वारा धर्म-ग्रन्थों के उद्देश्यों को कार्यरूप में परिणित करना चाहता था। उसके शिलालेखों और स्तम्भ-लेखों में सदाचार, अहिंसा, साधुता, दया, दान, सत्य और बड़े-बूढ़ों के प्रति श्रद्धा का उल्लेख मिलता है। अशोक का धर्म मोक्ष का साधन था। अपने धर्म को फैलाने के लिए अशोक ने बहुत उपाय किये। धर्म प्रचार सम्बन्धी उसके कार्यों का वर्णन नीचे किया जाता है—

*अशोक का तेरहवां शिलालेख।

(१) तीर्थ यात्रा—अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद बौद्ध तीर्थों की यात्रा की। वह बुद्ध भगवान के जन्म स्थान 'लुम्बिनी वन', सारनाथ, श्रावस्ती, बुद्ध गया और कुशीनगर गया। इस प्रकार जनता पर धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा।

(२) अहिंसा—अहिंसा पर उसने बहुत जोर दिया। अपने व्यक्तिगत तथा राज्य के धार्मिक सिद्धान्त के रूप में उसने अहिंसा को अपना लिया। उसने आखेट खेलना बन्द कर दिया। एक आदेश निकाल कर वर्ष के मुख्य-मुख्य ५६ दिनों को उसने पशुवध बन्द करवा दिया। अहिंसा के नियमों का पालन करवाने के लिए उसने विशेष पदाधिकारी नियुक्त कर दिये।

(३) धर्म महामात्र—जनता अपने व्यक्तिगत जीवन में बौद्ध धर्म के नियमों का पालन करती है या नहीं इसकी देखभाल करने के लिए उसने धर्म महामात्र नामक पदाधिकारी नियुक्त किये।

(४) स्तूप और संघ - बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए हजारों स्तूप और मठ बनवाये। इन स्तूपों और मठों को चलाने एवं उनके खर्च के लिए राज्य की ओर से सहायता भी दी जाती थी।

(५) विदेशों में प्रचार—विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए अशोक ने धर्म प्रचारक भेजे। अपने भाई एवं बहिन को धर्म प्रचार के लिए उसने लंका भेजा। सीरिया, मिश्र, मकदूनिया और एपीरस को भी उसने धर्म-प्रचारक भेजे।

(६) बौद्ध धर्म सम्मेलन—बौद्ध धर्म का तीसरा सम्मेलन अशोक ने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में बुलाया। इस सम्मेलन के अध्यक्ष भिक्षु उपगुप्त थे। सम्मेलन द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार के काम को आगे बढ़ाया जा सका।

(७) भिक्षु बनना—अशोक स्वयं बौद्ध भिक्षु बन गया था। राजा द्वारा धर्म का इस प्रकार अपनाने का प्रभाव प्रजा पर ही पड़ा। अशोक ने बौद्ध धर्म को राजधर्म बना लिया था।

(८) सड़कें, विश्रामालय और अस्पताल—यात्रियों की सुविधा के लिए सड़कें बनवाईं और उन पर छायावृक्ष लगवाये। सड़कों के किनारे विश्रामालय बनवाये और पशुओं तथा मनुष्यों के लिए राज्य की ओर से मुफ्त अस्पताल भी खोले।

(१३) अशोक क लेख—अशोक के लेखों से प्रचुर ऐतिहासिक व धार्मिक सामग्री मिलती है। ये लेख अधिकतर प्राकृत में लिखे हुए हैं। इन लेखों को तिथिक्रमानुसार आठ भागों में विभाजित किया जा सकता है। यदि इन शिलालेखों को मूक साक्ष्य कहा जाये तो कुछ अनुचित न होगा।

(१) लघु शिलालेख—ये दो भागों में बाँटे जा सकते हैं।

(क) मैसूर राज्य के चीतलद्रुग जिले के सिद्धपुर, जतिग रामेश्वर और ब्रह्मगिरि में, जबलपुर जिले के रूपनाथ में, शाहबाद जिले के सहसराम में तथा निजाम राज्य के मास्की, पल्कीगुण्ड इडागुडी आदि स्थानों में पाए गए शिलालेख।

(ख) मैसूर के सिद्धपुर, जतिग रामेश्वर और ब्रह्मगिरि में पाये गये शिलालेख।

ये लघु शिलालेख २५८-२५२ ई० पू० के बताये जाते हैं। (क) में उल्लिखित शिलालेखो में अशोक के व्यक्तिगत जीवन पर प्रकाश डाला गया है और (ख) में उल्लिखित शिलालेखों में उसकी धर्मनिष्ठा पर।

(२) भाब्रु शिलालेख—यह जयपुर राज्य में वैराट के निकट पाया गया है। यह २५७ ई० पू० का बताया जाता है। यह शिलालेख बौद्ध धर्म के इतिहास सम्बन्धी बातों की जानकारी देता है।

(३) चतुर्दश-शिलालेख—ये १४ शिलालेख निम्नलिखित स्थानों पर पाये गये हैं—

शाहबाज गढ़ी (पेशावर), मन्सेहरा (हजारा), गिरनार (जूनागढ़ के पास), सोपारा (थाना), कालसी (देहरादून), धौली (पुरी), जोगढ़

गंजम), और ईडागुडी (निजाम रियासत)।

ये शिलालेख अशोक के शासन तथा उसके नैतिक नियमों पर प्रकाश डालते हैं।

(४) कलिंग शिलालेख—ये शिलालेख धौली और जोगढ़ में चतुर्दश शिलालेख से पृथक एकादश, द्वादश और त्रयोदश के बजाय लिखे मिलते हैं। ये २५६ ई० पू० के हैं और ये कलिंग तथा उसके आसपास की जंगली जातियों की शासन प्रणाली का बोध कराते हैं।

(५) बराबर दरीगृह के तीन अभिलेख—गया के निकट बराबर नामक पहाड़ी में ये गुहालेख प्राप्त हुए हैं। ये २५७ ई० पू० और २५० ई० पू० के बीच के हैं। इनमें अशोक की धार्मिक सहिष्णुता तथा धार्मिक नीति का उल्लेख है।

(६) दो तराई स्तम्भ लेख—नेपाल की तराई में रुम्मिनदेई तथा निग्लिव ग्राम में ये स्तम्भ-लेख पाये गये हैं। ये २४९ ई० पू० के बताये गये हैं। इनमें अशोक की तीर्थ यात्राओं का वर्णन है।

(७) सप्त स्तम्भ लेख—ये लेख ६ स्थानों पर मिले हैं—टोपरा (दिल्ली), मेरठ (उत्तर प्रदेश), कौशाम्बी (प्रयाग), रामपुरवा, लौरिया (अरराज), और लौरिया (नन्दनगढ़)। ये स्तम्भ लेख अशोक की नीति पर प्रकाश डालते हैं।

(८) चार लघु स्तम्भ लेख - दो सांची व सारनाथ की लाटों पर तथा दो प्रयाग में मिले हैं। इन लेखों में अधार्मिक प्रवृतियों के विरुद्ध बातें लिखी हुई हैं।

शासन प्रबन्ध

१४. अशोक का शासन प्रबन्ध बहुत कुछ चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन प्रणाली के आधार पर था। "अपनी प्रजा को अशोक पुत्रवत् समझता था।"* शासन के कार्य में सम्राट की सहायता करने तथा उसे परामर्श देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद थी। प्रान्तीय शासन भी लगभग उसी

* कलिंग लेख

प्रणाली पर था । मुख्य-मुख्य प्रान्तों में राजकुल के 'कुमार' नियुक्त थे । प्रान्तों के शासकों को सहायता देने के लिए तथा परामर्श देने के लिए वहां भी मंत्री नियुक्त किये जाते थे। विभागों के प्रधान को महामात्र कहा जाता था । शासन के साधारण अधिकारी 'पुरुष' कहे जाते थे ।

१५. शासन सुधार—अशोक ने अपनी शासन व्यवस्था में कुछ सुधार भी किये थे। अशोक ने 'धम्म महामात्त' (धर्म महामात्र) नियुक्त किये थे. जो प्रजा के कल्याण सम्बन्धी कार्य करते थे। कलिंग शिलालेख से पता लगता है कि अशोक ने अपने राज्य के बड़े-छोटे सभी पदाधिकारियों को आदेश दे रखा था कि वे पांच वर्ष में या तीन वर्ष में देहातों का दौरा करें और ग्रामीण जनता से सम्पर्क बढ़ायें। इन दौरों का उद्देश्य यह भी था कि जनता धर्म के नियमों तथा सदाचार की नीतियों का ठीक-ठीक पालन करती है या नहीं इसकी जांच की जाये। अशोक के एक अन्य लेख से यह भी पता लगता है कि प्रान्तों के शासकों (राजुकों) को न्याय के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। उनसे आशा की जाती थी कि वे दण्ड तथा व्यवहार के सम्बन्ध में समानता स्थापित करेंगे । अशोक ने एक नयी बात यह भी की थी कि अपने राज्याभिषेक के दिन वह अनेक बन्दियों को मुक्त कर देता था और जिन बन्दियों को प्राण दण्ड मिला होता था, उन्हें ३ दिन का जीवनदान देता था।

शासन की आधार भूमि चन्द्रगुप्त मौर्य की ही थी पर अशोक ने उसे और अधिक सदय तथा सरल बनाया था। शासन को अधिक लोकतन्त्रात्मक तथा लोकप्रिय बनाने में अशोक का नाम चिर-स्मरणीय रहेगा।

१६. अन्य राज्यों के साथ अशोक के सम्बन्ध—सिकन्दर के आक्रमण और सेल्युकस की पराजय के परिणामस्वरूप भारत और यूनानियों के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो गये थे। अशोक ने यूनानी

सम्बन्ध को अच्छी तरह बनाये रखा। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए उसने अपने धर्म प्रचारक यूनान भेजे। सम्राट अशोक ने भारत में नहरों आदि के निर्माण के लिए कुछ यूनानी इन्जीनियर भी बुलवाये थे। इससे पता लगता है कि भारत और यूनान के बीच बहुत अच्छे सम्बन्ध थे।

१७. मिश्र और रोम से सम्बन्ध—भारत और मिश्र के बहुत अच्छे राजनैतिक सम्बन्ध थे। इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि २८५ ई० पू० और २४६ ई० पू० के बीच मिश्र में कुछ भारतीय स्त्रियाँ थीं तथा गायें और भारतीय कुत्ते पाये जाते थे। यह समय तालेमी फिलाडेलफस के शासन काल का था। पशुओं और मनुष्यों की चिकित्सा के लिए अशोक ने विदेशों में जो अस्पताल खुलवाये थे, उनके सम्बन्ध में एक शिलालेख में यह भी उल्लेख मिलता है कि तालेमी फिलाडेलफस के राज्य में भी अशोक ने अस्पताल खुलवाया था। मिश्र में भारतीय मसालों का भी प्रयोग होना प्रमाणित हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत और मिश्र के बीच अच्छे राजनैतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध थे।

१८. दक्षिण भारत में रोम के कुछ सिक्के मिले हैं, जो सिद्ध करते हैं कि भारत और रोम के बीच अशोक के शासन काल में अच्छा सम्बन्ध था। डा० सेवेल का कहना है कि भारत से मिर्च मसाले, मलमल तेल इत्र और हीरे-जवाहरात का व्यापार रोम के व्यापारी करते थे। रोम के एक लेखक प्लिनी का मत है कि रोम के व्यापार से भारत को लगभग ५ लाख पौण्ड प्रति वर्ष की आय होती थी। रोम और भारत से प्रतिदिन एक-एक व्यापारी जहाज दोनों देशों के लिए रवाना होते थे। स्पष्ट है कि भारत का व्यापार-सम्बन्ध रोम के साथ बहुत अच्छा था।

इसके अतिरिक्त सीरिया, मकदूनिया और एपीरस नामक स्थानों में बौद्धधर्म के प्रचारक भेजे गये थे। ऐसा लगता है कि इन राज्यों के

साथ भी अशोक के अच्छे सम्बन्ध थे।

मौर्य काल में सामाजिक स्थिति

१६ समाज—मौर्य कालीन सामाजिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमारे पास दो साधन हैं (१) मेगस्थनीज के लेख और (२) चाणक्य का 'अर्थशास्त्र'। समाज के सभी लोग सुखी और समृद्ध थे। जातिप्रथा का बन्धन कठोर था। जातियां पेशे के आधार पर थीं। अन्तर्जातीय विवाह और पेशा बदलना सम्भव नहीं था। चाणक्य ने लिखा है कि समाज में चार वर्ण थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मेगस्थनीज का कहना है कि समाज में ७ वर्ग थे—दार्शनिक, शिकारी, कृषक, व्यापारी व कारीगर, सैनिक, गुप्तचर और मंत्री या सभासद। मेगस्थनीज का वर्गीकरण सम्भवतः पेशे के आधार पर है जब कि चाणक्य का जातियों तथा वर्णों के आधार पर।

२०. स्त्रियों की दशा—समाज में स्त्रियों का आदर होता था। प्रायः वे शिक्षित होती थीं और उन्हें सम्राट की संरक्षिता और गुप्तचर के पदों पर भी रखा जाता था। परिवार में पति का दर्जा पत्नी से ऊंचा समझा जाता था। पर धार्मिक मामलों में स्त्रियों का स्थान पुरुषों से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। तलाक प्रथा का भी वर्णन मिलता है। सती प्रथा नहीं थी। उच्च वर्गों में अंशतः पर्दा प्रथा भी थी। स्त्रियों का जीवन सदाचार पूर्ण था।

२१. दैनिक जीवन—मेगस्थनीज का कहना है कि लोग बहुत ईमानदार थे। चोरी नहीं होती थी। घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे। लोगों का रहन-सहन बहुत सादा, धार्मिक तथा व्यवस्थित था। आमोद प्रमोद के भी साधन थे, जैसे नृत्य, गान, दंगल तथा नाटक। जुये की प्रथा भी थी। लोगों के साधारण भोजन में मांस का प्रयोग बहुत कम होता था। चावल मुख्य भोजन था। सूती ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के कपड़ों का इस्तेमाल किया जाता था।

मौर्यकाल में शिक्षा, साहित्य तथा कला

२१. शिक्षा—शिक्षा की काफी उन्नति थी। विद्यार्थियों को गुरु के यहाँ पढ़ने जाना होता था। गुरु फीस नहीं लेते थे। शिक्षा के मुख्य विषय थे—वैदिक, साहित्य, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि। राजकुमारों को सैनिक शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्हें घुड़सवारी, रथ हाँकना और इन्जीनियरिंग आदि विषय भी सीखने पड़ते थे। तक्षशिला उस समय का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था जहाँ विदेशों से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे। यहां वेदों की तथा १८ हस्त कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। कानून, औषधि विज्ञान, सैनिक शिक्षा, धनुर्विद्या तथा पशु-चिकित्सा के पाठ्यक्रम भी इस विश्वविद्यालय में पढ़ाये जाते थे। शिक्षा देने का काम प्रायः ब्राह्मण करते थे।

२३. साहित्य—साहित्य रचना में भी मौर्यकाल में बड़ी उन्नति हुई। मौर्यकाल की महान साहित्यिक रचनाओं के नाम है—कौटिल्य (चाणक्य) का 'अर्थशास्त्र', भद्रबाहु का 'कल्पसूत्र' तथा बौद्ध धर्म की पुस्तक 'कथा-वस्तु'। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' राजनीति की पुस्तक है। 'सूत्र-वाङ्मय' और बौद्ध 'त्रिपिटक' की रचना भी इसी काल में हुई। कुछ विद्वानों की राय है कि गर्ग का ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धी ग्रंथ भी इसी समय लिखा गया था। तर्कशास्त्र और मीमांसा का प्रारम्भिक रूप भी इसी समय में पाया जाता है। महाभारत का पुनः संस्करण इसी युग में हुआ और जैन ग्रंथों को भी इसी काल में सकलित किया गया। कात्यायन नाम का प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य इसी युग में हुआ था। उपरोक्त ग्रन्थ प्राकृत, संस्कृत और पाली में लिखे हुए हैं।

२४. कला—अशोक के स्तम्भ मौर्यकालीन कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। पत्थर के एक टुकड़े को काट कर इतने सुन्दर स्तम्भ बनाना उच्च कोटि की कारीगरी का परिचायक है। स्तम्भों की पालिश बहुत ही चमकदार है। सारनाथ का स्तम्भ तथा उसका शीर्ष बहुत ही

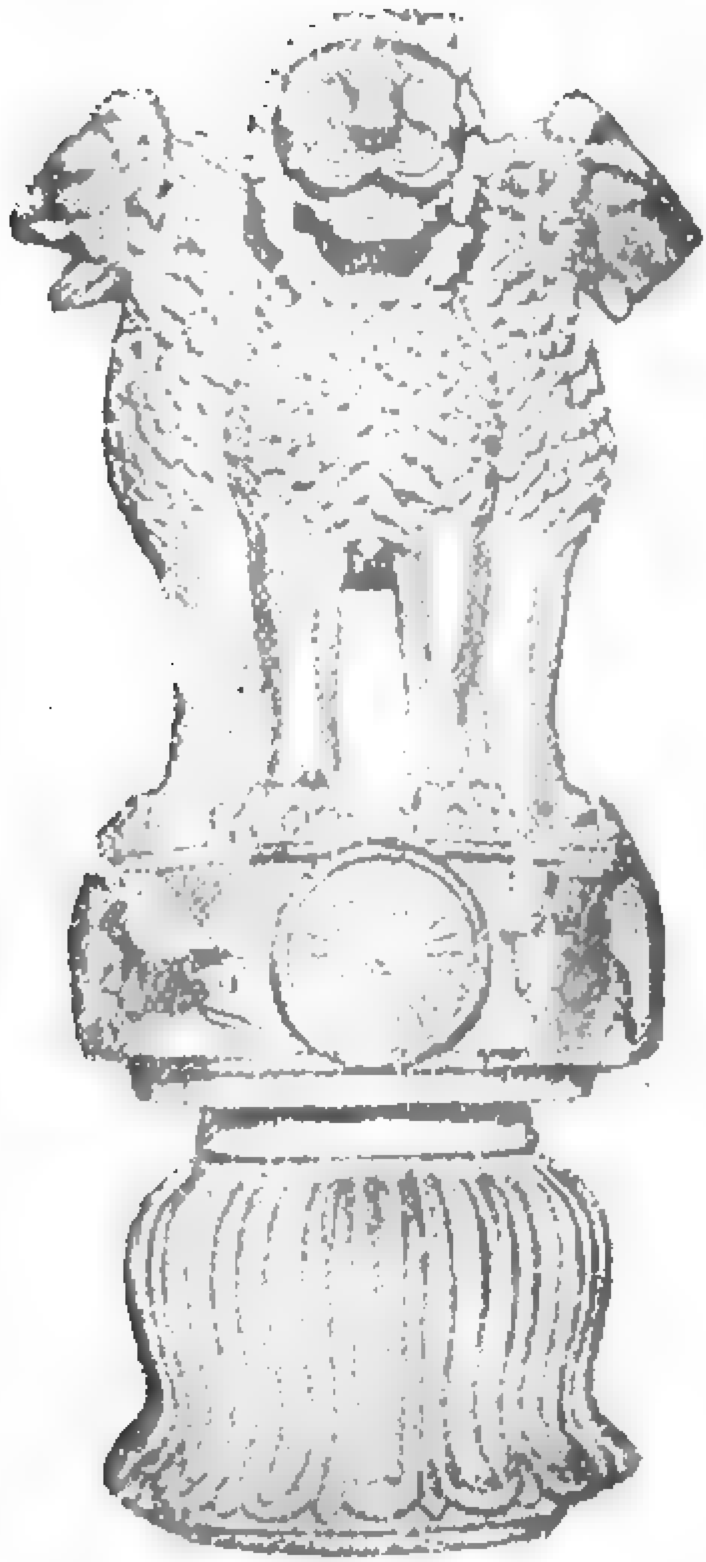
सुन्दर है। मौर्यकालीन कला को संसार की श्रेष्ठ कला का नमूना माना गया है। मौर्यकालीन सम्राटों के महल के सम्बन्ध में चीनी यात्री फाह्यान का कहना है कि अशोक का महल इतना भव्य था कि शायद उसे देवताओं ने बनाया होगा। ठोस चट्टानों को काट कर बनाये गये चैत्य इस युग की कला के एक अनन्य नमूने हैं। अफगानिस्तान से लेकर सम्पूर्ण भारत में बने हुये स्तूप इस युग की कला का परिचय देते हैं। सांची का स्तूप सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

उस समय के भग्नावशेषों से पता लगता है कि सुन्दर आभूषण बनाने की कारीगरी काफी विकसित थी। चित्रकला और मूर्ति-निर्माण कला का भी सुन्दर उत्कर्ष देखने को मिलता है।

मौर्य काल में आर्थिक व धार्मिक स्थिति

२४. **आर्थिक स्थिति**—प्रजा को पुत्रवत समझने वाले सम्राट अशोक के शासनकाल में प्रजा के कल्याण के लिए हर सम्भव प्रयत्न किये गए। कृषि उस समय जनता का मुख्य उद्यम था। यूनानियों का कहना है कि भारत में अन्न की कमी न थी। किसानों को राज्य की ओर से पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। राज्य की ओर से कृषि की उन्नति के लिए नहरें खुदवाई गई थीं। मेगस्थनीज ने तो यहां तक लिखा है कि अकाल कभी पड़ते ही नहीं थे। उपज का १।४ भाग कर के रूप में लिया जाता था। कपड़ा बुनने का काम भी उन्नति पर था। सूती, ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के कपड़े बुने जाते थे। खान खोदने का काम होता था। प्रयोग में आने वाली धातुओं के नाम हैं:—सोना, चाँदी, तांबा, कांसा और टिन।

व्यापार काफी उन्नत दशा में था। व्यापार तथा व्यापारियों को राज्य की ओर से पर्याप्त संरक्षण प्राप्त था। डाकुओं और अपराधी लुटेरों से व्यापारियों को बचाने की जिम्मेदारी राज्य की थी। भारत का विदेशी व्यापार भी बहुत बढ़ा हुआ था। चीन, मिश्र, सीरिया और रोम से भारत का व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था।



सारनाथ स्तम्भ का शीर्ष

विदेशी व्यापार समुद्री मार्ग से होता था। 'अर्थशास्त्र' में मशक (तांबे का एक सिक्का) और सोने चांदी के सिक्कों का उल्लेख मिलता है। राज्य आयात-शुल्क और निर्यात-शुल्क लेता था। चुंगी तथा उत्पादन शुल्क भी लिए जाते थे। कारखाने खोलने, राजमार्गों, नदी मार्गों, तथा सड़कों को बनाने एवं उनकी मरम्मत कराने तथा बाजारों, भण्डारों और पुलों के निर्माण का उत्तरदायित्व राज्य पर ही था। अपंग, असहाय तथा रुग्ण व्यक्तियों की देखभाल राज्य की ओर से की जाती थी।

२६. धार्मिक स्थिति—मौर्य काल में तीन धर्मों की प्रमुखता थी—बौद्ध धर्म, जैन धर्म और हिन्दू धर्म। अशोक के शासन काल में बौद्ध धर्म की प्रधानता थी। अशोक ने बौद्ध धर्म को अपना राज्यधर्म बना लिया था। इसके प्रचार के लिए उसने सर्वत्र धर्म प्रचारक भेजे, स्तम्भ व स्तूप आदि बनवाये और अनेक शिलालेख लिखवाये।

जैन धर्म बिहार, उड़ीसा तथा अवध के प्रदेशों में काफी फैला हुआ था। चन्द्रगुप्त मौर्य को कुछ लोग जैन धर्मावलम्बी मानते हैं। जैन धर्म मथुरा में बहुत लोकप्रिय था।

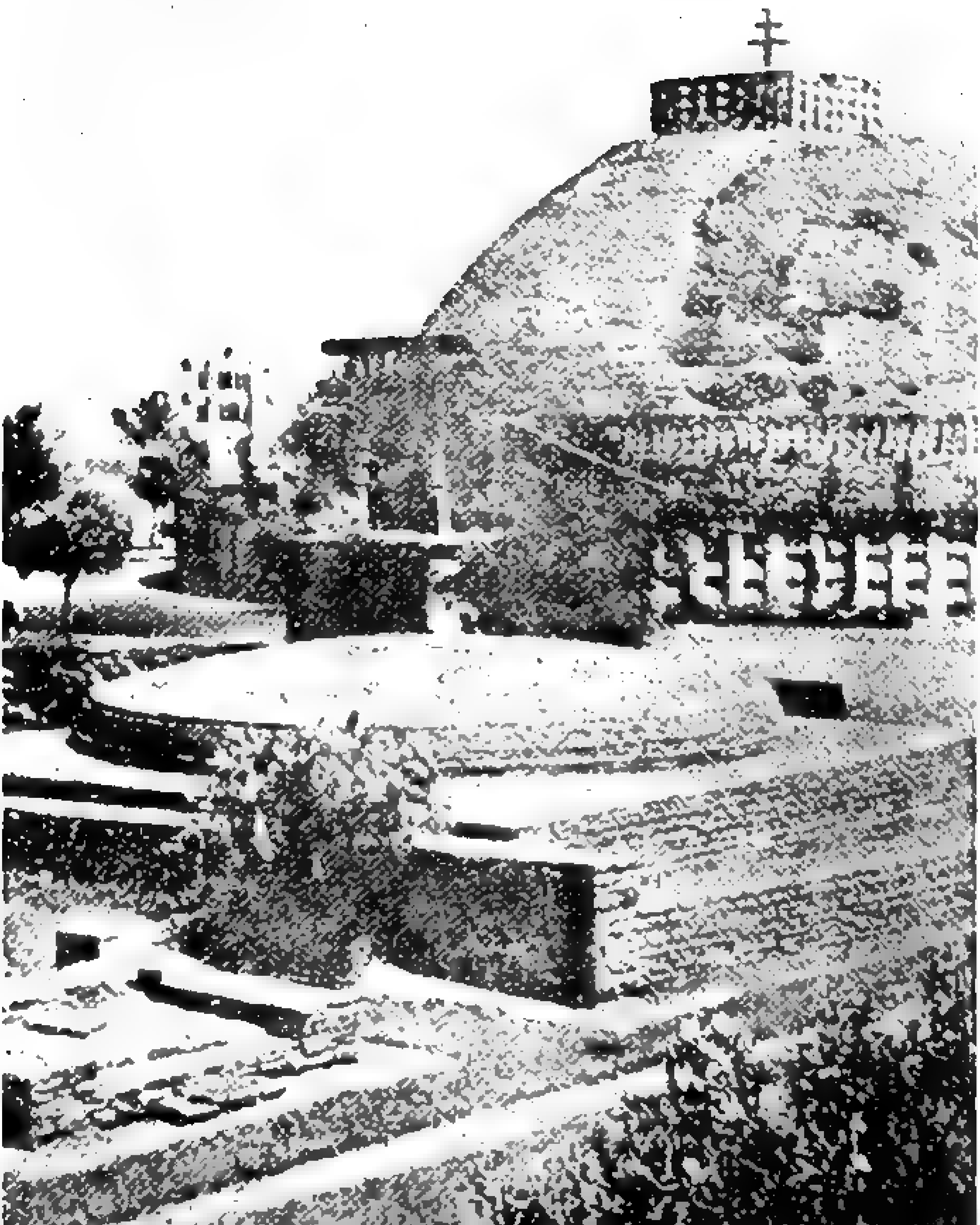
हिन्दू धर्म के मुख्य देवता इन्द्र और वरुण थे। शिव तथा विष्णु की भी पूजा होती थी। यज्ञों और बलिदानों की प्रथा थी। यज्ञों और बलिदानों की प्रथा को रोकने के लिए अशोक ने काफी प्रयत्न किये। अशोक तीनों धर्मों का सम्मान करता था। पर स्वयं वह बौद्ध धर्मावलम्बी था। धार्मिक मामलों में जनता को काफी स्वतन्त्रता थी। बौद्ध धर्म का प्रचार तेजी से बढ़ रहा था।

२७. इतिहास में अशोक का स्थान—एच० जी० वेल्स के शब्दों में "इतिहास के लाखों सम्राटों में—जो बड़ी शान शौकत वाले हैं, वैभव तथा साम्राज्यीय महानता के हैं—अशोक का नाम एक सितारे की तरह अलग चमकता है। वोल्गा से जापान तक अब भी उसके नाम का सम्मान किया जाता है। चीन, तिब्बत तथा भारत में भी, यद्यपि

भारत में अब उनके सिद्धान्तों का पालन नहीं होता, उसकी महानता की परम्पराओं की इज्जत होती है। अशोक को आज भी उतने लोग स्मरण करते हैं जितने लोगों ने कभी भी कान्स्टैन्टाइन या चार्ल्समैगने की याद नहीं की।" अशोक संसार के महान सम्राटों में गिना जाता है। उसकी महानता का आधार उसकी दिग्विजय नहीं बल्कि उसकी मानवता है।

२८. स्वयं बौद्ध धर्मावलम्बी होते हुए भी अशोक अन्य धर्मों का भी सम्मान करता था। ब्राह्मणों, श्रमणों तथा निर्ग्रन्थों के लिए उसके हृदय में सम्मान श्रद्धा व आदर था। मानवता का सपूत अशोक 'वसुधैव कुटुम्बकम' का समर्थक था तथा अपने आचरण से उसने संसार के सभी प्राणियों के कल्याण के लिए पूर्ण सक्रिय प्रयत्न किये। सिद्धान्तों को कर्म रूप में परिणित करने वाला कर्मठ सम्राट अशोक कोरा सिद्धान्तवादी या आदर्शवादी नहीं था। उसकी कर्मण्यता के परिणाम स्वरूप ही स्तम्भो, लेखों, स्तूपों, मठों और चैत्यों का निर्माण हो पाया। इसके अतिरिक्त अशोक की दान भावना, उसका त्याग तथा उसकी उदारता व कला प्रियता भी उसे महान बनाने में समर्थ हैं। डा० राय चौधरी के कथनानुसार महान् भारतीय सम्राटों में अशोक चन्द्रगुप्त के समान शक्तिशाली समुद्रगुप्त के समान प्रतिभा सम्पन्न तथा अकबर के समान निष्पक्ष था। अशोक के शासन, उसके सुधारों तथा उसकी सफलताओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि अशोक महान् तथा अद्वितीय सम्राट् था।

२६. अशोक के उत्तराधिकारी—अशोक की मृत्यु २३२ ई० पू० में हुई। उसके बाद इस गद्दी पर ५ या ६ शासक बैठे पर वे सब बहुत निर्बल निकले। अशोक की धार्मिक नीति के कारण ब्राह्मण बहुत असंतुष्ट थे। उन्होने अशोक की मृत्यु के बाद सिर उठाना शुरू कर दिया। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि अशोक की मृत्यु के बाद काश्मीर और गन्धार ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर



सांची का स्तूप

दिया। सीमा प्रान्तीय शासकों ने भी केन्द्र की दुर्बलता से लाभ उठाया और वे भी स्वतन्त्र हो गये। मौर्यवंश का अन्तिम शासक बृहद्रथ १९१ ई० पू० गद्दी पर बैठा। यह एक बहुत दुर्बल शासक था। उसकी दुर्बलता का लाभ उठाकर उसके प्रधान सेनाध्यक्ष पुष्यमित्र शुंग ने षड्यन्त्र द्वारा १८४ ई० पू० में उसकी हत्या कर दी। उसने इस हत्या के समर्थन में लोगों को बताया कि उसका उद्देश्य 'उपेक्षित ब्राह्मण धर्म को पुनः स्थापित करना' है। बृहद्रथ की हत्या करने के बाद पुष्यमित्र शुंग स्वयं मगध की गद्दी पर बैठ गया।

प्रश्न

1. Who was the founder of Mauryan Empire ? Form an estimate of his work and achievements.

मौर्य साम्राज्य का संस्थापक कौन था ? उसके कार्यों तथा उसकी सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

2. Give an account of the military administration of Chandra Gupta and explain how was the civil administration organised in his time.

चन्द्रगुप्त मौर्य के सैन्य संगठन तथा शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिए।

or

Who was Magasthenes and what he tells about the military and civil administration of Chandra Gupta ?

मेगस्थनीज कौन था ? उसने चन्द्रगुप्त के सैन्य संगठन तथा शासन प्रबन्ध के विषय में क्या कहा है ?

3. What do you understand by Ashoka's

'Dhamma' ? What measures did he adopt for the spread of Buddhism ?

अशोक के 'धम्म' से आप क्या समझते हैं ? बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए उसने कौन-कौन से उपाय किये ?

4. Give an account of the social, religious and economic condition under the Mauryas.

मौर्य कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

5. Ashoka is regarded as one of the greatest rulers of the world. Why ?

अशोक को संसार का एक महान शासक क्यों माना जाता है ?

6. Write a short note on the art, education and literary activities during the Mauryan rule.

मौर्य कालीन कला, शिक्षा तथा साहित्यिक गतिविधियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

7. Describe the municipal organisation of Patliputra in the reign of Chandra Gupta.

चन्द्रगुप्त के शासन काल में पाटलीपुत्र का नगर-शासन कैसा था, वर्णन कीजिए।

—:o:—

अध्याय ९

शुंग वंश, कण्व वंश और आन्ध्र या सातवाहन वंश

शुंग वंश

१. पुष्यमित्र शुंग—शुंग वंश का संस्थापक पुष्यमित्र शुंग मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट वृहद्रथ का प्रधान सेनाध्यक्ष था। वृहद्रथ की हत्या करके १८४ ई० पू० वह स्वयं मगध की गद्दी पर बैठ गया। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पुष्यमित्र ब्राह्मण था। मौर्य साम्राज्य की स्थिति एक तो वैसे ही काफी खराब हो रही थी पर पुष्यमित्र के लिए तो और भी कठिनाईयां पैदा हो गईं। पंजाब, कलिंग और अफगानिस्तान मगध साम्राज्य से अलग हो गये।

(क) विदर्भ से युद्ध—विदर्भ का राज्य एक स्वतंत्र राज्य था। कुछ विद्वानों का मत है कि विदर्भ का शासक यज्ञसेन मौर्यवंश के अवनति काल में स्वतंन्त्र हो गया था। कुछ लेखक उसे मौर्यवंश के शासकों का अमात्य मानते हैं। पर मौर्यवंश से सम्बन्ध होना ही पुष्यमित्र शुंग के लिए काफी था। पुष्यमित्र जब गद्दी पर बैठा तो उसने यज्ञसेन से आत्म समर्पण करने को कहा। पर यज्ञसेन ने साफ इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन को पुष्यमित्र ने अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार यज्ञसेन को पराजित होना पड़ा और शुंग वंश के आधिपत्य में विदर्भ राज्य यज्ञसेन और माधवसेन के बीच बराबर-बराबर बांट दिया गया।

(ख) यवन आक्रमण—पुष्यमित्र के शासन काल में यवनों ने भारत पर आक्रमण किया। उन्होंने साकेत पर आक्रमण किया, मथुरा और पंचाल देश जीतकर वे पाटलीपुत्र तक जा पहुंचे, आदि

प्रमाण उस समय के साहित्य में मिलते हैं। यह घटना लगभग १५५-ई० पू० की है। यवन आक्रमणकारी कौन था, यह कुछ ठीक पता नहीं। कुछ विद्वानों का कहना है कि वह मेनेण्डर था और कुछ उसे डेमेट्रियस मानते हैं।

(ग) अश्वमेध यज्ञ—पुष्यमित्र के राज्यकाल की एक महत्त्वपूर्ण घटना अश्वमेध यज्ञ था। वह ब्राह्मण था और ब्राह्मण धर्म के वैभव को फिर से स्थापित करना चाहता था। अपने पौत्र वसुमित्र की अधीनता में उसने घोड़ा छोड़ा था। घोड़े के लौटने पर अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ। अयोध्या के लेख से विदित होता है कि पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे।

(घ) बौद्ध धर्म का विरोध—पुष्यमित्र ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। वह बौद्ध धर्म को पसन्द नहीं करता था। उसका कहना था कि बौद्ध धर्म ने भारत को निर्बल बना दिया है। उसने बौद्ध धर्म के अनुयायियों को बुरी तरह सताया और कुछ बौद्ध भिक्षुओं को उसने मरवा डाला।

(ङ) राज्य विस्तार—पुष्यमित्र का राज्य पंजाब में जालन्धर तथा शाकल (स्यालकोट) तक था। अयोध्या और विदिशा भी उसके राज्य में सम्मिलित थे।

(च) उत्तराधिकारी—लगभग ३६ वर्ष शासन करने के बाद पुष्यमित्र की मृत्यु १४८ ई० पू० में हो गई। उसके बाद उसका पुत्र अग्निमित्र गद्दी पर बैठा और उसके बाद अग्निमित्र का बड़ा भाई वसुज्येष्ठ गद्दी पर बैठा। अग्निमित्र ने केवल ८ वर्ष राज्य किया था। वसुज्येष्ठ के बाद वसुमित्र राजा हुआ। वसुज्येष्ठ ने कुल ७ वर्ष राज्य किया था। इस प्रकार इस वंश में कुल १० राजा हुये, जिन्होंने लगभग ७३ ई० पू० तक मगध पर अपना अधिकार रखा।

कण्व वंश

२. देवभूति—शुंगवंश के अन्तिम शासक देवभूति के एक ब्राह्मण

अध्याय १०

मौर्य साम्राज्य के पश्चात् विदेशी आक्रमण

१. **विदेशी आक्रमण से पूर्व भारत की स्थिति**—प्राचीन भारत का वास्तविक इतिहास ईसा पूर्व ६०० वर्ष से आरम्भ होता है और हर्ष की मृत्यु के साथ ही समाप्त होता है। बारह सौ वर्षों का यह काल अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से परिपूर्ण है। इस काल में हिन्दू सभ्यता विकसित हुई और भारत में दो महान् धर्मों का—जैन और बौद्ध धर्म का—उदय एवं उत्थान हुआ। मौर्य सम्राटों के शासन-काल में भारत में पहली बार राजनैतिक एकता स्थापित हुई। इसी काल में भारत में विदेशियों का प्रवेश हुआ। उत्तरी भारत को विदेशियों के साथ कई बार संघर्ष करना पड़ा। किन्तु विदेशी आक्रमणों के परिणाम स्वरूप भारतीय सभ्यता नष्ट नहीं हुई। कला और संस्कृति का उन्नयन होता ही रहा और हमारा सर्वोत्कृष्ट साहित्य भी इसी काल में लिखा गया। भारत पर विदेशी आक्रमण तभी आरम्भ हो गये थे, जब उत्तरी भारत में मगध समृद्धि के पथ पर था। तत्कालीन राजा भारत में अपने राज्य के विस्तार में कार्यरत थे किन्तु पश्चिमोत्तर भारत को हर विदेशी आक्रमण की चोट सहनी पड़ी।

इस समय मगध साम्राज्य लगभग नष्ट हो चुका था और वहाँ ऐसा कोई शक्तिशाली शासक नहीं था, जो बाह्य आक्रमणों का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से समर्थ था। यही नहीं बल्कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, जिन्हें देश की रक्षा आदि आवश्यक बातों का कोई ध्यान न था।

२. भारत में मध्य-एशिया के लोगों का आगमन—अशोक के उत्तराधिकारियों में इतने बड़े साम्राज्य को बनाये रखने की न क्षमता थी और न लगन। अशोक के शासनकाल में सैन्य-शक्ति की उपेक्षा ही हुई और स्वयं अशोक ने अपने पुत्र-पौत्रों को नम्र और सहिष्णु बनने की शिक्षा दी। फलस्वरूप देश में जो सैनिक थे वे अनाभ्यास से दुर्बल हो गये। अशोक के निधन के पश्चात् विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किये, किन्तु मौर्य सम्राट् उनसे लोहा लेने में असमर्थ रहे। सिकन्दर ने मध्य-एशिया में बैक्ट्रिया तथा पार्थिया पर विजय प्राप्त की थी, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी मध्य-एशिया के साम्राज्य को सुरक्षित न रख सके। लगभग २५० वर्ष ई० पू० में बैक्ट्रिया यूनानी आधिपत्य से मुक्त हो गया। पार्थिया में भी विद्रोह हुए और वह भी स्वतन्त्र हो गया। वर्तमान बल्ख को उस समय बैक्ट्रिया कहा जाता था तथा वर्तमान हिरात, समरकन्द और ख्वारिज्म को पार्थिया कहा जाता था।

३. भारत पर बैक्ट्रिया का आक्रमण—बैक्ट्रिया सिकन्दर के उत्तराधिकारी सेल्यूकस के अधीन था, किन्तु दियोदोत प्रथम के शासनकाल में वह स्वतन्त्र हो गया। इस वंश का चौथा शासक डिमेट्रियस था, जिसने भारत पर आक्रमण किया। डिमेट्रियस के आक्रमण के समय भारत में पुष्यमित्र शुङ्ग का शासन था। डिमेट्रियस बहुत शक्तिशाली और सिकन्दर के समान महत्वाकांक्षी था। उसके आक्रमण के समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था और पश्चिमोत्तर भाग में कोई शक्तिशाली राज्य न था। डिमेट्रियस ने वर्तमान अफगानिस्तान और भारत का पश्चिमोत्तर भाग, जिसमें पंजाब और सिन्ध शामिल हैं, जीत लिया। इसी बीच बल्ख में विद्रोह खड़ा हो गया और डिमेट्रियस उसे दबाने के लिए चला गया। अतएव भारत में उसने जो प्रदेश जीत लिया था, वह स्वतन्त्र हो गया।

(क) मिलिन्द—मिलिन्द बैक्ट्रिया का एक सम्राट था। उसके

प्रारम्भिक जीवन के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। किन्तु अनुमान लगाया जाता है कि यह डिमेट्रियस के वंश का ही था। मिलिन्द ई० स० से १६० वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा। कहा जाता है कि वह महान् विजेता था। मिलिन्द ई० स० से १५५ वर्ष पूर्व सिन्धु नदी को पार कर भारत की ओर बढ़ा। उसने सिन्ध व काठियावाड़ पर विजय प्राप्त करके मथुरा की ओर कदम बढ़ाया। वह पाटलीपुत्र तक पहुंच गया था, किन्तु पुष्यमित्र शुंग ने उससे सफल संग्राम किया। मिलिन्द को मेनेण्डर भी कहा जाता है।

(ख) मिलिन्द का साम्राज्य और बौद्ध धर्म—मिलिन्द का साम्राज्य वर्तमान अफगानिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान, राजपूताना और उत्तर भारत में मथुरा तक फैला हुआ था। उसने वर्तमान स्यालकोट को अपनी राजधानी बनाई थी। मिलिन्द ने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर महायान के प्रचार में पर्याप्त सहायता की। मिलिन्द की मृत्यु के पश्चात् बैक्ट्रिया साम्राज्य का पतन होने लगा। यह साम्राज्य दो भागों में बंट गया। इनमें से एक की राजधानी तक्षशिला हो गई और दूसरे की स्यालकोट। इसके पश्चात् भारत में मध्य-एशिया की अन्य जातियाँ—शक, पार्थियन और युइ-ची—आईं और उन्होंने यूनानी साम्राज्य को नष्ट कर दिया।

४. पार्थिया का आक्रमण—पार्थिया के लोग ई० स० से दो सौ वर्ष पूर्व भारत में आये और उत्तर-पश्चिमी भारत के कतिपय स्थानों में उनका शासन लगभग सौ वर्ष तक रहा। मिथ्रेडेट्स प्रथम पार्थिया साम्राज्य का पहला शासक था, जिसने भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश पर आक्रमण किया था। उसने बैक्ट्रिया की सेना को परास्त कर सिंधु और झेलम के बीच के प्रदेश को जीत लिया। मिथ्रेडेट्स की मृत्यु के पश्चात् पार्थिया साम्राज्य के प्रान्तीय शासक अपने-अपने प्रदेशों के स्वतन्त्र शासक बन गये। पार्थिया के एक और महत्वपूर्ण शासक ने सिंध और पंजाब राज्य को संगठित कर उन्हें शक्तिशाली बनाया।

भारत में पार्थिया के शासन के विषय में विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है। ऐसा पता चलता है बाद में पार्थिया का साम्राज्य दो भागों में बंट गया और कुषाण जाति के लोगों ने भारत में आकर उसे समाप्त कर दिया।

५. भारत पर शक लोगों का आक्रमण—शक लोग मूलतः मध्य एशिया के निवासी थे। ई० स० से लगभग १६५ वर्ष पूर्व युह-ची जाति के लोगो ने उन्हें मध्य एशिया से मार भगाया। इसके पश्चात् शक बैक्ट्रिया में पहुंचे और वहां से हिन्दुकुश और सुलेमान पर्वतों को पार कर भारत आ गये। यहां उनका संघर्ष पार्थिया के लोगों से हुआ। कुछ शक सरदार पार्थिया के सम्राट के अधीन हो गये और उन्हें भारत के प्रान्तों में क्षत्रप अर्थात गवर्नर बना दिया गया। तक्षशिला का प्रथम क्षत्रप माउस था। माउस के बाद एजेस प्रथम और उसके बाद एजेस द्वितीय गद्दी पर बैठा। ये दोनों कुशल शासक थे और इन्होंने अपने राज्य का विस्तार भी किया। शक क्षत्रपों के प्रदेशों में तक्षशिला, मथुरा, उज्जैन, सौराष्ट्र और दक्षिण के क्षत्रप मुख्य थे। इन क्षत्रपों में रुद्रदमन का नाम उल्लेखनीय है। वह एक विद्वान, उदार और लोकप्रिय शासक था। रुद्रदमन के पश्चात् उज्जयिनी की शक्ति क्षीण होने लगी। अन्तिम शक शासकों में तृतीय रुद्रसिंह का नाम प्रसिद्ध हैं। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में शक सत्ता का लोप हो गया। चन्द्रगुप्त के चांदी के शक शैली के सिक्के इसी विजय के पश्चात् प्रचलित हुए थे।

६. भारत पर विदेशी शासन का प्रभाव—भारत पर सर्वप्रथम यूनानी आक्रमण सिकन्दर का था। किन्तु उसके शासन का भारतीय सभ्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसके पश्चात् भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में यूनानी राज्य—बैक्ट्रिया तथा पार्थिया—स्थापित हुए। इस काल में भारत और यूनान का जो सम्बन्ध और सम्पर्क रहा, उसके कई परिणाम हुए। भारत में आये अनेक यूनानियों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। किन्तु यूनानी मूर्तिपूजक थे और उन्होंने गौतम बुद्ध

को देवता मान कर उनकी पूजा प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार महायान सम्प्रदाय को प्रोत्साहन मिला। कुछ यूनानियों ने हिन्दू धर्म को अपनाया। यूनानी कला का भारतीय कला पर और विशेषकर भारतीय वास्तुकला पर गहरा प्रभाव पड़ा। यूनानियों के सम्पर्क के फलस्वरूप भारत में सुन्दर मूर्तियां बनने लगीं। प्रसिद्ध गांधार कला का उदय इसी काल में हुआ। भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में पाई गई बुद्ध की मूर्तियों पर यूनानी कला की अमिट छाप है। इस काल के हृदयग्राही स्मारकों में गुफाओं में बने मन्दिर उल्लेखनीय हैं। यूनानियों के भारत आने से पहले भारत में जो सिक्के बनते थे, वे केवल चिन्हों द्वारा अंकित होते थे। ये सिक्के आकर्षक नहीं होते थे। भारतीयों ने यूनानियों से मुद्रण तथा सिक्कों पर चित्र अंकित करने की कला सीखी। भारतीयों ने उनसे ज्योतिष-शास्त्र और खगोल विद्या का ज्ञान भी प्राप्त किया।

कुषाण साम्राज्य

७. कुषाण—कुषाण जाति के लोग युही-ची जाति के थे। आधुनिक चीन की सीमा पर इस जंगली जाति का निवास था। इन्होंने मध्य-एशिया में जाकर वहां से शकों को खदेड़ दिया। मध्य-एशिया से ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में आ पहुंचे। यहां इन्होंने पार्थिया और बैक्ट्रिया के लोगों को हराया। इनके पांच कबीले (जन) थे, जिसमें से कुषाण नामक कबीला बहुत शक्तिशाली बन गया। ई० स० से पूर्व प्रथम शताब्दि के अन्त तक कुषाणों ने अन्य सभी जनों पर आधिपत्य जमा लिया था। इनके शासकों में कडफाइसिस प्रथम और कडफाइसिस द्वितीय उल्लेखनीय हैं। कडफाइसिस के शासन काल के विषय में मतभेद है और कतिपय इतिहासकारों का मत है कि वह ४० ई०पू०से पहले शासन करता था। कहा जाता है कि उसने बौद्धधर्म की दीक्षा ले ली थी। कडफाइसिस द्वितीय अपने पिता के समान कुशल योद्धा और विजेता था। उसने भारत में शक शासकों को हरा कर अपना साम्राज्य वाराणसी तक फैलाया था। कहा जाता है कि

कडफाइसिस द्वितीय ने रोम साम्राज्य के साथ राजनैतिक और मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये थे। रोम और भारत के बीच शिष्ट मंडलों का आना-जाना होता रहा। तत्कालीन रोम के कुछ सिक्के भारत में पाये गये हैं। उस समय भारत से बारीक मलमल, मसाले तथा विलास की अन्य सामग्री रोम भेजी जाती थी।

८. कनिष्क—भारत के कुषाण सम्राटों में कनिष्क सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उसी के प्रयासों के परिणाम स्वरूप भारत में कुषाण साम्राज्य महान् बन सका। कडफाइसिस द्वितीय की मृत्यु के लगभग बीस वर्ष पश्चात् कनिष्क गद्दी पर बैठा। कनिष्क के शासन काल के विषय में भी मतभेद है। कुछ इतिहासकार उसके राज्याभिषेक का समय ७८ ईस्वी बताते हैं। किन्तु कुछ का मत है कि उसका राज्याभिषेक १२० ईस्वी में हुआ था। कनिष्क ने अपने साम्राज्य को काबुल की घाटी से, पूर्व में वाराणसी और दक्षिण में विन्ध्य प्रदेश तक फैलाया।

९. कनिष्क के युद्ध—कनिष्क एक साम्राज्यवादी शासक था। उसने साम्राज्य विस्तार के लिये जो युद्ध किये उनमें ये उल्लेखनीय हैं। मगध से युद्ध—कनिष्क ने भारतीय राज्यों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था। बौद्ध धर्मग्रन्थों में इस बात का उल्लेख है कि कनिष्क मगध देश में पाटलीपुत्र नगर तक पहुँच गया था। काश्मीर से युद्ध—कनिष्क के काश्मीर-आक्रमण के विषय में निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। किन्तु इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं कि काश्मीर उसके साम्राज्य में सम्मिलित था। शक क्षत्रपों से युद्ध—शक क्षत्रपों में उज्जयिनी के क्षत्रप बहुत शक्तिशाली थे। कनिष्क ने उनसे युद्ध कर उनके राज्य का कुछ भाग अपने साम्राज्य में मिला लिया था। चीन पर आक्रमण—कनिष्क के आक्रमणों में यह आक्रमण सबसे अधिक प्रसिद्ध है। कडफाइसिस द्वितीय चीन के आधिपत्य से मुक्त न हो सका था और वह चीन के सम्राट को वार्षिक कर भी देता था। किन्तु कनिष्क ने यह कर देना बन्द कर दिया। कहा जाता है कि कनिष्क का चीन पर

पहला आक्रमण सफल नहीं हुआ और उसने दूसरे आक्रमण में चीन को पराजित किया। इस विजय के पश्चात् चीन साम्राज्य के तीन प्रदेश अर्थात् ताशकन्द, खुतान और यारकन्द कनिष्क के साम्राज्य में मिल गये।

१०. कनिष्क और बौद्ध धर्म—कनिष्क एक असाधारण विजेता था इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। किन्तु वह एक विजेता की अपेक्षा बौद्ध धर्म के समर्थक के रूप में अधिक प्रसिद्ध है। उसने बौद्ध धर्म कब ग्रहण किया यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। संभव है कि अनेक युद्धों की विभीषिकाएँ देखकर उसका हृदय-परिवर्तन हुआ और उसने अशोक की भांति बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। कनिष्क ने बौद्ध महायान धर्म के प्रचार के लिए बड़े प्रयत्न किये। इस बात का उल्लेख भी मिलता है कि उसने काश्मीर में महायान मतावलम्बी भिक्षुओं का एक सम्मेलन आयोजित किया था। कनिष्क ने तिब्बत, मध्य-एशिया, मंगोलिया और चीन जैसे दूरस्थ देशों में भी धर्म प्रचारक भेजे थे। उसने भिक्षुओं के रहने के लिये मठ आदि बनवाये और धार्मिक कार्यों के लिये उन्हें सभी संभव सुविधाएँ प्रदान कीं। उसने अपनी प्रजा के कल्याणार्थ अस्पताल खुलवाये, सड़कें बनवाईं तथा कई धार्मिक संस्थाएँ स्थापित कीं। वह कला और साहित्य से भी अनुराग रखता था। उसके दरबार में नागार्जुन, अश्वघोष और चरक जैसी विभूतियां थीं जिन्होंने उसके शासन-काल में साहित्य, दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय योग दिया।

११. कनिष्क के उत्तराधिकारी—कनिष्क की मृत्यु के पश्चात् वशिष्क और हुविष्क उसके उत्तराधिकारी थे। किन्तु वशिष्क की मृत्यु कनिष्क के रहते ही हो गई थी। अतः हुविष्क गद्दी पर बैठा। उसने कुषाण साम्राज्य की रक्षा लम्बे समय तक की। हुविष्क अपने पिता की भांति कला और वास्तुकला का पोषक था। धर्म के सम्बन्ध में उसके विचार अत्यन्त सहिष्णु थे। इस वंश का एक और उल्लेखनीय शासक वासुदेव है। इसने हिन्दू धर्म को प्रोत्साहन दिया।

कुषाण वंश की अवनति वासुदेव के शासनकाल में ही प्रारंभ हो गई थी। वासुदेव के उत्तराधिकारी इस अवनति को रोक न सके और इस प्रकार कुषाण साम्राज्य का पतन हो गया।

प्रश्न

1. Describe the conditions under which foreign rule was established in India in the post Mauryan period.

उन कारणों एवं दशाओं का वर्णन कीजिए जिनके फलस्वरूप भारत में मौर्य-काल के पश्चात् विदेशी शासन स्थापित हुआ।

2. Who were the Bacterians and Parthians? How did they establish their sway over the northwest India?

बैक्ट्रिया और पार्थिया के निवासी कौन थे? उत्तर-पश्चिमी भारत पर उन्होंने अपना आधिपत्य किस प्रकार जमाया?

3. Give an account of the reign of the Indo-Bacterian King Menander.

बैक्ट्रियन शासक मिलिन्द (मेनेण्डर) के शासनकाल का वर्णन कीजिए।

4. Give an account of the reign of Kanishka.

कनिष्क के शासनकाल का वर्णन कीजिए।

5. Who were Kushans and where did they come from?

कुषाण कौन थे और वे कहाँ से आये थे?

6 "Kanishk like Samudragupta was another Indian Napolean." Comment.

"समुद्रगुप्त की भांति ही कनिष्क भी भारत का दूसरा नैपोलियन था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

—:o:—

अध्याय ११

गुप्त साम्राज्य का उदय

गुप्त साम्राज्य

१. पूर्व-स्थिति—बैक्ट्रिया के यवनों के आक्रमण से कुषाणों के शासन काल तक उत्तरी भारत का बहुत-सा हिस्सा विदेशियों के अधीन रहा। उस समय भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे और राजनैतिक दृष्टि से ये असंगठित थे। उधर दक्षिण भारत में आन्ध्रों की स्थिति कुछ अच्छी थी। किन्तु उन्हें भी अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए विदेशियों से जूझना पड़ा। भारतीय संस्कृति भी संकट में थी। कुछ समय पश्चात् कुषाण और आन्ध्र साम्राज्यों का अन्त हो जाने से अराजकता और भी बढ़ गई। अब भारतीय राज्यों और जातियों ने एक नई चेतना लेकर अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास किया; फलस्वरूप देश में ऐसे राज्यों की संख्या बढ़ती गई। ऐसे समय में भारत में एक शक्तिशाली शासक की आवश्यकता थी। इन्हीं राज्यों के आधार पर गुप्त साम्राज्य का निर्माण हुआ और समुद्रगुप्त उसका पहला बड़ा शासक हुआ।

२. गुप्त वंश का मूल—गुप्त साम्राज्य के शासकों की उत्पत्ति का इतिहास विदित नहीं है क्योंकि तत्कालीन लेखों आदि में गुप्तवंश के वर्ण, जाति या उसकी स्थिति का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इनके नाम के अन्त में गुप्त होने से कई विद्वानों का अनुमान है कि गुप्त वंश का वर्ण वैश्य था। किन्तु यह तर्क सही नहीं कहा जा सकता। गुप्त उपाधि नहीं वरन् नामान्त है और दूसरे ब्राह्मणों में भी विष्णुगुप्त ब्रह्मगुप्त जैसे नाम होते हैं। प्रोफेसर डाडवेल का मत है कि भारत में इस

वंश का उदय एकाएक हुआ और इसलिए गुप्त वंश के लोग कहीं बाहर से आए थे। गुप्तों का विवाह-सम्बन्ध क्षत्रिय और ब्राह्मण जातियों के साथ होता था। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस समय गुप्तों को क्षत्रिय समझा जाता था।

३. श्री गुप्त—गुप्त वंश का प्रथम शासक श्रीगुप्त था। पुराणों से पता चलता है कि गुप्त साम्राज्य लगभग तीसरी शताब्दी के अन्त में स्थापित हुआ। श्रीगुप्त के नाम के साथ महाराज की पदवी लगाई जाती थी। इससे प्रतीत होता है कि वह कोई साधारण सामन्त राजा रहा होगा। श्रीगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का घटोत्कच गद्दी पर बैठा। उसकी पदवी भी महाराज ही थी। अतः अनुमान लगाया जाता है कि वह भी साधारण शासक था और उसके शासन में गुप्त साम्राज्य की उन्नति हुई।

४. चन्द्रगुप्त प्रथम (३२० ई०-३३५ ई०)—गुप्त वंश का प्रथम महान् शासक चन्द्रगुप्त संभवतः ३२० ईसवी में गद्दी पर बैठा। वह घटोत्कच का पुत्र था। चन्द्रगुप्त ने गुप्त साम्राज्य का पर्याप्त विस्तार किया। उसने लिच्छवी वंश के एक शासक की पुत्री से विवाह किया और इस विवाह से उसकी स्थिति काफी सुधर गई। विवाह में उसे पाटलीपुत्र नगर दहेज में मिला था। चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों की सहायता से कई युद्ध लड़े और छोटे मोटे राज्यों को जीत लिया। चन्द्रगुप्त ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। उसने जो सिक्के चलाये थे, उन पर एक ओर उसका और उसकी पत्नी कुमारदेवी का चित्र है तथा दूसरी ओर सिंह पर विराजमान शक्ति या दुर्गा के चित्र के नीचे 'लिच्छवयः' अंकित है।

५. समुद्रगुप्त (३३५ ई०-३७५ ई०)—समुद्रगुप्त के शासन के विषय में पर्याप्त लिखित प्रमाण मिले हैं। कौशाम्बी में जो अशोक स्तम्भ है उस पर समुद्रगुप्त की प्रशस्ति अंकित है। यह लेख समुद्रगुप्त के जीवन के प्रायः सभी पहलुओं पर अच्छा प्रकाश डालता है।

समुद्रगुप्त के दरबार के कवि श्री हरिषेण द्वारा अंकित ये पंक्तियाँ समुद्रगुप्त के शासन-काल की जानकारी प्राप्त कराने का एक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। समुद्रगुप्त एक होनहार शासक था और अस्त्र-शस्त्र की उसे अच्छी शिक्षा मिली थी। इसके अतिरिक्त साहित्य, संगीत आदि में भी उसे पर्याप्त रुचि थी। अतः उसके पिता ने अपने पुत्रों में से उसे अपना उत्तराधिकारी चुना। समुद्रगुप्त एक कुशल योद्धा था और कुछ इतिहासकार उसे 'भारत का नेपोलियन' कहते हैं। समुद्रगुप्त की सफलताओं को देखते हुए यह उपाधि ठीक ही है। समुद्रगुप्त के उल्लेखनीय चार युद्ध निम्नलिखित हैं।

(१) आर्यावर्त्त अथवा उत्तरी भारत की विजय—उत्तरी भारत में गुप्त राज्य के प्रबल शत्रु—पाटलीपुत्र का कोटकुल और दूसरा मथुरा के निकट नागवंश—थे। जिस समय समुद्रगुप्त पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर रहा था उसी समय तत्कालीन नाग शासकों ने उस पर आक्रमण कर दिया। समुद्रगुप्त ने इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी के रणक्षेत्र में नाग राजाओं से लड़कर उन्हें परास्त किया और बाद में उसने पाटलीपुत्र को भी जीत लिया। समुद्रगुप्त ने विजित राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया। पाटलीपुत्र की विजय गुप्त साम्राज्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। पाटलीपुत्र मगध की राजधानी थी और इसे जीत लेने पर समुद्रगुप्त का उत्साह बढ़ गया। गुप्त साम्राज्य की दिग्विजय योजना का यह प्रथम चरण कहा जा सकता है।

(२) अटवी राज्यों की विजय—आर्यावर्त्त की विजय के पश्चात् समुद्रगुप्त ने विन्ध्य के आंचलिक राज्यों पर भी अपना आधिपत्य कायम किया। ये जंगली राज्य थे, जिन्हें समुद्रगुप्त ने परिचारक अर्थात् विशेष अवसरों पर सेवक का कार्य करने वाला बना दिया। ये राज्य समुद्रगुप्त को कर देते थे।

(३) दक्षिण भारत की विजय—उत्तर और मध्य-भारत की विजय के पश्चात् समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

दक्षिणापथ के सभी राज्यों को उसने परास्त किया । किन्तु उसने ये राज्य उन शासकों को ही लौटा दिए क्योंकि दूरस्थ राज्यों के प्रबन्ध में आने वाली कठिनाइयों को वह भली-भाँति जानता था। दक्षिण के राज्यों ने समुद्रगुप्त का आधिपत्य स्वीकार कर लिया । समुद्रगुप्त दक्षिण से उपहार के रूप में पर्याप्त सम्पत्ति लेकर लौटा था । ये राज्य उसे कर भी देते थे ।

(४) सीमान्त के कबीलों की विजय—आर्यावर्त्त और दक्षिणापथ में समुद्रगुप्त की विजय को देखकर सीमान्त राज्यों और कबीलों ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया । बंगाल (समतट) और आसाम (कामरूप) के सीमा प्रदेश में रहने वाले जनों ने भी उसे कर देना प्रारम्भ कर दिया ।

६. **पड़ोस के विदेशी राज्यों पर आधिपत्य तथा परस्पर सम्बध**—पश्चिमोत्तर भारत के विदेशी राज्यों की शक्ति क्षीण हो चली थी । सिंहल (श्रीलंका) द्वीप और हिन्दमहासागर के छोटे-छोटे द्वीपों में समुद्रगुप्त से लड़ने का साहस न था । अतः उन्होंने समुद्रगुप्त के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिए । इन राज्यों में सौराष्ट्र के शक, पंजाब के कुषाण और श्रीलंका के मेघवर्ण शासक उल्लेखनीय हैं । इन राज्यों के साथ मैत्री सम्बन्ध की जो शर्तें थीं, उनमें से एक यह थी कि ये राज्य अपने देशों में शासन करने के लिए गुप्तों की गरुड़ की मूर्ति से अंकित मुद्रा स्वीकार करेंगे । इस शर्त से पता चलता है कि इन राज्यों के साथ समुद्रगुप्त का बराबरी का सम्बन्ध न था अपितु उन्होंने उसके यश से आतंकित हो उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था । श्रीलंका के शासक ने समुद्रगुप्त के दरबार में अपना दूत भेजा था और इस दूत के साथ समुद्रगुप्त के लिए कई उपहार भी भेजे थे । श्रीलंका के राजा ने समुद्रगुप्त की अनुमति प्राप्त कर गया में महाबोधि संघाराम नामक एक विहार बनवाया था । इससे समुद्रगुप्त की ख्याति चारों ओर फैल गयी और बाद में अनेक विदेशी राजाओं ने उसके दरबार में अपने दूत भेजे ।

७. समुद्रगुप्त का अश्वमेध यज्ञ—इस प्रकार देश के प्रायः सभी राज्यों को जीत लेने पर समुद्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान किया। गुप्तकाल के एक उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ का वास्तव में पुनुरुत्थान किया। यह यज्ञ विदेशी सत्ता से मुक्त भारत की राजनीतिक एकता का प्रतीक था। इस यज्ञ के अवसर पर समुद्रगुप्त ने अश्वमेध शैली के सोने के सिक्के चलाए। इन सिक्कों के एक ओर अश्व की आकृति और दूसरी ओर राजा व रानी की मूर्ति और 'अश्वमेध पराक्रम' शब्द अंकित हैं।

८. समुद्रगुप्त की सफलताएं—समुद्रगुप्त कुशल योद्धा और प्रभावशाली शासक था। इसके अतिरिक्त वह शस्त्र, कला, साहित्य, संगीत आदि में पारंगत था। 'प्रयाग-प्रशस्ति' की कविता की भाषा में वह अपने शास्त्र-ज्ञान से देवताओं के गुरु बृहस्पति को और अपने संगीत और ललित-कलाओं के ज्ञान से नारद और तुम्बरु को भी लज्जित करता था।* उस काल के एक प्रकार के सिक्कों पर पर्यंक पर बैठे वीणा बजाते हुए समुद्रगुप्त की आकृति अंकित है। उसके दरबार में अनेक विद्वानों और कलाकारों को राज्याश्रय प्राप्त था। समुद्रगुप्त हिन्दू धर्मावलम्बी था। उस काल की गरुड़ की मुद्रा से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त विष्णु का उपासक था। किन्तु, वह अन्य सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णु था। इसका प्रमाण यह है कि उसने श्रीलंका के राजा मेघवर्ण को गया में एक विहार बनाने की अनुमति दी थी। समुद्रगुप्त की गणना भारत के महान शासकों में की जाती है। लगभग ३७५ ई० में समुद्र-गुप्त की मृत्यु हो गई।

गुप्त सम्राज्य का उत्कर्ष

९. चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य (३८०ई०-४१३ ई०)—समुद्र

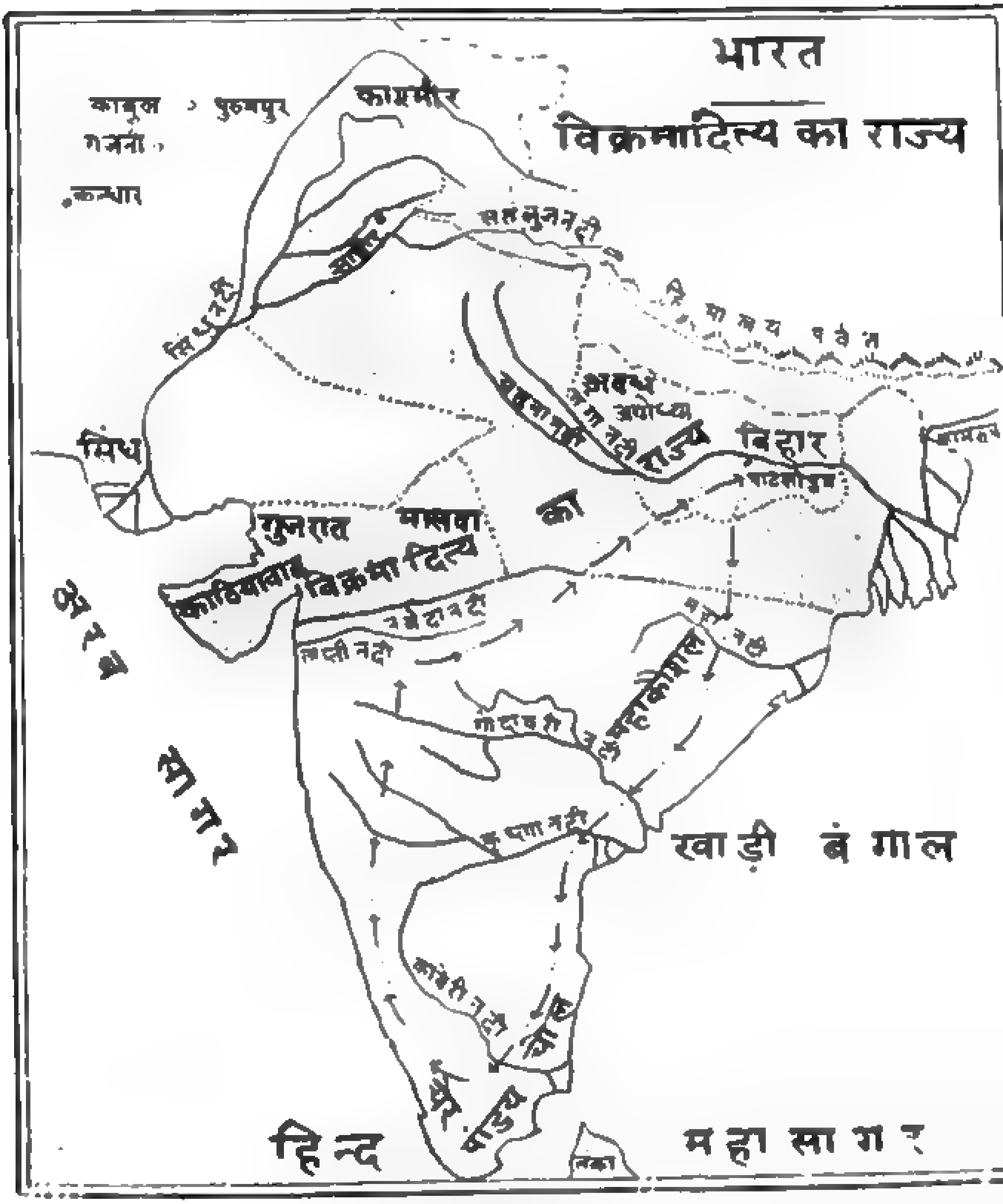
* भारतवर्ष का इतिहास—डा० राजबली पांडे।

गुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा।* चन्द्रगुप्त अपने पिता के समान ही वीर और महत्वाकांक्षी था। समुद्रगुप्त ने भारत में सार्वभौम साम्राज्य स्थापित कर दिया था, किन्तु इस साम्राज्य में कुछ व्यवधान रह गये थे। समुद्रगुप्त ने सीमान्त के कबीलों को अपने आधीन कर लिया था। पर वे बार-बार स्वतन्त्र होने के लिये प्रयत्न करते थे। इसके अतिरिक्त कुषाण और शक भी किसी अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में थे। चन्द्रगुप्त ने इन सब को परास्त कर गुप्त साम्राज्य को अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया। चन्द्रगुप्त की दिग्विजय में निम्नलिखित युद्ध उल्लेखनीय हैं।

१०. गण राज्यों का विनाश—पश्चिमोत्तर भारत के कुषाण और अवन्ति के महाक्षत्रपों तथा गुप्त साम्राज्य के बीच उत्तर में मद्रगण से लेकर दक्षिण में खरपटिक गण तक गणों के समूह यत्र-तत्र बिखरे हुए थे। ये गण समुद्रगुप्त का शासन स्वीकार कर चुके थे, किन्तु, अवसर पाने पर ये सदैव सिर उठाया करते थे। इसलिये चन्द्रगुप्त ने पहले इन्हीं गणों को समाप्त किया। चन्द्रगुप्त की दिग्विजय के पश्चात् इन गणों का कोई अस्तित्व नहीं रह गया।

११. मालवा, गुजरात और काठियावाड़ की विजय—गणों को समाप्त करने के पश्चात चन्द्रगुप्त कई राज्यों को जीतता हुआ मालवा और गुजरात देश तक पहुंच गया। उस समय गुजरात के प्रायद्वीप में शकों का आधिपत्य था। वहाँ के शासकों का पतन हो चुका था और इतिहास से पता चलता है कि रुद्रसिंह तृतीय अन्तिम क्षत्रप था जिसका वध चन्द्रगुप्त ने किया। मालवा में चन्द्रगुप्त ने क्षत्रप शैली के अपने सिक्के चलाये थे। ऐसा लगता है कि चन्द्रगुप्त अपने साम्रा-

*समुद्रगुप्त की मृत्यु ३७५ ई० में हुई थी और चन्द्रगुप्त ३८० ई० में गद्दी पर बैठा। अतः कुछ इतिहासकारों का मत है कि चन्द्रगुप्त से पहले रामगुप्त गद्दी पर बैठा और चन्द्रगुप्त ने षड्यन्त्र से इसकी हत्या कर राज्य अपने हाथ में ले लिया।



विक्रमादित्य का साम्राज्य

ज्य को समुद्र तट तक पहुंचाना चाहता था। व्यापार तथा वाणिज्य की उन्नति के लिये यह बहुत जरूरी था। अतः चन्द्रगुप्त ने इन युद्धों में विजय प्राप्त कर मालवा, गुजरात और काठियावाड़ को अपने साम्राज्य में मिला लिया। इन राज्यों की विजय से चन्द्रगुप्त और उसके साथ गुप्त साम्राज्य की ख्याति और भी बढ़ गई। यह विजय चन्द्रगुप्त की महान् सफलता थी। इस विजय के परिणामस्वरूप गुप्त साम्राज्य और रोम साम्राज्य के व्यापार का मार्ग खुल गया। इस विजय का राष्ट्रीय महत्त्व भी है क्योंकि शकों के विनाश से भारत से विदेशी शासन का भी अन्त हो गया। शकों की विजय के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। 'विक्रमादित्य' का अर्थ है वीरता का सूर्य और इसमें सन्देह नहीं कि चन्द्रगुप्त के लिए यह उपाधि सर्वथा योग्य थी। कई इतिहासकारों का कथन है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और भारत की कथाओं में वर्णित राजा विक्रमादित्य एक ही हैं। उज्जयिनी के राजा विक्रम, उनके दरबार के नवरत्नों जिनमें कालिदास एक थे, आदि के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। सम्भव है कि कालिदास इसी काल में रहे हों क्योंकि उन्हें चौथी या पांचवीं शताब्दी के बौद्ध दार्शनिक दिग्नाग का समकालीन बताया गया है।

१२. फाह्यान —चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत की स्थिति के विषय में फाह्यान ने बहुत कुछ लिखा है। फाह्यान एक चीनी यात्री था जिसने भारत के बौद्ध तीर्थ-स्थानों की यात्रा एवं ग्रन्थों के अध्ययन के प्रयोजन से भारत में ६ वर्ष व्यतीत किये। उसने तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा का अच्छा वर्णन किया है और गुप्त काल की जानकारी के लिये उसके लेख बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। उसके लेखों में से कुछ बातें नीचे दी जाती हैं।

१३. पाटलीपुत्र नगर—फाह्यान ने पाटलीपुत्र का भ्रमण किया और वह अशोक के राजप्रासाद को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसने

लिखा है कि राजधानी में एक अस्पताल था जहाँ रुग्णों एवं अनाथ लोगों की निःशुल्क चिकित्सा और भोजन आदि का प्रबन्ध था। अस्पताल का व्यय नगर के धनी और उदार व्यक्ति देते थे। इस अस्पताल में सारी व्यवस्था इतनी अच्छी थी कि डा० स्मिथ जैसे प्रख्यात इतिहासकार को इस बात में सन्देह है कि उस काल में विश्व के किसी भाग में इतना अच्छा अस्पताल रहा हो। फाह्यान ने लिखा है कि लोग समृद्ध एवं धनी थे। उनमें लोक-कल्याण कार्य करने की होड़-सी लगी रहती थी। प्रजा राजा को चाहती थी और उसका पूर्ण सम्मान करती थी। शासन अच्छा था और राजा प्रजा के वैयक्तिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता था। अधिकारी जनता को सताते नहीं थे। लोगों को बहुत कम कर देने पड़ते थे। अपराधियों से आम तौर पर जुर्माना लिया जाता था किन्तु अपराध की पुनरावृत्ति होने पर कठोर दण्ड भी विहित था। कर्मचारियों और अधिकारियों की नियुक्ति में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होता था। इस बात का प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि चन्द्रगुप्त का सेनापति बौद्ध मतावलम्बी था और उसका एक मन्त्री शैव पंथी था। कृषकों को अपनी उपज का छठा भाग राजा को देना पड़ता था। सम्पूर्ण साम्राज्य प्रान्तों में बाँट दिया गया था। ये प्रान्त 'देश' या 'भुक्ति' कहलाते थे। देशों को जिलों में बाँट दिया गया था। ग्राम का प्रबन्ध ग्रामीणों द्वारा किया जाता था। नगरों का अपना शासन होता था किन्तु नगराधिपति की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती थी। सरकारी कामों में और व्यापार में दीनारों या सोने के सिक्कों का प्रयोग होता था। फाह्यान लिखता है कि छोटे-मोटे क्रय-विक्रय में कौड़ियाँ भी चलती थीं। उसने भारत में हजारों मील की यात्रा की। उसे कहीं भी चोर-डाकू नहीं मिले। फाह्यान के इस वर्णन से स्पष्ट है कि गुप्त काल की सम्पूर्ण शासन-प्रणाली आदर्श थी, जिसमें प्रजा सुखी और समृद्ध थी।

१४. बौद्ध धर्म का ह्रास—इस काल में वैदिक धर्म का पुनरुद्धार

हुआ। कई प्रकार के यज्ञ किये जाने लगे। वैष्णव, शक्त, ब्राह्म, आदि सारे धार्मिक सम्प्रदाय वैदिक धर्म की परम्परा में विकसित हुए। यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि गुप्त काल में ही आधुनिक हिन्दू धर्म की आधार शिला रखी गई थी। फाह्यान ने अपने लेखों में बौद्ध साहित्य और बौद्ध धर्म के विषय में भी लिखा है। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का उदय पहले ही हो चुका था। इस सम्प्रदाय में महात्मा बुद्ध को भगवान् मानकर उनकी मूर्ति पूजा की जाती थी। यह सम्प्रदाय बौद्ध धर्म की अपेक्षा वैदिक धर्म के अधिक निकट था और इन दोनों में समन्वय तेजी से हो रहा था। बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था किन्तु ऐसा लगता है कि यह ह्रास इतने धीरे हो रहा था कि फाह्यान को उसका आभास नहीं हुआ। उसने लिखा है कि भारत में किसी प्रकार का अत्याचार नहीं था और ब्राह्मणों और बौद्धों के सम्बन्ध सौहार्दयुक्त थे।

१५. चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारी—चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त ४१४ ई० में गद्दी पर बैठा। कुमारगुप्त के शासनकाल के उत्तरार्ध में गुप्त साम्राज्य पतनोन्मुख हुआ। कुमारगुप्त अपने पिता की भाँति कुशल योद्धा था। मध्य-एशिया के घास के मैदान में रहने वाले बर्बर हूणों ने ४५० ई० में भारत में प्रवेश किया। कुमारगुप्त ने इन्हें परास्त किया किन्तु हूणों के आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य की जड़ें हिला दीं। ४५५ ई० में कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात् स्कन्दगुप्त गद्दी पर बैठा। उसे अपने पूरे शासनकाल में हूणों का सामना करना पड़ा। स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी शासकों में साम्राज्य के ह्रास को रोकने की क्षमता नहीं थी। बुद्धगुप्त अन्तिम महान् शासक था जिसका राज्य बंगाल से मालवा देश तक था। हूणों का आक्रमण इस साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण था।

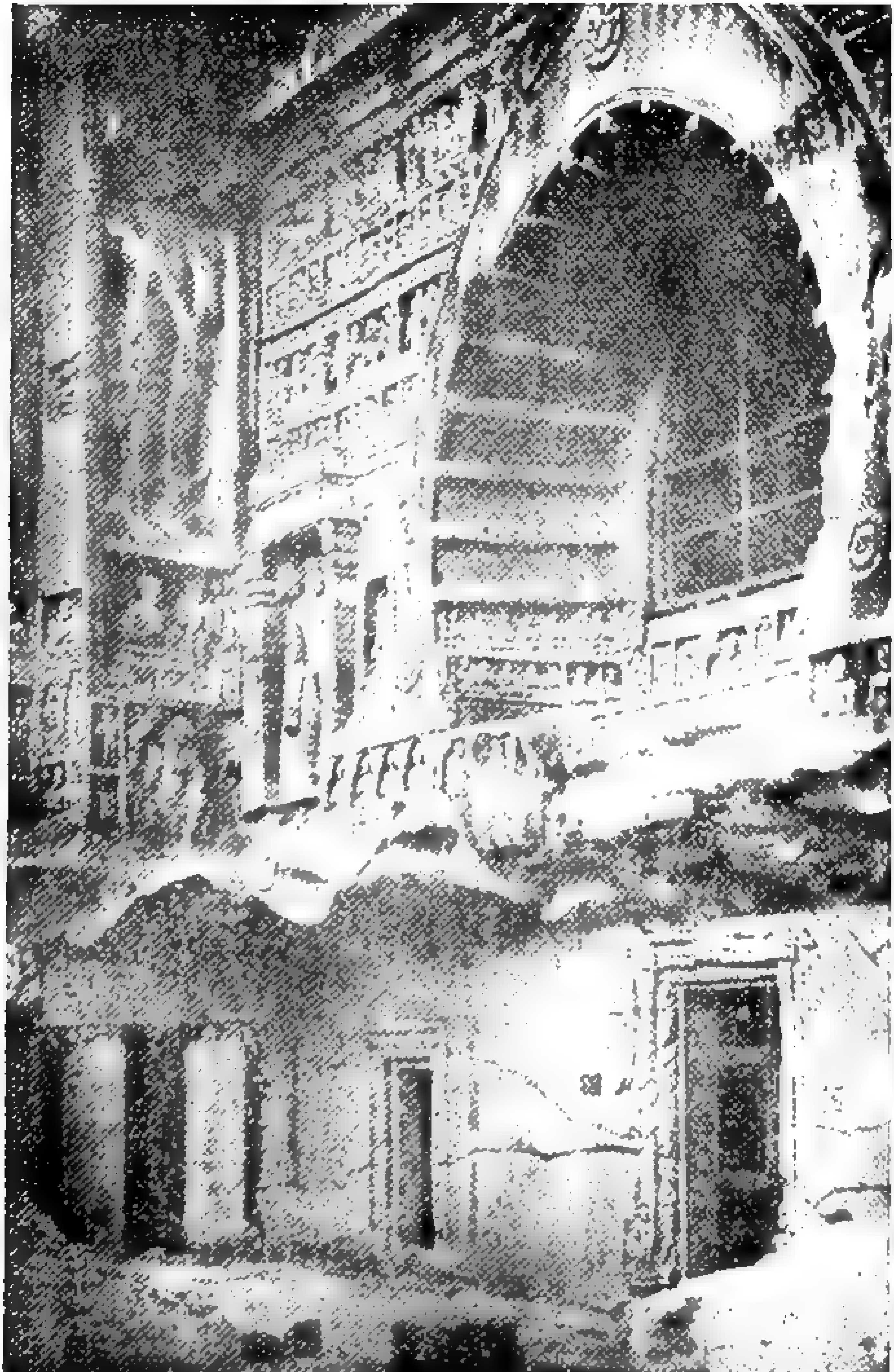
गुप्त साम्राज्य का स्वर्ण युग

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री वी० ए० स्मिथ का मत है कि गुप्त काल अनेक क्षेत्रों में विशेष विकासोन्मुख बौद्धिक गतिविधियों का युग

था और उसकी तुलना इङ्गलैंड के एलिजाबेथ काल और स्टुअर्ट काल से की जा सकती है ३२० ई० से ४६८ ई० के बीच गुप्त साम्राज्य अपने वैभव के शिखर पर था। इस काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है। साहित्य के विकास और वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के अतिरिक्त इस काल में जनता सुखी और समृद्ध थी। गुप्त शासकों ने लोक-कल्याण कार्यों पर काफी धन व्यय किया। व्यापार भी समृद्ध हो गया था जैसा कि तत्कालीन सिक्कों से स्पष्ट है। इस काल को सुविधा के लिए निम्न शीर्षकों में बांटा जा सकता है।

१६. कला और संस्कृति— कला और संस्कृति को विदेशियों से भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था किन्तु उनका उत्कर्ष गुप्त काल में ही हुआ। गुप्तकालीन अधिकांश भवन अब नहीं रहे, किन्तु जो हैं उनसे हमें तत्कालीन वास्तुकला की कुछ जानकारी मिलती है। झांसी जिले में देवगढ़ में विष्णु का मन्दिर, कानपुर जिले में भीतर गांव में एक अन्य मन्दिर और नागौर राज्य में भुमरा के निकट शिव का मन्दिर गुप्तकालीन वास्तुकला के सुन्दर नमूने हैं। इसी तरह ग्वालियर के निकट देवगिरि की पहाड़ियों में बने गुफा मन्दिरों में इस काल की कुछ प्रस्तर मूर्तियां हैं जिनकी कला अत्यन्त उन्नत है। भारत में इससे सुन्दर मूर्तियां किसी अन्य काल में नहीं बनीं और इनकी गणना विश्व की सर्वोत्तम मूर्तियों में की जाती है। सारनाथ के संग्रहालय में गुप्काल की कुछ मूर्तियां रखी हुई हैं। उन्हें देखने से पता चलता है कि तत्कालीन कलाकार अपने समय की स्थिति का पाषाण जैसे निर्जीव माध्यम से कितना प्रामाणिक और उत्कृष्ट चित्रण कर सकते थे। इस काल में चित्रकला भी विकास के शिखर पर थी। अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में इसके कुछ नमूने पाये जाते हैं। लता-पुष्प, मनुष्य, जानवर आदि के रेखाचित्र अत्यन्त सजीव और कलात्मक हैं।

१७. साहित्य का सृजन—गुप्तकाल में साहित्य रचना भी सराहनीय



अजन्ता—एक गुफा का प्रवेश द्वार

हुई। संस्कृत के महान् कवि की रचनाएं संभवतः इसी काल में प्रमुख हुईं। कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तल' एक अमर नाटक है जिसने संसार के सभी भागों में अपनी साहित्यिक महानता के बल पर ख्याति प्राप्त कर ली है। उत्कीर्ण लेखों से ऐसा पता लगता है कि हरिषेण, वीरषेण आदि बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। नाटककारों में मातृगुप्त, शूद्रक, विशाखदत्त और सुबन्धु प्रसिद्ध थे। वात्स्यायन का कामसूत्र इसी काल में लिखा गया। धार्मिक साहित्य की दृष्टि से गुप्त काल बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दू धर्म का अधिकांश साहित्य इसी युग में पूर्ण किया गया। नारद-स्मृति इसी काल की रचना है। पुराणों और महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) को इस काल में अन्तिम रूप दिया गया। आर्य भट्ट और वराहमिहिर ने खगोल-शास्त्र के अपने ग्रन्थ इसी काल में लिखे हैं। इस प्रकार साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में भारत की बौद्धिक प्रगति हुई।

१८. हिन्दू धर्म की उन्नति—गुप्त काल में वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ। गुप्त शासक शिव के उपासक थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के प्रचार एवं प्रसार का हर संभव प्रयत्न किया। किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गुप्त वंश के शासक अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। इस काल में ब्राह्मणों का महत्त्व बढ़ गया और कई तरह के यज्ञ और अन्य धर्म कार्य सम्पन्न होने लगे। विष्णु पूजा प्रचलित हो गई और विष्णु के कई मन्दिर इस प्रयोजन से बनाये गये। हिन्दू धर्म का उत्कृष्ट साहित्य इसी काल की देन है।

१९. शिक्षा और विज्ञान की उन्नति—गुप्त काल में शिक्षा की पर्याप्त उन्नति हुई। ब्राह्मण पाठशालाएं चलाते थे। भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयों में प्रसिद्ध नालन्दा विश्वविद्यालय कुमार गुप्त ने स्थापित किया था। शिक्षा और विद्या के प्रचार के लिए राज्य की ओर से अध्यापकों को भूमि और आर्थिक सहायता दी जाती थी। गुप्तकाल में विज्ञान की भी पर्याप्त उन्नति हुई। ज्योतिष शास्त्र में अनेक महत्वपूर्ण गवेषणाएं की गईं। इसी काल में एक भारतीय गणितज्ञ ने

दशमलव प्रणाली का आविष्कार किया था। चिकित्सा-शास्त्र के प्रणेता 'चरक' इसी काल में हुए।

२०. व्यापार और वाणिज्य की उन्नति— गुप्त काल में शासन प्रबन्ध अच्छा होने से देश में शांति व सुरक्षा रही। इससे कृषि, उद्योग-धन्धे और व्यापार की काफी वृद्धि हुई। चन्द्रगुप्त ने गुजरात, काठियावाड़ को जीत कर अपना साम्राज्य अरब सागर तक फैला दिया था। इससे रोम आदि देशों से व्यापार होता था और व्यापार में रोम के सोने के सिक्के भी भारत में आते थे। इधर पूर्वी देशों से भी व्यापार होता था। चीन से हमारे यहां रेशमी वस्त्र आता था। देश में विनिमय के लिए कई प्रकार के सिक्के चलते थे। व्यापारी निगमों, श्रेणियों और गणों में संगठित थे। व्यापार के लिए इनके अपने नियम होते थे। व्यापार की समृद्धि के कारण जनता की आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी। व्यापार के साथ अन्य देशों से भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध भी बढ़े। भारत और चीन का सम्बन्ध और घनिष्ठ हो गया। भारत से भी कई विद्वान और धर्म-प्रचारक चीन गये। अजन्ता के चित्रों में एक स्थान पर भारतीय राजा की सभा में ईरानी प्रतिनिधि दल दिखाया गया है।

गुप्त साम्राज्य का पतन

२१. भारत में हूणों का आगमन—हूण जाति के लोग बर्बर थे और वे मध्य-एशिया के घास के मैदानों में रहा करते थे। यहां से हूण दो भागों में बंट गये। एक दल वोल्गा नदी की ओर गया और दूसरा वक्षनद (आक्सस) की घाटी की ओर बढ़ा। वक्षनद की घाटी में आये हूण सारे फारस में फैल गये। यहां से वे अफगानिस्तान में घुसे और उन्होंने गान्धार पर कब्जा कर लिया। इसके पश्चात् उन्होंने कुषाण और शक राज्यों को नष्ट कर दिया और भारत में घुस गये। अल्पावधि में ही वे भारत के उत्तर-पश्चिम में बस गये। गुप्त साम्राज्य पर उन्होंने पहला आक्रमण ४५५ ई० में किया। उस समय स्कन्दगुप्त

शासक था। उसने इन्हें मार भगाया।

(क) तोरमाण—हूणों का प्रथम शासक तोरमाण था। हूणों ने ४६७ ई० में उसके सेनापतित्व में गुप्त साम्राज्य पर पुनः आक्रमण किया। इस बार विजय हूणों की हुई और परिणामस्वरूप गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। तोरमाण ने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की। उसने अपनी राजधानी स्यालकोट में बनाई। उसके राज्य में पंजाब, राजपूताना तथा मध्य भारत का भी भाग शामिल था। ४८४ ई० के बाद और भी हूण भारत आये। उन्होंने मालवा जीत लिया और वे वहीं बस गये। तोरमाण की मृत्यु ५१० ई० में हुई।

(ख) मिहिरकुल—तोरमाण की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मिहिर-कुल हूणों का शासक बन गया। मिहिर शिव का उपासक था। वह अत्यन्त क्रूर और असहिष्णु था। उसने बौद्ध मतावलम्बियों पर बहुत अत्याचार किये। उसने स्तूपों और मठों को भी नष्ट कर दिया। उसके अत्याचारों को रोकने के लिए मध्यभारत के यशोधर्मन् नामक शक्ति-शाली राजा ने मगध के शासक बालादित्य की सहायता लेकर उसे बुरी तरह हराया। हूणों को सिंधु नदी के पार खदेड़ दिया गया और मिहिरकुल काश्मीर चला गया। हूणों की इस पराजय का उल्लेख हुएन-सांग के लेखों में मिलता है। उसके अनुसार मिहिरकुल को बालादित्य ने बन्दी बना लिया था किन्तु बाद में उसे क्षमा करके मुक्त कर दिया। मिहिरकुल की मृत्यु के बाद हूणों की शक्ति क्षीण होती गयी और भारत में उनका नाममात्र अस्तित्व रह गया। हूण शक्ति-शाली और नृशंस थे किन्तु उनमें राज्य-संचालन और प्रबन्ध करने की क्षमता न थी। अतः यूरोप और भारत में ये कहीं भी टिक न सके। हूणों के आक्रमणों ने और सामन्ती राजाओं तथा प्रान्तीय शासकों की सत्तालोलुपता ने गुप्त साम्राज्य को निर्बल बना दिया था। कुछ काल बाद गुप्त सम्राटों के वंशज मगध में स्थानीय राजा के रूप में रह गये।

२२. गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण—(क) गुप्त साम्राज्य बहुत

बड़ा था और उसकी कोई सीमा निर्धारित न थी। उत्तर-पश्चिम के मार्ग से आक्रमणकारियों का आना बहुत सरल था। गुप्त साम्राज्य में पंजाब न होने के कारण गुप्त शासकों ने पश्चिमोत्तर प्रदेश की ओर ध्यान नहीं दिया। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात सीमा-प्रान्तों की उपेक्षा की जाने लगी। (ख) गुप्त राजाओं में उत्तराधिकार के कोई निश्चित नियम न थे। अतः अराजकता बढ़ गई। स्कन्दगुप्त के पश्चात् कोई भी शक्तिशाली शासक गद्दी पर नहीं बैठा। अतः शासन दुर्बल हो गया और राज्य में अशान्ति बढ़ गई। गुप्त साम्राज्य के अन्तिम शासकों में समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त जैसी क्षमता न थी। इस विस्तृत साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों के वंशानुगत राज्यपालों ने आये दिन विद्रोह करना शुरू किया। गुप्त साम्राज्य का संगठन उत्तरोत्तर निकृष्ट होता गया। (ग) हूणों के आक्रमण स्कन्दगुप्त के समय से ही हो रहे थे। स्कन्दगुप्त ने इन्हें सदा हराया। किन्तु हूणों के लगातार आक्रमण गुप्त साम्राज्य के लिये घातक सिद्ध हुए। कालान्तर में उन्होंने जीर्ण-शीर्ण गुप्त साम्राज्य को समाप्त ही कर दिया।

२३. हूणों के आक्रमण का प्रभाव—बर्बर एवं क्रूर हूणों के आक्रमण से हमारे देश की राजनीतिक स्थिति पर दुःखद प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने लगातार आक्रमणों से गुप्त साम्राज्य की जड़ें हिला दीं और अन्त में उसे समाप्त ही कर दिया। हूणों के भारत में आकर बसने से भारतीय समाज में एक और जाति बढ़ गई। उनके आक्रमणों ने हमारी कला और संस्कृति को उल्लेखनीय ठेस पहुंचाई। मिहिरकुल ने सैकड़ों स्तूपों और मठों को नष्ट किया था। हूणों को उचित-अनुचित का कोई विवेक न था। साथ ही उनके नैतिक आचरण की मर्यादाएं शिथिल थीं। अतः भारतीय समाज में भी इनके सहवास के कारण कुछ बुराइयाँ आ गईं।

प्रश्न

1. Why is Samudragupta regarded as Indian

Napolean ?

समुद्रगुप्त को भारतीय नैपोलियन क्यों कहा जाता है ?

or

Form an estimate of the work and achievements of Samudragupta.

समुद्रगुप्त के कार्य एवं सफलताओं का वर्णन कीजिये।

2. "Chandragupta II (Vikramaditya) was one of the greatest rulers of India.' Why ?

"चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) को भारत के महान् सम्राटों में गिना जाता है।" क्यों ?

3. Why is Gupta Age known as the 'Golden Age' of Hindu Period ?

गुप्तकाल को हिन्दू-काल का 'स्वर्ण-युग' क्यों कहा जाता है ?

4. Who was Fa-Hien ? What was the condition of India, as described by him।

फाह्यान कौन था ? उसने भारत की दशा का क्या वर्णन लिखा है !

or

What light does Fa-Hien throw on the political, social, religious and economic condition of India in the th and 5th centuries !

फाह्यान ने चौथी और पाँचवीं शताब्दी में भारत की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा के विषय में क्या लिखा है।

5. What were the causes of the downfall of the Gupta Empire and how far the invasion of Huns may be held responsible for the same ?

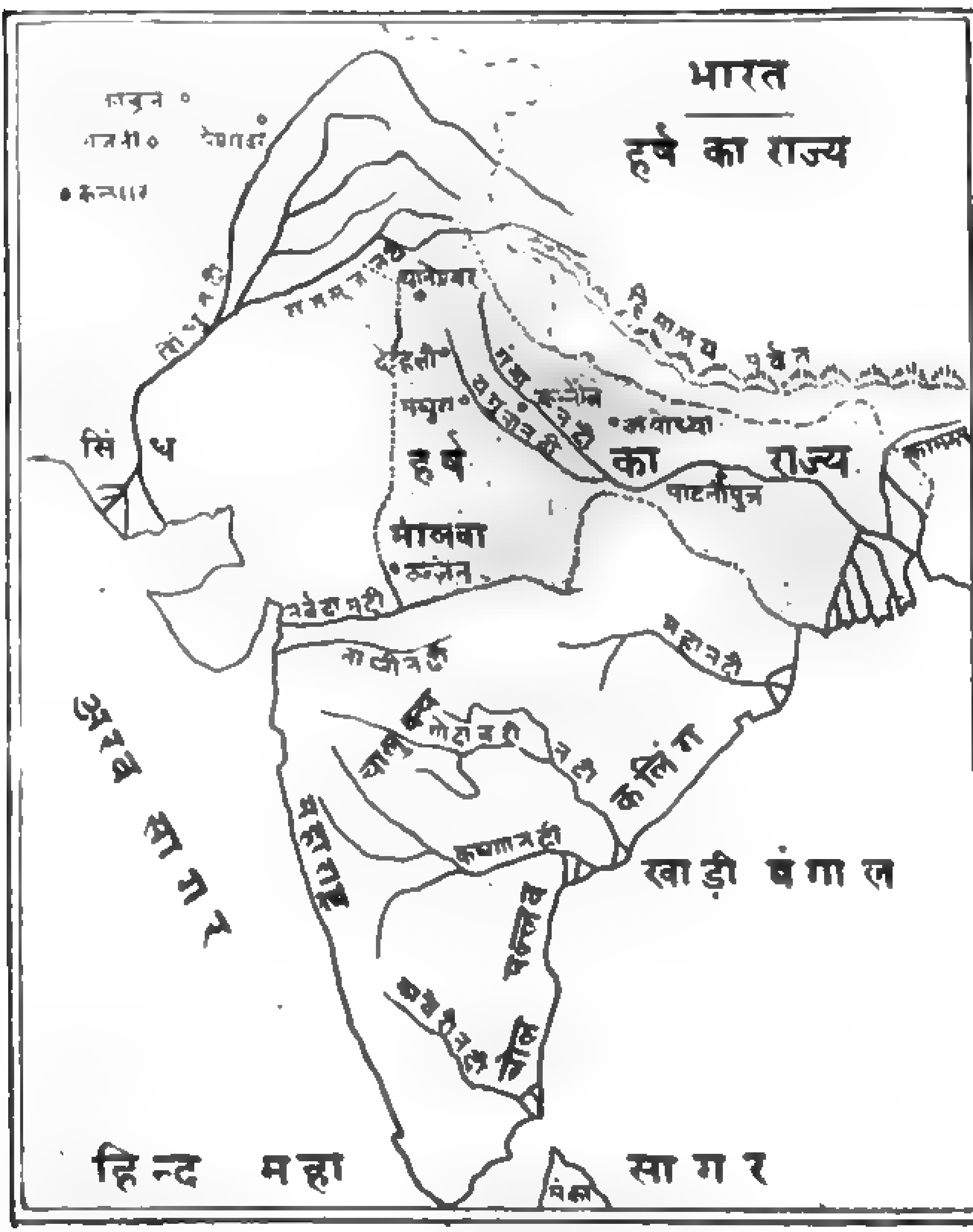
गुप्त साम्राज्य की अवनति के क्या कारण थे और हूणों के आक्रमण को इस सम्बन्ध में कहाँ तक उत्तरदायी ठहराया जा सकता है ?

—:o:—

अध्याय १२

महाराजा हर्ष का साम्राज्य

१. गुप्त साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया—गुप्त साम्राज्य जब अन्तिम साँसें गिन रहा था तभी भारत में छोटे-छोटे राज्य बन गए थे। इन राज्यों में एक-दूसरे पर आधिपत्य जमाने की प्रवृत्ति थी। अतः इनमें संघर्ष हुआ करते थे। कोई पचास वर्ष के पश्चात् उत्तर भारत में पुष्यभूति वंश, दक्षिण भारत में चालुक्य वंश और सुदूर दक्षिण में पल्लव वंश का आधिपत्य हुआ। पुष्यभूति वंश पंजाब के एक छोटे जिले पर शासन करता था। इनकी राजधानी थानेश्वर थी। सातवीं शताब्दी में प्रभाकर वर्धन थानेश्वर का राजा था। प्रभाकर वर्धन एक कुशल योद्धा और महत्वाकांक्षी विजेता था। उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। तत्कालीन कवि बाण के अनुसार प्रभाकर वर्धन ने दिग्विजय प्राप्त करने के लिए पड़ोसी देशों पर चढ़ाई की थी। उसने हूणों को भी परास्त किया था। प्रभाकर वर्धन के जीवन के अंतिम दिनों में हूणों ने पुनः सिर उठाया। उनका दमन करने के लिए उसने अपने पुत्र राज्यवर्धन को भेजा। राज्यवर्धन ने उन्हें हरा कर खदेड़ दिया। इसी बीच प्रभाकर वर्धन की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् राज्यवर्धन गद्दी पर बैठा तथा पुष्यभूति वंश के शत्रुओं ने सिर उठाया। गौड़ राजा शशांक और मालवा के राजा देवगुप्त ने राज्यवर्धन के बहनोई गृहवर्धन को मार डाला और राज्यवर्धन की बहिन राज्यश्री को बन्दी बना लिया। किन्तु वह किसी प्रकार भाग निकली और विन्ध्य के वनों में छिप गई। राज्यवर्धन ने अपने बहनोई की हत्या का बदला लेने के लिए मालवा पर चढ़ाई कर दी। मालवा का राजा उसके हाथों परास्त हुआ। किन्तु शशांक


भारत
हर्ष का राज्य
सिंध
हर्ष का राज्य
मालवा
उज्जैन
पाटलीपुत्र
नर्मदा नदी
महानदी
कलिंग
खाड़ी बंगाल
अरब सागर
हिन्द महा सागर

हर्ष का साम्राज्य

ने राज्यवर्धन के सरल स्वभाव का लाभ उठाकर उसे अपने यहाँ बुलाया और उसकी हत्या कर दी।

२. हर्ष का राज्याभिषेक—राज्यवर्धन के असामयिक और दुःखद निधन के पश्चात् ६०६ ई० में हर्षवर्धन श्रीकंठ का शासक बना। उसके सामने कई समस्यायें थीं। भाई की हत्या से वह शोक संतप्त था। दूसरे, उसकी बहिन का कोई पता न था। हर्षवर्धन पहले अपनी बहिन का पता लगाकर उसे अपने साथ ले आया। कान्यकुब्ज राज्य के मंत्रियों ने उसे कान्यकुब्ज के सिंहासन पर बैठने को कहा। हर्ष ने इसे अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया किन्तु इस शर्त पर कि वह राज्य का भार बहिन का अभिभावक होने के नाते सम्हालेगा। राज्याभिषेक के समय हर्षवर्धन की आयु केवल १८ वर्ष थी।

३. हर्ष के आक्रमण—हर्ष अपने भाई की मृत्यु से बहुत दुखी था। अतः उसने बंगाल के राजा शशांक से बदला लेने का निश्चय कर लिया। सबसे पहले उसने शशांक के शत्रु कामरूप के शासक भास्कर वर्मन से संधि कर ली। इसके बाद उसने उत्तरी भारत में दिग्विजय के लिए बड़े पैमाने पर तैयारियाँ कीं। उत्तरी भारत और बंगाल के अधिकांश भाग को जीतने में उसे छः वर्ष लग गये। शशांक की मृत्यु ६३७ ई० में हुई और उसके बाद हर्ष के पूर्वी मित्र देश ने शशांक के राज्य पर आधिपत्य जमा लिया। हर्ष ने दक्षिण भारत के सर्वश्रेष्ठ शासक पुलकेशिन् द्वितीय पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में हर्ष की पराजय हुई। चीनी यात्री हुएनसांग के वर्णन में इस पराजय का उल्लेख है। यह युद्ध नर्मदा नदी के किनारे हुआ था। इसके बाद नर्मदा नदी हर्ष तथा पुलकेशिन द्वितीय के साम्राज्य की सीमारेखा निश्चित हो गई। हर्ष ने वल्लभी के राजा से लड़कर ६३७ ई० में उसे परास्त किया। वल्लभी के राजा ने हर्ष को कर देना स्वीकार कर लिया।

४. हर्ष के साम्राज्य का विस्तार—हर्ष का साम्राज्य नैपाल सहित

गंगा के पूरे मैदान में फैला हुआ था। दक्षिण में उसका विस्तार नर्मदा नदी तक था। मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट्र राज्य भी हर्ष के साम्राज्य में शामिल थे। हर्ष के साम्राज्य के विषय में मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि उसके साम्राज्य में पूर्वी पंजाब करीब-करीब पूरा उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और उड़ीसा जिसमें गंजम शामिल है, आ जाते हैं। हर्ष ने अपने शासन के अंतिम वर्षों में मद्रास प्रान्त में गंजम के शासक पर आक्रमण किया था। किन्तु इस आक्रमण का परिणाम ज्ञात नहीं है।

५. **हर्ष का शासन प्रबन्ध**—सम्राट हर्ष महान् विजेता होने के अतिरिक्त योग्य शासक भी था। वह अत्यन्त परिश्रमी और उदार था। भारत में उस समय भ्रमण करते हुए हुएनसांग नामक चीनी यात्री ने हर्षकालीन भारत की स्थिति का अच्छा वर्णन किया है। उससे पता चलता है कि हर्ष अपने साम्राज्य का दौरा करता था और प्रजा की स्थिति की स्वयं जानकारी प्राप्त करता था। वर्षा ऋतु को छोड़कर शेष समय वह दौरे पर ही रहता था। अपराधियों को दण्ड दिया जाता था और नृशंस अपराधों के लिए अंग-भंग जैसा भयोत्पादक दण्ड विहित था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि चोरी, डकैती जैसी घटनाएँ काफी होती थीं। हुएनसांग के चोरों द्वारा लूटे जाने का उल्लेख उसके वर्णन में मिलता है। दूरस्थ स्थानों में शासन के कार्यों के अभिलेख रखे जाते थे। इन अभिलेखों को विशेष पदाधिकारी तैयार करते थे। शासन के कर्मचारियों को नियमित रूप से वेतन मिलता था। राजस्व का सबसे बड़ा साधन भूमि-कर था। किसानों से उपज का छठा भाग कर के रूप में लिया जाता था। जनता से अधिक कर नहीं लिये जाते थे। हर्ष के शासन में एक विशाल सेना होती थी जिसकी संख्या छः लाख थी। इसके अतिरिक्त अस्थायी सैनिक भी होते थे जो युद्ध के समय बुलाये जाते थे। लोगों से बेगार नहीं ली जाती थी।

६. **हर्ष के काल में धार्मिक स्थिति**—ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष



नालन्दा—प्राचीन विश्वविद्यालय के भग्नावशेष

प्रारम्भ में हिन्दू धर्म का अनुयायी था। किन्तु ह्‌एनसांग के सम्पर्क में आने पर उसका झुकाव महायान (बौद्ध) धर्म की ओर हो गया। ह्‌एनसांग का वह बहुत आदर करता था। उसने कन्नौज में एक बड़ी सभा आयोजित की थी। ह्‌एनसांग ने इस सभा का उल्लेख करते हुए कहा है कि सभा में अनेक राजाओं, हजारों ब्राह्मणों और अन्य विद्वानों ने भाग लिया। इस सभा में धार्मिक विषयों पर चर्चा हुई और इस सम्मेलन के मुख्य वक्ता ह्‌एनसांग ने बौद्ध धर्म के महायान रूप पर प्रकाश डाला। हर पांचवें वर्ष हर्ष प्रयाग में एक सम्मेलन करता था। इस सम्मेलन में सभी जन भाग ले सकते थे। इस सभा में वह निर्धनों को पिछले पांच वर्षों में राज्य को प्राप्त आय बांट देता था। यह दानोत्सव प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम स्थान पर होता था। ब्राह्मणों और विशेषकर बौद्ध भिक्षुओं को हर्ष से कई उपहार प्राप्त होते थे। ह्‌एनसांग के अनुसार हर्ष धार्मिक विषयों में उदार था और उसने जनता के कल्याण के लिए कई धर्मार्थ संस्थाएं स्थापित की थीं। सार्वजनिक अस्पतालों में जनता को मुफ्त दवा दी जाती थी। ह्‌एनसांग का कथन है कि उसने अपने राज्य में पशुवध बन्द करा दिया था।

७. **ह्‌एनसांग का भारत आगमन**—ह्‌एनसांग एक चीनी विद्वान था जो हर्ष के शासनकाल में भारत आया था। उसका उद्देश्य बौद्ध साहित्य का मनन और बौद्ध तीर्थ-स्थानों का भ्रमण करना था। उस समय नालंद विश्वविद्यालय की ख्याति समस्त देश में और एशिया के अन्य देशों में भी फैल गयी थी। ह्‌एनसांग ने नालन्द जाकर पांच वर्ष तक संस्कृत का अध्ययन किया। इस विश्वविद्यालय में प्रधानतः बौद्ध धर्म के स्वरूप और साहित्य का अध्ययन होता था, किन्तु अन्य धर्मों के सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श भी होता था। ह्‌एनसांग की ख्याति चारों ओर फैलने लगी। हर्ष ने उसके सम्मान में अपनी राजधानी कन्नौज में एक विशाल सभा का आयोजन किया था। इस सभा में ह्‌एनसांग ने महायान धर्म के सिद्धान्तों को विशद किया। सभा की समाप्ति

पर हर्ष ने उसे चाँदी और सोने की हजारों मुद्राएँ अर्पित कीं । किन्तु हुएनसांग ने धन लेने से इन्कार कर दिया, क्योंकि एक भिक्षु के लिए यह सब निषिद्ध था। चीन का यह महान् यात्री हर्ष के राज्य में आठ वर्ष रहा। उसने भारत के कई भागों का भ्रमण किया और उसके लेख तत्कालीन स्थिति की जानकारी के अच्छे और विश्वासनीय प्रमाण हैं। ६४३ ई० में वह भारत से चला गया । हर्ष तथा अन्य राजाओं ने उसे हीरे, जवाहरात, धन आदि देना चाहा किन्तु इस भिक्षु ने नम्रता पूर्वक सब कुछ अस्वीकार कर दिया। हर्ष ने उसके साथ अपना एक रक्षक दिया था जो उसे जालन्धर तक पहुंचा आया। यात्रा में हुएनसांग को काफी दिक्कतें पेश आईं । एक बार तो वह नदी में डूबते-डूबते बचा। वह अपने साथ छः सौ से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ, बुद्ध की मूर्तियाँ और कुछ अन्य स्मारक ले गया था। चीन के सम्राट ने उसे बहुत बड़े पद पर नियुक्त करना चाहा, किन्तु उसने वह पद अस्वीकार कर दिया। जीवन के शेष काल में वह इन ग्रन्थों का अनुवाद करता रहा। ६६४ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

८. हुएनसांग का भारत-वर्णन – हुएनसांग भारत में कई वर्ष रहा। उसके लेखों में सातवीं शताब्दी का यथार्थ चित्रण मिलता है। उसने हर्षकालीन भारत के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन के विषय में निम्न वर्णन किया है—

(क) राजनैतिक स्थिति -- काश्मीर एक स्वतन्त्र राज्य था। इसके आधीन सम्भवतः कई छोटे राज्य थे। इन में तक्षशिला और सिंहपुरा के नाम उल्लेखनीय हैं। पंजाब भी एक स्वतन्त्र राज्य था, जिसकी राजधानी स्यालकोट थी। सिन्ध में एक शूद्र जाति के बौद्ध राजा का शासन था। मध्यभारत में भी छोटे-छोटे राज्य थे और ये सम्भवतः हर्ष के आधिपत्य को स्वीकार कर चुके थे। आसाम में कुमार नामक शासक था, वह हर्ष को कर देता था। कलिंग अब उध्वस्त हो चुका था। प्रख्यात इतिहासकार वी० ए० स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अरली हिस्ट्री

ऑव इण्डिया' में कहा है कि सातवीं शताब्दी में हर्ष के साम्राज्य के बाहर जो अन्य राज्य थे उनकी दशा पर भी हुएनसांग के लेखों से काफी प्रकाश पड़ता है।"

(ख) सामाजिक स्थिति—समाज में वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी। ब्राह्मणों को सबसे अधिक सम्मान प्राप्त था। क्षत्रिय सेना में होते थे या वे राज्य के कर्मचारी होते थे। व्यापार तथा कृषि वैश्यों का कर्म समझा जाता था। अछूत नगर से बाहर रहते थे। सती-प्रथा प्रचलित थी। विवाह सम्बन्ध प्रायः सवर्ण लोगों में ही होते थे, किन्तु अन्त-र्जातीय विवाह भी सम्मत थे। लोगों में शिक्षा और साहित्य के प्रति अनुराग था। स्वयं हर्ष एक अच्छा लेखक था और वह कलाओं के विकास में रुचि लेता था। हर्ष के शासन में विद्वानों को राज्याश्रय प्राप्त था। 'हर्ष-चरित्' तथा 'कादम्बरी' का लेखक बाण हर्ष के दरबार में था तत्कालीन विद्वानों में जयसेन का नाम उल्लेखनीय है। हर्ष स्वयं अत्यन्त विद्वान और साहित्यकार था। उसने 'रत्नावली', प्रिय-दर्शिका' और 'नागानन्द' इन तीन प्रसिद्ध नाटकों की रचना की थी। इन नाटकों के अतिरिक्त उसने व्याकरण पर एक उत्कृष्ट ग्रन्थ भी लिखा था। 'हर्ष-चरित्' नामक ग्रन्थ अधूरा है और 'कादम्बरी' एक आख्यायिका है। ये दोनों रचनायें संस्कृत की प्रामाणिक कृतियाँ मानी जाती हैं। देश में व्यापार भी खूब होता था और विदेशों से भी व्यापा-रिक सम्बन्ध थे। लोग सुखी और प्रमाणिक थे। शासन की महत्व-पूर्ण घटनाओं का अभिलेख तैयार करने के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त थे। किन्तु उस काल के कोई अभिलेख नहीं मिले हैं। इन सब बातों से पता चलता है कि हर्ष एक निरंकुश राजा की तरह और मन्त्रियों की सहायता के बिना ही शासन चलाता था। अतः उसकी मृत्यु के साथ ही उसका राज्य लड़खड़ा गया।

(ग) धार्मिक स्थिति—भारत में उस समय हिन्दू जैन, और बौद्ध धर्म प्रचलित थे। बौद्ध धर्म की अवनति हो रही थी और वैदिक धर्म का पुनरुत्थान होकर वह उन्नति कर रहा था। बौद्ध धर्म हीनयान और

महायान इन दो विचारधाराओं में बंट चुका था। हिन्दुओं के मुख्य देवता सूर्य, शिव और विष्णु थे। हर्ष स्वयं बौद्ध मतावलम्बी था किन्तु वह अन्य धर्मों को आदर की दृष्टि से देखता था।

प्रश्न

1. Give an account of the early life of Harsha Vardhana. How did he rise to be so powerful a king ?

हर्षवर्धन के प्रारम्भिक जीवन का वर्णन कीजिए। वह एक शक्तिशाली सम्राट कैसे बना ?

2. Form an estimate of the works and achievements of Harsha Vardhana.

हर्षवर्धन के कार्यों तथा उसकी सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

3. What does Hieun Tsang say about the political, economic, social and religious conditions of India in the time of Harsha ?

हर्ष के शासनकाल में देश की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति के बारे में हुएनसांग ने क्या लिखा है ?

or

Give an account of the political, economic, social and religious conditions of India in the 7th century ?

सातवीं शताब्दी में भारत की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए।

4. "Harsha has been considered to be a great scholar and a pious king." Why ?

हर्ष को एक महान् विद्वान् तथा उदार राजा माना जाता है। क्यों ?

—:o:—

अध्याय १३

राजपूत राज्यों का उदय

उत्तर भारत के राजपूत राज्य

१. **राजपूत काल**—६५० ई० से ११०० ई० तक का काल 'राजपूत काल' कहा जाता है। इसे राजपूत काल इसलिए कहा जाता है कि इस काल में राजपूतों ही का प्रभुत्व था। वे हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाले तथा हिन्दू सभ्यता को समृद्ध बनाने वाले थे। राजपूतकाल बौद्ध धर्म के विनाश जैन धर्म के ह्रास तथा ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान का युग माना जाता है—

२. **राजपूतों की उत्पत्ति**—राजपूतों के मूल के सम्बन्ध में अधिक ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। कुछ लोगों के मत में भारत के इतिहास में एकाएक इनका आगमन हुआ था। इनके मूल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कुछ महत्वपूर्ण मतों का उल्लेख नीचे किया जाता है—

(क) **सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी**—पंडित गोरीशंकर ओझा का कहना है कि राजपूत भारत के प्राचीन आर्यों के वंशज हैं। जो राजपूत भगवान रामचन्द्र के वंशज हैं, वे सूर्यवंशी कहे जाते हैं, और जो भगवान कृष्ण के वंशज हैं, वे चन्द्रवंशी कहे जाते हैं। राजपूतों ने अपनी प्राचीन संस्कृति तथा प्राचीन धर्म की रक्षा के लिए बहुत बलिदान किए।

(ख) **भारत के मूल निवासी**—कुछ विद्वानों का मत है कि राजपूत भारत के मूल निवासी हैं। आर्यों के आने के पहले भारत में जो जातियाँ रहा करती थीं, उन्हीं के वंशज ये राजपूत हैं। मध्य भारत की कुछ राजपूत जातियाँ, जैसे गोंड और भाट उन्हीं जातियों में से हैं।

(ग) अग्नि-कुल राजपूत—राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक सुविख्यात किन्तु काल्पनिक कथा इस प्रकार है—परशुराम ने जब देश के सभी क्षत्रियों का वध कर डाला तो देश की रक्षा करने वाला कोई भी नहीं बचा। देवताओं ने आबू पर्वत पर जाकर एक यज्ञ किया जहाँ ऋषि-मुनि रहा करते थे। इस पर्वत पर एक अग्निकुण्ड था। इस यज्ञ की अग्नि से चार महान् व्यक्तियों की उत्पत्ति हुई, जिन्होंने राजपूतों की चार महान् जातियाँ - परिहार, परमार, चौहान तथा चालुक्य—की स्थापना की। पर यह कथा विश्वसनीय नहीं मालूम होती।

(घ) विदेशी—टाड, स्मिथ और भांडारकर जैसे इतिहासकारों का मत है कि राजपूत भारत के मूल निवासी नहीं हैं। उनके अनुसार ये उन विदेशी जातियों के वंशज हैं, जो समय-समय पर भारत में आकर बस गईं। उन जातियों में बैक्ट्रिया और पार्थिया के निवासियों तथा शक और कुषाण लोगों की गणना की जाती है। इस प्रकार राजपूत उन विदेशियों के वंशज हैं जो भारत में आने पर शक्तिशाली बन गये।

(ङ) सार - राजपूतों की मूल उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऊपर जो मत दिए गए हैं, उनमें से कोई भी मत पूर्णतः सही नहीं है। सभी बातें अंशतः ठीक ज्ञात होती हैं। कुछ राजपूत तो वास्तव में राम और कृष्ण के वंशज हैं, जो सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी हैं। यह भी सच है कि कुछ राजपूत जातियाँ भारत की प्राचीन जातियों के वंशजों की हैं। पर अधिकांश राजपूत विदेशी हैं। यूनान, बैक्ट्रिया, पार्थिया के लोगों, शक हूण और कुषाण जाति के लोगों की गणना राजपूतों में की गई है। टॉड साहब ने बताया है कि राजपूत सिथियनों के वंशज हैं। हूणों को भी उन्होंने राजपूत बताया है। चन्देलों को भी उन्होंने हूणों की जाति बताया है। विशेषतया मध्यभारत तथा दक्षिण भारत के राजपूतों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे हूणों के वंशज हैं। कुछ मुख्य-मुख्य राजपूत राज्यों का वर्णन नीचे दिया जाता है—

३. कन्नौज का गूजर राज्य—कन्नौज के गूजर राज्य का इतिहास ७२५ ई० से मिलता है। ये गूजर राजपूत पार्थिया के निवासियों के वंशज थे। इस राज्य का प्रथम प्रसिद्ध शासक नागभट्ट था। पूर्वी राजपूताना और मालवा तक यह राज्य फैला हुआ था। बाद में ८१६ ई० में गूजरों का राज्य कन्नौज तक फैल गया। उसके पश्चात् कन्नौज ही इस राजवंश की राजधानी रही। इस राजवंश का एक और प्रसिद्ध शासक मिहिरभोज था। वह ८८० ई० से ८८५ ई० तक गद्दी पर रहा। उसके साम्राज्य में पूर्वी पंजाब, राजपूताना वर्तमान उत्तर प्रदेश तथा ग्वालियर सम्मिलित थे। दक्षिण की ओर नर्मदा नदी उसके राज्य की सीमा थी। राष्ट्रकूट वंश के राजा ध्रुव द्वितीय ने बाद में इसे पराजित किया। भोज कट्टर हिंदू तथा इस्लाम धर्म का विरोधी था। अरब यात्री सुलेमान ने ८९१ ई० में लिखा है कि भोज का शासन प्रबन्ध बहुत अच्छा था। वह 'अरबों का मित्र था और इस्लाम का सबसे बड़ा शत्रु था।'

मिहिरभोज के बाद उसका पुत्र महेन्द्रपाल ८८५ ई० में शासक बना। इसने मगध, उत्तरी बंगाल और सौराष्ट्र पर अधिकार जमा लिया। ऐसा लगता है कि उत्तर-पश्चिमी भारत के भागों में इसका प्रभुत्व बहुत कम हो गया था। महेन्द्रपाल साहित्यिकों को संरक्षण देता था। राजशेखर उसकी राजसभा का कवि था, जिसने 'कर्पूरमंजरी,' 'बालरामायण' 'बालभारत' तथा 'काव्य मीमांसा' नामक काव्यों की रचना की। ९१० ई० के लगभग महेन्द्रपाल की मृत्यु हो गयी।

महेन्द्रपाल की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र भोज द्वितीय गद्दी पर बैठा। पर महिपाल ने उसे शीघ्र ही गद्दी से उतार दिया और स्वयं शासक बन बैठा। महिपाल के समय से ही इस राज्य की अवनति शुरू हो गई। महिपाल के उत्तराधिकारियों में महेन्द्रपाल द्वितीय, देवपाल, विजयपाल राज्यपाल, त्रिलोचनपाल तथा यशपाल के नाम मिलते हैं।

४. कन्नौज का गहरवार राज्य*—ग्यारहवीं शताब्दी में कन्नौज के गूजर राज्य को गहरवार वंश के राजपूतों ने जीत लिया। इस वंश का संस्थापक चन्द्रदेव नामक राजा था, जो १०८० ई० और १०८५ ई० के बीच गद्दी पर बैठा। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि उसके राज्य में लगभग सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश था। १०९९ ई० या ११०० ई० के लगभग उसकी मृत्यु हो गई।

चन्द्रदेव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मदनपाल शासक बना। पर उसके इतिहास के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं है। उसके बाद गोविंदचन्द्र गद्दी पर बैठा। उसने १११४ ई० से लगभग ११५४ ई० तक शासन किया। गोविंदचन्द्र एक वीर राजा था। पाल वंश पर आक्रमण करके मगध का राज्य उसने अपने आधीन कर लिया। पूर्वी मालवा पर भी उसने विजय की। इस राज्य का विस्तार काफी बढ़ गया था। काश्मीर, गुजरात और दक्षिण के चोल राज्यों के साथ उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे।

११५४ ई० के शीघ्र बाद गोविन्दचन्द्र की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र विजयचन्द्र शासक हुआ। अपने पिता की भांति वह भी एक वीर शासक था। पश्चिम के यवन आक्रमणकारियों को उसने परास्त किया। 'पृथ्वीराज रासो' के लेखक चन्द बरदाई ने उसकी काफी प्रशंसा की है। एक अभिलेख से पता लगता है कि विग्रहराज विशालदेव ने इससे दिल्ली छीन ली थी।

विजयचन्द्र की मृत्यु के उपरान्त ११७० ई० में उसका पुत्र जयचन्द गद्दी पर बैठा। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज से, जोकि उसका भाई था, उसका झगड़ा था। इसी कारण ११९२ ई० में जब पृथ्वीराज और मोहम्मद गोरी का युद्ध तराइन के मैदान में हुआ तो जयचन्द ने पृथ्वीराज का साथ नहीं दिया। ११९३ ई० में मोहम्मद गोरी ने

* कुछ विद्वान इसे राठौर वंश मानते हैं।

जयचन्द को पराजित करके मार डाला। इस प्रकार उसके राज्य का भी अन्त हो गया।

५ बुन्देलखण्ड का चन्देल राज्य—यशोवर्मन् नामक एक चन्देल राजपूत ने ९ वीं शताब्दी में इस राज्य की नींव डाली। इसकी राजधानी महोबा थी। इस राज्य के दो प्रसिद्ध शासकों के नाम धंग और कीर्तिवर्मन् हैं। परमाल इस वंश का सबसे अधिक प्रतापी राजा था। ११८३ ई० में पृथ्वीराज चौहान ने इस राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार चन्देल राज्य समाप्त हो गया।

६. मालवा का परमार राज्य परमार राजपूत शायद राष्ट्रकूट जाति के थे। इस राज्य का संस्थापक उपेन्द्र परमार था, जिसने ८२६ ई० में मालवा में परमार राज्य की स्थापना की। मुंज इस राजवंश का एक प्रतापी राजा था, जिसने ९७४ ई० से ९९५ ई० तक शासन किया। वह एक योद्धा तथा कला व साहित्य का संरक्षक भी था। उसकी सभा में कवियों का आदर था। मुंज द्वारा बनवाये गये अनेक सरों में 'मुंज सागर' अब भी उसकी याद दिलाता है।

मुंज के बाद सिंधुराज गद्दी पर बैठा। पर बहुत थोड़े ही समय बाद इस राजवंश की गद्दी पर हमें भोज के दर्शन होते हैं। भोज ने १०१८ ई० से १०६० ई० तक राज्य किया। उसकी राजधानी धारा थी। उसमें एक असाधारण योद्धा तथा असामान्य साहित्यिक के लक्षण विद्यमान थे। उसे लगभग दो दर्जन ग्रन्थों का रचयिता माना जाता है। सुन्दर मन्दिरों के निर्माण का उसे बहुत शौक था। उसने भोपाल के दक्षिण में भोजपुर नामक नगर बसाया और उसके पास एक सुन्दर झील बनवाई।

७. दिल्ली का चौहान राज्य—नवीं शताब्दी के मध्य में दिल्ली पर चौहान वंश का शासन था। इस राज्य के शासक विग्रहराज ने हिमालय और विन्ध्याचल के बीच की सारी भूमि पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था।

पृथ्वीराज चौहान इस वंश का सबसे अधिक प्रतापी राजा हुआ। उसने अपने राज्य की सीमा को अजमेर, दिल्ली, बुन्देलखण्ड तथा महोबा तक बढ़ाया। ११९१ ई० में तराइन की लड़ाई में पृथ्वीराज ने मोहम्मद गोरी को परास्त कर दिया था। पर ११९२ ई० में गोरी ने पृथ्वीराज को परास्त कर दिया। इस प्रकार दिल्ली का चौहान राज्य नष्ट हो गया।

८. बिहार और बंगाल का पाल राज्य—इस राज्य की स्थापना आठवीं शताब्दी में गोपाल नाम के एक व्यक्ति ने की थी। गोपाल के बाद धर्मपाल शासक बना जो ७८० से ८१५ ई० तक राज्य करता रहा। इसके बाद देवपाल गद्दी पर बैठा। देवपाल ने ८५० ई० तक शासन किया। आसाम और कलिंग पर भी देवपाल ने चढ़ाई की और उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। देवपाल का उत्तराधिकारी महिपाल एक शक्तिशाली शासक था। उसने चोलवंश के राजा को पराजित किया। महिपाल के बाद इस राज्य की अवनति शुरू हो गयी और बाद में सेन वंश ने इसका अन्त कर दिया।

९. बंगाल का सेन राज्य—सेन राज्य की स्थापना १११९ ई० में विजय सेन ने की थी। इस राज्य की राजधानी नदिया थी। विजयसेन एक वीर व प्रतापी शासक था। उसके बाद ११५८ ई० में बल्लालसेन शासक बना। बल्लालसेन के बाद लक्ष्मणसेन गद्दी पर बैठा। यह इस वंश का अन्तिम शासक था। मोहम्मद गोरी के सेनापति बख्त्यार खिलजी ने इसे पराजित करके इस राज्य को समाप्त कर दिया।

दक्षिण के राज्य

१०. चालुक्य—दक्षिण भारत से प्राप्त अनेक लेखों से पता लगता है कि आठवीं शताब्दी और ग्यारहवीं शताब्दी में यह राजवंश काफी प्रसिद्ध था। चालुक्यों के तीन कुलों का वर्णन मिलता है—(क) अन्हिलवाड़ के चालुक्य, (ख) वातापी के चालुक्य, और (ग) कल्याणी के चालुक्य।

(क) अन्हिलवाड़ के चालुक्य—डा० स्मिथ का कहना है कि दक्षिण भारत का प्रारम्भिक इतिहास चालुक्य राजवंश के उदय के समय से मिलता है। मूलराज सोलंकी इस राजवंश का स्थापनकर्त्ता था। इसने कच्छ के लक्ष राज को पराजित किया और सौराष्ट्र में वामनस्थली के ग्रहरिपु को वन्दी कर लिया था।

(१) भीम प्रथम—भीम प्रथम इस वंश का एक प्रसिद्ध शासक था। वह मूलराज के पौत्र दुर्लभराज का भतीजा था। उसने १०२१ ई० से १०६३ ई० तक शासन किया। महमूद ने जब सोमनाथ का मन्दिर लूटने के लिए भारत पर आक्रमण किया था तो मार्ग में अन्हिलवाड़ पड़ा था। भीम आक्रमणकारियों का सामना नहीं कर सका और भाग गया। पर जब महमूद लूट करने के बाद लौट गया तो भीम ने फिर अपने राज्य को सम्भाला। उसने आबू के परमार नरेश को परास्त किया और अन्त में मालवा तथा लक्ष्मी कर्ण से भी इसका युद्ध हुआ। भीम युद्ध में विजयी रहा।

(२) जयसिंह सिद्धराज—१०६३ ई० से ११४३ ई० तक शासन करने वाला जयसिंह सिद्धराज भीम का पौत्र और कर्ण का पुत्र था। कर्ण अपने ३० वर्ष के शासन काल में कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर पाया था। जयसिंह सिद्धराज ने नादोल (जोधपुर रियासत) राज्य के चौहानों को और सौराष्ट्र के चूड़ासम राज को पराजित किया। इसके बाद परमार वंश के शासकों — नरवर्मन् और यशोवर्मन् से इसका संघर्ष बहुत काफी समय तक चलता रहा। चन्देल वंश के मदनवर्मन् नामक राजा ने जयसिंह सिद्धराज को परास्त कर दिया था।

(३) कुमारपाल जयसिंह सिद्धराज के कोई पुत्र न था, अतः उसकी मृत्यु के बाद उसका एक सम्बन्धी, जिसका नाम कुमारपाल था, गद्दी पर बैठ गया। वह एक वीर तथा महत्वाकांक्षी शासक था। उसने मालवा के चालुक्य राज्य व शाकम्भरी के चौहान राज्य को पराजित किया। उसकी सबसे बड़ी विजय कोंकण नरेश मल्लिकार्जुन के विरुद्ध हुई। ११७१ ई० में कुमारपाल की मृत्यु हो गई।

उसके बाद अजयपाल गद्दी पर बैठा। ११७८ ई० में मोहम्मद गोरी ने इस वंश के राजा भीम द्वितीय के शासन काल में अन्हिलवाड़ पर आक्रमण किया, पर गोरी की विजय न हो सकी। कुतुबुद्दीन ने अन्हिलवाड़ पर चढ़ाई करके उस पर कब्जा कर लिया था, परन्तु बाद में यह फिर स्वतंत्र हो गया था। १२९७ ई० में अलाउद्दीन के सेनापति उलूगखां और नसरतखां ने गुजरात (अन्हिलवाड़) के हिन्दू राज्य को समाप्त कर दिया।

(ख) वातापी के चालुक्य—इनके मूल के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये अयोध्या के क्षत्रिय राजवंश के लोग थे जो बाद में दक्षिण चले गए थे। उनके मूल पूर्वज का नाम हरीति मिलता है। विन्सेण्ट स्मिथ इस बात को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि ये विदेशी गुर्जर जाति के थे और संभवतः राजपूताना से दक्षिण की ओर चले गये थे।

(१) पुलकेशिन प्रथम—यह राजवंश जयसिंह और उसके पुत्र रणराग के नेतृत्व में धीरे-धीरे उठा। संभवतः राष्ट्रकूट राजवंश को पराजित करके इस राजवंश की स्थापना की गयी थी। रणराग का उत्तराधिकारी पुलकेशिन् प्रथम एक शक्तिशाली शासक था, जो लगभग ५४५ ई० में गद्दी पर बैठा। उसने अपनी राजधानी वातापी (वर्तमान बादामी, बीजापुर जिला) को बनाया और अश्वमेध यज्ञ किया। वह एक महान् सैनिक व विजेता था।

(२) कीर्तिवर्मन्—पुलकेशिन् प्रथम के बाद कीर्तिवर्मन् गद्दी पर बैठा। उसने मौर्यों, कदम्बों तथा नलों को पराजित किया। उत्तर भारत में बंग तथा दक्षिण में चोल तथा पांड्य राज्यों पर भी उसने आक्रमण किया। कुल २३ वर्ष तक शासन करने के बाद उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् गृहयुद्ध शुरू हो गया।

(३) पुलकेशिन् द्वितीय—६०९ ई० के लगभग पुलकेशिन् द्वितीय अपने चाचा मंगलराज की हत्या करके गद्दी पर बैठा। यह इस राजवंश का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा था। इसकी वीरता के कारण

इसे दक्षिण का सिंह कहा जाता है। दक्षिण भारत के छोटे-बड़े सभी राज्यों को उसने अपने आधीन कर लिया। वल्लभी का राजा भी उसे कर देता था। ६१२ ई० के लगभग हर्ष तथा पुलकेशिन् द्वितीय का युद्ध हुआ था। दोनों सिंहों के बीच बराबर का मोर्चा था। अतः नर्मदा नदी को दोनों ने राज्य की सीमा मान ली। तत्पश्चात् उसने पल्लवों और कदम्बों को भी पराजित किया। चोलों, पांड्यों तथा केरलों ने भी उससे सन्धि कर रखी थी। चीनी यात्री हुएनसांग ने भी पुलकेशिन् की महानता का वर्णन किया है। अन्त में पल्लव राजवंश के राजा नरसिंह पल्लव ने पुलकेशिन पर आक्रमण कर दिया। इसी युद्ध में पुलकेशिन् की मृत्यु हो गयी।

(४) विक्रमादित्य प्रथम—पुलकेशिन् के बाद उसका पुत्र विक्रमादित्य प्रथम गद्दी पर बैठा। लगभग ६४५ ई० तक उसने अपने राज्य की मर्यादा को पुनः काफी ऊँचा उठा लिया था। अपने पिता के शत्रु पल्लवों से उसने पूरा बदला लिया। उनकी राजधानी कांजीवरम् तक उसने अपना अधिकार बढ़ा लिया था। यही नहीं दक्षिण के चोल, पांड्य और केरल राज्यों को भी इसने पराजित किया।

(५) विनयादित्य—विक्रमादित्य प्रथम के बाद विनयादित्य और विजयादित्य ने क्रमशः ६८० ई० से ६९६ ई० तक और ६९६ ई० से ७३३ ई० तक राज्य किया। उसके बाद विजयादित्य का पुत्र विक्रमादित्य द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसने भी अपने पिता के शत्रुओं को पराजित किया। उसके उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मन् के समय से इस राज्य की अवनति शुरू हो गयी। पर बाद में एक बार फिर इस राज्य का उदय हुआ।

(ग) कल्याणी के चालुक्य—इस राज्य का संस्थापक तैलप माना जाता है। तैलप वातापी के चालुक्यों के ही राजवंश का था। ८वीं शताब्दी में वातापी का चालुक्य राज्य लगभग नष्ट हो गया था। १०वीं शताब्दी में तैलप ने उसे फिर से नया जीवन दिया।

(१) तैलप—तैलप ने ९७५ ई० के लगभग पुनः चालुक्य राज्य

को शक्तिशाली बनाया। उसने दक्षिण गुजरात को जीता और कुंतल तथा कनाड़ राज्य पर भी अपना अधिकार जमाया। मुंज के परमार राज्य से उसका संघर्ष बराबर चलता रहा। २४ वर्ष तक शासन करने के बाद तैलप की मृत्यु हुई।

तैलप के बाद उसका पुत्र सत्याश्रय गद्दी पर बैठा। उसने अपने राज्य को चोलों के आक्रमण से बचाया तथा दक्षिण की ओर उसने अपने राज्य का विस्तार भी किया। १००८ ई० में उसकी मृत्यु होने पर विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। ये दोनों शासक काफी निर्बल थे और इनके समय में राज्य की शक्ति कमजोर होती रही।

(२) सोमेश्वर प्रथम—१०४० ई० के लगभग सोमेश्वर प्रथम गद्दी पर बैठा। सर्वप्रथम इसने मलाबार और उज्जैन पर विजय की। चोल सम्राट महाराजाधिराज को परास्त करके इसने मारा और उसके राज्य का कुछ भाग भी अपने राज्य में मिला लिया। उत्तर भारत में इसने कान्यकुब्ज, मिथिला, मगध और गौड़ राज्य पर भी आक्रमण किये। १०६१ ई० के लगभग इसकी मृत्यु हो गई। यह एक प्रतापी राजा था।

(३) विक्रमादित्य—सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु के बाद सोमेश्वर द्वितीय गद्दी पर बैठा। पर कुछ समय बाद अपने अयोग्य भाई को गद्दी से उतारकर विक्रमादित्य स्वयं गद्दी पर आ बैठा। वह एक वीर शासक था। उसने होयसल वंश को पराजित किया। ११२७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद इस राज्य में कुछ निर्बल शासक हुए और यह राजवंश भारत के इतिहास से लुप्त हो गया।

११. राष्ट्रकूट राजवंश—राष्ट्रकूट वंश के शासक भारत के आदि निवासी थे। उनका राज्य दक्षिण भारत के दूसरे नम्बर का शक्तिशाली राज्य था। इस राज्य का प्रतापी राजा दन्तिदुर्ग था। चालुक्य वंश को पराजित करके उसने राष्ट्रकूट राज्य की स्थापना की थी। कांजीवरम् और कलिंग पर भी इसने अधिकार कर लिया था।

कृष्ण प्रथम—कृष्ण प्रथम ने इस राजवंश को बहुत शक्तिशाली

बनाया। उसने २० वर्ष तक शासन किया। उसके बाद गोविन्द द्वितीय और उसके बाद ध्रुव गद्दी पर बैठा। ध्रुव का पुत्र गोविन्द तृतीय काफी शक्तिशाली राजा था। गुजरात और मालवा को पराजित करके उसने अपने साम्राज्य की शक्ति बढ़ाई। पल्लव सम्राट को भी उसने परास्त किया। गोविन्द तृतीय के बाद उसका पुत्र अमोघवर्ण गद्दी पर बैठा। इसी के समय से इस वंश की अवनति शुरू हो गयी और ९७३ ई० में जाकर यह राजवंश समाप्त हो गया।

१२. चोल राज्य—चोल राज्य भारत के बिल्कुल दक्षिण में था। इसके शासक भारत के प्राचीन निवासियों के वंशज बताये जाते हैं। चीनी यात्री हुएनसांग ने इस राजवंश की बड़ी प्रशंसा की है। चोल राज्य में मद्रास नगर, मद्रास राज्य के कुछ जिले, मैसूर तथा कुछ निकटवर्ती जिले सम्मिलित थे।

(१) परांतक प्रथम—९०७ ई० में परान्तक प्रथम इस राज्य की गद्दी पर बैठा। वह एक योग्य शासक था। उसी के शासन काल में राज्य को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उसकी राजधानी उरैयुर थी। मदुरा तथा लंका तक विजय करके उसने अपने राज्य का गौरव बढ़ाया।

(२) राजराजा महान्—९८५ ई० के लगभग इस वंश का एक महान् राजा राजराजा महान् गद्दी पर बैठा। वह एक महान् सैनिक, विजेता तथा सेनाध्यक्ष था। सबसे पहिले उसने चेर राज्य पर विजय की, उसके बाद पांड्य राजा को परास्त करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। उसके पास एक शक्तिशाली जहाजी बेड़ा था, जिसकी सहायता से उसने लंका, लक्क द्वीप तथा माल द्वीपसमूह पर भी अधिकार कर लिया था। हिन्दू धर्मावलम्बी तथा शैव का उपासक राजराजा महान् अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु था। १०१३ ई० में राजराजा महान् की मृत्यु हो गई।

(३) राजेन्द्र गंगैकोंड—अपने पिता की मृत्यु के बाद राजेन्द्र गंगैकोंड १०१३ ई० में गद्दी पर बैठा। उसे दिग्विजय की बड़ी अभि-

लाया थी। उसने बंगाल की खाड़ी पार करके मलाया प्रायद्वीप पर भी अपनी यश-पताका लहराई। अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह भी उसके राज्य के आधीन थे। बंगाल और विहार पर विजय करने के बाद उसने 'गंगैकोंड' की उपाधि धारण की, जिसका अर्थ है "गंगा पर विजय पाने वाला।" इसी विजय के स्मारक के रूप में उसने 'गंगैकोंड चोलपुरम्' नगर की स्थापना की। आज यह नगर गंगाकुण्ड पुरम के नाम से प्रसिद्ध है।

(४) राजाधिराज—१०३५ ई० में राजेन्द्र चोल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र राजाधिराज गद्दी पर बैठा। चालुक्य राजा के साथ युद्ध करते हुए वह मारा गया। बाद में यह राज्य एक छोटे से राज्य के रूप में कुछ समय तक रहा और इसकी अवनति हो गई।

१३. पांड्य राज्य—तामिल में प्राचीनतम राज्यों में पांड्य राज्य है। इसका उल्लेख अशोक के लेखों तथा मेगस्थनीज के वर्णन में मिलता है। यह दक्षिण भारत के दक्षिणी पूर्वी कोने पर स्थित वर्तमान मदुरा, तिन्नवेली तथा ट्रावनकोर को मिलाकर बना था। इसके कुछ प्रसिद्ध शासकों के नाम अरणकुशा, जरसिंह और बारा-तक हैं। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में इस राज्य की स्वतन्त्रता नष्ट हो चुकी थी।

चोलवंश की अवनति होने पर एक बार तेरहवी शताब्दी में इस राज्य का भाग्योदय फिर हुआ। मदुरा इस राज्य की राजधानी थी। सुन्दर पांड्य प्रथम और सुन्दर पांड्य द्वितीय इस शासन के दो प्रसिद्ध राजा हुए।

१४. चेर राज्य—दक्षिण भारत के राज्यों में चेर राज्य का नाम भी मिलता है। इस राज्य में वर्तमान कोचीन और मलाबार सम्मिलित थे। इस राज्य का कोई क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। इसके तीन मुख्य शासकों के नाम तेहनूर, मदान द्वितीय और सेवगुत्तवन मिलते हैं। इस वंश के शासक भारत के प्राचीन निवासी थे।

प्रश्न

1. What do you understand by "Rajput Period" ? Describe the different views regarding the origin of Rajputs ?

'राजपूतकाल' से आप क्या अर्थ समझते हैं ? राजपूतों के मूल के सम्बन्ध में जो भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं उनका उल्लेख कीजिए।

2. Give an account of the important Rajput Kingdoms of Northern India during the Rajput period.

राजपूतकाल में उत्तरी भारत में जो महत्त्वपूर्ण राजपूत राज्य थे, उनका वर्णन कीजिए।

3. Give an account of the rise and fall of the Chalukyas of Deccan.

दक्षिण भारत के चालुक्य राज्य के उत्थान तथा पतन का वर्णन कीजिए।

4. Write short notes on :—
   (1) Cholas
   (2) Pallavas
   (3) Rashtrakuts

निम्नलिखित पर नोट लिखिए :—

(१) चोल
(२) पल्लव
(३) राष्ट्रकूट

5 Bring out the rise of Cholas under Rajendra Gangaikonda.

राजेन्द्र गंगेकोंड के समय में चोल राज्य के उत्थान का वर्णन कीजिए।

अध्याय १४

राजपूतकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति

१. परिचय—राजपूतकालीन भारत का अपना विशेष महत्त्व है। यद्यपि इस युग में सम्पूर्ण भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था जो छोटी-छोटी बातों पर या अकारण ही अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए परस्पर युद्ध या झगड़े किया करते थे, फिर भी साहित्य, कला और धर्म की दृष्टि से इस युग में पर्याप्त उन्नति हुई। राज्यों के परस्पर संघर्ष के परिणामस्वरूप देश की शक्ति निर्बल हो गयी थी। कोई भी ऐसा शासक—न उत्तर में और न दक्षिण में—नहीं था जो देश के छोटे छोटे राज्यों को संगठित करके एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर सकता। इसी कारण राजपूत काल में जब मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हुए तो भारत के राज्य उनका सामना नहीं कर सके। मुसलमानों ने एक-एक करके सभी हिन्दू राज्यों को नष्ट कर दिया। अतः राजनैतिक दृष्टि से भारत की दशा अच्छी नहीं थी। फिर भी सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में उस समय काफी उन्नति हुई।

२. सामाजिक स्थिति—जिस हिन्दू जाति ने शकों, हूणों, यूनानियों और पार्थियन लोगों को अपने में बिल्कुल आत्मसात कर लिया था उसी जाति की सामाजिक स्थिति अब इतनी संकीर्ण हो गयी थी कि धीरे-धीरे उसकी अवनति होने लगी थी। अन्य सांस्कृतिक मामलों में इस युग में चाहे कितनी भी उन्नति हुई हो पर सामाजिक अवस्था को देखकर हमें घोर निराशा होती है।

(क) जाति भेद की जटिलता—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के अतिरिक्त अनेक जातियाँ और उपजातियाँ बन गई थीं जिनमें परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य की भावना बलवती हो रही थी। जातीयता का बंधन बहुत कठोर था और जाति-परिवर्तन एवं सम्मिश्रण

असंभव था। ब्राह्मणों को समाज में अत्याधिक सम्मान प्राप्त था। क्षत्रिय शासक वर्ग माना जाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों के लोग शूद्रों को बहुत घृणित तथा हीन समझने लगे थे। अन्तर्जातीय विवाह तथा खान-पान पूर्णतः बन्द थे। इस प्रकार के कुछ उदाहरण राजाओं के मिलते हैं कि उन्होंने अन्य जातियों की लड़कियों से विवाह किये हों। इन जातीय संकीर्णताओं के कारण सामान्य जनता का सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण बहुत सीमित तथा स्वार्थमय बन गया था।

(ख) स्त्रियों की दशा—स्त्रियों की दशा इस काल में अच्छी नहीं थी। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। सती की प्रथा प्रचलित थी। राजपूत महिलाएँ अपने सम्मान की रक्षा के लिए जौहर (जीवित ही आग में जलकर प्राण त्याग देना) करती थी। समाज में बाल-विवाह की भी प्रथा थी। बाल विवाह की प्रथा के कारण समाज में स्त्रियों की दशा और भी दयनीय हो गयी थी। विधवा विवाह की प्रथा नहीं थी। स्त्रियों से बहुत शुद्ध आचरण की आशा की जाती थी। राजपूत महिलाओं के ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब उन्होंने युद्ध-क्षेत्र में डटकर शत्रुओं की सेना के सामने अपनी वीरता का परिचय दिया है। राज्य वंशों में स्त्रियाँ प्रायः विलास की वस्तु समझी जाती थीं और कई बार स्त्रियों के मामलों को लेकर ही राज्यों में युद्ध हो जाया करते थे।

(ग) ब्राह्मणों का प्रभुत्व—समाज में ब्राह्मणों की प्रधानता थी। शिक्षा, धर्म तथा साहित्य के मामलों में वे अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते थे और इन मामलों में वे किसी का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते थ। यज्ञों तथा अनुष्ठानों का खूब प्रचार तथा महत्त्वपूर्ण स्थान था। राजपूत राजाओं ने ब्राह्मणों को खूब आश्रय दिया। शिक्षा, साहित्य और धर्म सम्बन्धी मामलों में ब्राह्मणों का एकाधिकार होने से शेष समाज में काफी अज्ञानता एवं अंध-विश्वास फैला हुआ था।

३. धार्मिक स्थिति—राजपूत काल को बौद्ध धर्म के विनाश,

जैन धर्म के ह्रास तथा ब्राह्मण धर्म (हिंदू धर्म) के अभ्युदय का युग कहा जा सकता है। बौद्ध धर्म की अवनति तो गुप्त-काल में ही शुरू हो गयी थी। बाद में हूणों के आक्रमण ने इस धर्म को पर्याप्त हानि पहुंचाई। महायान बौद्ध धर्म ने भी मूल बौद्ध धर्म की उन्नति में बाधा डाली। बौद्ध मठों की पवित्रता के नष्ट हो जाने से इस धर्म का रहा-सहा प्रभाव भी समाप्त होने लगा। सामान्य जनता के हृदय में बौद्धधर्म के प्रति श्रद्धा की कमी हो गयी थी। बौद्ध धर्म की ऐसी पतनावस्था में हिन्दू धर्म के प्रचारकों ने, जिनमें कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य का नाम मुख्य है, इस धर्म की रही-सही शक्ति भी नष्ट कर दी। जैन धर्म भी धीरे-धीरे नष्ट हो रहा था। दक्षिण भारत के कुछ राजपूत राजाओं के आश्रय में कुछ समय तक जीवित रहने के पश्चात् अब वह भी अपनी अन्तिम सांसें गिन रहा था।

(क) ब्राह्मण धर्म—राजपूत राजा युद्ध में विश्वास करते थे। अतः बौद्ध-धर्म तथा जैन धर्म उनको प्रिय नहीं था। यज्ञों तथा अनुष्ठानों ने ब्राह्मणों का मान फिर बढ़ा दिया। इस प्रकार ब्राह्मणों तथा ब्राह्मण धर्म को राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिला। ब्राह्मण विद्वानों ने विरोधी धर्मों का खण्डन करके धार्मिक क्षेत्र में एक नयी चेतना पैदा कर दी। राजाओं द्वारा ब्राह्मण धर्म को जब मान्यता मिली तो जनता पर भी इसका प्रभाव पड़ा। जैन और बौद्ध धर्म की बची-खुची शक्ति को शैव तथा वैष्णव धर्म-प्रचारकों ने बिल्कुल ही नष्ट कर दिया।

(ख) शैव सम्प्रदाय—शंकराचार्य को शैव सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इनका जन्म ७८८ ई० में केरल प्रांत में हुआ था। वह अद्वैतवाद में विश्वास करते थे। "ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है; जीव ब्रह्म ही है, दूसरी वस्तु नहीं", यह उनका धार्मिक सिद्धान्त था। सातवीं शताब्दी में उत्तर भारत में शैव सम्प्रदाय बहुत लोकप्रिय हो गया था। मिहिरकुल, यशोधर्मन, शशांक आदि सम्राट शैव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। शृंगेरी (मैसूर), द्वारिकापुरी तथा बद्रीनाथ में स्थापित मठ आज भी उनके धार्मिक उत्साह के साक्ष्य हैं। लाखों जन

आज भी सम्मानपूर्वक उनका नाम स्मरण करते हैं।

(ग) वैष्णव सम्प्रदाय—विष्णु की पूजा गुप्तकाल में प्रचलित हो गयी थी। गुप्त सम्राट विष्णु की पूजा करते थे। वैष्णव धर्म के महान् विद्वानों में नाथमुनि, यमुनाचार्य और रामानुज के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। आचार्य रामानुज का जन्म मद्रास प्रांत के श्रीरंगम् नामक स्थान पर हुआ था। और वह जाति के ब्राह्मण थे। उनके सिद्धान्तानुसार ब्रह्म, जीव और जगत मूलतः एक होने पर भी क्रियात्मक रूप में भिन्न हैं तथा विशिष्ट गुणों से युक्त हैं। उनकी शिक्षा थी कि मोक्ष के लिए भक्ति करनी चाहिए। भगवान् विष्णु को उन्होंने आराध्य देव बताया। वैष्णव धर्म के अनुयायी श्री वैष्णव कहे जाते थे। रामानुज ने एक सुन्दर तथा न्यायप्रिय ईश्वर की भावना की स्थापना की।

(घ) लिंगायत सम्प्रदाय—१२वीं शताब्दी में शैव सम्प्रदाय में एक उपसम्प्रदाय पैदा हो गया, जिसे लिंगायत सम्प्रदाय कहते हैं, वासव इस सम्प्रदाय के मुख्य उपदेशक थे। लिंगायतों का विश्वास है कि ईश्वर एक है और सर्वव्यापी है। इस धर्म में विश्वास करने वाले कर्मकाण्ड और यज्ञ में विश्वास नहीं करते। ये लोग शिवलिंग की पूजा करते हैं।

इस काल में शक्ति की पूजा भी होने लगी थी। शक्ति की प्रतीक दुर्गा और काली थीं। तान्त्रिक सम्प्रदाय के लोग जादू और तंत्र आदि में भी विश्वास करते थे।

४. शिक्षा तथा साहित्य—शिक्षा की प्रणाली इस काल में भी मौर्य काल जैसी ही थी। गुरु के आश्रम में विद्यार्थी विद्या-अध्ययन के लिए जाते थे। नालंदा और विक्रमशील विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। नालंदा विश्वविद्यालय में विदेशों के विद्यार्थी भी आते थे। चीनी यात्री ह्युएनसांग ने भी ५ वर्ष तक इस विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। इस विश्वविद्यालय में १० हजार विद्यार्थियों को निः-शुल्क शिक्षा दी जाती थी। उनके भोजन तथा आवास की भी निः-

शुल्क व्यवस्था थी। विक्रमशील विश्वविद्यालय का नम्बर नालंदा के बाद था। इस विश्वविद्यालय में भी फीस नहीं ली जाती थी। भोजन तथा आवास की व्यवस्था भी थी। इन विश्वविद्यालयों में वेदों, बौद्ध-दर्शन, तर्कशास्त्र, व्याकरण, औषधि, विज्ञान, ज्योतिष और आध्यात्म विद्या की उच्च शिक्षा दी जाती थी। इनके अतिरिक्त सोमपुरी (बंगाल) ओदन्तपुरी (पटना) और जगद्दल (उत्तरी बंगाल) में भी शिक्षा के केन्द्र थे बंगाल में पाल तथा सेन राजवंशों ने भी शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। नवद्वीप (नदिया) विद्या का केन्द्र था।

(क) धार्मिक साहित्य—राजपूत काल के राजाओं में बहुत से ऐसे राजा थे, जो विद्यानुरागी और साहित्यानुरागी होने के साथ-साथ स्वयं भी अच्छे साहित्यकार थे। मुंज और भोज उच्चकोटि के साहित्यकार थे। इस काल में बौद्ध धर्म के कई ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा मे हुआ। ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। नारद और बृहस्पति की संहितायें भी इसी काल की रचनायें हैं। शंकराचार्य के दार्शनिक ग्रंथ इसी काल की कृति हैं। जैन धर्म और बौद्धधर्म सम्बन्धी कुछ साहित्य भी इसी समय लिखा गया।

(ख) अन्य साहित्य—अन्य प्रकार का साहित्य भी इस युग में बहुत लिखा गया। इस युग के मुख्य-मुख्य सभी कवि जैसे भारवि, दण्डी, राजेश्वर, क्षेमेन्द्र, विल्हण, और जयदेव किसी न किसी राजा के आश्रय में रहे। भवभूति इस युग के उत्तम नाटककार थे। उन्होंने 'मालती माधव', 'महावीर चरित्र' 'तथा उत्तर रामचरित्र' आदि नाटकों की रचना की जो संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। बाण कवि का 'हर्ष चरित्र' तथा 'कादम्बरी' साहित्यिक ग्रंथ हैं। भट्ट नारायण का 'वेणी संहार' और राजशेखर का 'कर्पूर मंजरी अनूठे ग्रंथ हैं। 'वासवदत्ता' भी इसी युग की रचना है। जयदेव का 'गीत गोविन्द' भी इसी काल में लिखा गया। कल्हण ने 'राजतरंगिणी' की रचना इसी समय की थी। इन साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार का उपयोगी साहित्य भी इस युग में लिखा गया। बारहवीं



एलोरा का कैलाश मन्दिर

शताब्दी में भास्कराचार्य नाम का एक श्रेष्ठ ज्योतिषी हुआ। उसका ग्रंथ 'सिद्धान्त शिरोमणि' ज्योतिष-शास्त्र का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। आर्य भट्ट ज्योतिष-शास्त्र का माना-जाना विद्वान् था।

प्राकृत भाषा में भी अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे गये। राजशेखर का कर्पूरमंजरी' प्राकृत में ही है। अपभ्रंश में भी रचनायें प्रारम्भ हो गयी थीं। चन्द्र बरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना अपभ्रंश में ही की है। इस युग के साहित्य की विशेषता यह है कि मात्रा तथा काव्यत्व दोनों दृष्टि से उच्चकोटि का है। इतिहास की दृष्टि से इस युग के साहित्य में पर्याप्त सामग्री छिपी पड़ी हुई है।

५. कला—कला की दृष्टि से यह युग अद्वितीय है। इस युग में निर्माण कला की आशातीत उन्नति हुई। उत्तर भारत में आर्यशैली और दक्षिण भारत में द्रविड शैली की कला प्रचलित थी। मन्दिरों तथा मूर्तियों के निर्माण कला के इसी वर्गीकरण के आधार पर हुए हैं।

(क) मन्दिर—मन्दिरों के निर्माण में इस युग की कला का सुन्दर निखार दिखाई पड़ता है। काश्मीर, पुरी, भुवनेश्वर तथा खजुराहो में निर्मित मन्दिर इस काल की कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। ग्वालियर राज्य में उदयपुर का शिव मन्दिर अपनी सुन्दरता के लिए बहुत प्रसिद्ध है सोमनाथ के मन्दिर की ख्याति तो विदेशों तक में फैली हुई थी। आबू पर्वत का जैन मन्दिर और कोणार्क का सूर्य मन्दिर अपनी सुन्दरता में अद्वितीय हैं।

दक्षिण भारत की द्रविड़ शैली को सबसे पहले पल्लव शासकों ने ही प्रोत्साहन दिया। विशाल पत्थरों को काट कर बनाये गये ये मन्दिर आज भी पल्लववंशीय कला का स्मरण कराते हैं। मामल्लपुरम में नरसिंह वर्मन द्वारा निर्मित 'सप्त शिवालय मन्दिर का उल्लेख इस प्रसंग में किया जा सकता है। कांजीवरम् का 'कैलाशनाथ' का मन्दिर भी उल्लेखनीय है। चट्टानों को काटकर एलोरा में बना 'कैलाश मन्दिर' ससार में अपना सानी नहीं रखता। चोल वंश के राजाओं द्वारा बनवाये गये मन्दिर भी सौन्दर्य तथा भव्यता की दृष्टि से द्रविड़

शैली के अच्छे नमूने हैं । राजेन्द्र चोल द्वारा बनवाया गया गंगेकोंड चोलपुरम का प्रस्तर मन्दिर द्राविड़ वास्तुकला का सुन्दर प्रतीक है ।

(ख) मूर्ति कला—पाल शासकों के संरक्षण में पूर्वी भारत में कला की एक विशेष शैली का जन्म हुआ, जिसमें कलाकार बौद्ध तथा हिन्दू धर्म दोनों की मूर्तियों का निर्माण करते थे । भावना, रंग निर्माण तथा हाव-भाव की दृष्टि से ये मूर्तियाँ अद्वितीय कही जा सकती हैं । दक्षिण भारत में कुछ स्थानों पर पीतल तथा तांबे की मूर्तियां भी मिली हैं । विदेशी यात्रियों ने भारतीय मूर्तियों की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है । पर खेद की बात है की मुसलमान आक्रमण कारियों ने अधिकांश मन्दिरों तथा मूर्तियों को नष्ट करके राजपूत कालीन कला को नष्ट कर दिया है ।

प्रश्न

1. What do you know about the culture and civilisation of the Rajput period ?

राजपूतकालीन सभ्यता व संस्कृति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

2. Give an account of the social and religious condition of India during the period of Rajput Kings.

राजपूत शासकों के समय में भारत की सामाजिक व धार्मिक स्थिति का वर्णन कीजिए ।

3. "The Rajput period of Indian History was a period of religious activities". Comment on this statement.

"भारत के इतिहास में राजपूत काल धार्मिक गतिविधियों का काल था" इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

4. Form an estimate of the development of literature and art during the Rajput period.

राजपूतकालीन साहित्यिक तथा कला सम्बन्धी प्रगति का मूल्यांकन कीजिए।

5. Point out the main drawbacks of the Hindu States during the Rajput period.

राजपूत काल में हिन्दू राज्यों में क्या-क्या विशेष त्रुटियां आ गई थीं? लिखिये।

—:o:—

अध्याय १५

भारत पर मुसलमानों के आक्रमण

इस्लाम का प्रचार

१. **इस्लाम धर्म का जन्म**—इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मोहम्मद साहब का जन्म ५७० ई० में अरब में मक्का नामक प्रसिद्ध केन्द्रीय नगर में हुआ था। बचपन से ही आप प्रतिभावान थे। २५ वर्ष की आयु में आपने खदीजा नामक एक ४० वर्षीय विधवा से विवाह कर लिया। अरब की स्थिति देखकर मोहम्मद साहब को बहुत असंतोष हुआ। मक्का और मदीना जैसे स्थानों पर लोग मूर्तियों को देवता मान कर उनकी पूजा करते थे। लोगों में बहुत अधिक अज्ञान फैला हुआ था। ४० वर्ष की आयु में उनकी आत्मा में ज्ञान का प्रकाश पैदा हुआ। तत्कालीन यहूदी और ईसाई धर्म का खण्डन करके अपने नवीन धर्म की शिक्षा देनी शुरू की। मक्का के लोगों ने मोहम्मद साहब की शिक्षा को स्वीकार नहीं किया बल्कि इसके बदले वे उन्हें सताने लगे। मजबूरन ६२२ ई० में मोहम्मद साहब मक्का छोड़ कर मदीना चले गये। उनकी इस यात्रा को 'हिजरत' कहते हैं। इसी समय से मुसलमानों का 'हिजरी संवत' शुरू होता है।

२ **मोहम्मद साहब मदीना में**—मदीना में मोहम्मद साहब ने अपने धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार किया। मदीना के लोगों ने उनका बड़ा स्वागत किया और मोहम्मद साहब उनके लोकप्रिय नेता बन गये। मोहम्मद साहब का कहना था कि "अल्लाह एक है; मैं उसका सर्वश्रेष्ठ पैगम्बर हूँ और उसका संदेश देने आया हूँ।" बहुत ही जल्दी मोहम्मद साहब के अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गई। मक्का के लोगों ने भी मोहम्मद साहब से संधि कर ली और ६२९ ई० में मोहम्मद साहब जब मक्का लौट कर गये तो वहां के लोगों ने उनका

शानदार स्वागत किया और उनका धर्म स्वीकार किया।

(३) अरब और फारस पर अधिकार—मक्का और मदीना पर अपनी प्रभुता जमाने के पश्चात् मोहम्मद साहब ने आसपास के क्षेत्रों में भी अपना विस्तार किया। ६३२ ई० तक, जबकि उनकी मृत्यु हुई, वह सम्पूर्ण अरब के स्वामी बन गये थे। मोहम्मद की मृत्यु के बाद अबूबक्र खलीफा बने। उनके काल में फारस के हिरात प्रदेश पर मुसलमानों ने कब्जा कर लिया। तीसरे खलीफा उमर के समय में फारस तथा अरब के बीच एक भयानक युद्ध हुआ। विजय अरब को हुई और चालदाव प्रदेश तथा मेसोपोटामिया पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। ६४२ ई० में नेहावन्द के युद्ध के बाद सम्पूर्ण फारस राज्य मुसलमानों के हाथ आ गया।

४. भारत में इस्लाम का आगमन—पहले पहल मुसलमान व्यापारियों के रूप में भारत में आए। मालाबार तट पर उन्होंने अपना व्यापार शुरू किया और काफी लाभ कमाया। भारत के तत्कालीन हिन्दू राजाओं ने उन्हें पश्चिमी तट पर बसने व व्यापार करने की अनुमति दे दी। मुसलमान व्यापारियों के साथ धीरे-धीरे मुसलमान धर्म-प्रचारक भी भारत में आये। धर्म-प्रचारकों ने भारत की जनता में, विशेषतया नीची जातियों के लोगों में, अपने धर्म को फैलाना आरम्भ कर दिया।

मुसलमानों के आक्रमण

५. भारत की राजनैतिक दशा—मुसलमानों के आक्रमण के समय भारत की राजनैतिक स्थिति बड़ी दयनीय हो रही थी। हर्ष के शासन-काल के पश्चात् सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था, जो परस्पर अपनी शान दिखाने के लिए या दूसरों को दबाने के लिए आपस में लड़ा करते थे। इस प्रकार देश भर में युद्ध तथा ईर्ष्या की आग फैली हुई थी। कोई भी ऐसा बड़ा शक्तिशाली राज्य नहीं था, जो अन्य छोटे-छोटे राजाओं को संगठित करके एक शक्तिशाली साम्राज्य बना सकता। गुजरात व काठियावाड़ में चालुक्य राजपूतों का राज्य था।

उनकी राजधानी अन्हिलवाड़ थी। सिंध और पंजाब में भी राजपूतों के राज्य थे। अजमेर में चौहानों का राज्य था। दिल्ली में तोमर वंश का राज था। बाद में उस पर पृथ्वीराज चौहान का अधिकार हो गया था। मध्य-भारत में मालवा राज्य था, जिसकी राजधानी उज्जैन थी। बुन्देलखण्ड चन्देलों के आधीन था। बंगाल और बिहार में क्रमशः सेन एवं पाल राजवंश का शासन था। उड़ीसा में केसरी वंश की सत्ता थी। दक्षिण भारत में चालुक्य, होयसाल, यादव, पांड्य तथा चेर वंश के छोटे-छोटे राज्य स्थापित थे। मुसलमानों के आक्रमण के लिए यह अवसर सर्वाधिक उपयुक्त था।

६. सिंध पर आक्रमण—सिंध के समुद्री डाकुओं ने देवल बन्दरगाह के निकट अरब को जा रहे एक जहाज को लूट लिया था। बसरा के शासक हज्जाज ने सिंध के राजा दाहिर से क्षतिपूर्ति की मांग की। पर दाहिर ने साफ इन्कार कर दिया। अरब के खलीफा ने दाहिर पर आक्रमण करने का हुक्म दे दिया। हज्जाज ने अपने चचेरे भाई मोहम्मद-बिन-कासिम के सेनापतित्व में, जोकि १७ वर्ष का नवयुवक था, एक बड़ी सेना दाहिर पर आक्रमण करने के लिए भेजी। मेकरान का गवर्नर भी बिन-कासिम के साथ हो लिया। ७१२ ई० में बिन-कासिम ने देवल बन्दरगाह को घेर लिया। दाहिर के भतीजे ने मुसलमानों का मुकाबला किया। पर अन्त मे उसकी हार हो गई। देवल को मुसलमानों ने जी भर कर लूटा। देवल के पश्चात् बिन-कासिम निरुन और सेहवान की ओर बढ़ा। निरुन ने बिना युद्ध किये ही आधीनता स्वीकार कर ली। सेहवान में भी मुसलमानों ने कत्लेआम मचा दिया। ब्राह्मणाबाद में राजा दाहिर एक विशाल सेना तैयार कर चुका था। रावर के मैदान में उसने बिन-कासिम का सामना किया। युद्ध में दाहिर का हाथी बिगड़ गया। हिन्दुओं की हार हो गई। दाहिर युद्ध क्षेत्र में मारा गया। ब्राह्मणाबाद को मुसलमानों ने अपने आधीन कर लिया। तत्पश्चात् अलोर को जीतता हुआ बिन-कासिम मुलतान तक आ गया। एक सप्ताह तक शहर को लूटने के बाद मुल्तान

पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया।

७. मोहम्मद-बिन-कासिम—१७ वर्ष का नवयुवक मोहम्मद-बिन-कासिम एक महान् विजेता तथा योग्य सेनाध्यक्ष था। दरबारियों ने खलीफा को बिन-कासिम के विरुद्ध भड़का दिया था। अतः खलीफा ने उसे वापस बुला लिया और उसकी वीरता का बदला उसे मृत्यु-दण्ड के रूप में दिया गया। "उसकी उठती हुई जवानी, उसका पराक्रम तथा उसकी दर्दनाक मृत्यु उसे एक शहीद का गौरव प्रदान करती है।" *

८. सिन्ध विजय का प्रभाव—सिंध विजय भारत के इतिहास में केवल एक ऐतिहासिक घटना मात्र बन कर रह गयी। भारत पर उसका कोई भी राजनैतिक प्रभाव नहीं पड़ा। अतः इस विजय का कोई महत्त्व नहीं है। इसके विपरीत मुसलमानों का होनहार सेनाध्यक्ष मोहम्मद-बिन-कासिम उनके हाथ से जाता रहा। सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से अरबों पर भारत का कुछ प्रभाव अवश्य ही पड़ा क्योंकि उस समय भारत की संस्कृति बहुत उच्च कोटि की थी तथा बगदाद विश्वविद्यालय में भारतीय विद्वानों से उनकी विशेष विद्यायें—आयुर्वेद बीज-गणित आदि सीखी गयी। अरब के जो लोग सिंध में आये वे कालान्तर में सिंध के ही निवासी बन गये और अपने पूर्वजों के देश को भूल-से गये।

महमूद गजनवी और राजपूत

९. सुबुक्तगीन—१०वीं शताब्दी तक तुर्किस्तान और अफगानिस्तान मुसलमानों के आधीन हो गये थे। सुबुक्तगीन कन्दहार और काबुल के बीच स्थित गजनी राज्य का शासक था। राज्य बढ़ाने की इच्छा से उसने पंजाब पर आक्रमण किया। पर तत्कालीन राजा जयपाल ने उसे हरा कर भगा दिया। दूसरी बार आक्रमण करके सुबुक्तगीन ने लमगान, काबुल तथा पेशावर के बीच की भूमि पर अधिकार कर लिया। लमगान युद्ध में उसका पुत्र महमूद भी उसके साथ था।

---

* *Ishwari Prasad "Muslim Rule in India".*

१०. महमूद गजनवी—सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात् ९९७ ई० में उसका पुत्र महमूद गद्दी पर बैठा। खलीफा कादिर बिल्लाह ने उसे गजनी का सुलतान मान लिया और यमीन-उद्-दौला और अमीर-उल-मिल्लाह की उपाधियाँ दीं। महमूद ने भारत की समृद्धि और सम्पत्ति तथा मन्दिरों का धन लूटने और मूर्तिपूजक हिन्दुओं के विरुद्ध धर्मयुद्ध का संकल्प किया। इसी उद्देश्य की पूर्ति में महमूद ने १००० ई० से १०२६ ई० के बीच भारत पर कुल १७ आक्रमण किये। उसके कुछ महत्वपूर्ण आक्रमणों का वर्णन नीचे किया जाता है।

११. जयपाल पर आक्रमण—१००० ई० में महमूद ने पंजाब एवं पेशावर के राजपूत राजा जयपाल पर आक्रमण किया। पेशावर के पास जयपाल और महमूद की सेनाओं का युद्ध हुआ। युद्ध में राजपूतों की पराजय हुई। जयपाल को बन्दी बना लिया गया। २,५०,००० दीनार लेकर महमूद ने उसे छोड़ दिया। इतिहासकार उत्बी के कथनानुसार ६ लाख दीनार तथा ५ लाख गुलाम महमूद को दिये गये। पराजय की ग्लानि के कारण जयपाल ने आग में जलकर अपने प्राण त्याग दिये।

१२. मुल्तान और कांगड़ा पर आक्रमण १००६ ई० में महमूद मुल्तान विजय के लिए चला। मार्ग में उसने राजपूतों को फिर हराया। इस बार राजा आनन्दपाल ने ग्वालियर, उज्जैन, कन्नौज और दिल्ली के राजाओं की सहायता से एक सुदृढ़ सेना तैयार कर ली थी। युद्ध में आनन्दपाल की पराजय हुई। सात दिन के लगातार युद्ध के पश्चात् महमूद ने मुल्तान पर अधिकार कर लिया। राजपूतों के संघ पर विजय पाने के बाद महमूद का साहस बहुत बढ़ गया था। १००९ ई० में उसने कांगड़ा में नगरकोट के मन्दिरों पर आक्रमण किया। हिन्दू लोग बहुत भयभीत हो गये थे। वे महमूद का विरोध न कर सके। महमूद ने सैकड़ों वर्षों से इकट्ठी सम्पत्ति को बड़ी प्रसन्नता से लूटा। इस लूट में उसे अकूत सम्पत्ति मिली। इतनी सम्पत्ति को पाकर महमूद का लालच और उसकी लोलुपता और भी बढ़ गई।

१३. कन्नौज और कालिंजर की विजय—१०१८ ई० में महमूद ने

उत्तर भारत के सबसे बड़े राजपूत राज्य कन्नौज पर आक्रमण किया। बुलन्दशहर, महावन तथा मथुरा आदि नगरों को लूटता हुआ महमूद जनवरी १०१९ में कन्नौज पहुँचा। वहाँ उसने मंदिरों को तोड़ा और जी भरकर लूटमार की। राजा राज्यपाल ने महमूद के सामने हथियार डाल दिए। इस युद्ध-विजय में उसे अपार सम्पत्ति मिली जिसे लेकर वह गजनी लौट गया। कन्नौज के राजा राज्यपाल को कालिंजर के चन्देल राजा विद्याधर ने मार डाला क्योंकि उसने म्लेच्छ की आधीनता स्वीकार कर ली थी। महमूद को जब यह समाचार मालूम हुआ, तो उसने कालिंजर के चन्देल शासक पर आक्रमण किया। इस समय कालिंजर का शासक गण्ड था। गण्ड ने महमूद से सन्धि कर ली। कालिंजर से भी बड़ी सम्पत्ति लेकर महमूद फिर वापिस चला गया।

१४. सोमनाथ पर चढ़ाई—गुजरात के सोमनाथ मन्दिर में एकत्रित धन सम्पत्ति के सम्बन्ध में वह सुन चुका था। एक बार लूट की लालसा ने उसे पुनः प्रेरित किया। १०२५ ई० में ८०,००० सैनिकों को लेकर महमूद पंजाब, मुल्तान व राजपूताने के रेगिस्तान को पार करता हुआ सोमनाथ पहुँचा। कुछ राजपूत राजा मन्दिर की रक्षा के लिए तैयार थे। युद्ध में महमूद की विजय हुई। मन्दिर में शिवलिंग की मूर्ति को उसने चूर-चूर कर दिया। सोमनाथ के मन्दिर में शताब्दियों से इकट्ठी अकूत सम्पत्ति को लेकर महमूद गजनी को लौटा। मन्दिर में लगे चन्दन की लकड़ी के दरवाजे भी वह गजनी को ले गया सोमनाथ का आक्रमण महमूद का अन्तिम तथा सबसे बड़ा आक्रमण था।

१५. महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य—महमूद के आक्रमणों का क्या उद्देश्य था इस सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। वह एक लुटेरा था और अपना सारा जीवन उसने लूट-मार में ही व्यय किया। महमूद ने स्वयं बताया था कि उसके आक्रमणों का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार करना नहीं है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि महमूद के

लूटमार के कामों से इस्लाम को लाभ के स्थान पर हानि हुई। डा० नाजिर और प्रो० हबीब का भी यही मत है। मुसलमान इतिहासकार जफर भी यही मानता है कि धन के लिए ही महमूद ने सारे आक्रमण किये।

१६. महमूद का चरित्र—स्वयं अनपढ़ होते हुए भी महमूद विद्वानों का आदर करता था। फिरदौसी, अलबरूनी और उत्बी नामक विद्वान उसके दरबार में थे। फिरदौसी के 'शाहनामा' ने महमूद का नाम अमर कर दिया। गजनी शिक्षा का बड़ा केन्द्र था। शिक्षा की उन्नति के लिए उसने गजनी में एक विश्वविद्यालय भी खुलवाया था। कवियों तथा लेखकों को महमूद ने बहुत धन दिया। महमूद लालची तथा कंजूस था। धन उसे अपनी कीर्ति से भी बढ़कर प्यारा था। फिरदौसी को एक शेर (द्वि-पदी) पर एक अशरफी देने का उसने वादा किया था, पर ६० हजार कविताओं का संग्रह 'शाहनामा, तैयार हो जाने पर फिरदौसी को केवल ६० हजार चांदी के दीनार देने की बात कही, तो फिरदौसी ने ६० हजार दीनार लेने से इन्कार कर दिया। लालची होने के साथ-साथ वह हिन्दुओं के प्रति बड़ा निर्दयी तथा निर्मम था। सच पूछा जाय तो वह एक बड़ा डाकू तथा हत्यारा था।

महमूद एक महान् सैनिक, विजेता तथा सेनाध्यक्ष था। युद्ध-क्षेत्र में उसे कभी भी हार नहीं खानी पड़ी। उसके सैन्य-संचालन से सैनिक प्रसन्न रहते थे। सैनिकों को वह स्वयं प्रोत्साहन देता था। महमूद बड़ा न्यायप्रिय शासक था। उसका कहना था कि प्रजा के प्रति उदार तथा न्यायी होना राजा का कर्त्तव्य है। विदेशों से कलाकारों को बुलवा कर महमूद ने गजनी में बड़ी सुन्दर-सुन्दर इमारतें बनवाईं। एक सुन्दर मस्जिद का नाम उसने 'स्वर्ग-वधू' रखा था। महमूद इस्लाम का पक्का अनुयायी था। नियमित रूप से नमाज पढ़ने में वह कभी भी नहीं चूकता था। "भारत में निर्दयतापूर्वक मन्दिरों को तोड़ने वाला महमूद अपने देश के सभ्य सम्राटों का सिरमौर था— वह गजनी की मुसलमान प्रजा के लिए देवदूत और अन्य धर्मों के लोगों के लिए

राक्षस का अवतार था।"*

१७. महमूद के उत्तराधिकारी—१०३१ ई० में महमूद की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र मसूद गजनी की गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता के साम्राज्य का प्रबन्ध बहुत अच्छी तरह से किया। १०४२ ई० में उसकी हत्या कर दी गई। उसके बाद मुहम्मद गद्दी पर बैठा और तत्पश्चात् उसकी हत्या करके मोदूद गद्दी का अधिकारी बना। मोदूद के समय से ही गजनी की शक्ति क्षीण पड़ने लगी। कालांतर में इस वंश के अन्तिम बादशाह खुसरू की हत्या करके मुईज़ुद्दीन ने, जो बाद में मुहम्मद गोरी के नाम से विख्यात हुआ, गद्दी पर अधिकार कर लिया इस प्रकार लगभग २०० वर्ष पश्चात् महमूद के राजवंश का अन्त हो गया और गजनी का राज्य गोर वंश के हाथों में आ गया।

मुहम्मद गोरी की भारत-विजय

१८. मुहम्मद गोरी—गजनी के अन्तिम शासक खुसरु की हत्या करके शाहबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने गजनी की गद्दी पर कब्जा कर लिया। महमूद गजनवी की ही भांति गोरी ने भी भारत पर कई आक्रमण किए। पर गोरी के आक्रमणों का उद्देश्य महमूद गजनवी के आक्रमणों के उद्देश्यों से भिन्न था। महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य भारत की सम्पत्ति लूटना था, जबकि मुहम्मद गोरी भारत में अपना राज्य स्थापित करना चाहता था। गोरी की महत्वाकांक्षा ने उसे भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी।

१९. मुल्तान और उच्छ की विजय—मुल्तान पर विजय प्राप्त करने के लिए मुहम्मद गोरी ११७५ ई० में रवाना हुआ। मुल्तान इस्माइलिया के मुसलमानों के अधिकार में था। मुल्तान को अपने आधिपत्य में लेने के पश्चात् गोरी उच्छ की ओर बढ़ा। उच्छ की रानी मुसलमानों से मिल गई। इस प्रकार गोरी को उच्छ का किला यों ही मिल गया।

*S. R. Sharma. "The Crescent in India."

२०. भीमदेव और गोरी—मुल्तान और उच्छ पर विजय करता हुआ गोरी अन्हिलवाड़ जा पहुँचा। अन्हिलवाड़ का राजा भीमदेव गोरी का सामना करने के लिए तैयार था। राजपूतो के साथ भयंकर युद्ध करने में गोरी की सेना पराजित हो गयी। फिर भी गोरी निराश और हताश नही हुआ। यह भारत में मुसलमानों की पहली पराजय थी। अन्हिलवाड़ से हट कर गोरी ने पेशावर पर आक्रमण किया। पेशावर मे उसे विजयश्री मिली।

२१ पंजाब पर अधिकार—११७६ ई० में मुहम्मद गोरी ने पेशावर पर अधिकार कर लिया। ११८१ ई० में स्यालकोट भी उनके आधीन आ गया। कई बार प्रयत्न करने के बाद भी वह खुसरो मलिक को लाहोर से अपदस्थ नही कर सका था। अतः ११८६ ई० में षड्यन्त्र द्वारा खुसरो की हत्या करवा कर उसने लाहोर पर भी अधिकार कर लिया। गोरी जानता था कि पंजाब पर पूरी तरह आधिपत्य करने के पश्चात् ही वह भारत में आगे विजय करने में सफल हो सकेगा। इस प्रकार गोरी की आधीनता में सारा पंजाब आ गया।

२२. तराइन का पहला युद्ध—गोरी के सामने अब हिंदू राजपूत राजाओं की समस्या थी। दिल्ली और अजमेर का चौहान शासक गोरी का सामना करने के लिए जोरदार तैयारी कर रहा था। इस समय उत्तरी भारत में राजपूतो के छः मुख्य राज्य थे। दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान, गुजरात में बघेले, कन्नौज में राठौर, बुन्देलखण्ड (महोबा) में चंदेल तथा बिहार एवं बंगाल में पाल तथा सेन राजवंश थे। इनमें कन्नौज और दिल्ली के राजवंश बहुत शक्तिशाली थे। दिल्ली और अजमेर के शासक पृथ्वीराज ने गोरी का आक्रमण रोकने के लिए राजपूतों का एक संघ बनाया। ११९१ ई० में गोरी तथा राजपूतों की सेना की मुठभेड़ तराइन के मैदान में हुई। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। मुसलमानों को राजपूतों की ऐसी शक्तिशाली सेना का मुकाबला करने का कभी पहले अवसर न आया था। इस युद्ध में गोरी की पराजय हुई। गोरी अपने प्राण बचा कर भागा। भयभीत मुसलमान सेना इधर-उधर भाग

पड़ी। चालीस मील तक राजपूतों ने उनका पीछा किया। भटिंडा और सरहिंद तक राजपूतों का अधिकार हो गया।

२३. तराइन का दूसरा युद्ध—गोरी अपनी पराजय के बाद चुपचाप बैठने वाला व्यक्ति नहीं था। अगले वर्ष ११९२ ई० में उसने फिर एक विशाल सेना लेकर भारत पर आक्रमण किया। इधर भारत में राजपूतों ने भी तैयारी शुरू कर दी। राजपूत राजाओं के संघ में कन्नौज का राजा जयचंद सम्मिलित नहीं हुआ क्योंकि पृथ्वीराज से उसका व्यक्तिगत द्वेष हो गया था। दूसरी बार भी गोरी और राजपूतों की सेनाओं की मुठभेड़ तराइन के मैदान में हुई। युद्ध के प्रारम्भ में पृथ्वीराज को ऐसा लगा कि उनकी विजय होगी पर सायंकाल के समय पासा पलट गया। मुसलमान घुड़सवारों के सामने राजपूत ठहर नहीं सके। पृथ्वीराज पराजित हुआ और पकड़ा गया। बाद में उसे मार डाला गया।

२४. युद्ध का परिणाम—तराइन का दूसरा युद्ध भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण युद्ध था। वी० ए० स्मिथ के शब्दों में तराइन के दूसरे युद्ध को 'निर्णायक युद्ध' कहा जा सकता है। इस युद्ध में राजपूतों की शक्ति सदा के लिए नष्ट हो गयी और भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया। दिल्ली, हांसी और सामना पर मुसलमानों का कब्जा हो गया। भारत की केन्द्रीय स्थिति मुसलमानों के हाथ आ गई। "—राजपूतों में ऐसा कोई राजा नहीं बचा, जो मुसलमानों के आक्रमणों का सामना करने के लिए अपने झण्डे के नीचे अन्य राजपूत राजाओं को संगठित कर सकता।"*

२५. जयचन्द पर आक्रमण—११९४ ई० में मुहम्मद गोरी ने कन्नौज के राठौर राज्य पर आक्रमण किया। इस राज्य का सिक्का सम्पूर्ण उत्तरी भारत में जमा हुआ था और इसका विस्तार बनारस तक था। कन्नौज इस राज्य की राजधानी थी। राजा जयचन्द ने गोरी का सामना करने के लिए सेना इकट्ठी की। इटावा के निकट

---

* *Ishwari Prasad "Medieval India."*

दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। जयचन्द पराजित हुआ और उसके सारे राज्य की सारी सम्पत्ति गोरी के हाथ लगी। तत्पश्चात् गोरी बनारस तक गया और उसने वहाँ के मन्दिरों को भी लूटा। इस प्रकार कन्नौज और बनारस पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया।

२६. बंगाल, बिहार, और कालिंजर विजय—मुहम्मद गोरी का प्रधान सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक था। ऐबक का मुख्य सहायक बख्तियार खिलजी था। ११९७ ई० में बख्तियार खिलजी ने अपने २०० सवारों को लेकर बिहार के पालवंश के शासक को परास्त कर दिया और उसके पश्चात् केवल १८ घुड़सवारों को लेकर बंगाल के सेन राजा लक्ष्मण सेन को उसकी राजधानी नदिया में जा घेरा। इस प्रकार उसने बंगाल और बिहार पर अधिकार कर लिया। १२०२ ई० में कुतुबुद्दीन ने कालिंजर के चंदेल राज्य पर आक्रमण किया। चंदेल राजा पराजित हो गया और कालिंजर मुसलमानों के हाथ में आ गया। कुतुबुद्दीन ने उसके बाद कालपी और बदायूं के किलों को भी जीत लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तर भारत मुसलमानों के आधीन हो गया।

२७. मुहम्मद गोरी की मृत्यु—भारत विजय से मुहम्मद गोरी को संतोष नहीं हुआ। उसने गजनी से पश्चिम की ओर भी विजय करनी चाही। १२०३ से उसने ख्वारिज्म पर आक्रमण किया। ख्वारिज्म के युद्ध में उसकी हार हुई। घायल होकर वह गजनी की ओर भागा। पर ताजुद्दीन एल्दोज ने, जो गोरी का एक गुलाम था और गोरी की अनुपस्थिति में गजनी का शासक था, गोरी को गजनी में नहीं आने दिया। उसने अपने को गजनी का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। पर कुतुबुद्दीन ने गोरी की मदद की और जब वह गोरी के साथ पंजाब में खोक्खरों को दबा रहा था, तो खोक्खरों के एक दल ने गोरी की हत्या कर दी। यह घटना १२०६ ई० की है। उसके मरते ही बख्तियार खिलजी ने बंगाल एवं बिहार में अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया; कुतुबुद्दीन दिल्ली का प्रथम गुलाम सम्राट् बना; नासिरुद्दीन

कुवैचा ने अपने को सिंध का स्वामी घोषित कर दिया और एल्दीज गजनी का बादशाह बन गया।

२८. मुहम्मद गोरी का चरित्र—मुहम्मद गोरी योग्य तथा विद्या प्रेमी था। उसके राजनैतिक विचार बहुत स्थायी थे। भारत की कमजोरी का उसने ठीक समय पर लाभ उठाकर सिद्ध कर दिया कि वह एक राजनीतिज्ञ था। गोरी दूरदर्शी था। वह महमूद की भाँति धर्मान्ध नहीं था और न लुटेरा था। "वह वास्तविक शासक तथा गजनी साम्राज्य का विस्तार करने वाला था।"* अपने राजनैतिक जीवन के आरम्भ से ही गोरी ने एक स्थायी साम्राज्य बनाने का ध्येय अपने सामने रखा और उसे पूर्ण करने के लिए अपना सब कुछ मिटा दिया। वास्तविक विजेता गोरी था न कि महमूद गजनवी। गोरी ने ठोस काम किया।

२९. मुसलमानों की सफलता के मुख्य कारण—मुसलमानों की विजय तथा सफलता कोई अनोखी ऐतिहासिक घटना नहीं थी। इस सम्बन्ध में कुछ कारणों का उल्लेख नीचे किया जाता है:—

(१) हर्ष की मृत्यु के पश्चात् लगभग साढ़े चार सौ वर्षों तक किसी विदेशी आक्रमण के न होने के कारण भारतीय राजाओं के हृदय में सुरक्षा की भावना पैदा हो गयी थी।

(२) भारत के तत्कालीन राजपूत राजाओं में बहुत फूट थी। कोई भी ऐसा राजा नहीं था, जो अन्य राजाओं को एक झण्डे के नीचे संगठित कर सकता।

(३) भारत की सम्पत्ति के प्रति आक्रमणकारियों का लालच उन्हें प्रेरणा देता रहा।

(४) भारतीय सेना के युद्ध के ढंग पुराने थे। हाथी प्रायः अपनी ही सेना को कुचल डालते थे। मुसलमान घुड़सवार फुर्तीले थे तथा मुसलमान बहुत कुशल तीरंदाज भी थे। उनके युद्ध-संचालन के ढंग भी नवीन थे एवं नवीन प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से उनकी सेनाएँ सुसज्जित थीं।

**S. Lane Poole—The Mohammadan Dynasties.*

(५) कुरान और पैगम्बर के नाम से मुसलमानों को प्रेरणा मिलती थी। "उनकी धर्मान्धता ही उनकी स्वरक्षा के लिए काफी थी।"*

(६) मुसलमान ठंडे देश के निवासी होने के कारण अधिक स्वस्थ थे और उनमें शारीरिक बल भी अधिक था।

(७) मुसलमानों में जो दास प्रथा थी, उससे भी उन्हें तथा उनकी सेना को बहुत लाभ था।

(८) तराइन के द्वितीय युद्ध की पराजय ने राजपूतों में भयानक आतंक उत्पन्न कर दिया तथा उनमें नैतिक दुर्बलता एवं उत्साह-हीनता आ गई।

प्रश्न

1. What do you know about Prophet Muhammad ? "He had to struggle and fight out for his faith and ideals". Explain.

पैगम्बर मोहम्मद के विषय में आप क्या जानते हैं ? "अपने धर्म तथा सिद्धान्तों के प्रचार के लिए उन्हें महान् संघर्ष करना पड़ा।" समझाइये।

2. What causes led to the Arab invasion of Sind ? Describe the campaigns of Muhammad-Bin-Qasim in Sind.

अरब के लोगों ने सिंध पर आक्रमण क्यों किया ? मोहम्मद-बिन-कासिम के सिंध-आक्रमण का वर्णन कीजिए।

3. Critically discuss the character and achievements of Mahmud of Ghazni.

महमूद गजनवी के चरित्र तथा उसकी सफलताओं की आलोचनात्मक चर्चा कीजिए।

4. Describe the important campaigns of Mahmud Ghaznavi against the Rajputs and

---

* *S. Lane Poole—The Mohammadan Dynasties,*

explain the objects of his invasions.

राजपूतों पर महमूद गजनवी ने जो आक्रमण किये उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य आक्रमणों का वर्णन कीजिए। उसके आक्रमणों के उद्देश्य क्या थे।

5. "Muhammad Ghori was the real founder of Muslim Power in India." Discuss.

"मोहम्मद गोरी भारत में मुसलमान शक्ति का वास्तविक संस्थापक था," समझाइये

6. Compare and contrast Mahmud Ghaznavi and Muhammad Ghori.

महमूद गजनवी और मोहम्मद गोरी की तुलना कीजिए।

7. Form an estimate of the work and achievements of Muhammad Ghori.

मोहम्मद गोरी के कार्य तथा उसकी सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

8. Account for the success of the Muslims and the failures of the Hindus in the 12th Century, A. D.

बारहवीं शताब्दी में मुसलमानों की विजय तथा हिन्दुओं की पराजय के क्या कारण थे ?

—:o:—

अध्याय १६

गुलाम वंश (१२०६—१२९० ई०)

कुतुबुद्दीन ऐबक

१. गौरी का उत्तराधिकारी—मोहम्मद गौरी के कोई पुत्र न था अतः उसकी मृत्यु के बाद उसका गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का सुल्तान बन गया। भारत के पहले मुसलमान वंश को गुलाम वंश कहा जाता है, क्योंकि कुतुबुद्दीन और उसके बाद के सभी प्रसिद्ध शासक गुलाम रह चुके थे। मुसलमानों में गुलाम प्रथा कुछ विचित्र थी। "गुलाम वंश का शासक-वंश के रूप में गिना जाना कई लोगों को एक विरोधाभास-सा मालूम होता है, परन्तु पूर्वी देशों में, जहाँ राजा का प्रजा पर निरंकुश शासन था, वहाँ राजा का गुलाम होना अपमान का विषय न होकर प्रतिष्ठा का साधन माना जाता था।"* कभी-कभी ये गुलाम अपनी स्वामिभक्ति के बल पर इतनी उन्नति कर लेते थे कि वे अपने स्वामी की लड़की से शादी तक कर लेते थे और उनको बहुत ऊँचे पद भी दिए जाते थे। कहा जाता है कि मोहम्मद गौरी के जीवन-काल में उसके दरबार के एक सरदार ने गौरी के उत्तराधिकार का प्रश्न उठाया था। इस अवसर पर मोहम्मद गौरी ने कहा कि उसके हजारों तुर्की गुलाम ही उसके पुत्र थे और उसकी मृत्यु के बाद वही शासन-भार संभालेंगे।

कुतुबुद्दीन ऐबक—कुतुबुद्दीन ऐबक मोहम्मद गौरी की सेना का सेनापति था। ऐबक को मोहम्मद गौरी ने गुलाम के रूप में खरीदा था। गौरी ने जब भारत पर आक्रमण किया तो ऐबक भी उनके साथ था। गौरी ऐबक की स्वामिभक्ति से बहुत प्रभावित था। अतः भारत पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् ऐबक को भारतीय उपनिवेश का

* *The Cambridge Shorter History of India.*

राज-प्रतिनिधि बना दिया गया। १२०६ ई० में जब गौरी की हत्या हो गई तो कुतुबुद्दीन ने, जो उस समय भारत में था, अपने आप को 'भारत का स्वामी' घोषित कर दिया।

३. कुतुबुद्दीन का शासन—ऐबक के शासक बनते ही उसे कई मुसीबतों का सामना करना पड़ा। ताजुद्दीन एल्दौज ने गजनी पर कब्जा कर लिया था और भारत को वह अपने साम्राज्य का ही हिस्सा समझता था। ऐबक ने उसे परास्त किया और इस प्रकार एक कठिनाई को दूर किया। उसके समक्ष एक समस्या यह थी कि गुलाम होने के कारण मुसलमान उसे गद्दी का वास्तविक अधिकारी नहीं समझते थे। फिरोज कोह के सुलतान महमूद ने उसे एक मान्यता-पत्र दिया था कि ऐबक गद्दी का कानूनी हकदार है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि ऐबक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न शासक नहीं था। इब्नबतूता उसे प्रभुत्व-सम्पन्न शासक नहीं मानता। ऐबक के नामके सिक्के भी नहीं पाये जाते। इन बातों से पता चलता है कि ऐबक सम्भवतः अपने आपको प्रभुत्व सम्पन्न शासक नहीं समझता था और इसलिए उसने अपने सिक्के नहीं चलाये। ऐबक वैसे एक कुशल शासक था और हिन्दुओं के साथ उसका व्यवहार उदार था। उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए उच्च पदाधिकारियों के यहां विवाह सम्बन्ध किये थे। उसने अपनी बहन का विवाह कुबेचा से और अपनी लड़की का विवाह अल्तमश से कर दिया था। उसने स्वयं ताजुद्दीन की लड़की से विवाह किया था। वह अपनी उदारता के कारण 'लाखबख्श' अर्थात् लाखों दान देने वाला कहा जाता था। १२१० ई० में पोलो खेलते समय घोड़े से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई।

४. ऐबक का महत्व – गुलाम होते हुए भी ऐबक भारतवर्ष का सम्राट बन गया, यह उसकी योग्यता और अथक परिश्रम का परिणाम था। उसने अपने प्रतिनिधित्व काल में असाधारण साहस के कार्य सम्पन्न किये थे। उसने झांसी, मेरठ, रणथम्भोर और अलीगढ़ पर अपना आधिपत्य जमाया और पूर्व में वह बनारस तक पहुँच गया था।

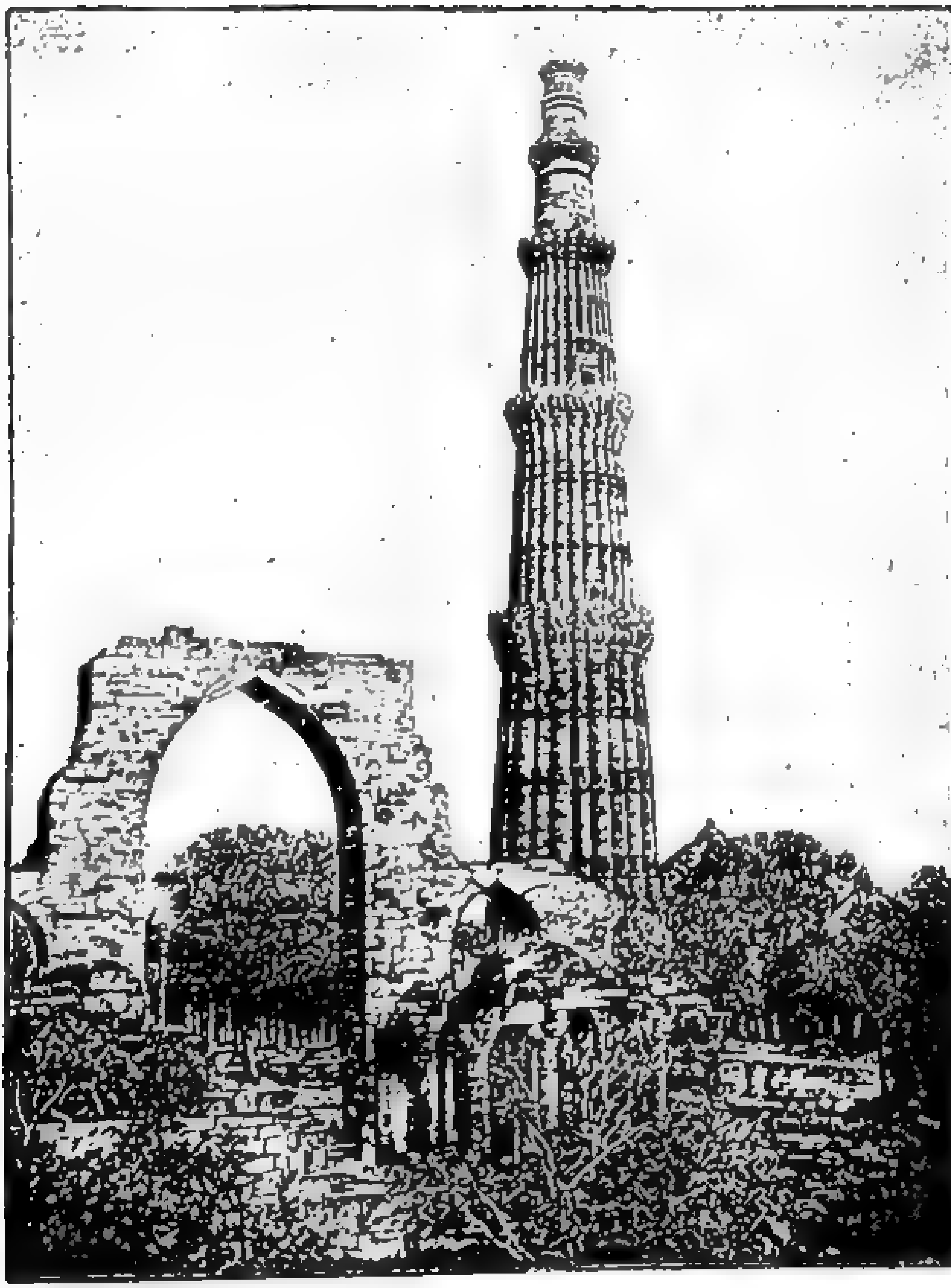
उसने अजमेर में हो रहे विद्रोह का पूरी तौर से दमन कर दिया और गुजरात के राज्य पर दो बार सफल आक्रमण कर अपने स्वामी की हार का बदला चुकाया। १२०२ ई० में उसने कालिंजर पर विजय प्राप्त की। ऐबक प्रथम मुसलमान विजेता था जिसने भारत में मुसलमान राज्य की स्थापना की। उसने १२०६ ई० से १२१० ई० तक चार वर्ष ही शासन किया। उसका शासनकाल बहुत अच्छा था किन्तु हिन्दू धर्म के प्रति वह सहिष्णु न था। उसने हिन्दुओं के मन्दिर तुड़वा दिये और उसी सामान से मसजिदें बनवाई। उसने एक मसजिद दिल्ली में और एक अजमेर में बनवाई। कहा जाता है कि दिल्ली के पास कुतुबमीनार का निर्माण भी उसी ने करवाया था। परन्तु उसके जीवनकाल में यह मीनार पूरी नहीं बन पाई थी, ऐबक कला और साहित्य का आश्रयदाता था। उसके दरबार में हसन निजामी और फखरुद्दीन नामक दो विद्वान थे। "अपने अल्प शासनकाल में ऐबक ने अपने आप को कुशल योद्धा और सुयोग्य शासक प्रमाणित कर दिखाया।"* वह सच्चरित्र और दानी था।

अल्तमश (१२१० ई०—१२३५ ई०)

५. अल्तमश—ऐबक की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र आरामशाह गद्दी पर बैठा। उसमें शासक बनने की कोई योग्यता न थी। वह देश में शान्ति स्थापित न कर सका। अतः अल्तमश, जो उस समय बदायूं का शासक था, उसको गद्दी से हटाकर स्वयं सुलतान बन बैठा। अल्तमश भी बचपन में गुलाम था, किन्तु अपनी योग्यता एवं स्वामिभक्ति के कारण वह ऐबक का प्रियपात्र बन गया था। ऐबक उसे बहुत चाहता था और उसने अपनी लड़की की शादी अल्तमश से कर दी थी। गद्दी पर बैठते ही अल्तमश को निम्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा:—

जिस समय अल्तमश गद्दी पर बैठा उस समय भारत में मुस्लिम राज्य की राजनैतिक एकता समाप्त हो चुकी थी और वह चार स्वतन्त्र राज्यों में बंट चुका था। सिन्ध पर कुबेचा का शासन था। दिल्ली में

History of India H. G. Keene.



कुतुब मीनार, दिल्ली

अल्तमश स्वयं सुल्तान के पद पर आसीन था। बंगाल में खिलजी मलिक था और लाहौर में कभी गजनी और कभी दिल्ली के शासक होते थे। अल्तमश ने पहला काम इन छोटे राज्यों पर आधिपत्य जमाने का किया। गजनी का सुल्तान एल्दोज अल्तमश का बहुत विरोध करता था। देश में अनेक राजपूत राजे थे जो अल्तमश के विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे थे। शक्तिशाली सरदार भी शासक बनने की अभिलाषा रखते थे।

६. **कठिनाइयों पर अल्तमश की विजय**—इतनी कठिनाइयां किसी भी शासक के छक्के छुड़ा देने के लिए काफी थीं। किन्तु अल्तमश में वीर योद्धा और योग्य प्रशासक के गुण प्रचुर थे और वह अपने परिश्रम के बल पर इन कठिनाइयों पर विजय पा गया। उसने सबसे पहले कुतबी और मुइजी इन दो सरदारों का दमन किया। ये दोनों शासक बनना चाहते थे और अल्तमश के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़का रहे थे। अल्तमश ने गजनी के सुल्तान एल्दोज को बुरी तरह हराया। एल्दोज भी एक गुलाम था किन्तु अपने गुणों के कारण वह गजनी के सुल्तान मोहम्मद गोरी का विश्वासपात्र बन गया था। गोरी की मृत्यु के बाद वह गजनी का शासक बन बैठा। वह अपने आपको गोरी का उत्तराधिकारी और भारत के राज्य का शासक समझता था। अतः उसने १२१४ ई० में दल-बल सहित अल्तमश पर आक्रमण कर दिया। किन्तु अल्तमश असावधान न था। उसने तराइन के रणक्षेत्र में एल्दोज का मुकाबला बड़ी बहादुरी से किया। एल्दोज हार गया और रणक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। इस विजय की धाक सरदारों पर बैठ गई और वे अल्तमश का सम्मान करने लगे।

७. **कुबैचा और गयासुद्दीन की हार**—कुबैचा गोरी का गुलाम था, जिसे सिंध में शासक बनाकर रखा गया था। धीरे-धीरे उसने सिंध पर अधिकार जमा लिया। उसने १२१७ ई० में अल्तमश का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था, किन्तु वह बराबर कष्ट दिया करता था। उसकी बढ़ती हुई शक्ति अल्तमश और नवजात मुस्लिम राज्य के लिए एक बड़ा संकट थी। अल्तमश ने १२२७ ई० में कुबैचा के राज्य पर

पुन: आक्रमण कर दिया और उच्छ के किले पर कब्जा कर लिया। उच्छ का किला हारने पर कुबंचा हताश हो गया और वह नाव में बैठकर भाग निकला। किन्तु उसे नाव समेत डुबो दिया गया। इस प्रकार अल्तमश ने अपने एक प्रबल विरोधी को अपने मार्ग से सदा के लिए हटा दिया।

कुतुबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् बिहार और बंगाल के खिलजी नवाबों ने स्वतन्त्र होने की चेष्टा की। अलीमर्दान ने अपने आपको बंगाल का शासक घोषित कर दिया था और उसने अपने नाम के सिक्के भी चलाये थे। अलीमर्दान की मृत्यु के बाद उसका लड़का एवाज शासक बन गया। उसने गयासुद्दीन की उपाधि धारण करली। गयासुद्दीन ने अल्तमश का आधिपत्य अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप अल्तमश ने १२२५ ई० में एक विशाल सेना लेकर उस पर धावा बोल दिया। गयासुद्दीन इतनी बड़ी सेना देखकर बहुत घबरा गया और उसने बिना लड़े ही अल्तमश की सत्ता स्वीकार कर ली। किन्तु अल्तमश के लौटते ही उसने फिर से विद्रोह कर दिया। अल्तमश को बहुत क्रोध आया और उसने अपने पुत्र नासिरुद्दीन को गयासुद्दीन का दमन करने के लिए भेजा। इस युद्ध में गयासुद्दीन मारा गया और उसकी मृत्यु के बाद बंगाल पर अल्तमश का अधिकार हो गया।

८. ग्वालियर और मालवा पर विजय—अल्तमश के शासन-काल में राजपूतों के छोटे-छोटे राज्य थे और वे अल्तमश के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे थे। अल्तमश आर्यावर्त (उत्तरी भारत) का एकछत्र स्वामी बनना चाहता था। किन्तु ये राज्य उसकी अभिलाषा पूरी नहीं होने दे रहे थे। १२३१ ई० में अल्तमश ने ग्वालियर के राजा मंगलदेव पर आक्रमण कर दिया। राजपूतों ने बहादुरी के साथ सामना किया। किन्तु अल्तमश के सामने वे टिक न सके। इसके पश्चात् सुल्तान अल्तमश ने मालवा, उज्जैन आदि को भी जीत लिया। मालवा जीतने के बाद उसका राज्य सम्पूर्ण उत्तर भारत में हो गया। उसके राज्य की सीमा नर्मदा नदी तक थी। अल्तमश का अन्तिम आक्रमण

पंजाब के खोक्खरों पर था। ये जातियाँ अल्तमश का विरोध करती रहती थीं और अल्तमश के राज्य में अशान्ति फैला रही थीं। अल्तमश पंजाब की ओर जाते समय मार्ग में ही बीमार हो गया और दिल्ली लाया गया। २१ अप्रैल १२३६ को उसकी मृत्यु हो गई।

९. खलीफा द्वारा मान्यता—इतने राज्य जीत लेने पर भी अल्तमश गद्दी पर अपने अधिकार को दुर्बल समझता था। उसने बगदाद के खलीफा से गद्दी का कानूनी अधिपति बनने की अनुमति मांगी। खलीफा ने उसका कानूनी हक मंजूर कर लिया। खलीफा से मान्यता मिल जाने पर अल्तमश के शासन की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। खलीफा ने सुल्तान अल्तमश को सुन्दर शाही वस्त्र भेजे और उसे 'खलीफा का सहायक' का खिताब भी दिया। खलीफा से मान्यता मिलने पर अल्तमश ने अपनी पुस्तकों और सिक्कों पर खलीफा का नाम अंकित करवाया। अब अल्तमश की स्थिति सभी दृष्टि से सुदृढ़ हो गई थी।

१०. चंगेज खाँ का आक्रमण—१२२१ ई० में जब अल्तमश अपने विरोधियों के दमन में लगा हुआ था तब उस पर एक भारी संकट आया। खूँख्वार मंगोल चंगेजखां के नेतृत्व में भारत की सीमा पर आ पहुंचे। ये मंगोल असभ्य और अत्यन्त निर्दयी थे। ये जहां भी जाते थे लूट-मार मचाकर लोगों को नष्ट करते थे और उन्हें तलवार के घाट उतार देते थे। सरदार चंगेज खां मंगोलिया, चीन और मध्य-एशिया को पदाक्रान्त कर ख्वारिज्म के शाह पर आक्रमण कर बैठा। शाह वहां से भागकर अल्तमश की शरण में आया। किन्तु अल्तमश ने उसे अपने यहां शरण देने से इन्कार कर दिया क्योंकि शाह को शरण देने से मंगोल अल्तमश पर आक्रमण कर देते। अल्तमश ने शाह के राजदूत को, जो शाह की ओर से अनुरोध करने आया था, मरवा डाला। शाह भागकर ईरान गया और उसका पीछा करते हुए मंगोल भी वहां से चले गये। इस प्रकार अल्तमश पर आया संकट टल गया और वह मंगोलों के आक्रमण से बच गया।

११. अल्तमश की सफलताओं का मूल्यांकन— अल्तमश गुलाम वंश का श्रेष्ठ शासक था। उसे भारत में मुस्लिम राज्य का संस्थापक माना जाता है। जिस समय यह राज्य कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथ में आया तब यह उचित रूप से संगठित न था। ऐबक ने कुल मिलाकर चार वर्षों तक ही शासन किया था। इस अल्पावधि में वह राज्य के संगठन के लिए कुछ कर नहीं पाया था। अल्तमश ने शासन-भार सम्हालते ही उत्तरी भारत के राज्यों को जीत कर अपने राज्य को संगठित रूप प्रदान किया। "१२११ ई० में अल्तमश को जिस संकट का सामना करना पड़ा वह कोई सरल काम न था। ऐबक हिन्दुस्तान में अपनी सत्ता कायम भी न कर पाया था कि एकाएक दुर्घटना से उसकी मृत्यु हो गई। एल्दोज ने गजनी में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। कुबैचा, जिसने ऐबक का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था, एक अन्य गुलाम के समक्ष आत्मसमर्पण करने वाला नहीं था। ऐबक ने बंगाल को अपनी व्यक्तिगत सत्ता स्वीकार करने पर बाध्य कर दिया था। किन्तु इस प्रान्त का खिलजी सूबेदार अलीमर्दान ऐबक के उत्तराधिकारी की आधीनता में रहने के लिए तैयार न था। अतः अल्तमश को पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं में अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करनी थी।"* अल्तमश ने विरोधियों का पूरी तौर से दमन किया। वह जानता था कि राजपूत राजाओं के रहते भारत में शक्तिशाली मुस्लिम राज्य कभी स्थापित न हो सकेगा। उसने ग्वालियर, मालवा, उज्जैन, तथा माण्डू पर अधिकार जमाकर मुस्लिम राज्य की एक बड़ी बाधा दूर कर दी। अल्तमश के शासनकाल में मुस्लिम राज्य की सीमा नर्मदा नदी तक थी। अल्तमश प्रथम मुसलमान शासक था। जिसकी सत्ता समस्त उत्तरी भारत में व्याप्त थी। अल्तमश को मुस्लिम राज्य का वास्तविक संस्थापक कहा जाए, तो उसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी।

अल्तमश ऐबक का गुलाम था और उस स्थिति से उन्नति कर वह

*S. R. Sharma—*The Crescent in India.*

इतने बड़े राज्य का शासक बन गया यह उसकी योग्यता और दूर-दर्शिता का यथेष्ट प्रमाण है। वह विजेता होने के अतिरिक्त अच्छा शासक भी था। अपने राज्य में शान्ति बनाये रखने के लिये उसने काफी परिश्रम किया। वह कला, शिल्प और साहित्य का आश्रयदाता भी था। उसने दिल्ली में अनेक विद्वानों को राज्याश्रय प्रदान किया। उसने कई मस्जिदें बनवाई थीं और कुतुबमीनार का निर्माण भी उसी ने पूरा करवाया था। उसके काल में दिल्ली इस्लाम सभ्यता का एक बहुत बड़ा केन्द्र बन गई थी। उसके समय का एक इतिहासकार मिनहाज-उस-सिराज लिखता है कि अल्तमश जैसे धार्मिक तथा संन्यासियों, भक्तों, चिकित्सकों और अन्य धर्मों के प्रति श्रद्धा रखने वाले बादशाह उस समय तक नहीं हुए थे।

सुल्ताना रजिया (१२३६ई०—१२४० ई०)

१२. रजिया—अल्तमश का सबसे योग्य पुत्र उसके जीवन काल में ही मर चुका था। उसके अन्य पुत्र निकम्मे और विलासी थे। अतः अल्तमश ने अपनी पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी बनाया। किन्तु अल्तमश के दरबार के अमीरों को एक स्त्री का गद्दी पर बैठना उचित नहीं लगा। उन्होंने अल्तमश के पुत्र रुकनुद्दीन को गद्दी पर बैठाया। रुकनुद्दीन एक दम निकम्मा और विलासी था। उसे गद्दी पर बैठाने से सरदारों को भी मनमानी करने का अवसर मिल सकता था। उसके गद्दी पर बैठने के पश्चात् राज्य का सारा प्रबन्ध उसकी माँ शाह तुर्कान देखने लगी। वह अत्यन्त दुराग्रही थी और उसके कहे अनुसार न करने वाले का अपमान भी कर देती थी। माँ और बेटे ने मिलकर अल्तमश के पुत्र कुतुबुद्दीन को मरवा डाला। वे रजिया को कैद करने का षड्यंत्र भी रच रहे थे। किन्तु उनकी नीचता से दरबार के लोग क्रुद्ध हो गये। इधर राज्य में भी काफी अराजकता फैल गयी थी। थोड़े ही समय बाद मुल्तान, बदायूँ, झाँसी और लाहौर के सूबेदार मिल गये और उन्होंने रुकनुद्दीन को पदच्युत कर दिया। रुकनुद्दीन और

शाह तुर्कान को कैद कर लिया गया और अल्तमश की पुत्री रजिया बेगम को १२३६ ई० में गद्दी पर बैठाया गया।

रजिया अल्तमश के बच्चों में सबसे अधिक योग्य और बुद्धिमान थी। इसी कारण अल्तमश ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया था। रुकनुद्दीन के एक वर्ष के शासन में ही राज्य की स्थिति डांवाडोल हो गई थी। विद्रोह के लक्षण चारों तरफ दिखाई दे रहे थे। ऐसी स्थिति में रजिया गद्दी पर आई थी किन्तु वह निराश नहीं हुई और उसने बड़े धीरज के साथ कठिनाइयों का सामना कर दिखाया। उसने अपने उत्साह और कुशल राजनीति से विद्रोहियों का दमन कर राज्य में शांति स्थापित कर दी। रजिया मर्दाना लिबास पहनती थी और दर-बार में बैठकर स्वयं सारा काम-काज देखती थी। वह घोड़े पर सवार होकर निकलती थी और उसके पीछे-पीछे उसकी सेना चलती थी। रजिया एक योग्य शासक ही नहीं थी वरन् उसे प्रजा की उन्नति का सदा ध्यान रहता था। उसने रणक्षेत्र एवं राजनीति में अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया। किन्तु, उस काल में स्त्री के लिए यह सब उचित नहीं समझा जाता था। अतः कुछ लोग उसके विरोधी हो गये।

१३. रजिया के विरुद्ध विद्रोह—रजिया को पहले पहल कट्टर मुसल-मानों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। उसने इस विद्रोह को शांत कर दिया। किन्तु उसकी कठिनाइयां यहीं समाप्त नहीं हुई। उसने एबीसी-निया के गुलाम याकूत को अपने यहां रख लिया था और यह गुलाम उसका प्रियपात्र बन गया था। मुसलमानों को यह बात पसन्द नहीं आई। याकूत के प्रति उसके व्यवहार के परिणामस्वरूप उसके दरबार के सरदार रुष्ट हो गये। रजिया के विरुद्ध सबसे पहले भटिंडा के सूबे-दार अलतूनिया ने विद्रोह किया। यह विद्रोह बड़ी तेजी से फैल रहा था। अतः उसे दबाने के प्रयोजन से रजिया स्वयं सेना लेकर चल पड़ी। रास्ते में उसके सरदारों और सैनिकों ने रजिया के विरुद्ध बगावत कर दी। याकूत मार दिया गया और रजिया को कारागार में डाल दिया

गया। उसने अलतूनिया को अपने प्रेम-पाश में बाँध लिया और उससे शादी भी कर ली। ये दोनों दिल्ली की गद्दी पर अधिकार जमाने के लिये चल पड़े। इसी बीच रजिया का भाई बहरामशाह गद्दी पर बैठ गया था। रजिया ने उस पर आक्रमण कर दिया। कैथल के मैदान में युद्ध में रजिया और अलतूनिया की हार हुई। वहाँ से भागते समय उन्हें पकड़ लिया गया और १२४० ई० में कैथल के निकट उन्हें मार डाला गया।

१४. **अराजकता और अशान्ति**—रजिया के गद्दी से हटने के कोई छः वर्ष तक राज्य में अराजकता और अशान्ति रही। बहरामशाह उस समय शासक था। उसमें साहस का अभाव न था; किन्तु राज्य को चलाने की न तो उसमें क्षमता थी और न अभिलाषा। "उसके शासन काल में हत्या, छल और षड्यन्त्र का बोलबाला था और जब उसने षड्यंत्रकारियों के दमनार्थ कड़ी कार्यवाही की तो उसके विरुद्ध सर्वत्र असन्तोष फैल गया।"* मंगोलों ने लाहौर पर कब्जा कर लिया और इस लड़ाई में बड़े पैमाने पर रक्तपात हुआ। इसके बाद बहराम पर कई मुसीबतें आईं। बाद में जिस सेना को उसने मंगोलों का दमन करने के लिये रखा था, वही उसके खिलाफ हो गई। १२४२ ई० में इन सैनिकों ने महल को घेर लिया और बहराम शाह मार डाला गया। बहराम शाह के बाद अलाउद्दीन मसूद गद्दी पर बैठा। वह भी निकम्मा और विलासप्रिय था। मसूद के शासनकाल में राज्य का संगठन अत्यन्त शिथिल हो गया था। बंगाल में विद्रोह उठा और बाद में कटक के हिन्दुओं ने बंगाल पर धावा बोल दिया। इसी तरह बिहार में हिन्दुओं ने बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया और पंजाब पर मंगोल जाति के लोग आक्रमण कर बैठे। मसूद की क्रूरता से जनता में उसके प्रति असंतोष फैल गया था। जून १२४६ ई० में उसे पदच्युत कर जेल में डाल दिया गया, जहाँ उसकी जल्दी ही मृत्यु हो गई।

१५. **नासिरुद्दीन महमूद—(१२४६—१२६६ ई०)**—इल्तमश

A Short History of Muslim Rule in India—Ishwari Prasad.

का सबसे छोटा बेटा नासिरुद्दीन था। मसूद के पश्चात् उसे दिल्ली का सुल्तान बनाया गया। नासिरुद्दीन स्वभाव से अत्यन्त विनम्र और सरल था। उसे राजसी शानो-शौकत की बजाय सादा जीवन पसंद था। वह गरीबों और पीड़ितों के प्रति सहानुभूति रखता था। वह अपने गुजारे के लिये खजाने से एक पाई भी नहीं लेता था। उसके घर कोई नौकर-चाकर भी न थे और उसकी बीवी को घर का सारा काम करना पड़ता था। नासिरुद्दीन कुरान लिखकर और टोपियाँ सी-कर अपना निर्वाह करता था। इसमें संदेह नहीं कि उसका जीवन आदर्श था, किंतु राज्य-शासन चलाने के लिए जिस कूटनीति की आवश्यकता होती है वह उसमें नाम को भी न थी। सौभाग्य से उसे बलबन जैसा सुयोग्य मंत्री मिल गया था। बलबन ही राज्य का सारा काम देखता था। अतः वास्तव में वही शासक था। नासिरुद्दीन का शासनकाल बीस वर्ष तक रहा और इस अवधि में बलबन ने अपने कर्त्तव्य को अत्यन्त निष्ठा और योग्यता से निभाया।

१६. चालीस या चहल संगठन—मध्य युग के प्रत्येक मुसलमान राज्य में अनेक गुलाम होते थे। इस्लाम के प्रसार के साथ इन गुलामों की संख्या भी बढ़ती गई। इनमें से कुछ अपने गुणों के कारण शासकों के प्रिय पात्र बन गये थे। उन्हें ऊँचे-ऊँचे पद दिये जाते थे और कुछ तो सेनाध्यक्ष तक बना दिये गए थे। इनमें से कुछ ने अपने मालिकों की लड़कियों से विवाह कर लिया था। अल्तमश ऐबक का गुलाम था, जिसने उसकी पुत्री से विवाह किया था। अल्तमश अपनी योग्यता के ही बल पर दिल्ली का सुल्तान बना था। उसके शासनकाल में कुछ महत्वपूर्ण और बड़े गुलामों ने एक संगठन बनाया, जिसे 'चालीस' या चहल कहा जाता था। बलबन भी इस संगठन का सदस्य था। इस संगठन के सदस्य एकाधिपत्य शासन की आकांक्षा की पूर्ति के लिए संगठित हुए थे और अल्तमश की मृत्यु के बाद जो अराजकता फैली उसके लिए यह संगठन काफी हद तक उत्तरदायी था। चालीस के सदस्य राज्य के बड़े-बड़े पदों और बड़ी-बड़ी जागीरों का स्वयं बटवारा

कर लेते थे। इस संगठन की शक्ति तुर्क सरदारों से भी बढ़ गई थी। अल्तमश की मृत्यु के पश्चात् तो वे इतने शक्तिशाली हो गये कि उन्होंने अल्तमश के वसीयतनामे की अपेक्षा कर रुकनुद्दीन को सुल्तान बना दिया। १२६६ ई० में जब बलबन गद्दी पर बैठा तो उसे भय था कि चालीस के सरदारों का संगठन कहीं उसके विरोध में विद्रोह न कर दे। दूसरे, वह यह भी जानता था कि चहल के रहते-रहते वह कदापि सफल न हो सकेगा। अतः उसने गद्दी पर बैठते ही इस संगठन को निर्मूल कर दिया। 'चालीस' के सरदारों के साथ सख्ती बरती गई और आज्ञा पालन न करने पर उन्हें कड़ा दण्ड दिया गया। बलबन ने इन प्रभावशाली गुलामों की सम्पत्ति आदि की जाँच कराके अनुचित तरीके से प्राप्त सम्पत्ति को जब्त कर लिया। सरदारों से लिया जाने वाला कर भी बढ़ा दिया गया। इस प्रकार चहल को दबा कर शक्तिहीन कर दिया गया।

१७. बलबन का प्रारम्भिक जीवन—बलबन तुर्क की इल्बारी जाति का था। उसका पिता दस हजार परिवारों का खान या स्वामी था। बचपन में बलबन मंगोलों के हाथों में पड़ गया, जिन्होंने उसे बसरा के ख्वाजा जमालुद्दीन के हाथों बेच दिया। ख्वाजा उसे दिल्ली ले आया यहाँ अल्तमश ने उसे खरीद लिया। इस प्रकार बलबन ने भी ऐबक और अल्तमश की तरह गुलामी से अपना जीवन प्रारम्भ किया। अल्तमश ने उसे भिश्ती बना लिया। किन्तु उसे क्या पता था कि यही भिश्ती आगे चलकर दिल्ली के सुल्तान का प्रधान मंत्री और सुल्तान भी बनने वाला है। अपनी योग्यता और परिश्रम के बल पर बलबन ने अल्पकाल में ही अच्छी उन्नति कर ली। अल्तमश के शासनकाल में बलबन 'चालीस' का सदस्य बन गया था। रजिया को अपदस्थ करने में उसका हाथ था। बहराम को उसी ने गद्दी पर बैठाया था और बहराम ने इसके बदले उसे रेवाड़ी की जागीर दे दी थी। बाद में बहराम को हटाकर बलबन ने मसूद को सुल्तान बनाया। मसूद के

भी वही गति हुई जो बहराम की हुई थी। मसूद के बाद नासिरुद्दीन सुल्तान बना और बलबन नासिरुद्दीन का प्रधानमंत्री बना।

१८. बलबन प्रधान मंत्री के रूप में—नासिरुद्दीन जिस समय गद्दी पर बैठा उस समय देश में अराजकता और अशांति फैल रही थी। नासिरुद्दीन को राज-काज में कोई रुचि न थी। अतः उसने शासन का सम्पूर्ण दायित्व बलबन को सौंप दिया। बलबन ने जिस योग्यता से कार्य चलाया उसी का यह परिणाम था कि नवजात मुस्लिम राज्य की रक्षा हो सकी। बलबन ने पहले देश में शांति स्थापित की। देश के सूबेदार और अन्य लोग भी विद्रोह की तैयारी कर रहे थे। इससे राज्य के स्थायी शासन और शांति को बहुत खतरा था। इसके अतिरिक्त मंगोल भी यदा-कदा भारत पर आक्रमण कर देते थे। बलबन ने इन सब कठिनाइयों का निराकरण बड़े सुनियोजित ढंग से किया। उसने डाकू, चोर, लुटेरे जैसे लोगों को कड़ा दंड देकर उनकी गतिविधियों को समाप्त कर दिया। देश में शांति स्थापित कर बलबन ने विद्रोहियों की खबर ली। उसने रावी के पार खोक्खरों का दमन किया। इसके बाद, दोआब में राजपूत जमींदारों के विद्रोह का सफलता से दमन कर दिया। उसने मेवातियों की शक्ति को भी कुचल डाला और चन्देरी और नागौर के सूबेदारों को भी परास्त किया।

१९. बलबन का निष्कासन—बलबन की सफलताओं से 'चालीस' संगठन के सदस्य उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने उसे प्रधान मंत्री के पद से हटाने के लिये षडयंत्र रचा। नासिरुद्दीन की माँ को बलबन का इतना सत्ताशाली हो जाना पसंद न था। इस षड्यंत्र में वह भी शामिल हो गई। रेहान नाम के एक सरदार ने सुल्तान को बलबन के विरुद्ध भड़काया। १२५३ ई० में बलबन को मंत्री के पद से उतार कर निष्कासित कर दिया गया। बलबन के जाने पर रेहान मंत्री बना। उसके मंत्री बनते ही देश में पुनः अशांति और अराजकता फैल गई।

बलबन के शत्रुओं ने अपनी सत्ता का बहुत दुरुपयोग किया। परिणाम-स्वरूप सुल्तान और अन्य सरदारों ने अपनी त्रुटि अनुभव की और बलबन को पुनः मंत्री बना दिया गया। १२५४ ई० में बलबन पुनः मंत्री पद पर आसीन हुआ। *

२०. विद्रोहियों का दमन — मंत्री पद पर आते ही बलबन ने अपने शत्रुओं से बदला लिया। अवध के सूबेदार कुतगुल खाँ ने १२५५ ई० में विद्रोह का झंडा खड़ा किया। इस विद्रोह से बड़ी अशांति फैली, क्योंकि सिंध का सूबेदार तथा कुछ अन्य मुसलमान सरदार और हिन्दू राजा भी अवध के सूबेदार से मिल गये। इन दोनों सूबेदारों ने मिलकर दिल्ली पर धावा बोल दिया। किन्तु बलबन के सामने वे टिक न सके। बलबन ने उन्हें बुरी तरह मार भगाया। इसके अलावा, बलबन ने मेवातियों को भी कुचल दिया। मेवाती दिल्ली के समीपस्थ क्षेत्रों में बसे हुए थे और इनकी लूट-मार से जनता बहुत त्रस्त थी। १२६० ई० में बलबन ने इन पर जोरदार आक्रमण किया और उसके बाद मेवातियों का उपद्रव हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

बलबन (१२६६ ई० — १२८६ ई०)

२१. बलबन का राज्यारोहण—१२६६ ई० में नासिरुद्दीन की मृत्यु हो गई। नासिरुद्दीन ने बलबन को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। अतः १२६६ में बलबन सुल्तान बना। गद्दी पर बैठने के बाद उसने गयासुद्दीन की उपाधि धारण की। बलबन के समक्ष कई कठिनाइयाँ थीं, किन्तु उसने अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम से सबको हल कर दिया। विद्रोहियों के कारण देश में अराजकता की भावना बलवती होती जा रही थी। इससे मुस्लिम राज्य के अस्तित्व को भी खतरा था। अतः बलबन ने निश्चयपूर्वक और निर्ममता से विद्रोहियों का नाश

* अलीगढ़ में एक मीनार पर अंकित प्रशस्ति में सुल्तान (नासिरुद्दीन) ने मंत्री (बलबन) की सफलताओं का वर्णन किया था। वह प्रशस्ति १२५५ ई० में लिखी गई थी और छः सौ वर्ष बाद १८६१ ई० में उसे नष्ट कर दिया गया।

किया। उस समय मेवातियों की लूट-मार बहुत बढ़ गई थी। वे शहर में घुस आते थे और लोगों को तंग किया करते थे। बलबन ने इनके उपद्रवों को हमेशा के लिये शान्त कर देने का निश्चय किया। उसने आस-पास के घने जंगल साफ करवा दिये और मेवातियों को चुन चुन कर दंड दिया। हजारों मेवाती कत्ल कर दिये। मेवातियों के क्षेत्र में अफगान पहरेदार रखे गये। इसके बाद दोआब के हिन्दू विद्रोहियों की बारी आई। ये हिन्दू लुटेरे दिल्ली से बंगाल जाने वाली सड़क पर लूट-मार करते थे। बलबन स्वयं इस क्षेत्र में गया और उसने हजारों लुटेरों और डाकुओं को मौत के घाट उतार कर वहाँ शान्ति स्थापित कर दी। बलबन ने कटेहर के विद्रोहियों का जो दमन किया वह भी उल्लेखनीय है। कटेहर के हिन्दुओं की बढ़ती हुई शक्ति से मुस्लिम राज्य को बहुत खतरा था। वे इतने शक्तिशाली हो गये थे कि बदायूँ और अमरोहा के सूबेदार उन्हें काबू में नहीं रख पा रहे थे। बलबन ने आक्रमण का नेतृत्व करते हुए कटेहर में इतने विद्रोहियों को कत्ल किया कि 'उनके शवों की दुर्गन्ध गंगा तक फैल गई थी।'

२२. मंगोलों का दमन—मंगोलों का आक्रमण पश्चिमोत्तर से होता था। उसे रोकने के लिये बलबन ने अपने पुत्र मुहम्मद को वहाँ भेजा। पश्चिमोत्तर प्रदेश में नये किले बनाये गये और पुराने किलों की मरम्मत कर उन्हें सुदृढ़ बनाया गया। इस प्रकार पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा का उचित प्रबन्ध हो गया। इसके अलावा बलबन ने मुल्तान, दीपालपुर और समाना क्षेत्रों को सामरिक क्षेत्र घोषित कर वहाँ विशाल सेनायें नियुक्त कर दीं। इन सेनाओं के लिए कुशल और अनुभवी सेनापति भी वहाँ रखे गये। मंगोलों से बचने के लिए बलबन ने जो प्रबन्ध किया, वह उचित ही था। मंगोलों ने मध्य-एशिया के बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया था और भारत में वे लाहौर सिन्ध, मुल्तान को लूट चुके थे। मंगोल बर्बर और अत्यन्त क्रूर थे। अमीर खुसरो एक बार मंगोलों के हाथ में फँस गया। वह लिखता है

कि 'वे एक हजार से अधिक विधर्मी तातार तथा अन्य कबीलों के सैनिक थे। वे ऊँटों पर सवार होकर चलते थे, बहुत बहादुर थे, उनके शरीर इस्पात की तरह दृढ़ थे। उनके चेहरे लाल थे और उनकी आकृति देखकर लोग डर जाते थे।' बलबन राजधानी से बाहर नहीं जाता था, क्योंकि उसे भय था कि सीमा प्रान्त में आक्रमणों और उनके लिए किए गये प्रबन्ध के समाचार उसे मिल न सकेंगे। बलबन की सुनियोजित व्यवस्था से मंगोलों के आक्रमण कम होने लगे। १२८५ ई० में मंगोलों के साथ युद्ध करते हुये उसका प्यारा पुत्र मुहम्मद मारा गया। इस घटना से बलबन के हृदय को बहुत धक्का लगा और १२८६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

२३. **बलबन के शासन की प्रतिष्ठा**—बलबन से पहले के शासकों ने अपनी विलासप्रियता और अयोग्यता से दरबारियों की हिम्मत बढ़ा दी थी। शासन के प्रभाव, सम्मान और प्रतिष्ठा का महत्व कम हो गया था। 'चालीस' का सगठन अत्यन्त शक्तिशाली हो गया था। बलबन ने इन दोषों को दूर करने के लिये राज्योचित गम्भीरता से रहना प्रारम्भ कर दिया। उसने सरदारों से मिलना-जुलना बहुत कम कर दिया। वह अपने सामने किसी प्रकार की ओछी बात या हँसी-मजाक सहन नहीं करता था। उसने शाही वस्त्र पहन कर दरबार में आना शुरू कर दिया। उसने यह नियम बना दिया कि उससे मिलने वाले हर व्यक्ति को दरबारी पोशाक पहन कर आना होगा। उसके नौकर भी दरबारी लिबास में रहते थे। इस प्रकार बलबन के व्यक्तिगत जीवन और दरबार की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और उसके दरबार के सरदार नियमों का पालन करने लगे। बलबन के दरबार की ख्याति फैल गई और दूर-दूर से लोग उसका दरबार देखने आते थे। बलबन अत्यन्त न्यायप्रिय था। वह किसी के साथ रियायत नहीं करता था। उसके एक अमीर ने अपने गुलाम को कोड़ों से पिटवा कर मरवा दिया था। बलबन ने हुक्म दिया कि उस अमीर को भी कोड़े

लगाए जायें। साथही जिन गुप्तचरों ने गुलाम की हत्या की सूचना नहीं दी थी, उन्हें भी मरवा डाला। उसके राज्य में गुप्तचरों का जाल-सा बिछा हुआ था ये गुप्तचर उसे कर्मचारियों के कार्य और राज्य की प्रत्येक घटना व प्रजा की स्थिति के विषय में समाचार दिया करते थे। बलबन बहुत सावधान और सशंकित रहता था। उसके गुप्तचर उसके पुत्रों की गतिविधियों के समाचार भी उसे देते थे। इसमें सन्देह नहीं कि बलबन का शासन उसके निपुण गुप्तचरों पर पर्याप्त रूप से निर्भर था।

२४. लौह-पुरुष बलबन—बलबन जीवन भर के संघर्ष के उपरांत सुल्तान के पद तक पहुंचा था। उसने तत्कालीन परिस्थिति देखकर यह जान लिया था कि केवल तलवार और आतंक के बल पर ही शासन सम्भव है। उसने निर्भयता से शत्रु और विद्रोही दोनों को दबाया। बलबन की नीति की तुलना कुछ इतिहासकार जर्मनी के प्रिंस बिस्मार्क की नीति से करते हैं। बलबन ने बिस्मार्क की भांति ही अपने राज्य को संगठित करने के लिए इस नई नीति का, जिसे 'खून और तलवार की नीति' कहा जाता है, पालन किया था। उसके समक्ष राज्य का हित सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। राज्य के हित में उसने कभी किसी दोस्त या रिश्तेदार को नहीं आने दिया। उस समय के अराजक वातावरण में यह नीति वांछित भी थी और इसके अभाव में मुस्लिम राज्य बच जाता, यह बहुत सन्देहास्पद था। बंगाल के विद्रोह का दमन इस नीति का उल्लेखनीय उदाहरण है। बंगाल के सूबेदार तुगरिल खां ने विद्रोह कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। उसका विचार था कि दिल्ली बंगाल से बहुत दूर है और बलबन मंगोलों से टक्कर लेने में व्यस्त है। अतः उसका आधिपत्य कोई हटा नहीं सकता। बलबन ने विद्रोह का समाचार मिलते ही अमीर खां के आधीन एक सेना बंगाल की ओर भेज दी। इस लड़ाई में अमीर खां हार कर भाग गया। दूसरी बार भेजी गई सेना भी तुगरिल खां को

परास्त न कर सकी। अब बलबन को बहुत क्रोध आया और वह स्वयं बंगाल पर चढ़ आया। तुगरिल खाँ बलबन के आतंक से राजधानी छोड़कर जंगलों में जा छिपा, किन्तु बलबन ने उसे ढूंढ़ निकाला और विद्रोही प्रजा से भी बदला लिया गया। लखनौती के दो मील लम्बे बाजार में दोनों किनारों पर लकड़ी के खूंटे गाड़ दिये गए और अभागे विद्रोहियों तथा उनके सम्बन्धियों के शव उन पर टांग दिये गये। इतिहासकार बर्नी लिखता है कि "यह हत्याकांड दो-तीन दिनों तक चलता रहा और देखने वाले लोग भी मारे भय के अधमरे हो गए।"* इस प्रकार बलबन ने लोगों के दिलों में भय और आतंक पैदा कर दिया।

२५. बलबन का मूल्यांकन—बलबन गुलाम वंश का सबसे महान शासक था। उसने अराजकता और अशांति नष्ट कर मुस्लिम राज्य की रक्षा की और बाद में उसे सुदृढ़ भी बनाया। अनुशासन और निपुणता से उसने दिल्ली के सिंहासन की मर्यादा और प्रतिष्ठा को पुनः उन्नत किया। विद्रोहियों का दमन उसके काल की उल्लेखनीय घटना है। किन्तु बलबन अत्याचारी नहीं था। प्रजा का हित उसके लिए सर्वोपरि था। उसके राज्य में रंक-राव और अमीर-गरीब सब समान थे। वह साहित्य का अनुरागी और आश्रयदाता भी था। देश के कई विद्वान उसके दरबार में राज्याश्रय पाते थे। अमीर खुसरो उसके दरबार के साहित्यिकों में उल्लेखनीय है। डा० ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में "बलबन एक महान् योद्धा, शासक तथा राजनीतिज्ञ था और उसने संकटकालीन अवस्था में नवजात मुस्लिम राज्य को विनाश से बचाया। भारत के मध्यकालीन इतिहास में बलबन का नाम महत्वपूर्ण है।"

२६. गुलाम वंश का अंत—बलबन का प्रिय पुत्र मुहम्मद १२८५ ई० में मंगोलों से युद्ध करते समय मारा गया था। उसकी मृत्यु से बलबन को बहुत चोट पहुँची और एक वर्ष बाद ही १२८६ ई० में उसका निधन हो गया। बलबन की मृत्यु के बाद कोई योग्य शासक

* *The Ground work of Indian History.*

गद्दी पर नहीं बैठा। मरते समय उसने मुहम्मद के पुत्र कै-खुसरू को गद्दी का उत्तराधिकारी बनाया था। किन्तु बलबन के मरने के बाद अमीरों ने बलबन के पौत्र कैकुबाद को गद्दी पर बैठाया। कैकुबाद की आयु केवल सत्रह वर्ष थी। गद्दी पर आते ही उसने विलासता आरम्भ कर दी और वह अपने बाप बुगरा खां का विरोध भी करने लगा। बुगरा खां ने उसे उचित मार्ग पर लाने की कोशिश की किन्तु वह असफल रहा। राज्य में सर्वत्र अराजकता फैल गयी और शासन की सारी सत्ता शहर के कोतवाल के पुत्र निजामुद्दीन ने हथिया ली। निजामुद्दीन दिल्ली का सुल्तान बनना चाहता था। अतः उसने पहले कै-खुसरू की हत्या करवा दी। सरदारों ने इस दुष्कर्म का विरोध किया पर निजामुद्दीन ने उन्हें भी दण्ड दिया। इसके बाद उसने कैकुबाद की हत्या का षड्यन्त्र रचा, किन्तु उसकी योजना का भंडाफोड़ हो गया और उसे कुचल दिया गया। इसके बाद राज्य में दो शक्तिशाली दलों ने अपना सिर उठाया। इनमें से एक खिलजी दल और दूसरा तुर्की दल था। खिलजी दल का नेता जलालुद्दीन था। उसने तुर्कों को दबाकर कैकुबाद की हत्या करवा दी। जलालुद्दीन खिलजी १३ जनवरी १२९० ई० को दिल्ली का सुल्तान बन बैठा और इस प्रकार गुलाम वंश का अन्त हो गया।

प्रश्न

1. Why is the "Slave Dynasty" so called? Form an estimate of the work and achievements of Qutub-ud-din Aibak.

"गुलामवंश" का यह नाम क्यों पड़ा? कुतुबुद्दीन ऐबक के कार्यों तथा उसकी सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

2. What were the difficulties before Altamash and how did he overcome them?

अल्तमश के सामने क्या-क्या कठिनाइयाँ थीं और उसने उन पर कैसे विजय की ?

3. Form an estimate of the work and achievements of Altamash.

अल्तमश के कार्यों तथा उसकी सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

4. Describe the policy of "Blood and Iron" of Balban.

बलबन की 'खून तथा तलवार' की नीति का वर्णन कीजिए।

5. Give an account of the reign of Sultana Razia.

सुलताना रजिया के शासनकाल का वर्णन कीजिए।

6. Form an estimate of the work and achievements of Balban.

बलबन के कार्यों तथा उसकी सफलताओं का मूल्यांकन कीजिये।

7. Write notes on :—

(1) Nasir-ud-din ;

(2) Suppression of Mongols ;

(3) "Forty".

निम्नलिखित पर नोट लिखिए—

(१) नासिरुद्दीन ;

(२) मंगोलों का दमन ;

(३) 'चालीस' या चहल।

—: ० :—

अध्याय १७

खिलजी साम्राज्य

जलालुद्दीन खिलजी (१२६० ई०—१२६६ ई०)

१ खिलजी वंश का उदय—गुलाम वंश का अन्तिम शासक कैकुबाद एक अयोग्य शासक था। उसकी हत्या के बाद दरबार में दो दल बन गये थे। एक का नेता फिरोजशाह था और दूसरे का मलिक छज्जू। भारत में आये मुसलमान एक ही धर्म के अनुयायी होते हुये भी एक-दूसरे से ईर्ष्या रखते थे। गुलाम वंश के शासक तुर्क थे और खिलजी अपने आपको अफगान बताते थे। इन दोनों दलों का वैमनस्य कैकुबाद की मृत्यु के समय काफी बढ़ गया था। खिलजियों ने फिरोजशाह के नेतृत्व में अपना संगठन बनाया और कैकुबाद के मरते ही उन्होंने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। फिरोजशाह ने जलालुद्दीन की उपाधि धारण की और वह दिल्ली का सुल्तान बन गया। किन्तु जनता जलालुद्दीन की इतनी विरोधी थी कि उसे एक वर्ष तक दिल्ली के निकट कुलोगढ़ी गांव में रहना पड़ा। बाद में जब जनता का विरोध कम हो गया तो वह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते समय जलालुद्दीन सत्तर वर्ष का था। उसने जवानी में चाहे कितने ही युद्ध लड़े हों, पर अब वह अत्यन्त दयालु और शांतिप्रिय बन गया था।

२. जलालुद्दीन का अति-उदार और निर्बल शासन—जलालुद्दीन का राज्यारोहण कैकुबाद की हत्या और उसके बाद हुई क्रान्ति से ही संभव हो सका था। उसकी प्रजा इन सब बातों के कारण उससे अप्रसन्न थी। जलालुद्दीन को सरदारों के विद्रोह का अत्यन्त भय था। अतः उसने भूमि एवं धन देकर कई सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया। जला-

लुद्दीन स्वभाव से नम्र और रक्तपात का विरोधी था। उस समय जो अराजकतापूर्ण वातावरण व्याप्त था, उसमें वह एक शासक के नाते अयोग्य था। वह अपराधियों को दण्ड भी नहीं देता था बल्कि उन्हें उदारतापूर्वक क्षमा कर देता था। लोगों की शिकायत थी कि जलालुद्दीन न तो शत्रुओं को सजा देना जानता है और न उसे अपने सहायकों को खुश रखना ही आता है। श्री एस० आर० शर्मा ने उसे 'दयालु सुल्तान फिरोज" कहा है। उनके शब्दों में फिरोजशाह खून और तलवार के युग में सुल्तान बनने योग्य न था क्योंकि वह अति-उदार था। उनकी अति उदार नीति और निर्बल शासन के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं—

(क) मलिक छज्जू का विद्रोह—जलालुद्दीन जब गद्दी पर आया तो उसके विरुद्ध मलिक छज्जू ने विद्रोह कर दिया। मलिक छज्जू इलाहाबाद से चालीस मील की दूरी पर कड़ा की जागीर का मालिक था। वह बलबन का भतीजा था और उसने कुछ सरदारों को मिला कर विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। उसने दिल्ली पर आक्रमण किया किन्तु बदायूं के निकट फिरोजशाह के पुत्र अरकली खां ने उसे हरा दिया। मलिक छज्जू को फिरोज के सामने पेश किया गया। फिरोजशाह ने उसे कड़ा दण्ड देने के बजाय उसकी बड़ी आव-भगत की और उसे शराब भी पिलाई। सुल्तान के इस सहिष्णु व्यवहार से उसके कई दरबारियों को बुरा लगा। अहमद चाप नामक दरबारी ने सुल्तान को कड़ाई बरतने की सलाह भी दी किन्तु सुल्तान ने उस पर ध्यान नहीं दिया।

(ख) ठगों और चोरों पर दया—सुल्तान की अति उदार नीति से चोरों और ठगों को पूर्ण प्रोत्साहन मिला। उनकी लूट-मार से जनता बहुत तंग आ गई। एक बार ये ठग हजारों की संख्या में पकड़े गये। सुल्तान ने इन्हें दण्ड देने की बजाय बंगाल की तरफ भिजवा दिया और वहाँ उन्हें छोड़ दिया गया। सुल्तान की इस नीति से सरदारों में बहुत असन्तोष फैल गया और वे उसे गद्दी से हटाने की योजना बनाने

लगे। किन्तु इस षड्यन्त्र की सूचना जलालुद्दीन को मिल गयी। उसने विद्रोही सरदारों को पकड़वाया और उनके सामने विद्रोह के दुष्परिणामों पर एक भाषण देकर उन्हें छोड़ दिया। इन विद्रोहियों में जो प्रमुख थे, उन्हें दरबार से केवल एक वर्ष के लिए निकाल दिया गया।

(ग) रणथंभौर पर आक्रमण—सुल्तान ने रणथंभौर के किले को जीतने के लिये वहां घेरा डाल दिया। राजपूतों ने डटकर सुल्तान का मुकाबला किया पर विजय की कोई आशा न देखकर सुल्तान ने यह कहकर, "कि ऐसे सैकड़ों किलों का मूल्य एक सच्चे मुसलमान के सिर के बाल के बराबर भी नहीं है"* घेरा उठवा दिया और सेना को दिल्ली लौटने का आदेश दे दिया। सुलतान के एक प्रमुख अमीर अहमद चाप ने इस पलायनवादी नीति का विरोध किया। किंतु, सुलतान ने उसकी एक न सुनी। इसी प्रकार सुलतान ने मंगोलों के प्रति उदार व्यवहार किया। मंगोलों ने १२९२ ई० में भारत पर आक्रमण कर दिया। जलालुद्दीन की जगह कोई अन्य शासक होता तो मंगोलों को या तो मरवा दिया जाता या उन्हें खदेड़ दिया जाता, किन्तु जलालुद्दीन ने उन्हें क्षमा कर दिया और दिल्ली के समीपस्थ क्षेत्र में उन्हें बसने की अनुमति भी दे दी। इन मंगोलों ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया और वे 'नये मुसलमान' कहलाने लगे।

३. दरवेश सिद्दी मौला का वध—जलालुद्दीन ने अपने शासनकाल में एक ऐसा कार्य किया, जो उसकी अति उदार नीति का अपवाद ही नहीं वरन् उसके लिये एक कलंक बन गया। सिद्दी मौला एक दरवेश था। वह बहुत उदार और दयालु था। गरीब लोग उससे हमेशा सहायता प्राप्त करते थे। कई बड़े-बड़े सरदार भी मौला का सम्मान करते थे। सुल्तान को मौला का जीवन और उसकी सम्पत्ति देखकर उस पर संदेह हुआ। उसे किसी ने झूठी खबर भी दी कि सिद्दी मौला सुल्तान को मार कर भारत का खलीफा बनना चाहता है। जलालुद्दीन

The Cambridge Shorter History of India.

ने सिद्दी को बुलवाया। मुलाकात में सिद्दी मौला जलालुद्दीन को अपने सदाशय का प्रमाण न दे सका। जलालुद्दीन ने उसे वहीं मरवा डाला। कहा जाता है कि उसकी मृत्यु के समय आंधी और तूफान आये और बाद में राज्य में अकाल भी पड़ा। सिद्दी मौला के वध से उसके दरबार के सरदारों में बहुत असंतोष फैल गया।

४. जलालुद्दीन का वध—जलालुद्दीन का भतीजा अलाउद्दीन बहुत योग्य सैनिक और साथ ही महत्वाकांक्षी था। अलाउद्दीन कड़ा का सूबेदार था। दक्षिण में देवगिरि के यादव राजाओं की अपार सम्पत्ति और ऐश्वर्य का वर्णन सुनकर उसने दक्षिण पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। किन्तु उसने इस बात को गुप्त रखा और सुल्तान से उसने कह दिया कि वह मालवा पर आक्रमण करने जा रहा है। सुल्तान ने उसे अनुमति दे दी। १२९४ ई० में उसने ८,००० सैनिकों को लेकर देवगिरि के राजा रामचन्द्र पर आक्रमण कर दिया। रामचन्द्र बुरी तरह हारा और उसने अलाउद्दीन से संधि कर ली। अलाउद्दीन को विजय के परिणामस्वरूप सोना, बहुमूल्य वस्तुएँ और ऐसी-ही बहुत-सी अन्य सामग्री मिली। रामचन्द्र के पुत्र शंकरदेव को यह बहुत बुरा लगा और उसने अलाउद्दीन से सारी सम्पत्ति लौटा देने को कहा। अलाउद्दीन राजी न हुआ और शंकरदेव के साथ हुए युद्ध में उसने पुन: विजय प्राप्त की। अलाउद्दीन ने एलिचपुर को दिल्ली के साम्राज्य में शामिल कर लिया और हर्जाने में कई मन सोना, हीरे-मोती तथा बहुमूल्य वस्तुएं प्राप्त कीं।

अलाउद्दीन का दक्षिण आक्रमण बहुत महत्वपूर्ण था। एक तो उसे वहाँ से अपार सम्पत्ति मिली, जो उसने जलालुद्दीन को गद्दी से हटाने में खर्च की। दूसरे इस आक्रमण ने मध्यकाल के मुसलमान शासकों को दक्षिण आक्रमण के लिए भविष्य में कई बार प्रेरित किया। अलाउद्दीन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अत्यन्त महत्वाकांक्षी युवक था। दक्षिण से लौटते समय उसने अपने चाचा दिल्ली के

सुल्तान जलालुद्दीन की हत्या की योजना बना ली । कड़ा पहुँचकर उसने यह बात फैला दी कि उसे जलालुद्दीन की नाराजी का भय है क्योंकि दक्षिण का आक्रमण उसने सुल्तान की अनुमति लिये बिना ही कर दिया था। सुल्तान अपने भतीजे अलाउद्दीन की दक्षिण विजय से अत्यंत प्रसन्न था और वह स्वयं उससे मिलने आया। गंगा को पार कर वह कड़ा पहुंचा और वहाँ जब चाचा-भतीजे की भेंट हुई तो सुल्तान ने बड़े प्रेम से अलाउद्दीन को गले लगाया। उसी समय अलाउद्दीन के एक सेवक इख्तियारउद्दीन ने अलाउद्दीन का संकेत पाकर जलालुद्दीन की गर्दन उड़ा दी। इस प्रकार अपने चाचा का वध करके अलाउद्दीन गद्दी हथियाने के लिए दिल्ली की ओर बढ़ा।

अलाउद्दीन खिलजी (१२९६ ई०—१३१६ ई०)

५. **अलाउद्दीन का राज्यारोहण**—जलालुद्दीन की हत्या कर देने के पश्चात् अलाउद्दीन १२९६ ई० में दिल्ली की गद्दी पर बैठा। किन्तु उसकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। सरदार उसके विरुद्ध थे और सुल्तान की हत्या के कारण जनता उससे अप्रसन्न थी। उधर जलालुद्दीन की विधवा अपने पुत्र अरकली खाँ और कादिर खाँ को गद्दी पर बैठाने के लिए प्रयत्नशील थी। अलाउद्दीन के गद्दी पर आने से पहले सरदारों ने कादिर खाँ को रुकनुद्दीन की उपाधि देकर उसे सुल्तान बना दिया था। अलाउद्दीन ने दक्षिण से प्राप्त सम्पत्ति को मुक्त हस्त से लुटाया। सरदारों को उसने उपहार और ओहदे देकर अपने पक्ष में कर लिया। अलाउद्दीन जब दिल्ली आया तो रुकनुद्दीन ने उसका सामना किया। किन्तु रुकनुद्दीन के सैनिकों और सहायकों ने विश्वासघात किया और फलस्वरूप वह मुलतान की ओर भाग गया। अलाउद्दीन ने उसके सहायकों को कड़ा दंड दिया। उनकी जागीरें आदि छीन ली गईं और कुछ को मरवा दिया गया। मुलतान में कादिर खाँ (रुकनुद्दीन) और अरकली खाँ पकड़ लिये गए। अलाउद्दीन ने उन दोनों की आँखें फुड़वा दीं और उनकी माता को कैद में डाल दिया। अक्तूबर १२९६ ई० में अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा और उसने

अपने विरोधियों को सम्पत्ति आदि देकर अपनी ओर कर लिया।

६. **मंगोलों का आक्रमण**—मंगोलों के आक्रमण भारत पर प्रायः ५० वर्ष से हो रहे थे। अलाउद्दीन के समय में उनके आक्रमण बड़े पैमाने पर होने लगे। मंगोलों का पहला आक्रमण १२९७ ई० में अमीर-दाऊद के नेतृत्व मे हुआ। दाऊद ने मुलतान और सिंध पर कब्जा कर लिया था किन्तु सुलतान के सेनापति उलुग खां ने उसे परास्त कर भगा दिया। १२९८ ई० में उन्होंने कुतलुग ख्वाजा के नेतृत्व में भारत पर पुन: आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में कोई दो लाख मंगोल सैनिक सम्मिलित थे। उन्होंने लूटमार, हत्या आदि करके बहुत आतंक फैला दिया। दिल्ली के उत्तर की ओर उत्तर-पश्चिम के लोगों ने भाग-कर दिल्ली में शरण ली। कहा जाता है कि मंगोलो के डर से इतने लोग दिल्ली आ गये थे कि मस्जिदो में भी कोई जगह न बची। अलाउद्दीन ने स्वय रणक्षेत्र में जाकर मंगोलों का मुकाबला किया। घमासान युद्ध हुआ, जिसमें मंगोलों की बुरी तरह हार हुई। मुसलमान सैनिकों ने उनका मीलों तक पीछा किया और असंख्य मंगोल मौत के घाट उतार दिये गए। इस हार से मंगोलों का साहस बहुत कम हो गया। किन्तु १३०४ ई० में उन्होंने अली बेग और ख्वाजा ताश के नेतृत्व में फिर भारत पर आक्रमण किया। गाजी तुगलक ने उनका सामना किया और मंगोल फिर हार गये। इस युद्ध में असंख्य मंगोल मारे गये। इसके पश्चात् १३०७ ई० में मंगोलों का अंतिम आक्रमण इकबालमन्द के सेनापतित्व में हुआ। गाजी तुगलक ने उन्हें फिर परास्त कर दिया। इस युद्ध में इकबालमन्द भी मारा गया।

७. **मंगोलों का दमन** - मंगोलों के आक्रमण यों तो एक अर्से से हो रहे थे किन्तु अलाउद्दीन के शासन काल में उनके आक्रमण बड़े पैमाने पर होने लगे थे। उनके आक्रमणों से बहुत आतंक फैल गया था और राज्य के अस्तित्व को भी खतरा पैदा हो गया था। अतः अलाउद्दीन ने उनके दमन के लिए वही सुनियोजित नीति अपनाई, जो बलबन ने अपनाई थी। उसने सीमावर्ती क्षेत्रों को शक्तिशाली बनाया

और वहाँ विश्वासपात्र सैनिकों को नियुक्त कर दिया। पुराने किलों की मरम्मत की गई और नये किले भी बनवाये गये, जो अत्यंत मजबूत थे। इन किलों में कुशल एवं अनुभवी सेनापति नियुक्त किये गये। दिपालपुर और समाना जैसे महत्वपूर्ण स्थानों में उसने चौकियाँ बनवा दीं और गाजी तुगलक को वहाँ रखा गया। अलाउद्दीन ने अपनी सेना का नये सिरे से संगठन किया और नवयुवक सैनिकों की बड़ी संख्या में भर्ती की गई। देश में हथियार बनाने के कारखाने प्रारंभ किये गये और शस्त्रास्त्र बड़े जोरों से बनने लगे। जलालुद्दीन के शासनकाल में दिल्ली के समीपवर्ती क्षेत्रों में बसे 'नये मुसलमानों' ने अलाउद्दीन के विरुद्ध विद्रोह करने का प्रयत्न किया तो अलाउद्दीन ने कत्ले-आम का आदेश दे दिया। पन्द्रह हजार से भी अधिक लोगों को एक ही दिन में कत्ल कर दिया गया। अलाउद्दीन की इस दमनात्मक नीति का परिणाम यह हुआ कि अलाउद्दीन के जीते-जी मंगोल हिन्दुस्तान का नाम लेने से भी डरते थे।

८. **अलाउद्दीन की महत्वाकांक्षायें**—मंगोलों का दमन कर देने के पश्चात् अलाउद्दीन को अपनी सत्ता पर बड़ा घमण्ड हो गया। वह मोहम्मद की तरह पैगम्बर बनकर एक नया धर्म चलाना चाहता था। दूसरे, उसकी अभिलाषा सिकन्दर के समान विश्व विजेता बनने की थी। उसने इन दोनों बातों के विषय में दिल्ली के कोतवाल काजी अला-उल-मुल्क से सलाह ली। काजी ने उसे समझाया कि धर्म प्रचार पैगम्बरों का काम है और एक राजा को धार्मिक बातों में दखल देना उचित नहीं होता। विश्व-विजय को लेकर काजी ने उससे कहा कि किसी राजा का वैभव उसकी विजयों से ही देखा जाता है किन्तु, दिल्ली की स्थिति अन्य राज्यों से भिन्न है। मंगोलों के आक्रमण से जनता बार-बार पीड़ित हो जाती है और सुलतान की अनुपस्थिति में शासन को ठीक से चलाने के लिये उसके पास कोई योग्य वजीर भी नहीं है। इसके अतिरिक्त देश में ही रणथंभोर-मालवा, मेवाड़ जैसे हिन्दू राज्य हैं, जिन्हें जीता जाना चाहिये। इन सब बातों को सुनकर अलाउद्दीन

ने सिकन्दर और पैगम्बर बनने की अभिलाषा त्याग दी और वह खिलजी साम्राज्य के विस्तार में प्राणपण से जुट गया।

९. उत्तरी भारत में साम्राज्य विस्तार—सबसे पहले अलाउद्दीन ने रणथंभौर के प्रसिद्ध किले को जीतने का निश्चय किया। किन्तु, इससे पहले १२९६ ई० में उसने गुजरात पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। राजा कर्णदेव अलाउद्दीन की सेना के सामने टिक नहीं सका और वह भाग कर दक्षिण में राजा रामचन्द्र की शरण में चला गया। किन्तु, उसकी सुन्दर पत्नी कमला देवी को पकड़ लिया गया और अलाउद्दीन ने उससे विवाह कर लिया। गुजरात के बन्दरगाहों को लूट कर मुसलमानों ने काफी सम्पत्ति एकत्र कर ली। सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर भी लूटा गया। किन्तु, रणथम्भौर की विजय इतनी सरल नहीं थी। रणथम्भौर का राजा हमीर अत्यन्त वीर और साहसी था। अलाउद्दीन की सेना पहले आक्रमण में किला न जीत सकी। दूसरी बार स्वयं अलाउद्दीन ने आक्रमण का नेतृत्व किया और १३०१ ई० में रणथभौर का किला अलाउद्दीन के हाथ आ गया।

इसके बाद अलाउद्दीन ने मेवाड़ की ओर ध्यान दिया। मेवाड़ राजपूताने का महत्वपूर्ण राज्य था और इसकी राजधानी चित्तौड़ थी। यह नगर पहाड़ी पर बसा हुआ था और इसमें रसद-पानी का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। कहा जाता है कि अलाउद्दीन मेवाड़ के राजा रत्नसिंह की पत्नी पद्मिनी की सुन्दरता की ख्याति सुनकर मेवाड़ जीतने चला था। चित्तौड़ पर १३०३ ई० में उसने आक्रमण कर दिया। राजपूत बड़ी बहादुरी से लड़े किन्तु, जब उन्हें जीतने की कोई आशा न रही तो वे केसरिया बाना पहिन कर युद्ध करते हुए धराशायी हो गये। रानी पद्मिनी ने किले की अन्य स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। चित्तौड़ का किला अभेद्य था और इसलिये उसे जीतने पर अलाउद्दीन का हौसला बहुत बढ़ गया। उसने मुल्तान के सूबेदार को मालवा पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया। मालवा का राजा बड़ी बहादुरी से लड़ा किन्तु हार गया। इसी प्रकार मांडू, उज्जैन और चन्देरी के

शासक अलाउद्दीन के हाथों पराजित हुए और उन्होंने अलाउद्दीन का आधिपत्य स्वीकार कर लिया । १३०५ ई० तक अलाउद्दीन का साम्राज्य प्रायः समस्त उत्तर भारत में फैल गया था ।

१०. दक्षिण की विजय—उत्तरी भारत में अपने साम्राज्य को मजबूत बना लेने के पश्चात् अलाउद्दीन ने दक्षिण की ओर मोर्चा बढ़ाया । विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में विजय के लिये जाने वाला अला-उद्दीन पहला मुसलमान शासक था । दक्षिण पर विजय करने की अभिलाषा उसे बहुत दिनों से थी । एक कारण तो यह था कि उसकी सेना बहुत बड़ी थी और उसे धन की आवश्यकता थी । दक्षिण का विदेशी व्यापार उन्नत होने से वहां अपार धन सम्पत्ति थी । दूसरे, राजा रामचन्द्र ने, जिसने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था, कर देना बन्द कर दिया था । दक्षिण में उस समय चार शक्तिशाली राज्य थे—(१) देवगिरी के यादव (ख) वारंगल के काकतीय (ग) द्वारसमुद्र के होयसल और (घ) मालावार के पाण्ड्य । ये राज्य आपस में लड़ा करते थे और संगठित न होने के कारण अलाउद्दीन का मुकाबला नहीं कर सके ।

(१) देवगिरी और वारंगल की विजय—१३०७ ई० में मलिक काफूर के सेनापतित्व में एक विशाल सेना ने देवगिरी पर आक्रमण किया । रामचन्द्र हार गया और उसे बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया । अलाउद्दीन ने उसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया और उसे 'राय-रायान' की उपाधि भी दी । राजा रामचन्द्र इस तरह अलाउद्दीन का अच्छा मित्र बन गया । देवगिरी के बाद १३०९ ई० में मलिक काफूर ने वारंगल पर धावा बोल दिया । राजा प्रतापरुद्र देव ने कुछ समय तक मुसलमानों से टक्कर ली । किन्तु वह जीत न सका । उसने संधि कर ली और काफूर को अपार धन-सम्पत्ति दी । उसने सुल्तान को वार्षिक कर देना भी स्वीकार कर लिया ।

(२) द्वारसमुद्र और मालाबार की विजय—इन राज्यों पर अब



अलाउद्दीन खिलजी का साम्राज्य

तक किसी ने आक्रमण न किया था। द्वारसमुद्र में राजा बल्लाल(तृतीय) राज्य करता था। मलिक काफूर ने देवगिरी और वारंगल की सहायता से द्वारसमुद्र पर आक्रमण कर दिया। राजा बल्लाल दिल्ली की विशाल सेना देखकर भयभीत हो गया और उसने बिना लड़े ही संधि कर ली। काफूर ने उससे उसकी सारी सम्पत्ति मांगी और बल्लाल को मजबूरी की हालत में वह देनी पड़ी। द्वारसमुद्र को जीतकर मलिक काफूर मालाबार राज्य की ओर अग्रसर हुआ। मालाबार में उस समय पाण्ड्य वंश राज्य करता था और वहां गद्दी के उत्तराधिकार के लिये लड़ाई-झगड़ा हो रहा था। मुसलमानों ने इस विवाद को हल करने के बहाने मालावार पर आक्रमण कर दिया। मालाबार का राजा हार कर भाग गया, किन्तु काफूर ने उसका रामेश्वरम् तक पीछा किया। मुसलमानों ने इस राज्य की राजधानी मदुरा पर अधिकार कर लिया और जी-भर कर लूट मार की। इस विजय में भी काफूर के हाथ अपार धन-सम्पत्ति लगी। इस प्रकार दक्षिण के राज्यों को अपने अधीन कर और उनकी धन-सम्पत्ति लेकर मलिक काफूर १३११ ई० में दिल्ली लौट आया। १३१२ ई० में अलाउद्दीन को देवगिरी पर पुनः आक्रमण करना पड़ा क्योंकि राजा रामचन्द्र की मृत्यु के बाद उसके पुत्र राजा शंकर देव ने कर देना बन्द कर दिया था। काफूर ने उस पर आक्रमण किया। युद्ध में शंकर देव मारा गया और मुसलमानों ने सारे महाराष्ट्र में उथल-पुथल मचा दी।

११. दक्षिण के सम्बन्ध में अलाउद्दीन की नीति—दक्षिण भारत के सम्बन्ध में अलाउद्दीन ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। वह दक्षिणी राज्यों को जीत कर अपना साम्राज्य बढ़ाना नहीं चाहता था। उसके पास एक अति विशाल सेना थी, जिसके लिये उसे काफी धन चाहिये था। यह धन उसे दक्षिण से ही मिल सकता था अतः उसने दक्षिण में अपना राज्य बढ़ाकर छोटे-छोटे राज्यों को विद्रोह का अवसर देने के स्थान पर उनसे धन-सम्पत्ति ले लेना ही उत्तम

समझा। मलिक काफूर को उसने यही आदेश दिया था। दूरस्थ राज्यों के शासन की कठिनाइयों को वह अच्छी तरह समझता था। यही कारण है कि उसने दक्षिण भारत के आक्रमणों से केवल धन ही एकत्र करके संतोष कर लिया।

१२. अलाउद्दीन द्वारा विद्रोह दमन—अलाउद्दीन के शासन के आरंभ से ही विद्रोह फैलने लगा था। कई महत्वाकांक्षी युवक अलाउद्दीन की ही भाँति दिल्ली की गद्दी पर बैठना चाहते थे। अलाउद्दीन के खिलाफ तीन बड़े विद्रोह हुए और एक बार तो वह बुरी तरह घायल हो गया था। इन विद्रोहों को उसने निर्ममता से दबा दिया। किन्तु, अलाउद्दीन को विद्रोहों के मूल कारणों पर विचार करने के लिये बाध्य होना पड़ा। बहुत सोच विचार के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सरदारों का धनी होना, शराब पीना और सामाजिक उत्सव-समारोहों में भाग लेना आदि बातें विद्रोह के लिये अनुकूल पृष्ठ भूमि तैयार करती हैं। विद्रोह के कारण निश्चित कर लेने पर उसने उनके दमन के लिये निम्नलिखित उपाय काम में लाये। इन कार्यों से सर्वत्र बड़ा रोष फैल गया किन्तु अलाउद्दीन धुन का पक्का और पूरा यथार्थवादी था। उसने अपनी कार्यवाही में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने दी।

१३. विद्रोह दमन के उपाय—(क) सबसे पहले उसने एक संगठित गुप्तचर विभाग का निर्माण किया। ये गुप्तचर उसके सारे राज्य में फैल गये और वे यत्र-तत्र-सर्वत्र घूमकर उसे शासन की स्थिति से अवगत कराते थे। ये गुप्तचर बहुत दक्ष थे और छोटी-छोटी सी घटनाओं की भी खबर अलाउद्दीन को देते थे। अल्पकाल में ही उनका आतंक चारों ओर फैल गया। सरदारों और अमीरों ने अलाउद्दीन के विषय में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में बातें करना छोड़ दिया। (ख) अलाउद्दीन का विचार था कि अमीर और सरदार उत्सव समारोहों में मिलने पर राज्य के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं और उनकी बातचीत से कई कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं। उसने आदेश दिया कि सरदार और अमीर सुलतान की पूर्व-

अनुमति प्राप्त किये बिना उत्सवों में मिलना-जुलना तथा एकत्र होकर आमोद-प्रमोद करना बन्द कर दें। उसने यह फर्मान भी निकाला कि शादी-विवाह से पहले सुल्तान की अनुमति लेना आवश्यक है। (ग) अलाउद्दीन ने शराब पीना भी बन्द करवा दिया था। किन्तु, उस काल में शराब पीना मनोरंजन का एक मुख्य साधन था। अतः बाद में मद्य-निषेध को कुछ शिथिल कर दिया गया। केवल सरदार और अमीर सार्वजनिक उत्सवों, दावतों और सार्वजनिक स्थानों पर शराब भी पी सकते थे। इन नियमों के लागू होने से सरदारों का जीवन अत्यन्त नीरस हो गया। सरदार, अमीर, सैनिक, जनता सभी सुल्तान से डरने लगे। (घ) इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन ने सरदारों का धन और उनकी सम्पत्ति भी जब्त कर ली। यदि उसे पता लग जाता था कि किसी के पास आवश्यकता से अधिक धन है तो वह तुरन्त जब्त करवा देता था। करों की मात्रा बहुत बढ़ा दी गई और कर-वृद्धि की इस नीति के शिकार अधिकतर हिन्दू हुए। दोआब के हिन्दुओं से उपज का आधा भाग लगान के रूप में लिया जाने लगा और इसे बड़ी निर्दयता से वसूल किया जाता था।

१४. सुलतान के उपायों का प्रतिक्रिया—प्रारम्भ में सुलतान के इन उपायों का शासन की दृष्टि से अच्छा प्राभाव हुआ। किन्तु, बाद में इन कड़ी कार्यवाहियों ने लोगों के दिलों में सुल्तान के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी। गुप्तचरों के आतंक से लोगों का व्यक्तिगत जीवन नितांत नीरस हो गया। सामाजिक उत्सव, मद्य निषेध आदि की मनाही हो गई। इससे सरदार और अमीर बहुत क्रुद्ध हो गये। साथ ही अतिरिक्त सम्पत्ति जब्त हो जाने से उनका जीवन बहुत कष्टप्रद हो गया। "सामाजिक जीवन की सभी सुविधायें समाप्त हो गईं और जीवन एक असह्य भार के समान हो गया था।" *

१५. राजत्व का नया सिद्धान्त—अलाउद्दीन अपने समय के अन्य मुस्लिम शासकों की भाँति शासन नहीं करता था। वह अपनी इच्छा-

---

* *Dr Ishwari Prasad—Muslim Rule in India.*

नुसार कार्य करता था और उसने कुरान के नियमों के अनुसार कभी शासन नहीं किया। एक मुस्लिम शासक के लिये यह बड़ी विचित्र बात थी। क्योंकि तत्कालीन मुस्लिम शासकों के लिये धर्म और राजनीति एक ही सूत्र में बंधे हुए थे। किंतु इस सुलतान ने उलेमावर्ग के प्रभाव को अमान्य करते हुए एक नया मार्ग अपनाया। एक बार उसने काजी से किसी विषय पर राय मांगी थी। काजी की राय सुनने के बाद उसने कहा कि "मैं तो एक सैनिक मात्र हूं और मुझे नियम-अनियम का कोई ज्ञान नहीं है। किन्तु राज्य के कल्याण के लिये मैं जो उचित समझता हूँ, वही करता हूँ। मेरे समक्ष राज्य-हित ही सर्वोपरि है और कयामत के दिन मेरा क्या होगा, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है।" इससे स्पष्ट है कि अलाउद्दीन शासन के मामलों में धर्म को महत्व नहीं देता था और न उसे उलेमावर्ग का हस्तक्षेप ही पसन्द था। अलाउद्दीन इस्लाम का पक्का अनुयायी और खलीफा का भक्त था। वह उलेमा का आदर करता था किन्तु उसने उन्हें राजनीति में दखल नहीं देने दिया। प्रो० एस० आर० शर्मा के शब्दों में "यद्यपि अलाउद्दीन यथार्थवादी नीति का भक्त था तथापि उसने इस्लामी समाज के धर्म-सापेक्ष बन्धनों को पूर्ण रूप से नहीं तोड़ डाला था।"

१९. हिन्दुओं की दुर्दशा—अलाउद्दीन का शासन अत्यन्त कठोर और कष्टप्रद था। उसके शासनकाल में हिन्दुओं के साथ बहुत कठोरता बरती गई। दोआवा के हिन्दुओं से उपज का आधा भाग लगान के रूप में लिया जाता था। हिन्दुओं से और भी कर लिये जाते थे। अलाउद्दीन हिन्दुओं को ऐसी दशा में पहुंचा देना चाहता था कि वे घुड़सवारी न करसकें, अच्छे वस्त्र न पहन सकें, शस्त्रास्त्र न रख सकें और किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद में भाग न ले सकें। हिन्दुओं को अनेक कष्ट दिये गये। उनके साथ बहुत अपमानजनक बर्ताव किया जाता था। राज्य में उन्हें कोई नौकरी या पद नहीं दिया जाता था। हिन्दुओं द्वारा धन इकट्ठा किया जाना राजद्रोह समझा जाता था और उनकी सम्पत्ति तुरन्त जब्त कर ली जाती थी। अलाउद्दीन चाहता था

कि हिन्दुओं के पास कुछ भी न रहे । इन सब अत्याचारों से हिन्दू जनता अत्यंत त्रस्त थी । परन्तु अलाउद्दीन के विरुद्ध विद्रोह या आवाज उठाने की कोई हिम्मत तक नहीं करता था। हिन्दुओं की आर्थिक दशा इतनी गिर गई थी कि हिन्दू चौधरियों के घरों की औरतों ने मुसलमानों के घरों में नौकरी कर ली थी।

१७. अलाउद्दीन का सैनिक संगठन—अलाउद्दीन को अपना साम्राज्य बनाये रखने और विदेशी आक्रमणों का मुकाबला करने के लिए एक विशाल और स्थायी सेना की आवश्यकता थी। अतः उसने सैनिक संगठन में कई सुधार किये और सैनिकों में अनुशासन और कार्य दक्षता लाने के लिए प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया। उसके सैनिक-संगठन के कुछ बिन्दु नीचे दिये जाते हैं:—

सैनिकों को नियमित और अच्छा वेतन दिया जाता था। उन्हें योग्यता के आधार पर उन्नति दी जाती थी। सैनिकों तथा सेना के उच्च अधिकारियों के भ्रष्टाचार और ऐसी ही अन्य बुरी बातों को रोकने के लिये उसने घोड़ों को दागने की प्रथा आरम्भ की। सैनिकों का हुलिया भी रखा जाता था ताकि अपराधी का पता आसानी से लग सके। सेना का प्रबन्ध और संचालन उसने अपने हाथ में ही रखा। उसने बूढ़े और अयोग्य सैनिकों को हटाकर योग्य और जवान सैनिकों की भर्ती की। इतनी बड़ी सेना को रखने के लिये विपुल धन की आवश्यकता थी। किन्तु अलाउद्दीन इतना धन खर्च नहीं करना चाहता था। अतः उसने बाजार में हर चीज के—यहां तक कि कंघी, सुई जैसी छोटी-छोटी चीजों के—मूल्य निर्धारित कर दिये थे।

१८. अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार—अलाउद्दीन बहुत ही दूरदर्शी और व्यवहारिक व्यक्ति था। वह जानता था कि राज्य में शांति बनाये रखने और शत्रुओं को परास्त करने के लिये विशाल और दक्ष सेना नितान्त आवश्यक है। किन्तु इतनी बड़ी सेना का खर्च चलाना सरल कार्य नहीं था। अलाउद्दीन को दक्षिण विजय से अपार सम्पत्ति

मिली थी किन्तु वह भी उसकी पांच लाख घुड़सवार सेना के लिये पर्याप्त नहीं थी। ये सैनिक बहुत कम वेतन पाते थे और इतने वेतन में उनका निर्वाह तभी सम्भव था जब निर्वाह की सब वस्तुएं सस्ती हों। अलाउद्दीन अपनी प्रजा को भी संतुष्ट रखना चाहता था अतः उसने अनाज-संग्रह और मूल्य नियन्त्रण के दो महत्त्वपूर्ण पग उठाये। जमींदारों और किसानों के पास उनकी जरूरत के लिए अनाज छोड़कर बाकी सारा अनाज सरकार द्वारा ले लिया जाता था। दोआब के किसानों से पैदावार का आधा हिस्सा कर लिया जाता था।

१९. मूल्य नियन्त्रण—मूल्य-नियन्त्रण के विषय में सुलतान ने बड़ी दृढ़ता से काम लिया। वह जानता था कि मूल्य सस्ते कर देने से बाजार में चीजें न मिल सकेंगी। अतः उसने मूल्य नियत करने के साथ वस्तुओं को बाजार में उपलब्ध भी कराया। अनाज के बड़े बड़े गोदामों में अनाज भर कर रख लिया जाता था और उसे बाजार में भेज दिया जाता था। तोल में कम सामान देने के विरुद्ध कड़ी चेतावनी दी गई थी। जो व्यापारी नियत मूल्य से अधिक मूल्य लेते थे उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था। कठोर दण्ड के भय से व्यापारियों ने अधिक लाभ उठाना बिलकुल बन्द कर दिया। दण्ड देते समय हिन्दू या मुसलमान के साथ कोई पक्षपात या रियायत नहीं की जाती थी।

मूल्य-नियन्त्रण एक अत्यन्त पेचीदा कार्य था और सुलतान ने इसके समुचित पालन के लिए 'दीवाने-रियासत' नामक एक पृथक विभाग स्थापित किया था। वह विभाग एक मन्त्री को सौंपा गया, जो नायब दीवाने-रियासत कहलाता था। यह विभाग विभिन्न वस्तुओं के मूल्य निर्धारित करता था। व्यापारियों पर निगरानी रखकर अपराधियों की सूचना सुलतान को देता था। सरकारी गोदामों के लिए अनाज एकत्र करना इस विभाग का कार्य था। यह विभाग बाजार की समग्र स्थिति की जानकारी अलाउद्दीन को देता था। अलाउद्दीन ने इस

विभाग के कर्मचारियों को चेतावनी दी थी कि यदि वे कर्त्तव्य-पालन करने में चूक गये तो सरे बाजार उन्हें कोड़े लगाये जायेंगे। व्यापारियों को व्यापार के लिये शासन की ओर से ऋण तथा अग्रिम-धन भी दिया जाता था। उनका माल सैनिकों की देख-रेख में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने की भी व्यवस्था थी।

२०. **मूल्य-नियंत्रण के लाभ तथा हानियाँ**— अलाउद्दीन की इस व्यवस्था से दैनिक जीवन की वस्तुएं सस्ती हो गयीं। जनता को शासन के प्रति संतोष हो गया क्योंकि साधारण-से-साधारण आदमी अपना निर्वाह सरलता से कर लेता था। कठिनाई के समय किसानों को भी सरकारी गोदाम अनाज देते थे। अतः उन्हें भी संतोष था। मूल्य-नियंत्रण के सफल कार्यान्वय से अलाउद्दीन एक विशाल सेना रख सका। इस विशाल सेना के सहारे उसने देश में अपना आतंक तो जमाया ही, साथ ही बाहरी आक्रमणों को भी पूर्णतः असफल कर दिया। मूल्य-नियंत्रण प्रणाली से कोई हानियां नहीं थी, ऐसी बात नहीं। इस प्रणाली से व्यापारी वर्ग बड़ा असंतुष्ट था। दण्ड के भय से उन्हें बहुत कम लाभ हो पाता था और कभी-कभी तो उन्हें घाटा भी सहना पड़ता था। व्यापार के विकास पर इससे बुरा प्रभाव पड़ा और बाजार में अच्छी चीजों का आना बन्द हो गया। सरदारों और अमीरों को विलास की वस्तुएं नहीं मिलती थीं। उन्हें भी इस प्रणाली से असंतोष था। जमींदार और किसानों के पास केवल पेट भरने के लिए अनाज छोड़ कर शेष सब ले लिया जाता था। वे भी इस प्रथा से बड़े त्रस्त थे।

२१. **अलाउद्दीन का मूल्यांकन**— अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का एक महान् और अत्यन्त योग्य शासक था। उसने दक्षिण पर आक्रमण कर वहां की सम्पत्ति प्राप्त कर ली और वहां के राज्यों को अपनी सत्ता स्वीकार कराई। देश में विद्रोहों को दबाने के लिए उसने कड़ी कार्यवाही की। अल्पकाल में ही अपने साम्राज्य पर उसका निरंकुश

शासन स्थापित हो गया। उसने राजनीति में धर्म के हस्तक्षेप को नहीं माना। वह उलेमा का आदर करता था किन्तु उनके हाथ की कठपुतली कभी नहीं बना। खिलजी वंश के संस्थापक के रूप में वह महान् विजयी और कठोर शासक था। उसने शासन की सुव्यवस्था के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया। महान् योद्धा और कुशल शासक होने के साथ-साथ वह निपुण अर्थशास्त्री भी था। मूल्य-नियंत्रण नीति और उसका सफल कार्यान्वय उसकी दूरदर्शिता के यथेष्ट प्रमाण हैं। अलाउद्दीन स्वयं अशिक्षित था किन्तु वह विद्वानों का आदर करता था। विख्यात कवि अमीर खुसरो उसके दरबार में था। उसे शिल्प-कला में भी बड़ी रुचि थी। उसके शासन-काल में प्रजा का निर्वाह सरलता से हो जाता था। इसी कारण वह अलाउद्दीन से प्रसन्न थी।

२२. अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी : खिलजी वंश का पतन—अलाउद्दीन के शासन से उसके सरदार, अमीर, व्यापारी और अन्य कर्मचारी अत्यन्त त्रस्त थे। अतः १३१६ ई० में उसकी मृत्यु होने पर चारों ओर अशांति फैल गई। मलिक काफूर, जो अलाउद्दीन का सेनापति था, दिल्ली का सुलतान बनना चाहता था। उसने अलाउद्दीन के अल्प-वयस्क पुत्र शहाबुद्दीन को गद्दी पर बैठाया और वह स्वयं शासन का काम-काज देखने लगा। किन्तु ३५ दिन के बाद ही मलिक काफूर की हत्या हो गई और दरबार के सरदारों ने अलाउद्दीन के एक और पुत्र मुबारक को गद्दी पर बैठाया। मुबारक ने अपने पिता के शासन के जुल्मी कानून रद्द कर दिए और कुछ समय तक उसने बड़ी योग्यता से काम चलाया। राज्य में पुनः शान्ति स्थापित हो गई। उसके सेनापति खुसरो ने तेलंगाना पर सफल आक्रमण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सफलताओं ने मुबारक को बदल दिया। बाद में वह विलास का जीवन व्यतीत करने लगा और उसने शासन का भार खुसरो को सौंप दिया। उसने अमीरों और अन्य दरबारियों के साथ

अपमानजनक व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। उसके सूबेदार विद्रोह के षड्यन्त्र करने लगे। १३२० ई० में खुसरो ने उसे मार डाला और स्वयं गद्दी पर बैठा। खुसरो जन्म से हिन्दू था और कहा जाता है कि मुसलमान बनने पर उसे बहुत बड़ा पद मिला था। सुलतान बनते ही उसने पुराने सरदारों को उनके पदों से हटा दिया। उसके एक सरदार गाजी मलिक ने उसके विरुद्ध बगावत का नेतृत्व किया। गाजी मलिक ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। खुसरो भाग निकला। किन्तु, बाद में वह पकड़ लिया गया और मारा गया। इस प्रकार खिलजी वंश का अन्त हो गया और दिल्ली का राज्य गाजी मलिक के हाथों में चला गया।

प्रश्न

1. Why is Sultan Jalal-ud-din called 'Clemency King Firoz ?' Was his reign successful ?

सुलतान जलालुद्दीन खिजली को 'दयालु सुलतान फिरोज' क्यों कहा जाता है ? क्या उसका शासन सफल था ?

2. 'Sultan Ala-ud-din was the greatest conqueror of his time' Discuss.

or

Describe the conquests of Ala-ud-din Khilji.

'सुलतान अलाउद्दीन अपने समय का सर्वश्रेष्ठ विजेता था।' इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

अथवा

अलाउद्दीन खिजली की विजयों का वर्णन कीजिए।

3. How were Mongols suppressed during the reign of Ala-ud-din ?

अलाउद्दीन के शासन काल में मंगोलों का दमन किस प्रकार

किया गया ?

4. What measures did Sultan Ala-ud-din Khilji adopt to wipe out sedition from the country ? Did he succeed in his task ?

देश में विद्रोहों को नष्ट कर देने के लिये सुलतान अलाउद्दीन खिजली ने क्या उपाय किये ? क्या वह अपने कार्य में सफल हुआ ?

5. 'Ala -ud -din Khilji was a great reforming genious.' Discuss.

'अलाउद्दीन एक महान् सुधारक था ।' इस कथन का विवेचन कीजिए।

9. What were Ala-ud-din Khilji's view's on religion ? What treatment was meted out to the Hindus during his reign ?

धर्म के विषय में अलाउद्दीन खिजली के क्या विचार थे ? उसके शासन काल में हिन्दुओं के प्रति कैसा व्यवहार किया गया ?

7. Give an account of the conquest of Ala-ud-din in the South ? What was his motive behind these invasions ?

अलाउद्दीन की दक्षिण विजय का वर्णन कीजिए। दक्षिण पर आक्रमण करने में उसका क्या उद्देश्य था ?

8. What do you know of Ala-ud-din Khilji's price-control and rationing system ? What were its merits and demerits ?

अलाउद्दीन खिजली की मूल्य-नियन्त्रण और राशनिंग प्रणाली के विषय में आप क्या जानते हैं ? उसके गुण-दोषों पर प्रकाश डालिये।

9. 'Ala-ud-din separated the state from the church.' How far do you agree with the state-

ment ? What was the condition of the Hindus in his regime ?

'अलाउद्दीन ने धर्म को राजनीति से पृथक कर दिया।' आप इस कथन से कहां तक सहमत हैं ? उसके राज्य में हिन्दुओं की क्या दशा थी ?

10. Form an estimate of Ala-ud-din's work and his achievements. Give a brief account of the down fall of his empire.

अलाउद्दीन के कार्यों और सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए। उसके साम्राज्य के पतन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

11. 'Ala-ud-din's policy was a sort of militarism.' Discuss.

"अलाउद्दीन की नीति एक प्रकार का सैन्यवाद था" विवेचन कीजिए।

—:o:—

अध्याय १८

तुगलक साम्राज्य

गयासुद्दीन तुगलक

(१३२० ई०-१३२५ ई०)

१. राज्यारोहण—तुगलक वंश की नींव गयासुद्दीन तुगलक ने डाली। अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल में उसका नाम गाजी मलिक था और वह सीमा रक्षक के पद पर था। १३२० ई० में खुसरो को मार कर वह गयासुद्दीन तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा। वह एक योग्य सेनानायक तथा बहादुर सैनिक था। खिलजी काल में मंगोलों को वह कई बार हरा चुका था। गद्दी पर बैठने के पश्चात् तुरन्त ही उसने खुसरो द्वारा नियुक्त किये गये सभी अफसरों को निकाल दिया। खिलजीवंश के बचे हुए लोगों को शान्त करने के लिए उसने उन्हें बड़ी-बड़ी पेंशनें बांध दीं। अपनी बुद्धिमत्ता से उसने राज्य का वातावरण शान्त बना लिया।

२. वारंगल पर आक्रमण—पिछले मुस्लिम आक्रमणों के पश्चात् भी वारंगल अभी दबा नहीं था। वहां के हिन्दू शासक प्रताप रुद्र देव ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। १३२१ ई० में सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक ने अपने पुत्र जूना खां की अधीनता में एक विशाल सेना वारंगल पर चढ़ाई करने के लिए भेजी। मुसलमानों की सेना में फूट पड़ गयी और विवश होकर जूना खां को देवगिरि लौट जाना पड़ा। ध्यान रहे कि जूना खां को गयासुद्दीन तुगलक ने दक्षिण का राज प्रतिनिधि बनाकर देवगिरि भेज दिया था। जूना खां दूसरी बार १३२३ ई० में पहले से अधिक विशाल सेना लेकर वारंगल पर चढ़ाई करने के लिए चला। इस बार मुसलमानों की विजय हुई। वारंगल पर

मुसलमानों का अधिकार हो गया। राजा को बन्दी बना कर दिल्ली भेज दिया गया। इसी समय वारंगल का नाम बदल कर 'सुल्तानपुर' रखा गया। मुसलमानों को वहाँ जागीरें दे दी गई और उन्हें वहीं रहने का आदेश दे दिया गया।

३. बंगाल पर आक्रमण—बंगाल का राज्य अभी तक बलबन के वंशजों के ही आधीन था। अलाउद्दीन खिलजी ने भी बंगाल को अपने राज्य में मिलाने का प्रयत्न नहीं किया था। गयासुद्दीन शासक बना उस समय बंगाल का शासक बहादुर बूर था। उसका शासन बहुत निर्बल था। बंगाल गृह-युद्ध की आग में जल रहा था। गयासुद्दीन तुगलक ने स्थिति से लाभ उठाया। १३२४ ई० में वह स्वयं एक बड़ी सेना लेकर बंगाल की ओर चल पड़ा। बहादुर बूर को पराजित करके नासिरउद्दीन को बंगाल का गवर्नर नियुक्त करके मार्ग में तिरहुत के राजा को परास्त कर, गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली लौटा।

४. सुल्तान की मृत्यु—बंगाल विजय के लिए जाते समय गयासुद्दीन अपने पुत्र जूना खां को दिल्ली का शासन सौंप गया था। विजेता पिता का स्वागत करने के लिए (१३२५ ई०) जूना खां ने दिल्ली में एक स्वागत समारोह का आयोजन किया। इस प्रयोजन के लिए एक विशाल मण्डप बनवाया गया था। मण्डप के गिर जाने से सुल्तान और उसका छोटा पुत्र दोनों मर गए। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि इस मण्डप को जूना खां ने ऐसे ढंग से बनवाया था कि वह निश्चित समय पर गिर पड़े, अर्थात् ऐसा लगता है कि जूना खां के षड्यन्त्र से सुलतान की मृत्यु हुई। सुलतान की मृत्यु के पश्चात् जूनाखां मुहम्मद शाह तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा।

५. गयासुद्दीन तुगलक का शासन प्रबन्ध—गयासुद्दीन तुगलक के समय में देश का शासन अच्छी प्रकार संगठित था। उसने देश की रक्षा की समुचित व्यवस्था करने के लिए नई सड़कें बनवाईं और

पुरानी सड़कों की मरम्मत कराई। देश के सभी भागों से समाचार पाने के लिए उसने डाक प्रणाली को सुसंगठित किया। जल्दी-से-जल्दी डाक पहुँचाने के लिए स्थान-स्थान पर डाक चौकियाँ बनाई गईं और हरकारे रखे गए। डाक-विभाग का काम बहुत अच्छा हो गया था। अलाउद्दीन के समय में सैनिकों की हुलिया रखने और घोड़ों को दागने की जो प्रथा थी, उसे सुलतान गयासुद्दीन ने भी जारी रखा। सैनिकों को कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था और उन्हें अच्छा वेतन दिया जाता था। यद्यपि गयासुद्दीन ने अलाउद्दीन-कालीन यह प्रथा मिटा दी कि सबकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाये पर उसने इस बात का ध्यान रखा कि लोग धन का अधिक संग्रह न करें। लगान को फिर से निर्धारित किया गया। उपज का दसवाँ भाग कर नियुक्त किया गया। गयासुद्दीन के शासन काल में किसानों का जीवन सुखी था। दण्ड के नियमों में भी सुधार किया गया। अमानुसिक दण्ड समाप्त कर दिये गए, पर हिन्दुओं के साथ अब भी बुरा व्यवहार होता था। स्वभाव से गयासुद्दीन बहुत उदार था। गरीब तथा बेरोजगार मुसल-मानों की वह सहायता करता था।

मुहम्मद तुगलक (१३२५ ई० १३५१ ई०)

६. चरित्र—गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जूना खां १३२५ ई० में मुहम्मद तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा। दिल्ली के मुसलमान शासकों में उस जैसा प्रतिभावान और योग्य शासक कोई नहीं था। वह शिक्षित और विद्वान था तथा कठिन समस्याओं को हल करने में बड़ा प्रवीण था। वह एक पक्का मुसलमान था पर हठ-धर्मी और धर्मान्ध नहीं था। उसकी स्मरण-शक्ति भी बहुत अच्छी थी। पर वह दूरदर्शी नहीं था और बहुत जल्दबाज था। उसके सम-कालीन इतिहासकारों का कहना है कि उसमें कुछ विचित्र विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण था। कुछ इतिहासकार उसे पागल तक कहते हैं, पर सच यह है कि वह पागल नहीं था। हाँ, इतना अवश्य है कि वह उलेमा वर्ग के आदेशों को नहीं मानता था और न्याय सम्बन्धी विषयों

का निर्णय अपने विवेक से करता था। अतः धार्मिक लोग उससे चिढ़े रहते थे और वे ही उसकी निंदा करते थे। वह सुधार वादी प्रकृति का था। यदि उसके आदेश का पालन नहीं होता था तो वह क्रोध में पागल होकर कठोर दण्ड देता था। वैसे वह निर्दयी और क्रूर नहीं था और स्त्रियों पर तो हाथ उठाना भी पसन्द नहीं करता था। मुहम्मद तुगलक को जीवन में असफलतायें बहुत मिलीं, पर उनका कारण उसका क्रोधी स्वभाव था तथा कुछ दैवी कठिनाइयां थीं। अतः कहा जा सकता है कि बेचारा सुलतान परिस्थितियों के हाथों में फंस कर असफल रहा।

७. दोआबा में कर-वृद्धि—सुलतान के पास धन की कमी पड़ गयी। उसने सुन रखा था कि अलाउद्दीन ने दोआब में ५०% कर लगाया था अतः धन की कमी को पूरा करने के लिए सुलतान ने प्रयोगात्मक रूप में भूमि कर दूना कर दिया। कई अन्य प्रकार के कर भी लगाए गए। इन करों की वसूली बड़ी कठोरता से की गयी। साथ ही उस साल दैवयोग से दोआब में अकाल भी पड़ गया। इससे प्रजा बहुत दुःखी थी। सुलतान की कर नीति की आलोचना करते हुए समकालीन इतिहासकार 'बरनी' कहता है, "रैयत की रीढ़ टूट गई। धनी लोग विद्रोही बन गए, भूमि बरबाद हो गयी और उत्पादन रुक गया। अन्न मंहगा हो गया। वर्षा कम होने के कारण दुर्भिक्ष फैल गए। चार वर्ष तक यही स्थिति रही और सारी प्रजा बरबाद हो गयी।" बरनी के कथन में कुछ अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। फिर भी यह सच है कि प्रजा बहुत कष्ट में थी। कुछ समय पश्चात् जब सुलतान ने अपनी त्रुटि का अनुभव किया तो खेती के लिए ऋण तथा बीज आदि देकर दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता की गयी। सुलतान के लाख प्रयत्नों के होते हुए भी दोआब पहले सा आबाद नहीं हो सका।

८. राजधानी परिवर्तन—मुहम्मद तुगलक का विचार था कि देश के बीच में किसी स्थान पर राजधानी होने से शासन का कार्य अधिक

अच्छी तरह चलाया जा सकता था। साथ ही उसका यह विचार था कि यदि दिल्ली को राजधानी न रखा जाए तो नई राजधानी—जो कि वह देवगिरि (दौलताबाद) को बनाना चाहता था—मंगोलों के आक्रमण से सुरक्षित रहेगी। अतः १३२७ ई० में सुलतान ने राजधानी परिवर्तन का आदेश जारी कर दिया। दौलताबाद में सुन्दर महल एवं भवन बनाये गए और दिल्ली की प्रजा को दौलताबाद चलने का आदेश दे दिया गया। इस आज्ञा का पालन उसने कठोरता से कराया। बरनी कहता है, "दिल्ली में एक बिल्ली या कुत्ता भी न बचा।" रास्ते में बहुत से लोग मर गए तथा लोगों को बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। दौलताबाद पहुँचने के बाद सुलतान को दौलताबाद पसन्द नहीं आया और इसी बीच मंगोलों ने भारत पर आक्रमण करके लाहौर से दिल्ली तक खूब लूट-पाट की। इतना होने के पश्चात् सुलतान को अपनी गलती का भान हुआ और उसने सबको पुनः दिल्ली वापस चलने का आदेश दे दिया। प्रजा को पुनः कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बहुत-सा सरकारी धन बरबाद हुआ और दिल्ली अपने प्राचीन वैभव को पुनः प्राप्त न कर सकी।

९. **सिक्कों की समस्या**—१३३० ई० में सुलतान ने घोषणा की कि चाँदी के सिक्कों के स्थान पर, अब ताँबे के सिक्के चलेंगे। सिक्कों की टकसाल पर नियंत्रण रखने का उसके पास कोई साधन न था। अतः सारे राज्य में जाली सिक्के बनने लगे। जाली सिक्कों के डर के मारे व्यापारियों ने व्यापार एवं लेन-देन बन्द कर दिया। जनता में अशान्ति, असन्तोष तथा रोष पैदा होने लगा। इस स्थिति को देखकर सुलतान ने आदेश दिया कि ताँबे के सिक्के सरकारी खजाने में जमा कर दिए जायें और उनके स्थान पर चांदी के सिक्के दिए जायें। परिणामस्वरूप जाली सिक्कों से राजकोष भर गया और सुलतान की गलती से राज की आर्थिक स्थिति को बहुत धक्का लगा।

१०. **विजय की योजनायें**—मुहम्मद तुगलक महत्वाकांक्षी था। वह विश्व-विजयी बनना चाहता था। खुरासान विजय करने के लिए

उसने ३ लाख, ७० हजार घुड़सवारों की एक सेना तैयार की। एक वर्ष का वेतन सैनिकों को पहले से दे दिया गया। परन्तु कुछ समय पश्चात् सुलतान का विचार बदल गया और सेना भंग कर दी गयी। इस प्रकार राजकोष को बहुत धक्का लगा। हिमालय के पहाड़ी राज्यों को जीतने के लिए भी उसने एक लाख सैनिक भेजे। एक तो वर्षा ऋतु आरम्भ हो गयी। दूसरे सुलतान की सेना के सैनिकों को पहाड़ी क्षेत्रों में लड़ने का अनुभव नहीं था। अतः उसकी सेना को बहुत क्षति उठानी पड़ी। कहा जाता है कि एक लाख सैनिकों में से केवल १० सैनिक ही बचकर लौट सके, जिन्होंने इस दर्दनाक घटना का हाल सुनाया।

११. माबर, बंगाल, सिंध और अवध में अराजकता--मुहम्मद तुगलक की काल्पनिक तथा अविवेकपूर्ण योजनाओं के असफल होने का प्रभाव बड़ा हानिकारक हुआ। सम्पूर्ण राज्य में अराजकता और कुव्यवस्था फैल गयी। प्रान्तों के शासक विद्रोह कर उठे और लोग स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने लगे।

(क) माबर—माबर के गवर्नर जलालुद्दीन अहसन ने १३३५ ई० में विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। मुहम्मद तुगलक एक विशाल सेना लेकर स्वयं माबर की ओर चला। दुर्भाग्य से तेलंगाना पहुंचते-पहुंचते उसकी सेना में हैजा फैल गया। अतः सुल्तान आगे न बढ़ सका और वापस लौट आया। इस प्रकार माबर का शासक स्वतन्त्र हो गया।

(ख) बंगाल—बंगाल ने भी कुव्यवस्था तथा अराजकता का लाभ उठाया। फखरुद्दीन नामक एक सैनिक ने बंगाल के गवर्नर की हत्या कर दी और वहां का शासक बन बैठा। सुलतान ने लखनौती के गवर्नर को आदेश दिया कि वह बंगाल के विद्रोह को दबाये। पर लखनौती का गवर्नर असफल रहा। इधर सुलतान हिमालय प्रदेश के राज्यों पर चढ़ाई करने की तैयारी तथा दोआब में दुर्भिक्ष-ग्रस्त लोगों को मदद करने में बहुत व्यस्त होने के कारण बंगाल न जा सका इस प्रकार बंगाल भी सुलतान के हाथों से निकल गया।

(ग) सिन्ध—सिंध के हिन्दु बहुत शक्तिशाली हो रहे थे। १३४२ ई० में वहां विद्रोह शुरू हो गया। सुलतान सेना लेकर सिंध पहुंचा। विद्रोही नेता बन्दी बनाये गये और उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया।

(घ) अवध—१३४० ई० में अवध के गवर्नर आइन-उल-मुल्क को सुलतान ने आदेश दिया कि वह दक्षिण भारत चला जाये। आइन-उल मुल्क ने सुलतान की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। उसके विद्रोह को दबाने के लिए सुलतान तुरन्त अवध गया और इस प्रकार अवध को स्वतन्त्र होने से बचाया।

१२. दक्षिण भारत की समस्या—उत्तर की समस्या तो थोड़ी बहुत सुलझ चुकी थी पर दक्षिण की समस्या और भी भीषण थी। १३३६ ई० में हरिहर और बुक्का ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की। कालान्तर में विजयनगर दक्षिण का एक शक्तिशाली राज्य बन गया। मुहम्मद तुगलक की सेना उसका कुछ न बिगाड़ सकी और कुछ समय के लिए दक्षिण से मुसलमानी सत्ता समाप्त हो गई। दक्षिणी भारत की एक और महत्वपूर्ण घटना बहमनी राज्य की स्थापना है। देवगिरि के गवर्नर को सुलतान ने वापस बुला लिया था। यह बात वहां के अमीरों व सरदारों को बहुत बुरी लगी। दौलताबाद के अमीरों को अपनी मदद के लिये बुलाता हुआ सुलतान स्वयं देवगिरि के लिए रवाना हुआ। पर दौलताबाद के अमीर विद्रोही हो गये और उन्होंने सुलतान की सेना पर आक्रमण कर दिया। दौलताबाद के नए गवर्नर को भी उन्होंने बन्दी बना लिया और खजाने को लूट लिया। इस्माइल मख विद्रोहियों का नेता था। सुलतान देवगिरि के विद्रोह को अच्छी तरह दबा भी न पाया था कि गुजरात की हालत खराब हो गई। अतः उसे गुजरात जाना पड़ा। उसके गुजरात जाते ही विद्रोहियों ने अपने नए नेता हसनकांगू की अध्यक्षता में पुनः विद्रोह शुरू कर दिया और सुलतान के सेनापति को पराजित करके देवगिरि पर कब्जा कर

लिया। हसनकांगू गद्दी पर बैठा। उसने बहमनशाह की उपाधि धारण की।

१३. **मुहम्मद तुगलक की मृत्यु**—सुलतान मुहम्मद तुगलक देवगिरि से गुजरात आया तो वहां एक भारी विपत्ति में फंस गया। विद्रोही तागी इधर-उधर छिपता रहा और सुलतान उसे पकड़ने के लिए परेशान होता रहा। इसी बीच सुलतान बीमार पड़ गया और १३५१ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

१४. **मुहम्मद तुगलक की योजनाओं का मूल्यांकन**—स्पष्ट है कि सुलतान की प्रत्येक योजना असफल रही। पर प्रत्येक योजना की असफलता में प्रकृति का हाथ अधिक था और सुलतान की त्रुटि कम थी। दोआब की दर-वृद्धि की बात समुचित थी अधिक उपज वाले क्षेत्र में कर बढ़ाना कोई अनुचित बात नहीं थी। किन्तु दुर्भाग्य से उसी समय दुर्भिक्ष ने जनता को भूखों मार डाला। अतः इसमें सुलतान की कोई विशेष त्रुटि नहीं थी। राजधानी बदलने वाली बात बहुत-ही बुद्धि मानी की तथा नीतिपूर्ण थी। पर जिस ढंग से उसने राजधानी बदली थी वह ठीक नहीं था। सिक्का परिवर्तन में भी सुलतान की दूर-दर्शिता का परिचय मिलता है पर नियंत्रण की कमी के कारण यह योजना भी असफल रही। विजय योजना के संबंध में यह कोई अनहोनी बात नहीं थी। स्थितियों के बदल जाने पर उसने विजय का विचार त्याग दिया। सुलतान मुहम्मद तुगलक हर बात को राज्य के हित की दृष्टि से देखता था। अतः उसकी असफलता परिस्थितियों वश हुई न कि अन्य किसी कारण से।

१५. **मुहम्मद तुगलक का शासन**—मुहम्मद तुगलक एक उदार शासक था। हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार उतना क्रूर नहीं था, जितना उसके पूर्व के मुसलमान शासकों का था। कुछ हिन्दु उसके राज्य में बड़े-बड़े पदों पर भी थे। वह कुरान तथा मौलवियों की बातों पर विश्वास नहीं करता था। शासन का सारा काम वह स्वयं देखता

था और उसकी आज्ञा का जो उल्लंघन करता था, उसे वह कठोर दण्ड देता था। न्याय का काम सुलतान ने मुल्ला, मौलवियों और धर्म के ठेकेदारों से छीन लिया और कुछ योग्य पदाधिकारियों को न्यायाधीश बना दिया था। यदि उन न्यायाधीशों के निर्णयों को वह त्रुटिपूर्ण समझता था, तो स्वयं निर्णय देता था। उसका निर्णय सर्वोच्च था।

फिरोजशाह तुगलक (१३५१ ई०—१३८८ ई०)

१६. **फिरोजशाह का राज्याभिषेक**—तागी का पीछा करते हुये मुहम्मद तुगलक की मृत्यु थट्टा में हो गई थी। उसके कोई पुत्र नहीं था। अतः उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी का प्रश्न उठा। सरदारों और अमीरों ने मुहम्मद के भतीजे फिरोज तुगलक से गद्दी पर बैठने का निवेदन किया। फिरोज गद्दी पर बैठने को प्रस्तुत नहीं था, पर जब सरदारों और अमीरों ने बार-बार आग्रह किया तो उसने गद्दी पर बैठना स्वीकार कर लिया। ईश्वरी प्रसाद का कहना है कि २४ मार्च, १३५१ को फिरोज बड़ी अनिच्छा से गद्दी पर बैठा।

१७. **फिरोज का चरित्र**—फिरोज एक बड़ा दयालु शासक था। उसके चरित्र में धार्मिकता का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहासकार बरनी का कहना है कि फिरोज विनम्र, दयालु, सत्यप्रिय, विश्वसनीय और धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। शम्स-सिराज अफीफ ने भी फिरोज की धर्म-निष्ठा की बड़ी प्रशंसा की है। इस्लाम के महान् समर्थक फिरोज ने इस्लाम के कानूनों के अनुसार अपने राज्य के शासन की व्यवस्था की थी। इस्लाम के खिलाफ जितने कानून थे, उनको फिरोज ने हटा दिया और उलेमा तथा मौलवी-वर्ग को उसने काफी महत्व दिया। फिरोज का व्यक्तिगत जीवन बहुत सरल एवं सादा था। सोने-चांदी के स्थान पर वह मिट्टी के बरतन प्रयोग करता था। वह कट्टर सुन्नी था और हिन्दुओं तथा शिया मुसलमानों के साथ कठोर व्यवहार करता था। हिन्दुओं के लिए तो फिरोज बहुत ही क्रूर था। गद्दी पर बैठने के पश्चात् उसने सभी हिन्दू पदाधिकारियों को पदच्युत कर

दिया। ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगाया और कठोरता से उसे वसूल किया। हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए उसने सभी प्रकार के उपाय किए और कई बार तो उसने हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया। वह औरंगजेब की ही भांति धर्मान्ध था पर औरंगजेब के अन्य गुण उसमें न थे। वह पक्का शराबी था। विजेता या सेनाध्यक्ष के रूप में तो वह बिलकुल असफल था। "फिरोज का नाम उसके शासन सुधारों के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है ; पर उसमें अलाउद्दीन खिलजी या मुहम्मद तुगलक जैसी योग्यता, निर्भयता और शक्ति नहीं थी। वह कच्चे दिमाग का व्यक्ति था और मुफ्ती तथा मौलवियों की बात को बहुत महत्व देता था। उसकी इस नीति का परिणाम यह हुआ कि एक ही पीढ़ी बाद दिल्ली का सुल्तानी साम्राज्य नष्ट हो गया।"*

१८. **फिरोज का सैनिक विजय**—शासन संबंधी कार्यों में फिरोज चाहे जितना कुशल रहा हो, पर साहस तथा वीरता का उसमें अभाव था। युद्धों से वह सदा भयभीत रहता था।

(क) **बंगाल पर आक्रमण**—१३५३ ई० में फिरोज ने बंगाल पर आक्रमण किया क्योंकि मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् बंगाल में हाजी इलियास ने शमसुद्दीन के नाम से अपने को बंगाल का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था। फिरोज ने इलियास को समझाने का भरसक प्रयत्न किया पर चूंकि इलियास फिरोज को दुर्बल समझता था अतः वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। सुलतान के आने का समाचार पाकर इलियास इकदला के किले में जा छिपा। सुलतान किले को जीत नहीं पाया था अतः सुलतान ने झूठी खबर उड़ा दी कि वह वापस जाना चाहता है। यह सुनकर इलियास किले से बाहर निकला। सुलतान ने उस पर आक्रमण कर दिया। इलियास फिर किले में छिप गया। इस बार सुलतान की विजय होने ही वाली थी कि किले के भीतर से स्त्रियों व बच्चों के रोने की आवाज सुनकर सुलतान का हृदय पिघल उठा। उसने युद्ध रोकने का आदेश दे दिया। उसका

* *Dr. Ishwari Prasad—Muslim Rule in India.*

कहना था कि सम्पूर्ण किले का भी मूल्य एक मुसलमान की जान के बराबर नही है।

(ख) बंगाल पर दोबारा आक्रमण—सुलतान फिरोज को एक बार बंगाल पर फिर आक्रमण करना पड़ा क्योंकि जफर खां ने इलियास के दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में सुलतान से शिकायत की थी। १३६० ई० में सुलतान एक बड़ी सेना लेकर चला। इस समय तक इलियास की मृत्यु हो गई थी। उसके पुत्र सिकन्दर ने भी अपने पिता की कूटनीति से काम लिया। वह भी इकदला के किले में छिप गया। बहुत दिनों तक किले पर घेरा पड़ा रहा। अन्त में संधि की बातचीत आरम्भ हुई। सिकन्दर इस समय सुलतान की मुट्ठी में था पर उसने इतनी चतुराई से काम लिया कि सुलतान के हाथों कुछ न लग सका। इस प्रकार फिरोज की दुर्बल नीति के कारण बंगाल दिल्ली की आधीनता से बाहर निकल गया।

(ग) जाजनगर पर आक्रमण—१३६० ई० में बंगाल से लौटने के बाद फिरोज ने जाजनगर (उडीसा) पर आक्रमण किया। वहां के राजा ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। ध्यान रहे यहां का राजा हिन्दू था और हिन्दुओं का खून बहाने तथा मूर्तियों को तोड़ने में फिरोज को बहुत आनन्द आता था। फिरोज ने जगन्नाथ के मन्दिर को तोड़ कर उसे खूब लूटा। कुछ मूर्तियों को दिल्ली लाकर पैरों तले रौंदा गया। जाजनगर के हिन्दू राजा को कर देने के लिए विवश किया गया। जाजनगर का आक्रमण फिरोज की धर्मान्धता का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

(घ) नगरकोट पर आक्रमण—नगरकोट के राजा ने फिरोज को कर देना बन्द कर दिया था। अतः १३६०-६१ ई० में फिरोज एक बड़ी सेना लेकर नगरकोट पर चढ़ गया। मुसलमान सेना ने नगरकोट पर कब्जा कर लिया और हिन्दुओं के मकानों को खूब लूटा। मुसलमानों ने ज्वालामुखी का प्रसिद्ध मन्दिर नष्ट कर दिया। इस प्रकार हिन्दुओं की भावना को ठेस पहुँचायी गयी।

(ङ) थट्टा विजय—फिरोज अपने चाचा की मृत्यु का बदला लेना चाहता था। अतः १३७१-७२ ई० में वह एक विशाल सेना लेकर थट्टा की ओर चला ; सिंध के शासक जाम बाबनिया ने भी एक बड़ी सेना तैयार की। सुलतान की फौज में रसद की कमी पड़ गई। अतः वह गुजरात की ओर चला गया। किंतु बीच में मार्ग भूल जाने के कारण वह बहुत समय तक कच्छ के दलदल में भटकता रहा। उधर दिल्ली से सुलतान ने नई सेना मंगवाई। अब सुलतान की शक्ति और भी बढ़ गई। जाम बाबनिया ने आत्मसमर्पण कर दिया। सुलतान ने उसकी बात इस तरह आसानी से मान ली, जैसे वह स्वयं ही युद्ध न करना चाहता हो।

१६. फिरोज का शासन प्रबन्ध—फिरोज एक योग्य शासक था। उसके शासन सुधारों का इतिहास में विशेष महत्व है। प्रजा के हित के लिए उसने अनेक कार्य किये। वह एक प्रजा-पालक सुलतान था। उसके कुछ सुधारों का वर्णन नीचे दिया जाता है।

(१) जागीर प्रथा और कृषि—अलाउद्दीन के समय में जागीर प्रथा बंद हो गयी थी। फिरोज ने जागीर प्रथा फिर चलाई। जागीरों की देख-रेख के लिए पदाधिकारी नियुक्त किए गए। पर जागीरदारी को फिर से चलाने से घूसखोरी और भ्रष्टाचार को बहुत प्रोत्साहन मिला। फिरोज ने कृषि की उन्नति के लिए अनेक काम किए। एक तो करों में कमी कर दी। दूसरे, बहुत से करों को समाप्त कर दिया और तीसरे, सिंचाई की सुविधा के लिए उसने नहरें भी बनवाईं। उलूग और राजब नहरें उल्लेखनीय हैं। सिंचाई के लिए किसानों से केवल १०% कर लिया जाता था, जो कि बहुत थोड़ा था।

(२) कर प्रणाली - फिरोज ने प्रचलित २३ कष्टदायी करों को बन्द कर दिया। खिराज, जकात, जजिया और खम्स केवल चार कर—इस्लाम जिनकी आज्ञा देता है—प्रजा पर लगाए गये। जजिया ब्राह्मणों से भी वसूल किया जाता था। भूमि-कर कम कर दिया था और अन्य करों में भी कमी कर दी गयी थी।

(३) न्याय व्यवस्था— अलाउद्दीन अपने राज्यकाल में मुल्ला तथा

मौलवियों का दखल पसन्द नहीं करता था। पर फिरोज ने उन्हें कानून की व्याख्या करने तथा न्याय करने का काम सौंप दिया। इस्लाम धर्म कठोर एवं अमानुषिक दण्ड देने की इजाजत नहीं देता। अतः फिरोज ने ऐसे दंडों को हटा दिया। अनुमान है कि हिन्दुओं को तो कठोर दण्ड दिए ही जाते थे।

(४) गुलाम प्रथा—फिरोज मुसलमानों के प्रति बहुत उदार था। प्रान्तीय शासक गुलामों की संख्या बढ़ाने लगे। १ लाख ८० हजार गुलाम उसके शासनकाल में थे, जिनके लिए एक अलग विभाग खोलना पड़ा था। इन गुलामों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी राज्य पर थी। इस प्रकार राज्य की आय का एक बड़ा भाग गुलामों पर व्यय होता था।

(५) कला तथा साहित्य—फिरोज को इमारतें बनवाने का बहुत शौक था। उसने बाहर से बहुत से कलाकारों को बुला कर इमारतें बनवाईं। अनुमान है कि फिरोज ने लगभग ३०० इमारतें बनवाई होंगी। फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर और हिसार शहर उसी ने बसाये थे। बाग लगवाने का भी उसे बहुत शौक था। दिल्ली के आस पास उसने बहुत से बाग लगवाये थे, जिनसे लगभग १८०,००० टंका प्रतिवर्ष की आय होती थी। फिरोज को साहित्य से भी रुचि थी। उसने लगभग ५० मदरसे स्थापित किए थे। उसने संस्कृत की बहुत सी पुस्तकों का अनुवाद फारसी में करवाया था।

फिरोज के उत्तराधिकारी और तैमूर का आक्रमण

२०. फिरोज के उत्तराधिकारी—१३८८ ई० में फिरोज की मृत्यु होने के बाद उसका पौत्र तुगलकशाह गद्दी पर बैठा। १३८९ ई० में उसकी हत्या कर दी गई। इसके बाद अबूबक्र गद्दी पर बैठा और तत्पश्चात १३९० ई० में सरदारों ने मुहम्मद को गद्दी पर बैठाया। १३९४ ई० में मुहम्मद की मृत्यु हो गयी और हुमायूं गद्दी पर बैठा। पर थोड़े ही दिनों बाद एक विद्रोह में वह मारा गया। सुलतान

महमूद उसके बाद १३६४ ई० में गद्दी पर बैठा । इसी के शासनकाल में तैमूर का आक्रमण (१३६८ ई०) हुआ था। तैमूर के आक्रमण के पश्चात् दिल्ली की सत्ता इकबालखां के हाथों में आ गयी । पर इकबाल की मृत्यु होने के बाद महमूद ने फिर दिल्ली पर कब्जा कर लिया । १४१२ ई० में महमूद की मृत्यु के साथ ही तुगलक वंश का अन्त हो गया । १४१४ ई० में खिज्रखां ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया ।

२१. **भारत पर तैमूर का आक्रमण**—यों तो फिरोज के शासनकाल में ही दिल्ली राज्य की स्थिति बलहीन हो गई थी पर उसके उत्तराधिकारियों के समय में तो राज्य की दशा और भी खराब हो गयी । ऐसी बुरी परिस्थिति में तैमूर का आक्रमण हुआ, जिसने तुगलक वंश का अन्त ही कर दिया । तैमूर के पिता का नाम अमीर तुरगाई था, जो चुगताई वंश का था। ३३ वर्ष की आयु में तैमूर तुर्कों का नायक बना । थोड़े ही समय में ख्वारिज्म, तुर्किस्तान और फारस पर अधिकार करने के बाद वह भारत की ओर बढ़ा । भारत की स्थिति का अध्ययन करने के लिए तैमूर ने अपने पौत्र पीर मुहम्मद के आधीन एक सेना भारत भेजी । पीर मुहम्मद ने सिंधु नदी पार करके कच्छ पर कब्जा कर लिया और उसके बाद मुल्तान को जीता । आगे बढ़ कर दिपालपुर और पाकपतन पर भी उसने कब्जा कर लिया और इस प्रकार सतलुज नदी के किनारे पहुंच कर तैमूर की प्रतीक्षा करने लगा । उधर तैमूर पंजाब के खोक्खरों को दबाता हुआ सतलुज के तट पर आकर अपने पौत्र से मिला। रास्ते के नगरों को लूटते हुए तैमूर पीर मुहम्मद के साथ कैथल पहुंचा। कैथल में दिल्ली आक्रमण की तैयारी की और दिल्ली से ६ मील दूर जहानुमा नामक स्थान पर आ गया ।

२२. **दिल्ली पर तैमूर का आक्रमण**—दिल्ली पर आक्रमण करने से पूर्व तैमूर ने १ लाख हिन्दू गुलामों को कत्ल करवा दिया। दिल्ली

के आस-पास के देहातों में तैमूर ने रक्तपात मचा दिया । दिल्ली का सुलतान महमूद अपने वजीर इकबालखां को लेकर रणक्षेत्र से भाग निकला। दिल्ली को तैमूर ने १५ दिन जी भर कर लूटा। हजारों स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों को गुलाम बनाया गया और मारा गया। करोड़ों की सम्पत्ति लूटी गई। दिल्ली के बाद मेरठ को लूटता हुआ वह हरिद्वार पहुँचा और वहां के हिन्दुओं को लूटा। इसके पश्चात् जम्मू के राजा को हराता हुआ वह वापस लौट गया । लौटते समय तैमूर ने खिज्रखां को पंजाब का गवर्नर नियुक्त कर दिया था।

२३. आक्रमण का प्रभाव—तैमूर ने अपने आक्रमण का उद्देश्य यह बताया था,"······काफिरों के विरुद्ध युद्ध करना, पैगम्बर की आज्ञानुसार उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य करना, देश को बहुदेववाद तथा अन्ध-विश्वास से मुक्त करके पवित्र करना······।" पर तैमूर का यह उद्देश्य पूरा न हो पाया, हाँ, लूट-मार में उसे अवश्य ही बहुत सारी सम्पत्ति मिली। तैमूर आंधी की तरह आया और तूफान की तरह गया। अतः ऐसे आक्रमण का कोई स्थायी प्रभाव तो पड़ ही नहीं सकता था। कुछ अस्थायी प्रभाव अवश्य पड़े जैसे—

(१) चारों ओर अराजकता फैल गई।

(२) दिल्ली राज्य और तुगलक वंश नष्ट हो गया।

(३) देश की जनता बरबाद हो गयी।

(४) पंजाब खिज्रखां के अधीन आ गया।

(५) भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों में द्वेष और अधिक बढ़ गया।

(६) सारे देश में कई छोटे-छोटे राज्य स्वतन्त्र हो गये।

(७) भारत की शान्ति भंग हो गयी।

प्रश्न

I. Who was Ghyas-ud-din Tughluq and

what do you know about his reign and administration ?

गयासुद्दीन तुगलक कौन था और उसके राज्य और शासन के विषय में आप क्या जानते हैं ?

2. Give a brief description of the conquests and administration of Ghyas-ud-din Tughluq.

गयासुद्दीन तुगलक की विजयों और उसकी शासन-व्यवस्था का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ।

3. "Muhammad Tughluq's character was a mixture of two extremes but he was a man of new ideas" Discuss.

"मुहम्मद तुगलक का चरित्र दो विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण था किन्तु उसके विचार मौलिक थे" इस कथन को समझाइये ।

4. Sketch the character and policy of Muhammad Tughluq.

मुहम्मद तुगलक के चरित्र और नीति का वर्णन कीजिए ।

5. Give an account of the revolts during the reign of Sultan Muhammed Tughluq.

सुलतान मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में हुए विद्रोहों का वर्णन कीजिए ।

6. Discuss two important measures of Muhammad Tughluq and give reasons for his failure.

मुहम्मद तुगलक के दो महत्वपूर्ण सुधारों का वर्णन कीजिए और उसकी असफलता का कारण बताइये ।

7. Form an estimate of the administrative

measures of Feroz Tughluq What was his treatment towards Hindus ?

फिरोज तुगलक के प्रशासनिक सुधारों का मूल्यांकन कीजिए। हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार कैसा था ?

8. Describe Taimur's invasion of India. What were its effects ?

तैमूर के भारत आक्रमण का वर्णन कीजिए। उसके आक्रमण के क्या-क्या प्रभाव पड़े ?

—: o :—

अध्याय १६

दिल्ली सल्तनत का विगठन—विजयनगर, बहमनी राज्य और भक्ति आन्दोलन

विजयनगर साम्राज्य

१. **विजयनगर का उदय**—विजयनगर राज्य की स्थापना मुसलमानों द्वारा दक्षिण में किये गये अत्याचारों का ही परिणाम था। इस राज्य की स्थापना १३३६ ई० में हरिहर और बुक्काराय ने की थी। सबसे पहले अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण के राज्यों पर आक्रमण किया था, किन्तु उसने उन राज्यों से सम्पत्ति लेकर उन्हें छोड़ दिया था। अलाउद्दीन के पश्चात् मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण के राज्यों को अपने राज्य में सम्मिलित कर वहां मुसलमान सूबेदार नियुक्त कर दिये। इन सूबेदारों के अत्याचारों से हिन्दू जनता में अत्यन्त असन्तोष फैल गया। हरिहर और बुक्काराय ने दक्षिण में मुसलमानों के प्रति विद्रोह करते हुए तुंगभद्रा नदी के तट पर इस राज्य की स्थापना की। मुहम्मद तुगलक अपने विद्रोहियों के दमन में व्यस्त होने से इस राज्य की ओर ध्यान न दे सका। विजयनगर प्रारम्भ में तो मुसलमानों के आक्रमण से बचने के लिए बनाया गया था। लेकिन इस नगर को अपने जन्म से ही इतना अनुकूल वातावरण मिला कि वह अल्पकाल में ही हिन्दु साम्राज्य का केन्द्र बन गया। इसके प्रथम शासक हरिहर की मृत्यु १३४३ ई० में हो गई और उसके बाद बुक्का ने शासन-भार संभाला। बुक्का के काल में विजयनगर राज्य का विस्तार बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक था। १३७४ ई० में बुक्का ने अपना राजदूत चीन में भेजा था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि हरिहर

श्रौर बुक्का ने राजा की उपाधि धारण नहीं की थी। संभव है कि वे यदि राजा की उपाधि धारण कर लेते तो मुसलमानों का ध्यान उनकी श्रोर श्राकर्षित हो जाता श्रौर वे नवजात विजयनगर को श्रवश्य संकट में डाल देते।

२. **विजयनगर के अन्य शासक**—१३७६ ई० में बुक्का की मृत्यु पर हरिहर द्वितीय विजयनगर का शासक बना। हरिहर के समय तक विजयनगर शक्तिशाली हो गया था। श्रतः उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसने दक्षिण के कई राज्यों को जीत लिया श्रौर बहमनियों से जूझते हुए भी राज्य में शांति बनाये रखी। हरिहर योग्य शासक था श्रौर प्रजा उसका बहुत सम्मान करती थी। हरिहर के पश्चात् देवराय शासक बना। इसे मुसलमानों के श्राक्रमणों का सामना करना पड़ा। श्रहमदशाह बहमनी ने विजयनगर पर श्राक्रमण किया जिसके कारण वहां भयकर रक्तपात हुश्रा। १४१० ई० में देवराय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विजयराय गद्दी पर बैठा, उसके शासनकाल में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। विजयराय के पश्चात् देवराय (द्वितीय) शासक बना। उसके शासन-काल में बहमनी राज्य के मुसलमानों ने विजयनगर पर कई श्राक्रमण किये श्रौर देवराय कभी भी उनसे जीत न सका। देवराय ने श्रपनी सेना में मुसलमान घुड़सवार भर्ती किये थे किन्तु उसकी सेना मुसलमानों को परास्त न कर सकी। देवराय की मृत्यु के पश्चात् राज्य में श्रराजकता बढ़ती ही गयी। देवराय के बाद दो बहुत ही साधारण शासक गद्दी पर बैठे। कालान्तर में एक हिन्दू राजा नरसिंह ने १४६० ई० में इस राज्य पर बलात् श्रधिकार कर लिया। नरसिंह ने रजय में शांति श्रौर सुव्यवस्था स्थापित की किन्तु उसका साम्राज्य श्रधिक काल तक नहीं रहा। १५०६ ई० में विजयनगर की गद्दी पर कृष्णदेव राय बैठा। वह एक महान् योद्धा श्रौर कुशल शासक सिद्ध हुश्रा। वह विद्वानों का श्रादर करता श्रौर श्रन्य धर्मों के प्रति उसका दृष्टिकोण उदार एवं सहिष्णु था। उसके समय में विजयनगर विद्या का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। कृष्णदेवराय ने श्रपने राज्य

का दूर तक विस्तार किया और उसने बीजापुर के आदिलशाह को बुरी तरह परास्त किया। इस युद्ध में उसे बहुत सम्पत्ति की प्राप्ति हुई।

३. **विजयनगर का पतन**—कृष्ण देव राय की मृत्यु के बाद जो शासक आये, वे दुर्बल और अयोग्य थे। उनमें से कुछ ने तो बहमनियों के आन्तरिक मामलों में दखल देना आरम्भ कर दिया। जिससे बहमनी राज्य के मुसलमानों को बड़ी ठेस पहुंची। विजयनगर को नष्ट कर देने के लिए मुसलमानों ने अपने भेदभाव भूलकर एक संगठन बनाया और १५६५ ई० में उन्होने विजयनगर पर आक्रमण कर दिया। दोनों सेनाओं में तालीकोट के स्थान पर घमासान युद्ध हुआ जिसमें विजयनगर की हार हुई। मुसलमानों ने दिल खोलकर बदला लिया और हिन्दुओं को निर्दयता से कत्ल किया। विजयनगर का लड़खड़ाता हुआ राज्य इस प्रबल प्रहार को सहन नहीं कर सका और इस प्रकार उसका पतन हो गया।

४. **विजयनगर का शासन-प्रबन्ध**—विजयगनर की स्थापना प्रधानतः मुसलमानों के आक्रमण से बचने के लिए हुई थी। अतः उसकी सैनिक व्यवस्था अच्छी थी। राजाओं के दरबार शानदार होते थे और विद्वानों, कलाकारों आदि को राज्याश्रय प्राप्त था। राजा सर्वशक्तिमान होता था और उसकी सहायता के लिए मंत्री होते थे। सारा साम्राज्य २०० से अधिक प्रान्तों में विभक्त था। ये प्रान्त सूबेदारों के आधीन थे, जिन्हें पोलीगार कहते थे। ये सूबेदार अपनी सेना रखते थे जो आवश्यकता पड़ने पर राजा की सेना की सहायता करती थी। राजा निरंकुश होता था और उसकी सत्ता असीमित थी। गांव शासन की इकाई था और ग्राम पंचायतों के कार्य में शासन हस्तक्षेप नहीं करता था। राज्य की आय का सबसे बड़ा साधन भूमि-कर था। इसके अतिरिक्त और भी कर वसूल किये जाते थे। दण्डनायक (न्यायाधीश) न्यायदान करते थे और उनके निर्णय के विरुद्ध की गई अपील पर राजा निर्णय देता था। फौजदारी के मामलों में कठोर दण्ड और मृत्यु दण्ड भी दिये जाते थे।

विजयनगर साम्राज्य का सामाजिक जीवन विषम था। कुछ लोग धनीमानी थे, जिन्हें विलास की हर एक वस्तु उपलब्ध थी। इसके विपरीत अधिकांश लोग गरीब थे और उनका जीवन अत्यन्त निकृष्ट और कष्टमय था। ब्राह्मणों का बहुत महत्त्व था और उन्होंने काफी धन-दौलत इकट्ठी कर ली थी। स्त्रियों में सती की प्रथा प्रचलित थी और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। स्त्रियों को अच्छी शिक्षा दी जाती थी और वे सांस्कृतिक और कलात्मक कार्यों में भाग भी लेती थीं।

५. विजयनगर का ऐश्वर्य—विजयनगर के शासक निर्माण कार्यों में बहुत दिलचस्पी लेते थे। उन्होंने अनेक मन्दिर, राजप्रासाद और किले बनवाये और चित्रकला को बढ़ावा दिया। विजयनगर एक अत्यन्त समृद्ध राज्य था, जिसका वर्णन हमें उन विदेशियों के लेखों से मिलता है, जो उस काल में वहाँ आये थे। निकोलो कोन्टी एक इटैलियन यात्री था; जो विजयनगर में लगभग १४२० ई० में आया था। उसने लिखा है कि नगर साठ मील के घेरे में फैला हुआ था और नगर की रक्षा के लिए अभेद्य दुर्ग और असंख्य सैनिक थे। अब्दुर रज्जाक फारस का राजदूत था जो १४४२ ई० में विजयनगर आया था। विजयनगर राज्य की प्रतिष्ठा और समृद्ध स्थिति देखकर वह अत्यन्त प्रभावित हुआ था। विजयनगर की प्रशंसा करते हुए वह लिखता है कि वह एक ऐसा बेजोड़ शहर है, जो दुनिया में किसी ने न देखा होगा और न सुना होगा। बाजारों में दुकानों की कतारें थीं और शहर के बीच राजा का महल था। सोलहवीं सदी के एक पुर्तगाली लेखक ने इस नगर की प्रशस्ति में लिखा है कि संसार भर में विजयनगर एक ऐसा शहर था, जहाँ प्रत्येक वस्तु उपलब्ध थी।

बहमनी राज्य

६. बहमनी राज्य का उदय—मुहम्मद तुगलक की असफल राजनीति के फलस्वरूप बहमनी राज्य की नींव पड़ी थी। दक्षिण के सरदारों ने इस्माइल मख की अध्यक्षता में सुलतान के विरुद्ध विद्रोह

कर दिया और सुलतान उन्हें दबा न सका। इस प्रकार दौलताबाद में इस्माइल मख ने बहमनी राज्य की नींव डाली। इस्माइल मख एक साधु प्रकृति का व्यक्ति था। उसने हसन कांगू के लिए अपना पद त्याग दिया था, जो अलाउद्दीन हसनशाह बहमनी के नाम से गद्दी पर बैठा। हसन कांगू ने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। उसका मन्त्री सईफुद्दीन एक योग्य व्यक्ति था। दोनों की बुद्धिमानी से बहमनी राज्य का विस्तार उत्तर में ताप्ती नदी से दक्षिण में तुंगभद्रा और कृष्णा तक था। १३५८ ई० में हसन कांगू की मृत्यु हो गयी।

७. **बहमनी राज्य के शासक**—अपने पिता की मृत्यु के बाद मुहम्मद शाह प्रथम गद्दी पर बैठा। एक योग्य बाप के योग्य बेटे की भांति उसने साम्राज्य की रक्षा ही नहीं की वरन् उसकी ख्याति भी बढ़ाई। तेलंगाना तथा विजयनगर के हिन्दू राज्यों के साथ उसको संघर्ष करना पड़ा। मुहम्मद शाह की मृत्यु के पश्चात् मुजाहिद गद्दी पर बैठा। तीन वर्ष पश्चात् दाऊद ने उसकी हत्या कर दी। पर दाऊद भी शीघ्र ही कत्ल कर दिया गया। इस प्रकार दाऊद के पश्चात् मुहम्मद शाह द्वितीय शासक बना। मुहम्मद शाह एक शान्तिप्रिय शासक था अतः उसने कोई युद्ध नहीं किये। मुहम्मद द्वितीय की मृत्यु १३६७ ई० में हुई। उसके पश्चात् गयासुद्दीन और शमसुद्दीन दोनों ने एक-एक करके कुल ६ महीने तक राज्य किया। फिर फिरोज गद्दी पर बैठा जो कि एक अच्छा, न्यायप्रिय तथा उदार शासक था। उसने वारंगल, केरल और विजयनगर के शासकों को परास्त किया। उसे कला और साहित्य से बहुत रुचि थी। गुलबर्गा में उसने अनेक सुन्दर मस्जिदें बनवाईं। फिरोज के पश्चात् उसका भाई अहमद शाह १४२२ ई० में शासक बना। उसने अपनी राजधानी गुलबर्गा से हटाकर बीदर बनाई। उसने विजयनगर तथा मालवा के शासकों को पराजित किया।

अहमद शाह की मृत्यु के बाद अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा। उसके समय में राज्य की शक्ति पर कई आपत्तियां आईं। विजयनगर के

शासक ने उस पर आक्रमण किया और उसके भाई ने अपने ही राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। १४५७ ई० में अलाउद्दीन की मृत्यु होने पर उसका पुत्र हुमायूं गद्दी पर बैठा। हुमायूं केवल तीन वर्ष तक ही शासन कर सका। उसके बाद निजाम शाह शासक बना पर वह भी केवल दो वर्ष ही शासन कर सका। मुहम्मद शाह तृतीय निजाम शाह का उत्तराधिकारी बना। मुहम्मद का मन्त्री महमूद गावां एक योग्य व्यक्ति था। उसने सारे राज्य की शक्ति अपने हाथ में ले ली। १४८२ ई० में मुहम्मद की मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र महमूद शाह गद्दी पर बैठा। वह बड़ा विलासी था। उसके समय में प्रान्तीय शासक स्वतन्त्र होने लगे और बहमनी राज्य छोटे-छोटे ५ राज्यों में—बीजापुर, अहमदनगर, बरार, गोलकुण्डा और बीदर—बंट गया।

८. बहमनी राज्य का शासन प्रबन्ध—बहमनी राज्य का शासन प्रबन्ध महमूद गावां के समय में काफी अच्छा था। पहले के शासकों को तो षड्यंत्रों, हत्याओं और लूट पाट से अवकाश ही नहीं था। विजयनगर से इस राज्य का संघर्ष बराबर होता ही रहा। फिर भी जो कुछ सुधार हुए उनका वर्णन नीचे दिया जाता है।

(क) सेना के संगठन में सुधार किया गया।
(ख) भूमि की पैमाइश करके कर निर्धारित कर दिया गया।
(ग) न्याय विभाग का प्रबन्ध अच्छा था।
(घ) युद्ध-शिक्षा की भी व्यवस्था की गयी।
(ङ) कृषि की उन्नति के लिए नहरें व बड़े-बड़े तालाब बनाये गये।
(च) निर्माण कला को प्रोत्साहन दिया गया।

बहमनी राज्य के कई शासक इमारतें बनवाने के बड़े शौकीन थे। सुन्दर-सुन्दर नगरों, मस्जिदों तथा किलों का निर्माण उन्होंने करवाया। गुलबर्गा की जामा मस्जिद और दौलताबाद की चांद मीनार उस युग की कारीगरी के अच्छे नमूने हैं।



चार मीनार, हैदराबाद

भक्ति श्रान्दोलन

९ भक्ति सम्प्रदाय का उदय—भारत में मुसलमानों के श्राक्रमण से पहले जो विदेशी जातियाँ यहाँ श्राईं उन्हें भारतीय सभ्यता ने श्रात्मसात् कर लिया। किन्तु, मुसलमानों के समक्ष इस्लाम का प्रसार श्रौर श्रपने राज्य के विस्तार के दो लक्ष्य थे। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उन्हें हिन्दुश्रों से महान् संघर्ष करना पड़ा श्रौर परिणामस्वरूप हिन्दू श्रौर मुसलमानों में वैमनस्य पैदा हो गया। इन दोनों धर्मों में श्रन्तर तो था ही पर निकट सम्पर्क में रहने के कारण दोनों सभ्यताश्रों पर एक दूसरे का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। बहुत से हिन्दुश्रों ने विजेताश्रों का धर्म स्वीकार कर लिया। उनके जीवन में मुसलमानों के श्राचार-विचार श्रपनाये गये श्रौर कालान्तर में हिन्दुश्रों श्रौर मुसलमानों में विवाह-सम्बन्ध भी हुए। इतना होते हुए भी दोनों धर्मों के समर्थकों के सम्बन्ध श्रच्छे नहीं रहे। धर्म के नाम पर श्रनगिनत लोगों का रक्त बहाया गया श्रौर निरपराध लोग श्रत्याचारों के शिकार हुए। इन सब बातों ने समझदार लोगों को धर्म के वास्तविक स्वरूप पर विचार करने के लिए बाध्य कर दिया। वे एक ऐसा विवाद-रहित श्राधार प्रस्तुत करना चाहते थे, जिससे सब लोग बिना किसी भेद-भाव के मिल सकें। मुसलमानों में इस प्रकार का श्रादर्श सूफियों ने रखा श्रौर हिन्दुश्रों में भक्ति सम्प्रदाय का उत्कर्ष हुश्रा।

१०. भक्ति सम्प्रदाय—भक्ति सम्प्रदाय हिन्दू श्रौर इस्लाम धर्म के सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप श्रधिक प्रचलित हो गया। भक्ति श्रान्दोलन का मूल सिद्धान्त यह था कि सभी धर्म एक ही लक्ष्य पर पहुँचने के विभिन्न मार्ग हैं। धर्म भक्ति में निहित है श्रौर बाह्य श्राडम्बर से उसका कोई सरोकार नहीं है। ईश्वर एक है श्रौर राम श्रौर रहीम उसी के दो नाम हैं। भक्ति सम्प्रदाय में जात-पांत का कोई विशेष स्थान न था। इस सम्प्रदाय में भक्त ईश्वर को श्रपना प्रियतम या पति मानता था। भक्ति सम्प्रदाय का प्रारम्भ वैसे तो उपनिषद् श्रौर

गीता से होता है किन्तु ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में इस सम्प्रदाय का महत्व काफी बढ़ गया।

११. भक्ति सम्प्रदाय के उपदेशक—इस सम्प्रदाय के प्रमुख प्रसिद्ध उपदेशक रामानुज थे। इनके आराध्य देव विष्णु थे। इन्होंने अपना कार्य-क्षेत्र दक्षिण में ही सीमित रखा। एकेश्वरवाद और भक्ति के सिद्धान्त का प्रसार कर उन्होंने हजारों लोगों को हिन्दु धर्म की दीक्षा दी। उत्तर भारत में रामानन्द को भक्ति सम्प्रदाय के प्रमुख सुधारकों में गिना जाता है। वे राम के उपासक थे और उनके शिष्यों में सब जातियों के लोग, यहाँ तक कि मुसलमान भी थे। कबीर जाति के जुलाहे और रामानन्द के शिष्य थे। मुसलमान होकर भी वे सच्चे भक्त थे। उनका कथन था कि हिन्दु और मुसलमान दोनों उसी ईश्वर की सन्तान हैं, जिसे राम और रहीम कहा जाता है। ईश्वर भक्त के हृदय में ही रहता है और उसकी प्राप्ति भक्ति से ही सम्भव है। इन्हीं सिद्धान्तों की शिक्षा चैतन्य ने बंगाल में अपने अनुयायियों को दी। गुरु नानक भी इस सम्प्रदाय के महान् सुधारक थे। उन्होंने यह आन्दोलन पंजाब में चलाया और अपने जीवनकाल में उन्होंने हिन्दु-मुसलमान एकता के लिए अथक परिश्रम किया अनेक मुसलमानों ने उनसे दीक्षा ली थी। नानक एकेश्वर वाद सिद्धान्त के समर्थक थे और वे सत्यनाम की उपासना करते थे। तुलसीदास इस आन्दोलन के एक और महान् प्रचारक थे। जिन्होंने राम की उपासना की। तुलसीदास सम्राट अकबर के समकालीन थे। इस सम्प्रदाय के अन्य सुधारकों में विहार के विद्यापति, बंगाल के चण्डीदास और मेवाड़ की रानी मीरा के नाम उल्लेखनीय हैं। ये तीनों भगवान कृष्ण के उपासक थे। १६वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में यह आन्दोलन सन्त नामदेव, तुकाराम और रामदास ने जारी रखा।

१२. भक्ति आन्दोलन का प्रभाव—हिन्दू और इस्लाम धर्म के निकट सम्पर्क से उदित भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव धर्म एवं राजनीति

पर पड़ा। इस सम्प्रदाय के जन्म से हिन्दू धर्म की परम्परागत कठोरता, जटिलता और कर्मकांड का महत्व बहुत कम हो गया। जात-पांत के बन्धन इस सम्प्रदाय में नहीं थे, अतः इसे कोई भी व्यक्ति स्वीकार कर सकता था। भक्ति आन्दोलन का एक उल्लेखनीय परिणाम यह हुआ है कि हिन्दुओं के विचारों में काफी उदारता आ गई। राजनीति के क्षेत्र में हिन्दुओं और मुसलमानों का वैमनस्य घटने लगा। मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त करना शुरू किया। इसी प्रकार विजयनगर के शासकों की सेना में मुसलमान घुड़सवार भर्ती हुए। बीजापुर के सेनापति असदखां को विजयनगर में एक धार्मिक उत्सव में शरीक होने को निमन्त्रण भी भेजा गया था। सुलतान आदिल शाह ने हिन्दुओं को विशेष प्रोत्साहन दिया। हेमू नाम का एक हिन्दु उसका वजीर बनाया गया था। "जीवन के विभिन्न पहलुओं, कला, कारीगरी, संगीत तथा चित्रकला, वास्तुकला, वेशभूषा तथा खेल आदि में दोनों जातियों की सभ्यता इस प्रकार घुल-मिल गई थी और उसका इतना विकास हो चुका था कि जब बाबर हिन्दुस्तान में आया तो उसे मुसलमानों का हिन्दुस्तानी रहन-सहन देखकर बहुत आश्चर्य हुआ।"*

१३. साहित्य का विकास—हिन्दू और मुसलमानों के आपसी सम्पर्क से साहित्य के क्षेत्र में स्पष्ट और उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई। मुसलमानों की भाषा फारसी थी और हिन्दुओं की संस्कृत। अतः दोनों के बीच कोई एक माध्यम के रूप में हिन्दी और उर्दू का उदय और विकास हुआ। प्रायः सभी मुसलमान शासकों ने फारसी शिक्षा और साहित्य को प्रोत्साहन दिया। फारसी भाषा में कई ग्रंथ लिखे गए और फारसी की शिक्षा के लिए कई स्कूल खोले गये। मुसलमानों के शासन काल में संस्कृत का भी विशेष संवर्धन हुआ। मिथिला और बंगाल में व्याकरण की उत्कृष्ट रचनाएं लिखी गईं। उस समय का अधिकांश

Dr. Majumdar, Roychaudhary, Kelikinkar—"An advanced History of India."

जैन साहित्य संस्कृत में ही लिखा गया। कुछ मुसलमानों ने संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। साहित्य के क्षेत्र में देश के विभिन्न भागों में कार्यरत सुधारकों ने काफी योग दिया। वे अपने भाषण और लेखन के लिये सर्वसाधारण लोगों की समझ में आने वाली भाषा का प्रयोग करते थे। दक्षिण भारत में तामिल और महाराष्ट्र में मराठी भाषा और साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। उत्तरी भारत में चन्द बरदाई का पृथ्वीराज रासो, हिन्दी की सर्वप्रथम रचना है। हिन्दी में उर्दू और फारसी के बहुत से प्रचलित शब्द प्रयोग में ले लिये गये।

प्रश्न

1. Trace the rise of Vijayanagar empire and briefly describe its administration.

विजयनगर साम्राज्य का उदय कैसे हुआ? उसके शासन प्रबन्ध का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2. What do you know about Bahmani Kingdom ? Form an estimate of the achivements of Mahmud Gawan.

बहमनी राज्य के विषय में आप क्या जानते हैं? महमूद गावाँ की सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

3. What do you understand by 'Bhakti Movement' ? Name some of the important Bhakti Preachers and enumerate their teachings.

'भक्ति आन्दोलन' से आप क्या समझते हैं? भक्ति प्रचारकों में से कुछ महत्वपूर्ण उपदेशकों के नाम और उनकी शिक्षायें लिखिए।

4. Write short notes on:—

(1) Glory of Vijayanagar empire.

(2) Administration in Bahmani Kingdom.

(3) Bhakti Movement and its literature.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए:—

(१) विजयनगर का साम्राज्य का ऐश्वर्य ।

(२) बहमनी राज्य का शासन प्रबन्ध ।

(३) भक्ति आन्दोलन और भक्ति साहित्य ।

5. How did the Hindu and Muslim cultures react on each other and with what results ?

हिन्दू एवं मुस्लिम सभ्यताओं का परस्पर एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ा तथा उसके क्या परिणाम हुए ?

—:०:—

अध्याय २०

दिल्ली सल्तनत का पतन

सैयद और लोदी वंश (१४१४ ई०-१५५४ई०)

१. सैयद खिज्र खां—१४१२ ई० में महमूद तुगलक की मृत्यु पर दौलत खां शासक बना पर वह अधिक दिनों तक गद्दी पर नहीं रह सका। दो वर्ष पश्चात् खिज्र खां ने, जिसे तैमूर पंजाब का गवर्नर नियुक्त कर गया था, दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। दौलत खां हार गया और खिज्र खां गद्दी पर बैठ गया। इस प्रकार सैयद वंश की नींव पड़ी। जिस समय खिज्र खां शासक बना उस समय दिल्ली साम्राज्य की स्थिति बड़ी डांवांडोल थी। जौनपुर,मालवा और गुजरात के शासकों ने दिल्ली का आधिपत्य मानना बन्द कर दिया था। कन्नौज, कटेहर और बदायूं के शासकों ने भी कर देना बन्द कर दिया था। मुलतान में खोक्खर लोग उपद्रव कर रहे थे। अतः खिज्र खां ने बड़े साहस एवं धैर्य से काम लिया। कटेहर और बदायूं के शासकों को उसने दबाया। मेवातियों के साथ भी उसने सख्ती का व्यवहार किया। ग्वालियर के शासक को अपनी आधीनता स्वीकार कराके दिल्ली लौटते समय उसकी मृत्यु हो गयी। खिज्र खां एक नेक तथा दयालु शासक था।

२. मुबारक शाह—खिज्र खां की मृत्यु के पश्चात् १४२१ ई० में मुबारक शाह गद्दी पर बैठा। वह एक योग्य शासक था। उसके शासन काल में पंजाब का भीषण विद्रोह हुआ। वहां जसरथ खोक्खर विद्रोहियों का नेता था। खिज्र खां ने स्वयं पंजाब जाकर उसको दबाया था। इस प्रकार मुबारक के समय में भी स्थिति बहुत खराब रही। १४३४ ई० में मुबारक की हत्या कर दी गयी।

३. सुल्तान मुहम्मद—मुबारक की हत्या पर उसका दत्तक पुत्र

सुल्तान मुहम्मद गद्दी पर बैठा। उसके शासन काल में भी चारों तरफ अराजकता व कुव्यवस्था थी। जौनपुर के शासक ने दिल्ली के कई जिले अपने आधीन कर लिए। मालवा के शासक महमूद खिलजी ने दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद पर आक्रमण किया। पर लाहौर के गवर्नर बहलोल लोदी ने सुल्तान की मदद की। बहलोल लोदी स्वय दिल्ली पर अधिकार करना चाहता था। पर वह अपने इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाया। १४४५ ई० में सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु के बाद सैयद वंश का अन्तिम शासक अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा।

४. **अलाउद्दीन आलमशाह**—अलाउद्दीन आलमशाह एक निर्बल शासक था। बहलोल लोदी के भय के कारण उसने अपनी राजधानी दिल्ली से हटा कर बदायूं बनाई। स्वयं भी वह बदायूं में ही रहने लगा। दिल्ली के सरदारों ने बहलोल लोदी को दिल्ली का शासन सम्भालने के लिए निमन्त्रण दे दिया। बहलोल ने दिल्ली की गद्दी सम्भाल ली। इस प्रकार सैयद वंश का अन्त हो गया और लोदी वंश का शासन दिल्ली में स्थापित हुआ। बदायूं में ही अलाउद्दीन आलमशाह की मृत्यु हो गयी।

५. **लोदी वंश बहलोल लोदी**—बहलोल लोदी दिल्ली के शासन को मजबूत बनाना चाहता था। उसका सबसे बड़ा शत्रु जौनपुर का शासक महमूद शाह शर्की था। मेवातियों को बहलोल ने दबा दिया और दोआब के लोगों के उपद्रव को भी समाप्त कर दिया। जौनपुर के राजा ने लोदी पर आक्रमण कर दिया पर उसे परास्त होकर भागना पड़ा। जौनपुर के शासक को परास्त करने में बहलोल को कई वर्ष लगे। १४७६ ई० में बहलोल ने जौनपुर को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया और अपने बेटे बारबक शाह को वहां का शासक नियुक्त कर दिया। काल्पी, धौलपुर और अलापुर के शासकों ने भी दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर ली। बहलोल लोदी एक योग्य शासक था। उसने दिल्ली के राज्य में शान्ति और व्यवस्था स्थापित की। वह एक

उदार शासक था। हिन्दुओं के प्रति भी उसका व्यवहार अच्छा था।

६. सिकन्दर लोदी—बहलोल लोदी के पश्चात उसका पुत्र सिकन्दर लोदी गद्दी पर बैठा। जौनपुर का शासक बारबक शाह विद्रोही हो गया था। अतः सिकन्दर ने उसे पराजित करके बन्दी बना लिया। सरदारों के भड़काने से जौनपुर में हुसैन शाह शर्की ने भी विद्रोह शुरू किया और जौनपुर की गद्दी पर अधिकार करना चाहा। पर सिकन्दर के मजबूत हाथों ने उसे भी दबा दिया। अफगानों को दबाने के लिये सिकन्दर ने आगरा को अपना अड्डा बनाया और वहीं रहने लगा क्योंकि वहाँ से सरलता से ग्वालियर और इटावा का भी शासन किया जा सकता था। १५१७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। सिकन्दर लोदी एक कुशल शासक था। गरीबों के लिए वह बहुत उदार था पर अमीरों तथा सरदारों के प्रति वह बड़ा कठोर था। उसने सारी शक्ति अपने हाथों में ले ली थी। व्यापार तथा कृषि को उसने प्रोत्साहन दिया और भ्रष्टाचार को उसने समाप्त किया। इतना होते हुए भी हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार कठोर था। इतने कठोर शासन से उसने सम्पूर्ण राज्य में व्यवस्था स्थापित कर दी थी।

इब्राहिम लोदी—सिकन्दर लोदी के बाद इब्राहिम लोदी गद्दी पर बैठा। इब्राहिम का शासन काल विद्रोहों तथा कठिनाइयों का काल था। सबसे पहले सुल्तान इब्राहिम लोदी के भाई जलाल ने विद्रोह किया। सुल्तान ने उसे मरवा डाला। बिहार का प्रान्त स्वतन्त्र हो गया। मेवाड़ के राणा सांगा को दबाने के लिए जो सेना सुल्तान ने भेजी वह भी हार गई। पंजाब के गवर्नर दौलत खाँ के बेटे दिलावर खां को सुल्तान ने बड़ी निर्दयता से मरवा डाला। सुल्तान के इस क्रूर रवैये से सभी लोग असंतुष्ट हो गये। दौलत खां ने काबुल खबर भेजकर बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दे दिया। बाबर ने १५२६ ई० में पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी को पराजित करके दिल्ली राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सुल्तानों का शासन समाप्त

हो गया।

सुल्तानों के शासन काल में समाज, साहित्य और कला

८. मुसलमान समाज—मुसलमान आक्रमणकारियों ने भारत में राज्य स्थापित करने के बाद यहां धार्मिक प्रचार करना शुरू किया। अनेक स्थानों पर बल-पूर्वक भी लोगों को मुसलमान बनाया गया। अतः हिन्दू लोग मुसलमानों से अपने धर्म की रक्षा के लिये सावधान रहने लगे।

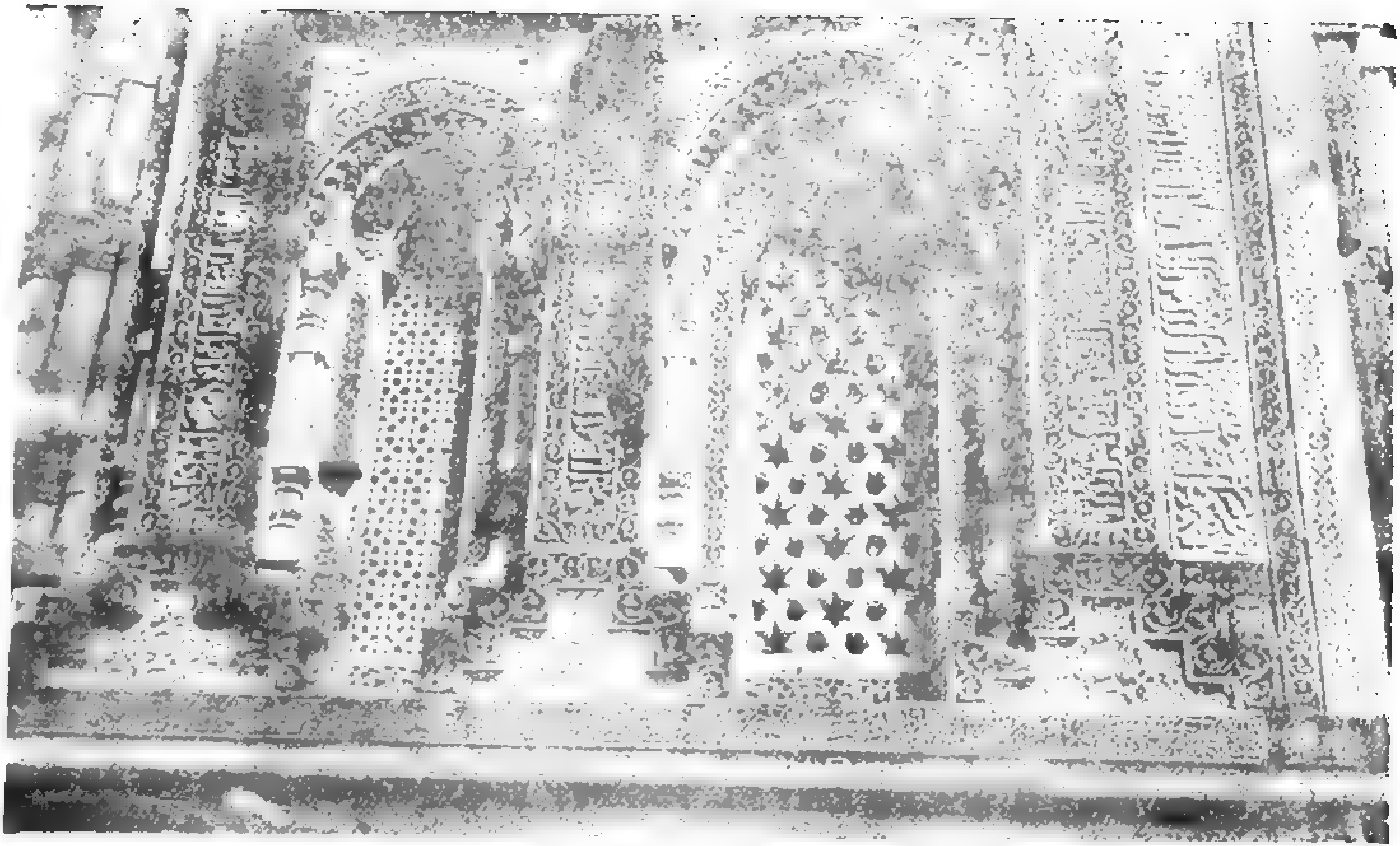
वैसे तो मुसलमानों में कोई जाति प्रथा नहीं थी, पर हिन्दुओं के प्रभाव के कारण उनमें भी ऊँच-नीच की भावना पैदा हो गई थी। उलमा वर्ग का समाज में बहुत सम्मान था। शासक वर्ग के लोग और सरदार एक से अधिक पत्नियां रखते थे और विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। शराब पीने की प्रथा खूब जोरों पर थी। मध्यम श्रेणी के मुसलमान सरकारी नौकर, क्लर्क या व्यापारी थे। उनका जीवन भी सुखी था और उन में विलासिता की भावना पैदा हो गई थी। गुलामों का जीवन सुखी नहीं था। पर ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जब गुलामों ने अच्छे-अच्छे पद प्राप्त कर लिए, जैसे बलबन और मलिक काफूर।

९. हिन्दू समाज—हिन्दू शासित वर्ग के लोग थे। समाज में उन्हें हेय समझा जाता था। उन्हें सरकार की ओर से कोई सहायता नहीं मिलती थी। बड़े-बड़े पदों पर भी उन्हें नहीं रखा जाता था। उन्हें जजिया आदि कर केवल इसलिए देना पड़ता था कि वे हिन्दू थे। हिन्दुओं को पूजा-पाठ करने या मन्दिर बनवाने की भी स्वतन्त्रता नहीं थी। न वे अपने पास हथियार रख सकते थे और न किसी सवारी पर बैठकर निकल सकते थे। हिन्दू समाज में ब्राह्मणों का सम्मान था। अन्ध-विश्वास, सती प्रथा, मूर्ति पूजा तथा जाति प्रथा का प्रचार था।

१०. आर्थिक जीवन—सुल्तानों का शासन आरम्भ से ही हत्याओं और षड्यन्त्रों का शासन रहा। गृह-कलह और गृह-युद्धों के कारण

शासकों को कभी भी सुधार करने का अवसर ही न मिला। यहाँ तक कि मुसलमानों के आने के पूर्व भारत की जो समृद्धि थी वह भी युद्धों तथा बरबादियों से नष्ट हो गई। इब्नबतूता और मार्कोपोलो नामक यात्रियों का कहना है कि समुद्र तट पर विशेषतया गुजरात और बंगाल में व्यापार काफी उन्नति पर था। बंगाल और दोआब बड़े उपजाऊ क्षेत्र थे। १४ वीं शताब्दी के अन्त में समाज की आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी और तैमूर के आक्रमण ने बिगड़ती हुई स्थिति को एक ठोकर और दे दी। रेशमी और मलमल के कपड़ों का व्यापार उन्नति पर था। मध्य-एशिया, तिब्बत, चीन और फारस आदि देशों के साथ व्यापार होता था। खाद्य पदार्थ, कपड़े, नील और अफीम भारत विदेशों को भेजता था। अमीरों, सरदारों तथा उलेमाओं का जीवन बहुत उच्च कोटि का तथा विलासितापूर्ण था। पर साधारण जनता का आर्थिक जीवन बहुत साधारण था।

११. साहित्य—भारत के सुलतान शासकों ने अरबी तथा फारसी साहित्य को बहुत प्रोत्साहन दिया। उन दिनों दिल्ली फारसी शिक्षा का एक बहुत बड़ा केन्द्र बन गया था। जालन्धर और फिरोजाबाद भी शिक्षा के बड़े केन्द्र थे। अमीर खुसरो उस समय का एक महान कवि था। गयासुद्दीन तुगलक और मुहम्मद तुगलक दोनों ही साहित्य के पोषक थे। सुलतान फिरोजशाह ने मदरसों और स्कूलों की बहुत मदद की। वह एक महान् विद्वान था। गोलकुण्डा, अहमदनगर, बीजापुर और जौनपुर भी शिक्षा के अच्छे केन्द्र थे। इस समय इतिहास की पुस्तकें भी लिखी गईं। मिहाजुद्दीन ने तबकाते नासिरी, अमीर खुसरो ने तारीखे अलाई और शम्से सीराज ने तारीखे फिरोजशाही इसी काल में लिखी। कुछ मुसलमान शासकों ने संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद भी कराया। धार्मिक साहित्य की भी वृद्धि हुई। इस समय में लिखे गये कुछ नाटकों के नाम हैं 'हम्मीरमद-मर्दन' 'पार्वती-परिणय' 'विदग्ध माधव' व 'मालती माधव'। जयदेव ने गीत गोविन्द'



अलाई दरवाजा, दिल्ली

की रचना १२ वी शताब्दी में ही की थी। हिन्दू सन्तों तथा मुसलमान सूफियों ने भी साहित्य निर्माण एवं प्रचार किया।

१२. कला – सुलतान शासकों को कला से भी बहुत प्रेम था। उन्होंने अनेक सुन्दर इमारतों का निर्माण कराया। भारत के हिन्दू कारीगरों को निर्माण-कला का अच्छा अभ्यास था और उन्होंने सुलतानों क शासन में जो इमारतें बनाई हैं, उनमें भारतीय कला स्पष्ट दिखाई पड़ती है। मुसलमान मध्य-एशिया से जो कला की शैली अपने साथ लाये थे उसका भारतीय कला शैली से मिश्रण हुआ तो कला की एक नई शैली का जन्म हुआ, जिसे 'इण्डोइस्लामिक' शैली कहते हैं। दिल्ली के निकट बनी कुतुब मीनार 'इंडो-इस्लामिक' शैली का सुन्दर नमूना है। अलाई दरवाजा भी इसी काल की एक सुन्दर कृति है। अलाउद्दीन काल की इमारतों में बहुत सादगी है। मुसलमानों ने हिन्दुओं और जैनियों के जिन मन्दिरों पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया था, उनमें भी वे थोड़ा बहुत ही परिवर्तन करा सके और उनमें भारतीय कला स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। जौनपुर की इमारतों में भारतीय कला के साफ साफ दर्शन होते हैं। जौनपुर के अटाला देवी के मन्दिर को मुसलमानों ने जबरदस्ती छीन कर उसे अटाला मस्जिद बना लिया। विजयनगर राज्य की इमारतों में दक्षिण भारत की वास्तुकला के दर्शन होते हैं। फारसी, मिश्री, तुर्की और भारतीय शैली का मिला-जुला रूप हमें बहमनी शासन काल में बनी गुलबर्गा की जामा मस्जिद और दौलताबाद की चांद मीनार में देखने को मिलता हैं। माण्डू में बनी इमारतों पर—बाजबहादुर और रूपमती के महलों —मुस्लिम शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

१३. पतन के कारण—मुसलमानों का साम्राज्य मुहम्मद गोरी द्वारा स्थापित हुआ था। गुलाम वंश के शासकों द्वारा इसकी वृद्धि हुई। खिलजी वंश ने साम्राज्य को उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचाया और तुगलक वंश के शासकों ने इसका अन्त निकट ला

दिया। लगभग दो शताब्दियों से कुछ अधिक समय तक सुल्तानों का शासन भारत में रहा। इसकी अवनति के कारणों का उल्लेख नीचे किया जाता है—

(१) शासन का आधार—मुसलमानों ने शक्ति के बल पर भारत में विजय पाई थी। सैनिक बल ही उनके शासन का भी आधार रहा। भारत की हिन्दू जनता को उन्होंने कभी सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा और हिन्दू जनता की सहानुभूति प्राप्त किए बिना भारत में उनको सच्ची सफलता मिलना संभव नहीं था। अपने अत्याचारों से उन्होंने हिन्दुओं को असंतुष्ट कर रखा था। अतः उन्हें सदैव ही युद्ध करने पड़े और वे कभी भी देश को संगठित या शासन को सुव्यवस्थित नहीं कर पाये। बलबन, अलाउद्दीन और फिरोज तुगलक जैसे शासकों की हिन्दू-विरोधी नीति ने राज्य की शक्ति को बिल्कुल निर्बल बना दिया। परिणामस्वरूप समय मिलते ही हिन्दू लोग विद्रोह कर उठे और इसी प्रकार विजयनगर राज्य की नींव पड़ी।

(२) शासन व्यवस्था – सुल्तानों का साम्राज्य बहुत विस्तृत था। इतने बड़े साम्राज्य के सुशासन के लिए उसे प्रान्तों में बांट दिया गया था। प्रान्तों का शासन प्रान्तीय गवर्नरों के हाथों में रहता था। उन दिनों यातायात के साधन अच्छे नहीं थे। अतः केन्द्रीय शासन प्रान्तीय शासन का ठीक प्रकार नियंत्रण नहीं कर पाता था। समय मिलते ही प्रान्तीय गवर्नर विद्रोह कर देते थे और अपने को स्वतंत्र घोषित कर देते थे। अलाउद्दीन और बलबन जैसे कुछ शक्तिशाली शासकों ने तो सम्पूर्ण राज्य पर अच्छी तरह नियंत्रण रखा पर विलासी तथा निर्बल शासकों के समय में चारों तरफ अराजकता फैल गई और प्रान्त स्वतंत्र होने लगे। अतः साम्राज्य का इतना विस्तृत होना तथा सुव्यवस्थित शासन न होना भी सुल्तानी शासन के अन्त का एक कारण था।

(३) मुहम्मद तुगलक के विचित्र कार्य—मुहम्मद तुगलक के कुछ कार्य ऐसे थे, जिनसे साम्राज्य को काफी धक्का लगा। उसकी दौलताबाद को राजधानी बनाने की नीति ने प्रजा को बहुत असंतुष्ट कर

दिया। विश्व विजय की महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए उसने जो एक विशाल सेना संगठित की थी उसका कोई उपयोग नहीं हुआ और इस सेना पर सरकारी खजाने की एक बहुत बडी राशि व्यय हुई, जिससे राज्य की आर्थिक दशा को बहुत ठेस पहुँची। हिमालय के पर्वतीय राज्यों के विजय के लिए उसने जो सेना भेजी थी, उसके नष्ट होने से भी साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो गई। इन सब कार्यों के परिणाम-स्वरूप जनता में असंतोष फैल गया और विद्रोह हुए। इन विद्रोहों को दबाने के लिए उसने दमन नीति अपनाई जिसके परिणाम और भी भयंकर हुए। इस प्रकार मुहम्मद तुगलक की योजनाओं के परिणाम-स्वरूप उसका शासन कुख्यात हो गया और साम्राज्य विगठित होने लगा।

(४) फिरोज तुगलक—फिरोज तुगलक को इस पतन के लिए पर्याप्त उत्तरदायी माना जाता है। सच पूछा जाय तो फिरोज एक निर्बल शासक सिद्ध हुआ और उसकी दुर्बल नीति के कारण शत्रुओं ने साम्राज्य को काफी हानि पहुँचाई। सुलतान के शासन की ढिलाई के कारण साम्राज्य में भ्रष्टाचार तथा अत्याचार की बहुत वृद्धि हो गई थी। जागीर प्रथा को फिर से चालू करके फिरोज ने सुल्तानी साम्राज्य को बहुत हानि पहुँचाई। छोटे-छोटे जागीरदार बाद में साम्राज्य के लिए बहुत बड़े खतरे बन गए। फिरोज ने इतने अधिक गुलामों को रखा कि उन पर राज्य की सम्पूर्ण आय का एक बहुत बड़ा भाग व्यय होने लगा।

(५) मुसलमान सैनिक—मुसलमान सैनिकों में शुरू में धार्मिक उत्साह था। पर बाद में उनमें विलासिता तथा अन्य दोष आ गए। इन दोषों के कारण उनकी कार्य क्षमता तथा वीरता में बहुत कमी हो गई। वे परस्पर द्वेष और ईर्ष्या के शिकार हो गए। प्रत्येक सैनिक तथा सरदार दूसरों को सन्देह दृष्टि से देखता था। अतः शासन का आधार ही बहुत क्षीण हो गया था।

(६) उत्तराधिकार की अनिश्चितता—मुसलमानों में उत्तराधिकार

का कोई निर्धारित नियम न होना राज्य के लिए बहुत हानिकर बात थी । प्राय: एक शासक के मरने के बाद उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़े शुरू हो जाते थे । सत्ता प्राप्त करने के लिए षड्यन्त्र और हत्यायें भी हो जाती थीं । इस प्रकार केन्द्रीय सरकार की गड़बड़ी और गृह-युद्ध के समय प्रान्तीय शासक विद्रोह कर देते थे और स्वतंत्र हो जाते थे । साथ ही सरकार की शक्ति भी क्षीण हो जाती थी ।

(७) सुल्तान की विलासिता—दिल्ली के अधिकांश सुल्तान शासक विलासी थे । उन्हें राजकाज देखने की न फुरसत थी और न इच्छा । जनानखाने में शराब पीकर मस्त पड़े रहते थे और उनकी आंखें तब खुलती थीं जब उन पर कोई आक्रमण होता था या कहीं विद्रोह होता था । उनके विलासी जीवन पर एक तो खजाने की काफी राशि व्यय होती थी और दूसरे इस बात का प्रभाव अन्य सरदारों पर भी बहुत बुरा पड़ता था ।

प्रश्न

1. Describe the circumstances in which Sayyad dynasty ascended to power and what do you know about Sultan Khizr Khan ?

सैयद वंश किन परिस्थितियों में सत्तारूढ़ हुआ ? सुल्तान खिज्र खां के विषय में आप क्या जानते हैं ?

2. What do you know about Lodhi dynasty ? Form an estimate of the achievements of Sultan Sikandar Lodhi.

लोदी वंश के बारे में आप क्या जानते हैं ? सुल्तान सिकन्दर लोदी की सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए ।

3. Describe the social and economic condition of the people during the period of Delhi Sultanate.

दिल्ली के सुल्तानी शासन-काल में सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति कैसी थी। इसका वर्णन कीजिए।

4. Form an estimate of the development of art and literature during the regime of Delhi Sultanate.

दिल्ली के सुल्तानी शासन में कला और साहित्य के विकास का वर्णन कीजिए।

5. What were the causes of the downfall of the Delhi Sultanate and how far Sultan Muhammad Tugluq & Feroz Shah Tughluq were responsible for it ?

दिल्ली के सुल्तानी शासन के पतन के क्या कारण थे और इस पतन के लिए सुल्तान मुहम्मद तुगलक तथा फिरोज शाह तुगलक कहां तक उत्तरदायी थे ?

—:o:—

अध्याय २१

मुगल साम्राज्य

बाबर (१५२६ ई०—१५३० ई०)

१. सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की स्थिति—इब्राहिम लोदी के शासनकाल में दिल्ली साम्राज्य का विस्तार कम हो चुका था। पंजाब पर दिल्ली का नाममात्र आधिपत्य रह गया था और वहां दौलत खां नाम के एक अफगान सूबेदार का शासन था। पश्चिम में सिन्ध एवं मुल्तान तथा पूर्व में जौनपुर, बंगाल और उड़ीसा राज्य स्वतन्त्र हो चुके थे। राजपूत राज्य मेवाड़ के सिसोदिया शासकों के नेतृत्व में संगठित हो गए थे और वे काफी शक्तिशाली थे। इधर गुजरात भी एक स्वतन्त्र मुसलमान राज्य था, जो अपने पड़ोसी राज्यों पर यदा-कदा आक्रमण कर देता था। दक्षिण में बहमनी राज्य के विगठन के फलस्वरूप जो पांच राज्य बने थे, वे भी शक्तिशाली थे। इस प्रकार भारत में कई छोटे-छोटे राज्य थे, जिनमें एकता का अभाव था।

२. बाबर का भारत पर आक्रमण—बाबर का जन्म १४८३ ई० में हुआ था। इसके पिता का नाम मिर्जा शेख था। मिर्जा शेख की मृत्यु पर बाबर को फरगाना प्रान्त का राज्य मिला। किन्तु बाबर की आयु उस समय कम थी और उसके सम्बन्धियों ने उसका सब कुछ छीन कर उसे निष्कासित कर दिया। वह कई वर्ष तक भटकता रहा और इन दिनों उसे जो मुसीबतें उठानी पड़ीं, उनके कारण वह संघर्षों का आदी हो गया। कहा जाता है कि एक बार किसी गांव में तैमूर लंग के भारत के आक्रमण का हाल सुन कर उसने भी अपने पूर्वज का अनुसरण करने का पक्का इरादा कर लिया। काफी दिनों तक भटकने के पश्चात् वह

अफगानिस्तान पहुँचा। वहाँ उसने फौजें इकट्ठी कर १५०४ ई० में काबुल के राज्य पर अधिकार कर लिया। १५११ ई० के लगभग उसने समरकन्द पर आक्रमण किया किन्तु उसकी विजय अल्पकालीन ही रही। १५१२ ई० में उजबेगों ने उसे बुरी तरह परास्त किया और समरकन्द बाबर के हाथ से चला गया। पश्चिमी प्रदेश में हार-जाने के पश्चात् बाबर ने पूर्व की ओर अग्रसर होने का निश्चय किया किन्तु कुछ कठिनाइयों के कारण १५२४ ई० तक वह भारत पर आक्रमण नहीं कर सका।

१५२४ ई० में पंजाब के सूबेदार दौलतखां लोदी ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमन्त्रण दिया। बाबर तुरन्त भारत पर चढ़ आया और उसने लाहौर पर अधिकार कर लिया। दौलतखां को जब बाबर के वास्तविक उद्देश्य का आभास हुआ तो उसने उसके विरुद्ध लड़ाई कर दी। इसी बीच बाबर को, उजबेगों के विद्रोह का समाचार पाकर, वापस लौट जाना पड़ा। किन्तु १५२५ ई० में वह फिर भारत आया। उसने दौलतखां को हराकर अपने आधीन कर लिया। १५२६ ई० में उसका मुकाबला दिल्ली के शासक इब्राहिम लोदी से हुआ। पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में एक घमासान युद्ध हुआ, जिसमें जीत बाबर की रही। बाबर ने तुरन्त दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया।

२ राणा साँगा और बाबर यद्यपि बाबर दिल्ली और आगरे का स्वामी बन गया था, तथापि उसकी कठिनाइयाँ मानो प्रारम्भ ही हुई थीं। जिस समय वह भारत आया, उस समय राजपूत बहुत शक्तिशाली थे और उनका नेता मेवाड़ का राणा सांगा था। राणा सांगा भी बाबर के ही समान शूरवीर और महत्वाकांक्षी था। वह हिन्दू साम्राज्य के स्थापनार्थ दिल्ली पर कब्जा करने की कोशिश में था। राणा सांगा ने मालवा और गुजरात राज्य पर सफल आक्रमण कर उन पर अपनी सत्ता जमा ली थी। बाबर ने अपनी जीवनी 'बाबरनामा' में राणा

सांगा से प्राप्त एक पत्र का उल्लेख किया है। उस पत्र में राणा साँगा ने बाबर को इब्राहिम लोदी पर आक्रमण करने के लिए कहा था और इस कार्य में सहायता देने का आश्वासन भी दिया था। किन्तु जब बाबर भारत आया तो उसे राणा से कोई सहायता नहीं मिली। राणा का विचार था कि इब्राहिम को हराकर बाबर काबुल लौट जायेगा और ऐसी स्थिति में वह दिल्ली पर यों ही कब्जा कर लेगा। किन्तु बाबर दिल्ली में डटा रहा और इसलिए राणा को उस पर आक्रमण करना पड़ा।

४. सांगा की पराजय—राजपूत और अफगान सैनिकों की विशाल सेना लेकर राणा सांगा आगरे की ओर बढ़ा। आगरे के पास सीकरी के मैदान में उसने अपना पड़ाव डाल दिया। इसी मैदान में बाबर और सांगा का मुकाबला हुआ। पहले तो बाबर को जीतने की कोई आशा न थी क्योंकि सांगा की सेना बहुत बड़ी थी। बाबर की सेना बहुत हताश हो गई। पर बाबर ने युद्ध क्षेत्र में नमाज पढ़कर यह कसम खाई कि यदि वह जीत गया तो वह कभी शराब न पीयेगा। उसने अपने सैनिकों से कहा कि दुश्मन को पीठ दिखाकर भागने से मरना बेहतर है और इसलिए पूरी बहादुरी के साथ युद्ध करो। बाबर के शब्दों का वांछित परिणाम हुआ और पानीपत के युद्ध में उसने जिस कुशल सैन्य संगठन के बल पर इब्राहिम को हराया था, उसी से राणा सांगा को भी परास्त कर दिया। सांगा को हराकर बाबर ने चन्देरी के किले पर धावा बोल दिया और उसे जीत लिया। इसी बीच पूर्व में अफगानों ने विद्रोह कर दिया। अतः उन्हें दबाने के लिए बाबर बिहार की ओर बढ़ा। पटना के निकट घाघरा नदी के किनारे अफगानों के साथ उसकी मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में बाबर की जीत हुई और बिहार का प्रान्त भी उसके राज्य में सम्मिलित हो गया। बाबर का जीवन अधिकांशतः संघर्षों में ही बीता था अतः उसका स्वास्थ्य दिनों दिन गिरता गया। अपने प्रिय पुत्र हुमायूं की बीमारी

से उसे बहुत धक्का लगा और १५३० ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

५. बाबर का चरित्र—मध्यकालीन इतिहास के पात्रों में बाबर का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है। भारत में उसका शासन केवल पाँच वर्ष रहा किन्तु वह महान शासकों में गिना जाता है। बचपन से ही उसे संघर्ष करने पड़े थे। वह बहुत शक्तिशाली और साहसी था। वह अत्यन्त कुशल योद्धा था किन्तु उसका हृदय भावुक और कोमल था। उसने अपने सैनिकों को लूट-मार करने की अनुमति कभी नहीं दी। उसका सैनिक संगठन अच्छा था और इसी के बल पर उसने लोदी और सांगा की सेनाओं को परास्त किया। बाबर सुन्नी मतानुयायी था, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति उसका दृष्टिकोण उदार एवं सहिष्णु था। उसे संगीत और कविता से बहुत अनुराग था। इन गुणों के अतिरिक्त उसमें साहित्यिक प्रतिभा भी थी। सृष्टि-सौन्दर्य देखकर वह मुग्ध हो उठता था और उससे प्रेरणा लेकर काव्य-रचना भी करता था। बाबर की रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध 'बाबरनामा' है।* इस जीवनी में बाबर ने बहुत सुन्दर भाषा में अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि बाबर तत्कालीन महान् शासकों में सदैव स्मरण किया जायेगा।

हुमायूं (१५३०-४० ई० और १५५५-५६ ई०)

६. हुमायूं—बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र हुमायूं १५३० ई० में गद्दी पर बैठा। उस समय हुमायूं के समक्ष अनेक कठिनाइयाँ थीं। बाबर ने काफी बड़ा प्रदेश जीत लिया था, किन्तु वह अपने आधीन राज्यों को एक सूत्र में बांध नहीं पाया था। बाबर के तीन और पुत्र—कामरान, अस्करी और हिन्दाल—थे। बाबर के

---

*इस ग्रन्थ की एक सुन्दर पाण्डुलिपि आगरा कालेज लाइब्रेरी में उपलब्ध है। यह प्रति पहले शाहजहाँ के पास थी और उसके एक पृष्ठ पर उसके हस्ताक्षर हैं। इस उत्कृष्ट जीवनी का अनुवाद फ्रेंच, अंग्रेजी और कई अन्य भाषाओं में हो चुका है।

मरते समय हुमायुं से उनकी देखभाल करने के लिए कहा था। बाबर की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने बंटवारा कर लिया। राज्य का अधिकांश भाग हुमायूं को मिला, काबुल और कन्दहार कामरान को मिले, संभल अस्करी को और अलवर तथा मेवात हिन्दाल को। हुमायूं ने बाबर की अन्तिम इच्छा का जीवन भर ध्यान रखा किन्तु उसके भाइयों ने उसका कभी साथ नहीं दिया। विद्रोह की स्थिति में उसे अपने भाइयों से किसी प्रकार की सहायता की आशा न थी। कामरान ने तो पंजाब पर बलात् अधिकार कर अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था। हुमायूं के सामने एक कठिनाई यह भी थी कि बाबर ने अफगानों का दमन तो कर दिया था, किन्तु वे स्वतन्त्र होने की तैयारियां कर रहे थे और उन्होंने बंगाल में अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

७. बहादुरशाह से संघर्ष—हुमायूं के समक्ष अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी उसने अपने प्रारम्भ के आक्रमणों में अपनी युद्धकला का अच्छा प्रमाण दिया। गुजरात का बहादुरशाह हुमायूं को बहुत तंग कर रहा था। उसने मेवाड़ और मालवा पर भी अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। हुमायुं के शत्रुओं को भी उसने अपने यहां शरण दी। १५३५ ई० में हुमायूं ने गुजरात पर आक्रमण कर बहादुरशाह को मालवा से खदेड़ दिया। किन्तु हुमायूं की सफलता अस्थायी ही रही। पूर्व में अफगानों के विद्रोह का समाचार पाते ही वह उधर चला गया और उसके जाते ही बहादुरशाह ने गुजरात और मालवा पर पुनः कब्जा कर लिया। इस प्रकार गुजरात और मालवा के राज्य हुमायूं के हाथ से फिर निकल गये।

८. शेरशाह : हुमायूँ की पराजय—हुमायूं ने १५३१ ई० में बिहार पर आक्रमण कर अफगानों के नेता महमूद लोदी को परास्त किया। युद्ध में महमूद लोदी मारा गया और शेरशाह अफगानों का नेता बन गया। शेरशाह भारत से मुगलों को भगाकर अपना

साम्राज्य स्थापित करने की आकांक्षा रखता था। हुमायूं ने उस पर आक्रमण कर दिया और शेरशाह ने उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इस पर हुमायूं लौट गया और जब वह गुजरात में बहादुर शाह को दबाने के लिए गया तब शेरशाह ने १५३५ ई० में बंगाल पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। किन्तु, वहां के अफगान शासक ने उसे काफी धन सम्पत्ति आदि देकर लौटा दिया। शेरशाह अब बहुत शक्तिशाली हो गया था। उसने बिहार पर अपनी सत्ता पहले ही कायम कर ली थी और बंगाल के बाद उसने रोहतास का किला भी जीत लिया।

९. हुमायूं की हार—शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति का समाचार पाकर हुमायूं उसे परास्त करने के लिए रवाना हुआ। उसने बिहार में घुसकर चुनार का किला जीत लिया। शेरशाह ने दूसरे रास्ते से लौटकर चुनार के किले को हुमायूं की सेना से दोबारा छीन लिया। हुमायूं उस समय बंगाल गया हुआ था। शेरशाह ने हुमायूं की वापसी का रास्ता बन्द कर दिया। हुमायूं ने अपने बचाव की कोई व्यवस्था नहीं की और छः महीने तक वहीं आराम करता रहा। इस बीच शेरशाह ने कन्नौज तक अपना राज्य बढ़ा लिया। हुमायूं ने लौटते समय बक्सर के निकट चौसा में शेरशाह से टक्कर ली। इस युद्ध में हुमायूं बुरी तरह हारा और गंगा को पार कर किसी तरह अपनी जान बचाई। शेरशाह अब बंगाल और बिहार का शासक बन गया।

१०. हुमायूं का निष्कासन—आगरा पहुंच कर हुमायूं ने अफगानों को हराने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए। शेरशाह कन्नौज तक बढ़ आया और उसने गंगा के किनारे अपना पड़ाव डाल दिया। हुमायूं अपनी सेना लेकर उस ओर गया और १५४० ई० में दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। कन्नौज की इस लड़ाई में हुमायूं फिर हार गया और अपनी प्राण-रक्षा के लिए भाग निकला। शेरशाह ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। आगरा भी उसके हाथों में आ गया।

हुमायूं हिन्दुस्तान के साम्राज्य से हाथ धो बैठा और वह मारवाड़ और सिंध के रेगिस्तान में मारा-मारा फिरता रहा। जोधपुर के राजा मालदेव ने उसकी कोई सहायता नहीं की। अनेक कठिनाइयों को पार करने के बाद वह अमरकोट पहुंचा। यहीं उसकी पत्नी हमीदा ने अकबर को जन्म दिया। यही अकबर आगे चलकर मुगल वंश का सबसे महान् शासक बना। यहां से हुमायूं कन्दहार गया किन्तु उसके भाइयों ने उसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। अतः विवश होकर वह ईरान चला गया।

सूरवंश—शेरशाह (१५४० ई०—१५४५ ई०)

११. शेरशाह का साम्राज्य विस्तार—दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के पश्चात् शेरशाह ने अन्य राज्यों को अपने अधीन करने की चेष्टा की। पंजाब के खोक्खर सिर उठा रहे थे। शेरशाह ने उनका दमन किया। इसी समय उसे बंगाल जाना पड़ा, जहां उसके एक सूबेदार ने काफी गड़बड़ी फैला दी थी। बंगाल से लौटकर उसने मालवा को दबोचा और मालवा के पश्चात् रायसेन की बारी आई। रायसेन के राजपूतों ने बहादुरी से लड़ाई लड़ी, किन्तु वे हार गए। मारवाड़, रणथंभौर आदि स्थानों में शेरशाह को ऐसी ही लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। अफगान राज्य का विस्तार काफी तेजी से हो रहा था। अब शेरशाह ने राजा मालदेव पर आक्रमण किया। यहां भी शेरशाह ने अपनी धूर्तता से राजपूतों को परास्त कर दिया। शेरशाह यहां जीत तो गया किन्तु इसी बीच अजमेर से लेकर आबू तक का प्रदेश उसके हाथ से निकल गया। अतः शेरशाह ने १५४५ ई० में कालिंजर के किले में घेरा डाल दिया। जीत उसकी होती इसमें सन्देह न था किन्तु एक सुरंग के फट जाने से उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु से अफगानों का एक महत्वपूर्ण शासक चला गया और अफगान साम्राज्य की सारी आशाएं भी समाप्त हो गईं।

१२. शेरशाह का शासन—शेरशाह मध्यकालीन इतिहास के

महान् शासकों में गिना जाता है। शेरशाह का शासन पांच वर्ष तक रहा, जिसमें उसने अपने को पराक्रमी सैनिक और कुशल शासक प्रमाणित कर दिया। उसकी धारणा थी कि बादशाह प्रजा के लिए पिता-तुल्य है और अपनी प्रजा के कल्याण के लिए वह अथक परिश्रम किया करता था। उसके समक्ष राजत्व का बहुत उच्च आदर्श था। जिसके पांच मुख्य उद्देश्य ये थे—(१) अत्याचारों से प्रजा की रक्षा। (२) अपराधों का दमन। (३) देश में अमन चैन। (४) सड़कों पर प्रवासियों की रक्षा का पर्याप्त प्रबन्ध और (५) व्यापारियों और सैनिकों को सुविधायें उपलब्ध कराना। सुविधा की दृष्टि से शेरशाह के शासन का वर्णन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है:—

(१) शासन व्यवस्था—शेरशाह तत्कालीन शासन व्यवस्था से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट न था। उसने शासन में कई सुधार कर अपने राज्य की नींव को मजबूत बनाया। शासन की सर्वोच्च सत्ता सुल्तान में निहित थी। सिद्धान्ततः उसके अधिकारों की कोई सीमा नहीं थी। किन्तु, वह पहला मुसलमान सम्राट था, जिसने अपने शासन को धर्म निरपेक्ष बनाने के लिए प्रयत्न किया। वह अपनी सेना का प्रधान सेनापति और सर्वोच्च न्यायाधीश भी था। न्यायदान में वह किसी का पक्ष नहीं करता था। शासन को ठीक ढंग से चलाने के लिए उसके मन्त्री थे जो उसके सलाहकार के रूप में कार्य करते थे। सारा साम्राज्य सरकारों में विभक्त था। ये सरकार शासन की इकाई थे। सरकार का प्रमुख अधिकारी प्रधान शिकदार कहलाता था। प्रत्येक सरकार परगनों में बंटी हुई थी। हर परगने में एक शिकदार और एक अमीन होता था। अमीन सहायक अधिकारी समझा जाता था और उसका मुख्य काम मालगुजारी की वसूली था। शिकदार, शासन और पुलिस विभाग का प्रधान होता था। इस पद पर प्रायः फौजी कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। उनकी सहायता के लिए एक खजांची, एक कारकुन और कानूनगो होते थे। प्रत्येक परगने में कई गाँव होते थे।

प्रत्येक गांव में एक मुकद्दम रखा जाता था। गांव में अमन-चैन बनाए रखना मुकद्दम की जिम्मेदारी थी। इस के अलावा वह अमीन को मालगुजारी वसूल करने में भी सहायता देता था।

(२) वाणिज्य और व्यवसाय—शेरशाह ने वाणिज्य की उन्नति के लिए कई पग उठाये। इससे व्यापार समृद्ध हुआ और राज्य की आय भी बढ़ गई। व्यापारियों के लिए निश्चित तोल के बाट रखना, उचित मूल्य लेना तथा अच्छा माल रखना अनिवार्य घोषित कर दिया गया। बाहरी देशों से आयात माल पर ढाई प्रतिशत चुंगी ली जाती थी। इसके अतिरिक्त माल के विक्रय स्थान पर भी एक और कर लिया जाता था। व्यापार के लिए आवागमन के साधन आवश्यक हैं इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए शेरशाह ने अपने राज्य के महत्वपूर्ण शहरों को जोड़ने वाली पक्की सड़कें बनवाईं। उसके काल की एक सड़क पंजाब से सोना गांव (बंगाल) तक जाती थी। यही सड़क ग्रांड ट्रंक रोड के नाम से जानी जाती है। दूसरी सड़क आगरा से बरहानपुर, तीसरी आगरा से जोधपुर और चौथी सड़क लाहौर से मुलतान जाती थी। इन सड़कों के दोनों ओर वृक्ष लगाये गए और इन पर चलने वालों की सुरक्षा का उचित प्रबन्ध किया गया। स्थान-स्थान पर विश्राम के लिए सराय बनी थीं जिनमें हिन्दुओं और मुसलमानों को बिना मूल्य भोजन देने की व्यवस्था थी। समस्त राज्य में अच्छी सड़कें और सुरक्षा का प्रबन्ध होने से व्यापार बड़ी उन्नति पर था। उसने तत्कालीन मुद्रा में भी वांछित सुधार किये। उसने तांबे के नए सिक्के चलाये जिन्हें 'दाम' कहा जाता था। उसने सोने, चांदी तथा मिश्र धातुओं के टुकड़ों को समाप्त कर दिया। इसके स्थान पर सोना, चांदी और तांबे के ढले सिक्कों का चलन प्रारम्भ हुआ। शेरशाह ने मुद्रा की एक ऐसी प्रणाली का श्रीगणेश किया जो भारत में उन्नीसवीं शताब्दी तक चलती रही।

(३) न्याय-व्यवस्था—शेरशाह के शासनकाल में न्याय-व्यवस्था सुनियोजित थी। देश में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने का काम

मुकद्दम या गांव के मुखिया पर था। अपराधियों का पता उन्हें ही लगाना पड़ता था। फौजदारी मामलों को मुख्य शिकदार और माल के मामलों को आलामुंसिफ निबटाता था। शेरशाह का पुलिस (बरकंदाज) विभाग बड़ी मुस्तैदी से अपना कार्य करता था। राज्यभर में विश्वस्त और दक्ष गुप्तचर नियम थे जो शेरशाह को राज्य की गतिविधियों से अवगत कराते रहते थे। शेरशाह अपने साम्राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश था। न्यायदान में वह पूर्णरूपेण निष्पक्ष था।

(४) लगान व्यवस्था—भूमि लगान व्यवस्था में उचित सुधार करने का श्रेय शेरशाह को प्राप्त है। उसके सुधार इन चार तथ्यों पर आधारित थे—(क) भूमि का उचित मूल्यांकन, (ख) लगान की रकम का उचित निर्धारण, (ग) लगान वसूली के लिए कुशल अधिकारी और (घ) किसान तथा राज्य के बीच सीधा सम्बन्ध। शेरशाह ने भूमि की नाप-तोल करवाई जो बीघों में निर्धारित की जाती थी। वास्तव में जितनी भूमि में खेती की गई हो, उसकी पैमाइश पर वार्षिक लगान की रकम निश्चित की जाती थी। लगान साधारण तथा उपज का एक-तिहाई भाग होता था। ऐसा प्रतीत होता है लगान नकद देना अथवा अनाज के रूप में देना किसानों की इच्छा पर निर्भर था। गांव से लगान वसूल करना मुकद्दम का दायित्व था और इसके लिए उसे लगान में से कुछ भाग कमीशन के रूप में मिलता था। लगान वसूली की यह प्रणाली बहुत अच्छी थी और अकबर के साम्राज्य में भी चलती रही।

१३. शेरशाह का मूल्यांकन—कई इतिहासकारों का मत है कि भारत के इतिहास में शेरशाह एक महान् शासक था। इसके विपरीत कुछ अन्य विद्वान् उसे एक अफगानी विद्रोही से अधिक महत्व नहीं देते। शेरशाह ने शासन के प्रत्येक क्षेत्र में जो सुधार किए, उनमें कोई नई बात न थी। किन्तु जिस दूरदर्शिता और दक्षता से वे लागू किए गए वे शेरशाह की योग्यता के यथेष्ट प्रमाण हैं। एच० जी० कीन के शब्दों में "वह जनता की रक्षा के लिए अथक परिश्रम करता था। वह

कहा करता था कि बड़ों को सदैव काम करते रहना ही शोभा देता है। उसने अपने जीवन में कभी आवश्यकता से अधिक आराम नहीं किया। ऐबक से लेकर औरंगजेब तक कोई शासक ऐसा नहीं था जिसे शेरशाह के बराबर शासन की बारीकियां मालूम थीं। उसने मालगुज़ारी, सैन्य, न्याय-व्यवस्था आदि में सुधार कर अपने शासन की नींव दृढ़ की।"* वह स्वयं कट्टर मुसलमान था किन्तु उसने धर्म के नाम पर कभी किसी को सताया नहीं। डा० स्मिथ उसकी प्रशस्ति में लिखते हैं कि "शेरशाह कुछ वर्ष और जीवित रहता तो वह अपने वंश को स्थापित कर जाता और तब इतिहास के मंच पर मुगलों का आगमन कदापि न होता।" उसके राज्य में हिन्दू और मुसलमान दोनों समान थे। दोनों को सरकारी पदों पर रखा जाता था। इतिहास में इस बात का उल्लेख मिलता है कि परमजीत गौड़ नामक हिन्दू व्यक्ति उसके सेनापतियों में से एक था। शासन तथा सामाजिक जीवन में शेरशाह के सुधारों के आधार पर कालान्तर में अकबर का साम्राज्य स्थापित हुआ। अतः इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि शेरशाह अकबर का पथ-प्रदर्शक था।

१४. **शेरशाह के उत्तराधिकारी**—शेरशाह की मृत्यु पर उसका छोटा पुत्र सलीम शाह गद्दी पर बैठा। उसने गद्दी पर आते ही नवाबों के विशेष अधिकार समाप्त कर दिये। नवाबों की शक्ति भी कम कर दी गई और न्याय के उचित प्रबन्ध के लिए समूचे राज्य में गुप्तचरों का जाल सा फैला दिया। सलीम का शासन नौ वर्ष तक चला। वह अपने पिता के समान पराक्रमी तो न था, किन्तु प्रजा के हित के लिए वह भी उतना ही परिश्रम करता था। उसने नवाबों का दमन तो कर दिया किन्तु शेरशाह के काल में अफगानों में जो एकता की भावना विद्यमान थी, वह सलीम के शासन में समाप्त हो गई। १५५४ ई० में सलीम की मृत्यु के बाद उसका नाबालिग पुत्र फिरोज़

---

* *The Cambridge Shorter History of India.*

गद्दी पर बैठाया गया। फिरोज़ की हत्या उसके मामा ने कर दी और स्वयं मुहम्मद शाह आदिल की उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठ गया। मुहम्मद शाह विलासप्रिय एवं निर्बल था। उसने अपना सारा कामकाज हेमू नामक एक मन्त्री को सौंप दिया। हेमू ने शासनकार्य चलाने में पर्याप्त योग्यता का परिचय दिया। किन्तु, इस काल में विद्रोह हुए और मालवा और बङ्गाल के दो प्रान्त स्वतंत्र हो गए। दिल्ली की गद्दी हथियाने के लिए कई लोग प्रयत्नशील थे। इसी समय शेरशाह के दो भतीजों ने शाह आदिल के विरुद्ध विद्रोह करके दिल्ली की गद्दी पर अधिकार करना चाहा। इस प्रकार शाह आदिल के शासनकाल में देश में सर्वत्र विरोध और विद्रोह का वातावरण था।

१५. हुमायूँ का पुनरागमन—हुमायूँ इन १५ वर्षों में यहां-वहां भटकता रहा। उसने यह परिस्थिति देखकर दिल्ली की गद्दी पर पुनः अधिकार करने का निश्चय कर लिया। १५ वर्ष पहले जब वह निष्कासित हुआ था तो उसे राजपूतों ने शरण नहीं दी थी। सिंध में भी उसे स्थान नहीं मिला था और कामरान ने भी उसे अपने यहां टिकने नहीं दिया था। अन्त में वह ईरान में जाकर रहने लगा था। भारत की अराजक स्थिति को देखकर उसने ईरान के शाह से सहायता मांगी। शाह ने सहायता तो दी किन्तु हुमायूं को शिया सम्प्रदाय की दीक्षा लेनी पड़ी। ईरान की फौजों को लेकर हुमायूं ने कन्दहार पर, जहां उसका भाई कामरान शासक था, आधिपत्य कर लिया। कामरान ने यों ही हार नहीं मानी, हुमायूं ने उसे हराकर उसकी आँखें निकलवा लीं और उसे मक्का भेज दिया। १५१५ ई० में हुमायूं ने पंजाब पर आक्रमण किया। पठान सरदारों में फूट थी और वे संगठित होकर हुमायूं से टक्कर नहीं ले सके। हुमायूं ने लाहौर पर अधिकार जमाया और दिल्ली की ओर बढ़ा। हुमायूं के साथ उसका लड़का अकबर और विश्वस्त मन्त्री बैराम खां भी था। हुमायूं ने अफगानों को सरहिन्द की लड़ाई में बुरी तरह हराया। इस प्रकार

पन्द्रह वर्ष तक संघर्ष करने के पश्चात् हुमायूं ने दिल्ली की राजगद्दी पर पुनः अधिकार कर लिया। किन्तु गद्दी पर बैठने के बाद वह अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा। एक दिन जीने से उतरते समय वह फिसल कर गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई।

१३. हुमायूं का चरित्र—हुमायूं का शाब्दिक अर्थ है भाग्यवान, किन्तु हुमायूं के जीवन को देखकर ऐसा लगता है कि इसके समान अभागा नरेश कदाचित ही दूसरा हुआ हो।* उसका अधिकांश जीवन कष्ट में ही बीता और शेरशाह से हार जाने के पश्चात् वह पन्द्रह वर्ष तक मारा-मारा फिरता रहा। हुमायूं वीर और साहसी था किन्तु उसमें उद्यम और लगन का अभाव था। वह एक काम को आरम्भ कर उसे अधूरा छोड़ दूसरा आरम्भ कर देता था। परिणाम यह होता था कि दोनों काम पूरे नहीं होते थे। उसमें बाबर जैसी कुशलता नहीं थी और इस लिए वह अपने विरोधियों को दबा न सका। वह उदारचित्त और साहित्यप्रेमी था। उसने कई पद्य रचनायें की थीं। गणित तथा खगोल शास्त्र में वह प्रवीण था। उसके विपत्तिकाल के अनुभवों ने अकबर को बहुत कुछ सिखा दिया था। इसी से अकबर बड़ा पराक्रमी और यशस्वी हुआ।

प्रश्न

1. Trace the early career of Babar and describe his conquests.

बाबर के प्रारम्भिक जीवन और उसकी विजयों का वर्णन कीजिए।

2. Describe the political condition in India in the beginning of the sixteenth century and show how it helped Babar in capturing the throne at Delhi ?

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की राजनैतिक स्थिति का

---

* हिन्दुस्तान का संक्षिप्त इतिहास, प्रथम खण्ड—सर देसाई

वर्णन कीजिए और यह बताइए कि बाबर को दिल्ली पर कब्जा करने में कहां तक सहायक हुई ।

3. Describe the circumstances that led Humayun to seek asylum in Persia. How did he recapture the Delhi throne ?

हुमायूं को किन परिस्थितियों ने ईरान में शरण लेने के लिए बाध्य किया ? उसने दिल्ली की राजगद्दी पर पुनः अधिकार कैसे किया ?

4. Give a brief description of the administration of Sher Shah.

शेरशाह के शासन का संक्षिप्त वर्णन कीजिये ।

5. Enumerate the various reforms introduced by Sher Shah and discuss his concept of monarchy.

शेरशाह द्वारा किए गए विभिन्न सुधारों का वर्णन कीजिए और उसके राजतन्त्र सम्बंधी सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए ।

or

What reforms were introduced by Sher Shah in the field of land revenue, justice, trade and commerce ? Prove the welfare of his subjects was his utmost concern.

शेरशाह ने लगान, न्याय-व्यवस्था और व्यापार तथा वाणिज्य के क्षेत्रों में कौन-कौन से सुधार किए ? यह सिद्ध कीजिए कि उसे अपनी प्रजा के कल्याण का सदा ध्यान रहता था ।

6. Estimate the position of Sher Shah in the history of India.

भारत के इतिहास में शेरशाह का क्या स्थान है ?

7. Write short notes on—

(a) Bábar's accession.

(b) Sher Shah's land reforms.

(c) Sher Shah's heirs.

(d) Humayun's coming-back.

निम्नलिखित पर नोट लिखिये:—

(क) बाबर का राज्यारोहण।

(ख) शेरशाह के भूमि सुधार।

(ग) शेरशाह के उत्तराधिकारी।

(घ) हुमायूं का पुनरागमन।

—:o:—

अध्याय २२

मुगल वंश का उत्कर्ष--अकबर, जहांगीर और शाहजहाँ

अकबर (१५५६ ई०-१६०५ ई०)

१. **अकबर का राज्यारोहण**— हुमायूं की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अकबर दिल्ली के तख्त पर बैठा। राज्यारोहण के समय वह तेरह वर्ष का था। अकबर का जन्म १५४२ ई० में अमरकोट में हुआ था, जब हुमायूं शेरशाह से हार कर इधर-उधर भटक रहा था। हुमायूं अन्त में ईरान चला गया था और अकबर का पालन पोषण उसके चाचा कामरान ने किया जो उस समय कन्दहार में शासन करता था। अकबर को बचपन में कोई शिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी। उसने जिस समय शासन की बागडोर सम्भाली उस समय वह बालक ही था। उसके समक्ष कई कठिनाइयां थीं, किन्तु अपने विश्वस्त मन्त्री बैराम खां की सहायता से उसने उन्हें दूर कर एक विशाल साम्राज्य का पुनर्गठन किया।

२. **अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयां**—अकबर जिस समय गद्दी पर बैठा उस समय भारत की राजनैतिक दशा विघटित थी। अकबर को उत्तराधिकार में बहुत छोटा सा राज्य मिला था, और उसके सामने भी अनेक संकट थे। उत्तर और दक्षिण में बड़े और शक्तिशाली राज्य थे, जो दिल्ली पर किसी भी समय आक्रमण कर सकते थे। सिकन्दर सूर से पंजाब को बहुत खतरा था। उधर शाह आदिल का मन्त्री हेमू अकबर का उत्तराधिकार छीन लेने के लिये प्रयत्नशील था। सारांश यह कि देश में सरदारों के कलह और बाहरी शत्रुओं के विद्रोह जोर पकड़ रहे थे।

३. **पानीपत की दूसरी लड़ाई**— मुहम्मदशाह का हिन्दू मंत्री हेमू दिल्ली के तख्त पर बैठने की इच्छा रखता था। अपने कार्यकाल में

उसने विद्रोह दमन में अपनी योग्यता प्रमाणित कर दी थी। मुहम्मद ने उसे एक बड़ी सेना देकर हुमायूं को पंजाब से बाहर करने के लिये भेजा। इसी बीच पूर्वी प्रदेश में विद्रोह उठ खड़ा हुआ। अत: वह उस ओर बढ़ा और विद्रोह को नष्ट कर दिल्ली पर चढ़ आया। उसने अकबर के अधिकारियों को दिल्ली और आगरा से खदेड़ दिया और विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर अपने आप को राजा घोषित किया। अकबर पंजाब की ओर से उसका सामना करने आया। १५५६ ई० में दोनों की मुठभेड़ पानीपत के मैदान में हुई। यह लड़ाई पानीपत की दूसरी लड़ाई कहलाती है और इस विजय से मुगल साम्राज्य की नींव बहुत मजबूत हो गई। घमासान युद्ध हुआ और अफगान सेना ने पहले दौर में अच्छी सफलता प्राप्त करली। किन्तु हेमू की आंख में एक तीर जा लगा। और उसका हाथी भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगा। हेमू के चले जाने से अफगान सेना का जोश ठंडा पड़ गया और अकबर की सेना ने उसे बड़ी आसानी से हरा दिया। हेमू पकड़ लिया गया और बैराम खां ने उसे मरवा डाला। युद्ध जीतने के दूसरे दिन मुगल सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया और दिल्ली में अकबर का बड़ा स्वागत हुआ। पानीपत की लड़ाई ने अकबर की धाक जमा दी और अगले वर्ष सिकन्दर सूर ने अकबर के समक्ष समर्पण कर दिया। अकबर ने उसे एक सूबा देकर सूबेदार बना दिया। उधर मुहम्मद शाह आदिल बंगाल के सूबेदार से लड़ते हुए मारा गया। इब्राहीम सूर जिसे हेमू ने दिल्ली आने से पहले हराया था, इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। अन्त में उसने आसाम में जाकर शरण ली जहाँ वह मार डाला गया।

४. बैराम खाँ का पतन—पानीपत की विजय के पश्चात् अकबर ने ग्वालियर और जौनपुर को १५५६ ई० में जीत लिया। अकबर के शासनकाल के पहले चार वर्षों में बैराम खां ने ही कार्यभार सम्हाला था। बैराम खाँ धुन का पक्का और दिल का कठोर था। उसने

सरदारों को काफी परेशान किया और शिया मतानुयायियों को कई सुविधायें दीं। कहा जाता है कि किसी व्यक्ति की स्वामिभक्ति के बारे में तनिक भी सन्देह होने पर बैराम खां उसे मरवा देता था। अकबर के दरबार में बैराम खां के विरोधियों ने एक गुट बना लिया था। अकबर को इन बातों की जानकारी मिली। अकबर अब बड़ा हो चुका था और अपनी मां द्वारा उकसाये जाने पर उसने १५६० ई० में बैराम खां को हटाकर शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। बैराम खां ने अकबर का निर्णय मान लिया और मक्का जाने की इच्छा प्रकट की। मक्का जाते समय उसने अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। बैराम खां हार गया किन्तु अकबर ने उसकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुये उसे क्षमा कर दिया। बैराम खां मक्का के लिये पुनः रवाना हो गया, किन्तु रास्ते में मोहना जाति के एक अफगान ने आपसी अनबन के फलस्वरूप उसकी हत्या कर दी। बैराम खां के छोटे लड़के का पालन-पोषण अकबर ने किया और वह बड़ा होकर उसके दरबार का एक मुख्य सरदार अब्दुर्रहीम खान खाना बना।

५. अकबर का साम्राज्य विस्तार—जिस समय अकबर ने बैराम-खां से कार्यभार अपने हाथों में लिया था, उस समय उसके राज्य का विस्तार पंजाब और गंगा की घाटी तक सीमित था। अकबर साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था और उसके पचास वर्ष के शासनकाल में कोई वर्ष ऐसा नहीं गया जिसमें अकबर ने कहीं आक्रमण अथवा विजय प्राप्त न की हो। अकबर ने लगातार हमले कर मालवा और दक्षिणी राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया। १५६४ ई० में कड़ा के सूबेदार आसफ खां ने गढ़ा कोट के राज्य पर आक्रमण कर दिया। उस समय वहां एक नाबालिग शासक गद्दी पर था, किन्तु राज्य का कार्य उसकी माता दुर्गावती ही चलाती थी। दुर्गावती ने अकबर की सेना का मुकाबला बड़ी बहादुरी से किया, लेकिन

हार निश्चित जानकर उसने आत्महत्या कर ली और गोंडवाना पर अकबर का आधिपत्य हो गया।

६. राजपूतों द्वारा समर्पण—राजपूत राजाओं ने दिल्ली की आधीनता को अब तक स्वीकार न किया था। वे बड़े बहादुर थे और मुगलों का मुकाबला किया करते थे। मेवाड़ और मारवाड़ के राजपूतों ने बाबर और शेरशाह दोनों का खासा मुकाबला किया था, किन्तु अकबर राजपूतों से मैत्री का महत्व समझता था। अतः उसने लड़ाई कर उन्हें दबाने के स्थान पर अपना मित्र बना लेने की नीति अपनाई। १५६२ ई० में अम्बर के राजा बिहारीमल ने समर्पण कर दिया और अकबर ने उसकी लड़की से विवाह कर लिया। किन्तु, मेवाड़ के राणा ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया उसने अकबर के शत्रु और मालवा के निष्कासित राजकुमार बाज बहादुर को अपने यहाँ शरण भी दी। अकबर ने १५६७ ई० में राणा के प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। उदयसिंह राणा सांगा का अयोग्य पुत्र था और वह चित्तौड़ छोड़ कर पहाड़ियों में जा छिपा। जयमल ने चित्तौड़ के किले की चार महीने तक रक्षा की। जयमल मारा गया और राजपूत केसरिया बाना पहन कर शत्रु पर टूट पड़े। वे लड़ते-लड़ते धराशायी हुए और चित्तौड़ का किला अकबर के हाथों में आ गया।

चित्तौड़ उन दिनों एक अजेय दुर्ग समझा जाता था। उसके पराजित हो जाने पर अन्य कई राजपूत शासकों ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। चित्तौड़ के बाद रणथंभोर और कालिंजर के किले भी जीत लिए गये। बीकानेर, जैसलमेर के शासकों ने भी समर्पण कर दिया और अपनी निष्ठा जताने के लिए उन्होंने अकबर से अपनी लड़कियों का विवाह भी कर दिया।

७. मेवाड़ का स्वाभिमानी राणा प्रताप—एक-एक करके राजपूत शासकों ने अकबर की सत्ता स्वीकार कर ली। परन्तु मेवाड़ के राजा राणा प्रताप ने अकबर के सामने घुटने टेकने से इन्कार कर दिया। प्रताप अत्यन्त स्वाभिमानी और शूरवीर था और मेवाड़ के सैनिकों ने इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर उसे अपना नेता माना था। प्रताप

ने राजपूत जाति की मर्यादा के लिए जीवनपर्यन्त कठोर संघर्ष किया। अकबर से उसकी कई बार टक्कर हुई। अकबर की सेना प्रत्येक बात में शक्तिशाली थी जबकि प्रताप के पास न तो इतने सैनिक थे न इतनी सम्पत्ति ही थी। किन्तु देश-प्रेम से प्रेरित होकर राजपूतों ने जो शौर्य दिखाया वह मेवाड़ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। प्रताप को अपने राजपूत शासकों की सहानुभूति भी प्राप्त नहीं थी। वे प्रताप की ख्याति से अप्रसन्न थे और अकबर के आधीन हो जाने पर उन्होंने मेवाड़ राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करने में आवश्यकता से अधिक योग दिया था। १५७६ ई० में राजा मानसिंह के नेतृत्व में अकबर की सेना ने हल्दीघाटी की लड़ाई में प्रताप को बुरी तरह हराया। प्रताप अपने विश्वस्त अनुचरों के कारण ही अपनी जान बचा सका। उसके बाद प्रताप के किले उसके हाथों से निकल गये और उसने पहाड़ियों में शरण ली। यहां भी उसे अकबर के सैनिकों ने बहुत परेशान किया किन्तु उसने युद्ध जारी रखा। मरने से पहले उसने अपने कई किलों को अकबर से छीन लिया। अकबर राणा प्रताप से समर्पण की अपेक्षा करता था परन्तु वीरपुत्र प्रताप ने उसकी सत्ता कभी स्वीकार नहीं की। राणा प्रताप की मृत्यु के समय उसका चिरसंचित स्वप्न-चित्तौड़-विजय साकार नहीं हो सका। उसने मरते समय अपने अनुचरों से वचन ले लिया कि वे देश को तुर्कों के हाथों में नहीं जाने देंगे। राणा प्रताप राजपूतों का सच्चा प्रतिनिधि और उनकी विशेषताओं का प्रतीक था। राजपूताने को कई महान् सेनापति और राजनीतिज्ञ पैदा करने का गौरव प्राप्त है, किन्तु भारत के इतिहास में मेवाड़ के राणा प्रताप से बढ़कर शूरवीर और देशभक्त कोई नहीं हुआ।

८. उजबेगों का दमन—१५६० ई० से लेकर १५६७ ई० तक अकबर अपने अनुयायियों में विद्रोही तत्वों के दमन में लगा रहा। अकबर के अफसरों में उजबेग जाति के लोग थे, जो उससे सन्तुष्ट न थे। ये उजबेग कट्टर सुन्नी थे और हिन्दुओं के प्रति अकबर की सहिष्णुता उन्हें बहुत खलती थी। उजबेगों का मुख्य नेता खां जमान था।

इनका और एक नेता अब्दुल्ला खां था जिसे अकबर ने मालवा का शासक नियुक्त किया था। अब्दुल्ला खां ने सर्वप्रथम विद्रोह किया। अकबर ने माण्डू पर आक्रमण कर उसे हराया और अब्दुल्ला खां गुजरात से भागकर जौनपुर में खां जमान से जा मिला, जिसे अकबर ने अफगानों को पराजित करने के लिए जौनपुर भेजा था। खां जमान ने अफगानों को हरा दिया किन्तु उसने स्वयं स्वतन्त्र होने का प्रयत्न भी किया। अकबर ने उस पर चढ़ाई कर दी और आसफ खां ने, जो उस समय कड़ा का सूबेदार था, उजबेगों को खदेड़ कर बिहार भेज दिया। जौनपुर पर अकबर का कब्जा हो गया किन्तु बाद में आसफ खां ने अकबर की सहायता नहीं की। परिणामस्वरूप अकबर उजबेगों का पूर्ण दमन न कर सका। उसने संधि की बातचीत चलाई और खां जमान ने अपनी गलती के लिए माफी मांग ली। अकबर ने उसे जौनपुर में पुनः नियुक्त कर दिया। १५६६ ई० में खां जमान ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। १५६७ ई० में अकबर ने इलाहाबाद के समीप उजबेगों पर फिर आक्रमण किया। उजबेगों की हार हुई और खां जमान मारा गया। उसका भाई बहादुर भी पकड़ लिया गया और बाद में मरवा दिया गया। उजबेगों के कई नेता हाथी के पाँव तले कुचलवा दिए गये। अब्दुल्ला खां की इसी बीच मृत्यु हो गई और उजबेगों के एक नेता सिकन्दर खां को अवध से बाहर खदेड़ दिया गया। इस प्रकार उजबेगों के विद्रोह का दमन हो गया।

६ गुजरात पर आक्रमण—चित्तौड़ के पतन के बाद कई राजपूत राजाओं ने समर्पण कर दिया और १५५९ तक अधिकांश राजपूत राजा अकबर के आधीन हो गये थे। गुजरात का राज्य तुगलक वंश के पतन के समय से दिल्ली के आधिपत्य से मुक्त हो चुका था, किन्तु वहाँ के शासक काफी अयोग्य थे। मुजफ्फर तृतीय दरबारियों के हाथ का खिलौना बन गया था। अकबर द्वारा अपमानित या दण्डित मिर्जा गुजरात में शरण लेते थे और वहाँ जाकर वे उपद्रव करते थे। गुजरात के एक दरबारी इतमाद् खां ने अकबर को आमंत्रण दिया।

अकबर ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया। उसने अहमदाबाद पर बड़ी सरलता से कब्जा कर लिया। मुजफ्फर तृतीय डर के मारे एक खेत में जा छिपा। अकबर के सैनिकों ने उसे पकड़ कर अकबर के सामने पेश किया। मुजफ्फर ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार किया और इस प्रकार गुजरात का राज्य अकबर के साम्राज्य में मिल गया। गुजरात हाथ में आ जाने से अकबर को बड़ा आर्थिक लाभ हुआ। सूरत तथा अन्य बन्दरगाहों से होने वाले समृद्ध व्यापार पर उसका नियंत्रण स्थापित हो गया। अकबर की पुर्तगाली व्यापारियों से यहां पहली बार भेंट हुई। किन्तु विद्रोही तत्वों के दमन के लिये अकबर को बाद में भी गुजरात पर आक्रमण करने पड़े।

१०. बंगाल में अफगानों का उपद्रव—अकबर का बंगाल पर आक्रमण करने का कोई इरादा नहीं था। तभी वहां ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हुईं कि अकबर ने उसे जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। अफगान सरदार बंगाल में शरण लेकर गड़बड़ी फैलाते थे। १५७४ ई० में किरानी वंश का अन्तिम शासक दाऊद खां बंगाल पर राज्य कर रहा था। अफगानों के बढ़ते हुए उपद्रवों को देखकर उसने अकबर से उन्हें दबाने की प्रार्थना की। अकबर ने अफगानों को दबा दिया और बंगाल में शान्ति स्थापित कर दी। किन्तु, दाऊद खां को अपनी शक्ति के विषय में झूठा दम्भ था और उसने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इतना ही नहीं, उसने अकबर की सीमान्त चौकी पर आक्रमण भी कर दिया। अकबर ने तुरन्त, उस पर धावा बोल दिया और दाऊद को वहां से खदेड़ दिया। १५७५ ई० में तुकरोई की लड़ाई में दाऊद खां बुरी तरह हारा। मुनीम खां ने, जो जौनपुर में अकबर का सूबेदार था, उसे माफ कर दिया और उससे संधि कर ली। सन्धि के अनुसार दाऊद नें अकबर का आधिपत्य स्वीकार किया और अवध का प्रान्त उनके पास रहने दिया गया। दाऊद ने कुछ समय बाद फिर सिर उठाया। अकबर यह खबर मिलते ही बंगाल की ओर रवाना हो गया। राजमहल के समीप १५७६ ई० में दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध

हुआ। दाऊद ने बच निकलने की कोशिश की किन्तु उसे पकड़ लिया गया और उसका वध कर दिया गया। इस प्रकार बंगाल का राज्य, जो लगभग दोसौ चालीस वर्षों तक स्वतन्त्र था अकबर के आधीन हो गया।

११. काबुल पर आक्रमण—१५८० ई० तक अकबर का साम्राज्य काफी बड़ा हो गया था। उत्तर के प्रायः सभी किले उसके अधिकार में थे और दक्षिण में ताप्ती नदी तक उसका राज्य फैला हुआ था। अकबर के धार्मिक विचार अत्यन्त उदार और सहिष्णु थे, जिनके कारण कट्टर मुसलमान उससे असन्तुष्ट थे। ये लोग अकबर को गद्दी से हटाने के लिये षड्यन्त्र रच रहे थे। उनकी योजना अकबर के सौतेले भाई मुहम्मद हाकिम को गद्दी पर बैठाने की थी। मुहम्मद हाकिम काबुल में वाइसराय के पद पर नियुक्त था। वह भी इन षड्यंत्रों से सम्बन्धित था। १५८१ ई० में इन षड्यन्त्रों का जोर बढ़ गया और अकबर ने अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया। हाकिम भाग कर पहाड़ियों में जाकर छिप गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर का खजांची मंसूर शाह इन षड्यंत्रों का नेता था और उसे काबुल जाते समय फांसी पर लटका दिया गया। काबुल को जीत कर अकबर ने अपनी बहन को वह प्रान्त दे दिया। उसकी बहन ने बाद में हाकिम को काबुल लौट आने की अनुमति दे दी थी। किन्तु १५८५ ई० में हाकिम की मृत्यु हो गई।

१२. काश्मीर, सिंध, उड़ीसा और बलोचिस्तान पर विजय—१५८६ ई० में अकबर ने अपने सेनापति भगवान दास को काश्मीर के शासक यूसुफ पर आक्रमण करने भेजा। भगवान दास यूसुफ को हराने में सफल न हो सका। अतः उसने यूसुफ के साथ संधि कर ली। अकबर को इससे बड़ा रोष हुआ उसने संधि की पुष्टि तो कर दी किन्तु यूसुफ को, जो उससे मुलाकात करने आया था, उसी समय गिरफ्तार कर लिया। यूसुफ का लड़का याकूब पहले ही काश्मीर भाग गया था। उसने अपने पिता के अधिकार को स्थिर रखने का भरसक प्रयत्न किया। दो साल तक उसने


भारत
अकबर का राज्य
काबुल
पेशावर
गजनी
कन्धार
काश्मीर
दिल्ली
अवध
हिमालय पर्वत
बरार
मालवा
गुजरात
खानदेश
अहमदनगर
बंगाल
खाड़ी
अरब सागर
हिंद महा सागर
लंका

अकबर का साम्राज्य

लुक-छिप कर अकबर की सेना से टक्कर ली। किन्तु, अन्त में हार कर उसने अकबर के समक्ष समर्पण कर दिया। अकबर ने उसे यूसुफ के पास भिजवा दिया, जो उस समय बिहार में कैद था। बाद में यूसुफ को छोड़ दिया गया और अकबर ने उसे अपनी सेना में ऊंचे पद पर नियुक्त कर लिया। यूसुफ और उसके पुत्र याकूब के साथ अकबर ने जो व्यवहार किया वह उसके शालीन चरित्र पर एक धब्बा माना जाता है। काश्मीर के बाद अकबर ने सिंध को जीतने की इच्छा की। इसके दो कारण थे, एक तो सिंध परम्परा से दिल्ली साम्राज्य का भाग था और दूसरे बलोचिस्तान पर आक्रमण से पहले उसे जीत लेना जरूरी था। १५९३ ई० में अकबर ने मुलतान के सूबेदार को सिंध पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उसने सिंध के शासक मिर्जा जानी बेग पर दो बार आक्रमण करके उसे हराया और मिर्जा जानी बेग ने अकबर की सत्ता स्वीकार कर ली। १५९४ ई० में अकबर ने बलोचिस्तान को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। बलोचिस्तान विजय से कन्दहार की विजय का मार्ग भी प्रशस्त हो गया। कन्दहार को लेकर मुसलमान और ईरानियों में लड़ाइयां होती थीं। १५९५ ई० में कन्दहार के शासक मुजफ्फर हुसैन मिर्जा ने कन्दहार का राज्य अकबर को अर्पित कर दिया।

१२. **दक्षिण के राज्य**—उत्तरी भारत के साम्राज्य से अकबर को संतोष नहीं हुआ। दक्षिण में उस समय चार बड़े राज्य—खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा थे। इनमें से केवल खानदेश में अकबर का दूत रहता था। और शेष तीन राज्य अकबर के प्रभुत्व को मानने के लिए तैयार न थे। अतः अकबर ने उन्हें परास्त करने का इरादा कर लिया। अहमदनगर अन्य राज्यों की अपेक्षा दिल्ली के पास था। इसलिए पहला आक्रमण उसी पर हुआ। अहमदनगर की बेगम चांद बीबी ने अहमदनगर की रक्षा बड़ी वीरता से की। बाद में चांद बीबी ने मुगलों के साथ संधि कर ली और बरार का प्रदेश अकबर

को दे दिया गया। किन्तु यह शान्ति अधिक देर न रही। अगले ही वर्ष पुनः लड़ाई छिड़ गई। इस बार अकबर ने दक्षिण जाकर बरहानपुर पर कब्जा कर लिया। अहमदनगर की शक्ति आन्तरिक मतभेद और फूट के कारण क्षीण हो गई थी। लड़ाइ में गोदावरी के किनारे अहमदनगर की सेना पराजित हुई। चांद बीबी मारी गई। १६०१ ई० में खानदेश का सबसे शक्तिशाली असीरगढ़ का किला भी अकबर के हाथ में आ गया। कहा जाता है कि अकबर ने असीरगढ़ के शासक को मुलाकात के लिए बुलवा भेजा। जब वह मिलने आया तो उसे बन्दी बना लिया गया। किले के रक्षकों को घूस दी गई और उन्होंने किले के दरवाजे अकबर के सैनिकों के लिए खोल दिए। इस प्रकार यह अभेद दुर्ग भी अकबर को प्राप्त हो गया।

१४. **हिन्दुओं के प्रति अकबर का दृष्टिकोण**—अकबर यह अच्छी तरह जानता था कि युद्ध से साम्राज्य का विस्तार संभव है। किन्तु साम्राज्य अच्छे प्रशासन के अभाव में अधिक देर बना नहीं रह सकता। उस काम में हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से कहीं अधिक थी। अकबर ने यह भी अनुभव किया कि जब तक हिन्दुओं को वह अपने वश में नहीं कर लेता तब तक उसका शासन सफल नही हो सकता। इसी विचार धारा से प्रेरित होकर उसने राजपूतों के साथ विवाह-सम्बन्ध किये। इससे एक तो राजपूत अकबर के विश्वस्त मित्र बन गये और मुगलों की विजातीयता भी काफी कम हो गई। अकबर ने २२ वर्ष की आयु में अम्बर के राजा बिहारी मल की पुत्री से विवाह किया था। उसने १५६३ ई० में तीर्थ-यात्रा-कर समाप्त कर दिया। इस के एक वर्ष बाद 'जजिया कर भी समाप्त कर दिया गया। भारत के मुस्लिम शासन में पहली बार हिन्दुओं और मुसलमानों को समान माना गया। इन दो करों की समाप्ति से अकबर को करोड़ों रुपयों की हानि हुई। परन्तु, उसने राष्ट्रीय राज्य की स्थापना के आदर्श की पूर्ति के लिए इस हानि को सहर्ष स्वीकार किया। अधिकांश हिन्दुओं ने यह अनुभव किया कि वे एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के नागरिक हैं। कुलीन

राजपूतों के साथ विवाह-सम्बन्ध कर उसने राजपूतों को अपनी ओर कर लिया और अपने दरबार में अनेक राजपूतों को उच्च पदों पर नियुक्त किया। राजपूतों का उसने स्वागत किया तथा उन्हें सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ अपने यहां रखा। राजा मानसिंह, राजा टोडरमल तथा बीरबल उसके दरबार के प्रमुख व्यक्ति थे। राजा मानसिंह को तो अकबर ने काबुल में नियुक्त किया था। एक मुसलमान देश की राजधानी में राजा मानसिंह की नियुक्ति धर्मनिरपेक्ष प्रशासन के विकास में एक अनूठी घटना थी। शासन में हिन्दुओं का सहकार्य अकबर की सफलता का एक बहुत बड़ा कारण है।

अकबर ने राजपूत सरदारों का ही नहीं वरन जनसाधारण का विश्वास भी प्राप्त कर लिया था। उन दिनों हिन्दुओं को छोटे-छोटे पदों पर रखा जाता था। अलाउद्दीन के काल में यही प्रथा प्रचलित थी। किन्तु, अकबर ने उच्च पदों पर हिन्दुओं को नियुक्त कर उनमें बादशाह की नौकरी के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न कर दी। वे लोग नये राज्य को ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा प्राप्ति का साधन समझने लगे। अकबर के माल सचिव टोडरमल तथा बीरबल मध्यम वर्ग के परिवारों में पैदा हुए थे। "अपने साम्राज्य के साथ मध्यम वर्ग तथा जनसाधारण का भी सम्बन्ध स्थापित कर अकबर ने एक ही पीढ़ी में अपने राज्य का चरित्र बदल दिया। मुगल शासन एक विदेशी साम्राज्य न रहकर एक राष्ट्रीय राज्य बन गया।* बंगाल और बिहार के विद्रोहों का राजपूतों द्वारा दमन अकबर की मैत्री की नीति का परिणाम था।

१५. अकबर के धार्मिक विचार—अकबर ने अपने विचारों में उदारता कुछ तो अपने पूर्वजों से प्राप्त की थी और कुछ समकालीन परिस्थिति और वातावरण का भी उस पर प्रभाव पड़ा। भक्ति आन्दोलन और सूफी मत के प्रसार से देश में उदार विचारधारा प्रवाहित

* *A Survey of Indian History—K. M. Panikkar.*

हो रही थी। अकबर को उसके गुरु ने बचपन से सहिष्णुता की सीख दी थी। अकबर शुरू से ही धर्म-निष्ठ था और उसका झुकाव रहस्यवाद की ओर था। उस पर तत्कालीन सूफी सिद्धान्तों और उदार विचारों का काफी प्रभाव पड़ा था। इन सब बातों का प्रभाव यह हुआ कि अकबर ने इस्लाम के आदेशों की उपेक्षा करनी आरम्भ कर दी। अपने बौद्धिक एवं धार्मिक विचारों के विकास के लिए उसने एक 'इबादतखाना' (पूजा-गृह) स्थापित किया था। "१५७४ ई० से लेकर १५८२ ई० तक अकबर अपना अवकाश का समय फतहपुर-सीकरी में बने इबादतखाने में बैठकर संसार के विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों पर चर्चा किया करता था।" * इस इबादतखाने में सुन्नी, शिया, हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई आदि सभी धर्मों के विद्वान आमंत्रित किये जाते थे। इन विद्वानों के साथ चर्चा और वाद-विवाद करने के पश्चात् अकबर इस निर्णय पर पहुँचा कि विवेकशील पुरुष सभी धर्मों में हैं और अन्य किसी धर्म-विशेष में ही निहित नहीं हैं। इन चर्चाओं का एक परिणाम यह हुआ कि अकबर का उलेमा से विश्वास उठ गया। उसने बादशाह की उपाधि धारण की और वह अपनी प्रजा का आध्यात्मिक तथा धार्मिक नेता बन गया। अकबर के इस निर्णय की घोषणा को "मजार" कहा जाता है।

१६. दीन-ए-इलाही—अपने धार्मिक आदेशों को एक निश्चित रूप देने के लिए अकबर ने 'दीन-ए-इलाही' पंथ की स्थापना की। यह कोई धर्म या सम्प्रदाय न था। यह थोड़े से सूफी विचारकों का एक समूह था जो सभी धर्मों के अच्छे सिद्धान्तों का आदर करते थे। दीन-ए-इलाही का न तो कोई धर्म ग्रन्थ था और न पुजारी। हां, इसमें पैगम्बर मुहम्मद को कोई स्थान न था और उनका स्थान स्वयं अकबर ने ले लिया था। इस बात को अकबर के हिन्दू और मुसलमान दरबारियों ने पसन्द नहीं किया। अकबर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, धार्मिक विचारों में अत्यन्त सहिष्णु था। उसने अपने इस

* *A History of India—By C. S. Srinivasachari, M. S. Ramaswami Aayangar.*

पंथ के प्रसार के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, न किसी को जबरदस्ती से उसे स्वीकार करने को कहा । परिणामस्वरूप दीन-ए-इलाही के सदस्यों की कुल संख्या १८ थी, जिनमें एक हिन्दू 'बीरबल' था। दीन-ए-इलाही अकबर के साथ ही समाप्त हो गया ।

१७. अकबर का साम्राज्य संगठन—अकबर ने प्रशासन के विभिन्न विभागों का संगठन किया और धार्मिक सहिष्णुता को अपनी नीति का आधार बनाया। उसके शासन में हिन्दू और मुसलमानों दोनों को समान अवसर प्राप्त थे। सिद्धान्त: अकबर एक निरंकुश सम्राट था किन्तु व्यवहार में उसके कार्य जनमत की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए सम्पन्न होते थे। अकबर के आधीन कई पदाधिकारी थे जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं। वकील (प्रधान मंत्री), वजीर (वित्त मंत्री), बख्शी (खजांची), मुख्य काजी (सर्वोच्च न्यायाधीश) आदि । शहर में शांति और व्यवस्था का दायित्व कोतवाल पर होता था। उसे पुलिस और न्यायाधीश दोनों के अधिकार प्राप्त थे। उसके मातहत गुप्तचर थे जो शहर की वास्तविक स्थिति बताते थे। न्यायाधीश कुरान की सहायता से मामले निबटाते थे, किन्तु हिन्दुओं के मामलों में हिन्दुओं की धार्मिक प्रथाओं को भी ध्यान में रखा जाता था। अकबर स्वयं भी अपीलों को सुनता था और उसका निर्णय अंतिम होता था। गाँवों में ग्राम पंचायतें मामलों को निबटाती थीं।

इतने बड़े साम्राज्य के शासन को ठीक से चलाने के लिए कई योग्य अधिकारियों की आवश्यकता थी। अत: अकबर ने मनसबदारी नामक सेवा की स्थापना की। इसमें असैनिक और सैनिक पद अलग न थे। ये मनसबदार अपने मातहत सैनिकों के अनुशासन और कार्य-कुशलता के लिये उत्तरदायी थे। अकबर ने मनसबदारों को ३३ विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण करके उनके वेतन तथा सेना की शर्तें निश्चित कर दी थीं। इन मनसबदारों को जागीर देने के स्थान पर नकद वेतन दिया जाता था। अकबर ने घोड़ों को दागने की प्रथा जारी रखी।

उसका उद्देश्य इन अफसरों के भ्रष्टाचार को समाप्त करने का था। किन्तु ऐसा लगता है कि भ्रष्टाचार पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सका। दक्षिण विजय से पहले अकबर का राज्य पन्द्रह प्रान्तों या सूबों में विभक्त था। हरेक सूबे में एक गवर्नर था जो सूबेदार या सिपहसालार कहलाता था। उसे अपने क्षेत्र में शांति और व्यवस्था बनाये रखना पड़ता था। ये सूबे कई जिलों में विभक्त थे, जो फौजदारों के जिम्मे कर दिए गये थे। फौजदार को लगान वसूली भी करनी होती थी।

१८. लगान व्यवस्था—अकबर का राज्य अपनी उत्कृष्ट लगान व्यवस्था के लिए बहुत प्रसिद्ध है। अकबर के माल मन्त्री राजा टोडरमल ने इस प्रणाली को चलाया था। अकबर से पहले शेरशाह ने भी इस दिशा में कदम उठाया था। किन्तु, किन्हीं कारणों से वह अधिक सफल न हो सका था। किसानों को लगान बहुत देना पड़ता था और वसूल करने वाले जागीरदार किसानों से बड़ी कठोरता से व्यवहार करते थे। टोडरमल ने जमीन की नाप करवा कर उसे पैदावार, उर्वरता, जमीन की किस्म आदि बातों के आधार पर चार वर्गों में बांट दिया था। इनमें से पहले तीन वर्गों को और तीन वर्गों में बांटा गया था। जो जमीन कई वर्षों से बंजर पड़ी थी उसका कोई लगान नहीं लिया जाता था। लगान का निर्धारण दस वर्षों की औसत पैदावार के आधार पर निश्चित किया गया था। लगान नकद लिया जाता था किन्तु अनाज के रूप में भी स्वीकार किया जाता था। प्रत्येक फसल के लिए लगान की दर अलग-अलग थी और राज्य को फसल कटने से पहले ही लगान की अनुमानित रकम का पता लग जाता था। साधारणरूप से किसान को पैदावार का एक-तिहाई भाग लगान के रूप में देना पड़ता था। किसानों को लगान की रसीद भी दी जाती थी। अकबर को अपनी प्रजा के कल्याण में काफी दिलचस्पी थी। अतः उसने लगान वसूल करने वाले अफसरों को कई हिदायतें दी थीं। उन्हें जनता से सौहार्द का व्यवहार रखने के लिए कहा गया था और किसी प्रकार

की घूस या अधिक लगान लेना निषिद्ध था। अकबर ने और कई कर समाप्त कर दिये और उसने अकाल, बाढ़ आदि के समय लगान छोड़ देने के आदेश भी दिये। कृषकों को खेती के लिए राज्य की ओर से अच्छा बीज उपलब्ध किया जाता था। अफसरों से प्रामाणिक व्यवहार अपेक्षित था और उन्हें किसानों की भलाई के लिए कार्यरत रहने के लिए कहा गया था। अकबर ने मुद्रा-प्रणाली में भी कई सुधार किये। पुराने और घिसे सिक्के खजाने में वापस ले लिए गये और उनके स्थान पर नये सिक्के चलाये गये। अकबर ने सिक्के छापने के लिये अपने राज्य में चार टकसालें स्थापित कीं। अकबर की यह लगान-व्यवस्था आधुनिक रैयतवादी प्रणाली से काफी मिलती-जुलती है। इन दोनों में किसान राज्य को सीधे लगान दे देता है और इससे बीच के लोगों का जैसे जागीरदार, जमींदार आदि का कोई सरोकार नहीं होता।

१६. अकबर का दरबार— अकबर स्वयं पढ़ा-लिखा न था किन्तु वह बहुश्रुत था। वह विद्वानों का आदर एवं सम्मान करता था और उसके दरबार में कई विद्वान और साहित्यिक थे, जिन्हें नौ रत्न कहा जाता है। अबुलफजल उसके दरबार का सुप्रसिद्ध कवि था जिसने 'अकबरनामा' और 'आइने-अकबरी' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की थी। 'अकबरनामा' मुगल इतिहास का वर्णन और आइने-अकबरी सोलहवीं शताब्दि की भारत की दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। आगरा के कवि सूरदास, गायक तानसेन और हिन्दी काव्य के महान् लेखक तुलसीदास जैसी विभूतियां उसके राज्य में विराजमान थीं। अबुल फैजी भी अच्छा कवि उसके दरबार में था। इतिहासकारों में बदायूनी और निजामुद्दीन के नाम उल्लेखनीय हैं। अकबर ने स्वयं संस्कृत भाषा में दिलचस्पी ली और उसने महाभारत, रामायण, अथर्व वेद, लीलावती आदि ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद भी करवाया था। "इस महान मुगल सम्राट के पास, जो कुछ लेखकों की राय में संभवतः

प्रशिक्षित था, चौबीस हजार उत्कृष्ट ग्रन्थों का पुस्तकालय था। इन ग्रन्थों का मूल्य ७३७,१६६ पौन्ड के आसपास रहा होगा।"* अकबर को चित्रकला में भी काफी दिलचस्पी थी। अबुल फजल के वर्णन से पता चलता है कि उसके दरबार में ईरानी चित्रकार थे। देश के प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारों को भी राज्याश्रय प्राप्त था। अन्य मुगल शासकों के समान अकबर ने भी कई इमारतें आदि बनवाईं। इनमें कई इमारतें खण्डहर बन गई हैं। किन्तु आगरे का किला, फतहपुर सीकरी का महल और दिल्ली के पास हुमायूं का मकबरा उसके काल के निर्माण कार्य के अच्छे नमूने हैं।

२०. **अकबर के अन्तिम दिन**—अकबर का प्रारम्भिक जीवनकाल जैसा समुन्नत बीता वैसा ही उसका अन्तिम समय अनेक चिन्ताओं से व्याप्त रहा। उसके तीन पुत्र सलीम, दानियाल और मुराद थे। सलीम इनमें सबसे बड़ा था। ये तीनों योग्य, चतुर और उदार थे। अकबर ने इन्हें सूबेदार नियुक्त किया था। १५९९ ई० में मुराद की मृत्यु हो गई। अकबर दानियाल को अधिक चाहता था। अतः सलीम को अपने उत्तराधिकार के विषय में चिन्ता उत्पन्न हुई। अकबर जिस समय अहमदनगर के किले को जीतने के लिये दक्षिण गया था उस समय सलीम ने विद्रोह कर दिया। उसने इलाहाबाद में राजा की उपाधि धारण कर अपने सिक्के भी चलाये। इसी बीच उसने अबुलफजल को, जो अकबर का विश्वस्त मित्र था, मरवा डाला। अकबर को इस घटना से बहुत दुःख हुआ। १६०४ ई० में दक्षिण में दानियाल की मृत्यु हो गई। अब तक सलीम का जीवन बहुत बिगड़ गया था। वह इलाहाबाद में रहता था और उसके आतंक के विवरण को जानकर अकबर को बहुत दुःख होता था। अन्त में उसने सलीम को अपने पास बुलवाकर उस पर निगरानी रखी। किन्तु, धीरे-धीरे यह निगरानी शिथिल कर दी गई और अकबर ने उसे ही अपना उत्तराधिकारी

* *"Akbar the Great Mogul"—Dr. V. Smith.*

बना दिया। पचास वर्ष तक शासन करने के बाद बासठ वर्ष की आयु में सन् १६०५ ई० में अकबर की मृत्यु हो गई।

२१. अकबर का मूल्यांकन—"अकबर भारत के मुसलमान शासकों में सबसे महान् था इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।"* वह पहला शासक था जिसने एक सत्ताधारी जाति का नेता बने रहने की अपेक्षा एकता के सूत्र में गठे हुए राज्य का सम्राट बनना श्रेयस्कर समझा। अकबर के सफल आक्रमण और उसके साम्राज्य का विस्तार उसकी योग्यता के पर्याप्त प्रमाण हैं। उसने देश के प्रशासन में तरह-तरह के सुधार किए और अपनी प्रजा के कल्याण के लिए कोई कसर उठा न रखी। उसके शासन में हिन्दुओं के साथ पहली बार मुसलमानों के समान व्यवहार किया गया। मालगुजारी और कर सम्बन्धी नीति से प्रशासन का यंत्र सजग हो उठा और किसानों की आर्थिक दशा बहुत सुधर गई। धर्म के मामले में वह अत्यन्त सहिष्णु था, किन्तु उसने सती और बाल-विवाह जैसी कुप्रथाओं पर रोक लगा दी थी। उसकी धर्म निरपेक्ष नीति का ही परिणाम था कि उसके शासनकाल में साहित्य, चित्रकला, संगीत और वास्तुकला का इतना उत्कर्ष हुआ। ये सारी बातें उसकी महानता, उदारता और उसके श्रेष्ठ राष्ट्रीय सम्राट होने का परिचय देती हैं। "अकबर अपने उत्तराधिकारियों के लिए अपनी नीति के तीन सिद्धान्त छोड़ गया था—राष्ट्रीय राज्य बनाये रखना, हिन्दुओं के साथ मैत्री रखना और भारत की एकता बनाये रखना। उसके उत्तराधिकारियों ने भारत की एकता के आदर्श को सदा अपने समक्ष रखा किन्तु वे इसमें सफल न हो सके।"† छत्रपति शिवाजी ने भी राष्ट्रनिर्माता के रूप में अकबर की सेवाओं को मान्य किया था। उन्होंने औरंगजेब को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने कहा था कि अकबर की नीति हिन्दू और मुसलमान इन दोनों के सौहार्द पर आधारित थी और अपनी प्रजा का

**The Cambridge Shorter History of India*—"*Allan Wolseley Hadg and Dodwell.*

†*A Survey of Indian History—V. M. Panikkar.*

सर्वांगीण कल्याण ही अकबर का आदर्श था। भारत के इतिहास में केवल एक सम्राट हो चुका है जिसे अकबर के समकक्ष अथवा उससे ऊपर रखा जा सकता है—वह था अशोक। अकबर को महान् शासक कहा जाता है। और उसकी गणना देश के ही नहीं अपितु विश्व के महान् सम्राटों में की जाती है।

जहांगीर (१६०५ ई०—१६२६ ई०)

२२. सम्राट जहांगीर—अकबर की मृत्यु के पश्चात् १६०५ ई० में राजकुमार सलीम 'जहांगीर' के नाम से गद्दी पर बैठा। वह अकबर की पहली सन्तान थी और उसकी माता जयपुर के राजा बिहारी मल की पुत्री थी। स्वभाव से विद्रोही तथा शराबी जहांगीर अपने पिता से बिलकुल भिन्न था। सरदारों तथा अन्य मंत्रियों को भय था कि जहांगीर के शासनकाल में साम्राज्य की दशा खराब होगी। वह एक शांतिप्रिय शासक था और उसमें दुराग्रह या धर्मान्धता नहीं थी। वह फारसी, उर्दू का विद्वान था। दर्शन जैसे विषय में उसे रुचि थी।

२३. आरम्भिक शासन—प्रारम्भ में जहांगीर ने बहुत अच्छा शासन किया। जागीरदार जो टैक्स माल पर लगाते थे उससे उसने प्रजा को मुक्त कर दिया। स्थान स्थान पर उसने स्कूल, मस्जिदें और अस्पताल खुलवाये। जिन लोगों की सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता था उनकी मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति इन्हीं स्कूलों, मस्जिदों और अस्पतालों में लगा दी जाती थी। शराब और तम्बाकू का प्रयोग उसने बिलकुल बन्द कर दिया। प्रत्येक मंगलवार को सम्राट खुले मैदान में दरबार करता था और लोगों की प्रार्थनायें सुनता व न्याय करता था।

२४. खुसरो का विद्रोह—गद्दी पर बैठते ही जहांगीर के पुत्र खुसरो तथा अन्य विरोधियों ने सम्राट के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कुछ लोग जहांगीर को हटाकर खुसरो को सम्राट बनाने के पक्ष में थे। जहांगीर ने बड़ी सख्ती से विद्रोह का दमन किया। पंजाब में चिनाब नदी को पार करते हुए खुसरो गिरफ्तार कर लिया गया। बादशाह के हुक्म से

उसे हथकड़ियां पहना कर जेल में डाल दिया गया। उसके साथियों को बहुत कठोर दण्ड दिये गये। १६ वर्ष तक खुसरो जेल में रहा। बाद में १६२२ में राजकुमार खुर्रम (जो बाद में शाहजहां के नाम से गद्दी पर बैठा) ने उसे मरवा डाला। इस प्रकार खुसरो के विद्रोह को दबा देने के बाद जहांगीर की स्थिति काफी मजबूत हो गई। जिस समय विद्रोही खुसरो पंजाब में था उसने सिक्ख गुरु अर्जुन देव से कुछ मदद ली थी। इस पर जहांगीर अर्जुन देव से नाराज हो गया था। अतः अर्जुन देव पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने विद्रोही खुसरो की मदद की है। इसी अपराध में जहांगीर ने उन्हें मृत्यु दण्ड दे दिया।

२५. **नूरजहां**—१६११ ई० में जहांगीर ने मेहरुन्निसा नामक सुन्दरी से विवाह किया। मेहरुन्निसा तेहरान के एक व्यापारी गयासबेग की पुत्री थी। निर्धनता के कारण गयासबेग को फारस छोड़कर भारत आना पड़ा। मार्ग में कन्धार के करीब उसके कारवां को डाकुओं ने लूट लिया। उसी समय मेहरुन्निसा का जन्म हुआ। उस कारवां के नेता मलिक मसूद ने गयासबेग की बड़ी सहायता की और उसे आगरा लाकर अकबर के दरबार में नौकरी दिलवा दी। गयास धीरे-धीरे काफी ऊंचे पद पर पहुंच गया। मेहरुन्निसा अपनी माता के साथ अकबर के रनिवास में यदाकदा जाती थी। उसके रूप और सौन्दर्य को देखकर राजकुमार सलीम उस पर मोहित हो गया। सलीम उससे विवाह करना चाहता था। अकबर को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने राजकुमार की इच्छा का विरोध किया। मेहरुन्निसा को मार्ग से हटाने के लिए अकबर ने उसकी शादी शेर अफगन से कर दी और शेर अफगन को बर्दवान का सूबेदार नियुक्त कर दिया। इस प्रकार मेहरुन्निसा शेर अफगन के साथ बंगाल चली गयी।

जब जहांगीर गद्दी पर बैठा तो उसने नूरजहां से विवाह करने की इच्छा पूरी करनी चाही। इसीलिए शेर अफगन पर दोष लगाया गया। बंगाल के सूबेदार को शेर अफगन के विरुद्ध भेजा गया। संयोग से इस युद्ध में शेर अफगन और बंगाल का सूबेदार कुतुबुद्दीन दोनों

मर गये। मेहरुन्निसा को आगरा भेज दिया गया। जहांगीर ने जब उससे विवाह का प्रस्ताव किया तो उसने अस्वीकार कर दिया। अतः जहांगीर ने उसे दिल्ली के किले में कैदी बनाकर बन्द करवा दिया। ६ वर्ष तक दिल्ली के किले में रहने के बाद उसने जहांगीर से विवाह करना स्वीकार कर लिया। उसी समय से उनका नाम 'नूरजहां' हो गया। फिर विवाह के पश्चात् जहांगीर ने शासन का सारा काम नूरजहां के हाथों में सौंप दिया जिसे नूरजहां ने बड़ी योग्यता से निभाया।

२६. नूरजहां का शासन—अत्यन्त रूपवती नूरजहां तीव्र बुद्धि वाली स्त्री थी। शासन का सारा काम उसने अपने हाथों में ले लिया। सिक्कों पर भी उसने अपना नाम अंकित कराया। अपने पिता, भाई तथा अन्य सम्बन्धियों को भी उसने बड़े-बड़े पद दिये। शेर अफगन से पैदा अपनी पुत्री का विवाह उसने जहांगीर के छोटे पुत्र शहरयार के साथ कर दिया। वह शहरयार को जहांगीर का उत्तराधिकारी बनना चाहती थी। शासन कार्यों में नूरजहां बड़ी कुशल थी। दीन-दुखियों के कष्टों को दूर करने के लिये उसने भरसक प्रयत्न किया। वह मदिरा-पान को बुरा समझती थी। नूरजहां के शासनकाल में प्रजा सुखी थी पर शासन के अन्तिम दिनों में विद्रोहियों की शक्ति बढ़ गई थी।

२७. दक्षिण विजय—इस समय अहमदनगर का शासन मलिक अम्बर के हाथ में था। मलिक अम्बर एक योग्य शासक था। उसने अनेक सुधार किये। अपनी सेना में उसने मराठों को भी भरती कर लिया था। मलिक अम्बर को परास्त करने के लिये जहांगीर ने कई सेनायें भेजीं पर मुगल सेनायें पराजित हुई। अन्त में १६१६ ई० में अहमदनगर राज्य ने आत्म-समर्पण किया। पर आधीनता स्वीकार करने के बाद पुनः उसका राज्य लौटा दिया गया। १६२६ ई० में मलिक अम्बर की मृत्यु हो गयी। दक्षिण विजय में जहांगीर को वास्तव में कुछ भी नहीं मिला।

२८. मेवाड़ का युद्ध—मेवाड़ का राणा अमरसिंह राणा प्रताप-सिंह का पुत्र था। वह एक वीर सेनानी था। जहांगीर ने मेवाड़ के

विरुद्ध अपनी सेना भेज दी। पर मेवाड़ के राजपूतों पर विजय पाना कोई हँसी खेल नहीं था। आसफ खां और महावत खां जैसे सेनापतियों को मेवाड़ के राजपूतों से टक्कर लेने में लोहे के चने चबाने पड़े। अन्त में १६१३ ई० में राजकुमार खुर्रम एक सेना लेकर मेवाड़ विजय के लिए गया। मेवाड़ के राणा ने मुगलों की आधीनता स्वीकार कर ली। मेवाड़ विजय की खबर सुनकर जहांगीर को बहुत प्रसन्नता हुई और उसने खुर्रम का शानदार स्वागत किया।

२६. कांगड़ा विजय—कांगड़ा विजय जहांगीर की एक महान विजय थी। अकबर ने अपने शासनकाल में कई बार कांगड़ा को जीतने की कोशिश की पर उसे सफलता न मिली। १६२० ई० में जहांगीर ने एक विशाल सेना लेकर कांगड़ा के पहाड़ी किले पर आक्रमण कर दिया। कांगड़ा के किले पर जहांगीर ने अधिकार कर लिया। इस विजय पर उसने बहुत हर्ष और गौरव प्रकट किया।

३०. हाकिन्स और सर टामस रो—१६०७ ई० में इङ्गलेंड के बादशाह जेम्स प्रथम का पत्र लेकर कैप्टन हाकिन्स सूरत में आया। वह जहांगीर के दरबार में गया और उसने व्यापार सम्बन्धी कुछ सुविधायें मांगी। जहांगीर ने उसकी मांगें स्वीकार कर लीं। पर बाद में पुर्तगालियों के कुचक्र से जहांगीर को हाकिन्स को दी गई सुविधायें वापिस लेनी पड़ीं। १६१५ ई० में जेम्स प्रथम ने सर टामस रो को अपना राजदूत बनाकर जहांगीर के दरबार में भेजा। सर टामस रो ने व्यापार सम्बन्धी जो सुविधायें जहांगीर से मांगी वह मंजूर हो गईं। वह तीन वर्ष तक भारत में रहा और उसने अपनी दिनचर्या में उस समय की स्थिति का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि भारत का सम्राट रत्नों से जड़े बहुमूल्य सिंहासन पर बैठता था और विलासी था। दरबार में यूरोपीय लोगों का बहुत सम्मान होता था। दरबार में फारसी भाषा का प्रचार था। सर्वसाधारण में मदिरापान होता था और तब अकबर के समय का सा अच्छा शासन नहीं था।

३१. खुर्रम और महावत खां के विद्रोह—नूरजहां ने अपने पहले

पति से हुई लड़की की शादी राजकुमार शहरयार से कर दी थी और वह शहरयार को ही जहांगीर का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। नूरजहां की इस चाल को खुर्रम समझता था। इसीलिए जब नूरजहां ने खुर्रम से कन्धार पर आक्रमण करने के लिए जाने की बात कही तो खुर्रम ने इन्कार कर दिया। उसने इन्कार ही नहीं किया बल्कि उसने विद्रोह भी कर दिया। सरकारी सेना ने उसे परास्त कर दिया और वह दक्षिण भारत की ओर भाग गया। बाद में लगभग २ वर्ष बाद जहांगीर और खुर्रम के बीच मेल हो गया।

महावत खां धीरे-धीरे बहुत शक्तिशाली होता जा रहा था। नूरजहां उससे बहुत जलती थी। नूरजहां ने महावत खां को दरबार में बुलवाया, पर वह दरबार में नहीं आया बल्कि उसने पांच हजार राजपूतों को लेकर जहांगीर पर आक्रमण कर दिया। जहांगीर उस समय काबुल की ओर जा रहा था और वह झेलम नदी के किनारे अपने डेरे में था। महावत खां ने जहांगीर को गिरफ्तार कर लिया। नूरजहां ने बड़ी बुद्धिमत्ता से जहांगीर को महावत खां के पंजे से छुड़ाया। कुछ ही महीनों बाद काश्मीर से लौटते समय १६२७ ई० में जहांगीर की मृत्यु हो गई। उसकी कब्र लाहौर में अब भी है। जहांगीर की मृत्यु के बाद खुर्रम (शाहजहां) गद्दी पर बैठा।

३२. **जहांगीर का शासनकाल**— जहांगीर एक बुद्धिमान तथा दयावान शासक था। उसमें सबसे बड़ी बुराई यह थी कि वह शराबी था। उसने स्वयं लिखा है कि उसे शराब पीने की आदत थी और शराब के नशे में कई बार वह बड़े-बड़े अपराध कर देता था। अन्यथा वह बहुत ही उदार, स्पष्ट-हृदय तथा योग्य व्यक्ति था। अत्याचार से उसे घृणा थी। जहांगीर के शासन-काल में साम्राज्य में शान्ति तथा समृद्धि की उन्नति हुई। उसके शासनकाल में उद्योग तथा व्यापार को प्रोत्साहन मिला, वास्तुकला की उन्नति हुई और चित्रकला उन्नति की चरम सीमा तक पहुंच गई। वह साहित्यिक रुचि भी रखता था। हिन्दी कवियों का वह बहुत सम्मान

करता था। अकबर की ही भांति उसने भी राजपूतों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किए थे। उसके रनिवास में कुल ३०० रानियां थीं। सर टामस रो के लेखों पर विश्वास करने वाले लोग जहांगीर को शराबी, बुरा, निर्बल तथा निर्दयी शासक मानते हैं। पर वास्तव में यह बात नहीं है।

शाहजहाँ (१६२८ ई०—१६५६ ई०)

३३. **शाहजहाँ का राज्याभिषेक**—जिस समय जहांगीर की मृत्यु हुई उस समय उसके दो पुत्र शाहजहां और शहरयार जीवित थे और शाहजहां दक्षिण में था। शाहजहां का विवाह आसफखां की पुत्री मुमताजमहल के साथ हुआ था, और शहरयार की पत्नी नूरजहां और शेरअफगन की पुत्री थी। शाहजहां के ससुर आसफखां ने जहांगीर की मृत्यु की सूचना तुरन्त शाहजहां के पास भेज दी। इधर आसफ खां ने खुसरो के पुत्र दावरबख्श को गद्दी पर बैठा दिया। पिता की मृत्यु की खबर पाकर शाहजहां तुरन्त आगरे आया। उसने गद्दी पर कब्जा कर लिया। लाहौर में शहरयार ने गद्दी के अधिकार का दावा किया। पर उसे परास्त कर दिया गया। इसी बीच शहरयार और उसके समर्थकों की हत्या शाहजहां ने करवादी। शहरयार की मृत्यु के बाद नूरजहां की सारी आशायें धूल में मिल गईं। अतः उसने सब काम छोड़ दिया और शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगी। इस प्रकार १६२७ ई० में शाहजहां सम्राट बना।

३४. **शाहजहाँ की दक्षिण विजय**—अपने पिता के शासनकाल में शाहजहां दक्षिण का गवर्नर रह चुका था। अतः वह वहां की सारी स्थिति से अच्छी तरह परिचित था। गद्दी पर बैठते ही उसने उन भागों को साम्राज्य में मिलाने का प्रयत्न करना प्रारम्भ किया जिन्हें अकबर और जहांगीर नहीं मिला पाये थे। १६२९ ई० में अहमदनगर का मन्त्री मलिक अम्बर मर गया। मलिक अम्बर के पुत्र ने वहां के राजा को गद्दी से उतार दिया और एक नाबालिग को गद्दी पर बिठा दिया। शाहजहां ने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया।

उसने अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि बीजापुर और गोलकुण्डा के शासक अहमदनगर की सहायता के लिए आए पर शाहजहां ने उन सब को परास्त कर दिया और अहमदनगर को अपने साम्राज्य में मिला लिया। अहमदनगर और बीजापुर के शासकों ने भी शाहजहां की आधीनता स्वीकार कर ली और कर देने को राजी हो गये।

२५. गुजरात में दुर्भिक्ष — १६३० और १६३२ ई० के बीच गुजरात, काटियावाड़ और दक्षिण में बहुत भीषण अकाल पड़ा। बहुत से लोग भूखों मर गये। इसी समय प्लेग भी फैल गया जिससे बहुत सी जानें गईं। शाहजहां ने जनता की सहायता के लिए अनेक प्रकार के प्रबन्ध किए। भूखों को भोजन देने, जरूरतमन्दों को धन देने और किसानों को लगान माफ करने का प्रबन्ध किया गया। पीटरमन्डी नामक अंग्रेज ने अपनी दिनचर्या में इस दुर्भिक्ष का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि सूरत में ही दुर्भिक्ष के कारण प्रत्येक २१ अंग्रेज व्यापारियों में से १७ मर गये। सारी भूमि लाशों से पट गई थी यद्यपि शाहजहां ने लगभग १ करोड़ रुपये से दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता की पर यह सहायता पर्याप्त सिद्ध नहीं हुई। गुजरात का दुर्भिक्ष शाहजहां के शासनकाल में एक बहुत बड़ा दवी प्रकोप था।

२६. कन्धार और बल्ख की विजय—शाहजहां ने दक्षिण विजय के बाद पश्चिमोत्तर सीमा की ओर ध्यान दिया। १६२२ ई० में कन्धार पर ईरान के शाह का अधिकार हो गया था। शाह ने अली मर्दान खां को कन्धार का गवर्नर नियुक्त कर दिया था। १६३७ ई० में अली मर्दान खां ने ईरान के शाह के खिलाफ बगावत कर दी। शाहजहां ने अली मर्दान को अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार कन्धार का प्रदेश शान्तिपूर्वक मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। अली मर्दान को मुग़ल दरबार में एक बहुत बड़ा पद दे दिया गया। १६४५ ई० में अली मर्दान ने बल्ख का सूबा जीत कर मुग़ल साम्राज्य में मिला दिया। शाहजहां ने अपने पुत्र औरङ्गजेब को इस नये प्रदेश का सूबेदार

नियुक्त कर दिया । १६४७ में ईरान के शाह ने कन्धार और बल्ख पर आक्रमण करके पुनः अपने राज्य में मिला लिया । शाहजहां की प्रबल इच्छा थी कि कन्धार और बल्ख के प्रदेश उसके साम्राज्य में रहें । उसने औरङ्गजेब और दाराशिकोह को विजय के लिए भेजा पर उनकी हार हुई और इस प्रकार मुग़ल राज्य की सीमा से कन्धार तथा बल्ख का प्रदेश निकल गया ।

३७. शाहजहाँ और पुर्तगाली—शाहजहां के शासनकाल में पुर्तगालियों ने बंगाल में हुगली नदी के किनारे एक कोठी खोल दी थी । पुर्तगालियों ने धीरे-धीरे गुलामों का व्यापार करना भी शुरू कर दिया । बहुत से अनाथ हिन्दुओं और मुसलमानों के बच्चों को पुर्तगालियों ने ईसाई बना लिया था । शाहजहां को इस बात पर बड़ा क्रोध आया । उसने पुर्तगालियों को गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया । बहुत से पुर्तगाली गिरफ्तार किये गए और कुछ को तो जान से मार दिया गया ।

३८. मुमताज महल—शाहजहां का विवाह आसफ खां की पुत्री मुमताज महल के साथ हुआ था । शाहजहां अपनी बीवी को बहुत प्यार करता था । मुमताज की मृत्यु होने पर शाहजहां ने उसकी यादगार में आगरे में यमुना के किनारे एक मकबरा बनवाया जिसे ताजमहल कहते हैं । मुमताज को यहीं दफनाया गया था और बाद में शाहजहां को भी वहीं दफनाया गया । ताजमहल संसार की सबसे सुन्दर इमारत गिनी जाती है । इसके बनने में लगभग १२ साल लगे थे और ३ करोड़ रुपये खर्च हुए थे ।

३९. शाहजहाँ की धार्मिक नीति—शाहजहां एक कट्टर मुसलमान था । धर्म के मामले में उसकी नीति अकबर की नीति से उल्टी थी । उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट करने की आज्ञा दे दी । हिन्दू प्रजा शाहजहां की धार्मिक नीति के कारण बहुत दुखी थी । शाहजहां ने पुर्तगालियों के साथ भी बहुत कठोर व्यवहार किया । उसने बहुत से पुर्तगालियों को

जेल में डलवा दिया और बहुतों को मरवा डाला। 'वर्नियर' ने अपनी 'भारत यात्रा' में इन सब बातों का उल्लेख किया है।

४०. शाहजहाँ की इमारतें—शाहजहाँ को इमारतें बनवाने का बड़ा शौक था। अपने शासनकाल में उसने बहुत सी सुन्दर व भव्य इमारतें बनवाईं। १६२८ ई० में उसने 'तख्ते-ताऊस' या मयूरसिंहासन बनवाया जिनमें बहुमूल्य हीरे और मोती जड़े हुए थे। तख्ते ताऊस सात वर्ष में बन कर तैयार हुआ था। दरबार में शाहजहाँ तख्ते-ताऊस पर ही बैठा करता था। आगरे में उसने मोती मस्जिद का निर्माण कराया। दिल्ली के लाल किले में दीवाने-आम और दीवाने-खास उसी ने बनवाये थे। दिल्ली की जामा मस्जिद भी उसी ने बनवाई। लाहौर का शालीमार बाग उसी का बनवाया हुआ है। उसके शासन काल में कुछ नहरें भी बनीं। उसके शासनकाल की सबसे महान इमारत 'ताजमहल' है जो कि संगमरमर पत्थर का बना हुआ है और संसार में अद्वितीय एव अनुपम है।

४१. शाहजहाँ के अन्तिम दिन—१६५७ ई० में अचानक शाहजहाँ बीमार पड़ा। उस समय उसकी फौज दक्षिण में बीजापुर और गोल-कुण्डा विजय में लगी हुई थी। शाहजहाँ की बीमारी की खबर पाते ही उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए झगड़े शुरू हो गए। उसका सबसे बड़ा लड़का दाराशिकोह था। दारा वीर और शौकीन था पर उतावले स्वभाव का था। वह शाहजहाँ के पास आगरे में ही रहता था। उसका दूसरा पुत्र शुजा बंगाल का सूबेदार था। वह बहुत विलासी था अतः शासन के लिए बिल्कुल अयोग्य था। तीसरा पुत्र औरंगजेब था जो कि दक्षिण का सूबेदार था। वह बातचीत में पटुमहत्वाकांक्षी और योग्य था। चौथे अर्थात् सबसे छोटे पुत्र का नाम मुराद था। वह गुजरात का सूबेदार था। वास्तव में शाहजहां ने दारा को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। क्योंकि वह दारा को बहुत लायक समझता था। दारा बहुत विद्वान् तथा योग्य था। यदि वह शासक बन पाता तो शायद अकबर की ही भांति वैभवशाली होता।



ताजमहल आगरा

शाहजहां की बीमारी की खबर मिलते ही सभी पुत्र गद्दी पर कब्जा करने की कोशिश में लग गये। सबसे पहले दारा ने अपने पुत्र सुलेमान को शुजा को परास्त करने के लिए भेजा, क्योंकि शुजा गद्दी पर कब्जा करने के लिए आगरे की ओर आ रहा था। बनारस के पास शुजा की पराजय हुई और वह भाग गया। उधर औरंगजेब ने अपनी भोली-भाली बातों से मुराद को अपने पक्ष में कर लिया। उसने कहा कि वह स्वयं तो गद्दी पर बैठना ही नहीं चाहता हां, मुराद की सहायता अवश्य कर देगा। मुराद और औरंगजेब दोनों की सम्मिलित फौज ने दारा को सामूगढ़ में पराजित कर दिया। दारा पंजाब की ओर भाग गया। पर वहां से उसे कैद करके लाया गया। औरंगजेब ने उस पर काफिर होने का अभियोग लगा कर उसे मरवा डाला। शुजा ने एक बार फिर गद्दी हथियाने का प्रयत्न किया पर उसे फिर हारना पड़ा। इस बार वह बर्मा की ओर भाग गया। बाद में कुछ पता नहीं कि उसका क्या हुआ। इसके बाद जब औरंगजेब और मुराद दिल्ली पहुंचे तो एक शानदार समारोह मनाया गया। इस समारोह में मुराद को बहुत शराब पिला कर बेहोश कर दिया गया और फिर औरंगजेब के आदेश से उसे गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में बन्द कर दिया गया। इसके बाद औरंगजेब ने शाहजहां को भी आगरे के किले में बन्द करवा दिया। सब तरफ से शत्रुओं को नष्ट करके १६५८ ई० में औरंगजेब गद्दी पर बैठा। ८ वर्ष तक जेल में सड़ने के बाद १६६६ ई० में शाहजहां की मृत्यु हो गई।

४२. **शाहजहां का मूल्यांकन**—शाहजहां न तो जहांगीर की भांति बहुत विलासी था और न औरंगजेब की भांति धर्मान्ध। कुछ विद्वानों ने उसके स्वभाव, चरित्र तथा शासन की बड़ी प्रशंसा की है। वह अपनी प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करता था। वह न्यायप्रिय तथा उदार शासक था। उसके शासनकाल में देश में शांति और समृद्धि थी। डाकुओं और लुटेरों को वह कड़ी सजा देता था। उसके समय में व्यापार तथा वाणिज्य की बहुत उन्नति हुई। जनता

सुखी तथा समृद्ध थी। शाहजहां धन का लोभी था। उसके कोष में अरबों रुपया था। शासन-प्रणाली के सम्बन्ध में शाहजहां ने अकबर का ही अनुकरण किया। उसके मन्त्री मुर्शिद कुली खां ने टोडरमल की भूमि नीति के आधार पर दक्षिण भारत में भी प्रबन्ध किया। शाहजहां का वैभव संसार में प्रसिद्ध है। उसके द्वारा बनवाई गई इमारतें उसके नाम का यश आज भी गा रही हैं। वह एक शानदार शासक था।

प्रश्न

1. What were the causes that led to the Second Battle of Panipat and how it strengthened the Moghul Empire ?

पानीपत की दूसरी लड़ाई के क्या कारण थे और उसने मुगल साम्राज्य को किस प्रकार दृढ़ बनाया ?

2. Give a brief account of the conquests of Akbar and state his policy towards Deccan.

अकबर की विजयों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। दक्षिण के विषय में उसकी क्या नीति थी ?

3. What was Akbar's attitude towards Hindus, particularly Rajputs ?

अकबर का हिन्दुओं और विशेषकर राजपूतों के प्रति क्या व्यवहार था ?

4. Bring out the salient features of the (1) general administration and (2) revenue system of Akbar.

अकबर के (१) सामान्य शासन और (२) लगान व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

Or

Justify the statement—"Akbar is considered the greatest of Moghal emperors."

"अकबर मुगल शासकों में सबसे महान् समझा जाता है।" सिद्ध कीजिए।

Or

While Babar was only the founder of Moghal empire, it was Akbar who gave internal solidarity. Explain.

बाबर ने मुगल राज्य की नींव डाली थी पर उसका वास्तविक संगठनकर्ता अकबर ही था। वर्णन कीजिये।

5. Form an estimate of the character and accomplishments of Akbar the Great.

अकबर महान् के चरित्र तथा उसकी सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

6. How did Akbar suppress the rebellions in his time?

अकबर ने अपने शासनकाल में विद्रोहियों का दमन किस प्रकार किया?

7. Give an account of the wars of Jahangir.

जहांगीर की लड़ाइयों का वर्णन कीजिये।

8. What do you know about Nurjahan? Form an estimate of her administration.

नूरजहां के विषय में आप क्या जानते हैं? उसके शासनकाल का मूल्यांकन कीजिये।

9. Describe the accession of Shabjahan to the throne and form an estimate of his reign.

शाहजहाँ किस प्रकार गद्दी पर बैठा ? उसके शासन का मूल्यांकन कीजिए।

10. Distinguish between the sons of Shahjahan and describe the contest between them for the throne.

शाहजहाँ के पुत्रों की विशेषतायें लिखिए और गद्दी पर बैठने के लिए उनमें हुए संघर्ष का वर्णन कीजिए।

11. Describe the general economic or cultural progress during the reigu of Jahangir and Shahjahan and reasons thereof.

जहाँगीर एवं शाहजहाँ के काल में देश की आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का वर्णन एवं कारण लिखिये।

12. Give a chronological narration of the Deccan policy of the first three Moghal Emperors.

प्रथम तीन मुगल सम्राटों की दक्षिणी नीति की क्रमयोजित कहानी लिखो।

13. Give an estimate of achievements of Nurjahan.

नूरजहाँ की सफलताओं का मूल्यांकन कीजिये।

14. How did Rana Partap struggle for honour of the Rajputs ? What is his place in history ?

राणा प्रताप राजपूतों के सम्मान के लिए किस प्रकार संघर्ष करते रहे ? उनका इतिहास में क्या स्थान है ?

—:o:—

अध्याय २३

मरहठों और सिक्खों का उत्कर्ष एवं यूरोपीय जातियों का आगमन

मरहठे

१. मराठों की जागृति—औरंगजेब के शासनकाल में महाराष्ट्र के निवासी मराठों में अपूर्व जागृति हुई। इन्होंने शिवाजी को अपना नेता मानकर मुगल राज्य पर कई आक्रमण किये और मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण कर दी। ये मराठे पहले दक्षिण के सुल्तानों की प्रजा थे, किन्तु सुल्तानों की शक्ति कम होने पर उन्होंने अपना सिर उठाना प्रारम्भ कर दिया। मराठों ने मुसलमानों को कई बार हराया। जिसके कारण उनका शौर्य और साहस हैं। दूसरे, मुसलमान विलासप्रिय हो चुके थे और उन्हें दक्षिण प्रदेश की समुचित जानकारी भी नहीं थी। मराठे उन पर आक्रमण कर आस-पास की पहाड़ियों और गुफाओं में छिप जाते थे और मुसलमान हाथ मलते रह जाते थे। लुकछिपकर आक्रमण करने के पश्चात् तुरन्त भाग निकलने के कारण शिवाजी ने पहाड़ी चूहे की उपाधि पाई। मराठों के इस उत्कर्ष का एक प्रमुख कारण भक्ति आन्दोलन का प्रसार था। १६वीं शताब्दी में भक्ति संप्रदाय के उपदेशकों ने महाराष्ट्र की जनता में भी एक नई चेतना फैला दी। इस संप्रदाय में जात-पांत आदि के दुर्भाव समाप्त कर दिए गये थे और महाराष्ट्र में पंढरपुर नगर में दूर-दूर के लोगों ने आकर विठोबा की उपासना शुरू कर दी। भक्ति-सम्प्रदाय के उपदेशकों ने वहां मराठी भाषा में उपदेश देना और भक्ति-साहित्य लिखना शुरू कर

दिया। १७वीं शताब्दी तक समूचे महाराष्ट्र में यह आन्दोलन फैल चुका था। तत्कालीन उपदेशकों में समर्थ रामदास, एकनाथ और वामन पंडित के नाम उल्लेखनीय हैं। मराठों में एकता की भावना उत्पन्न हो चुकी थी और राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए अनुकूल वातावरण बन गया था। उन्हें केवल एक कुशल नेता चाहिए था और वह उन्हें शिवाजी के रूप में मिल गया।

२. शिवाजी—शिवाजी का जन्म १६२७ ई० में शिवनेरी के किले में हुआ था। इनकी माता जीजा बाई और पिता शाहजी भोंसले थे। शाहजी बीजापुर के शासन के आधीन नियुक्त थे। शाहजी को बीजापुर की नौकरी में कर्नाटक में एक राज्य दे दिया गया था। इसके पहले उन्हें निजामशाही से पूना और सूपा की जागीर मिली थी। शाहजी ने दूसरा विवाह भी किया था और वे दूसरी पत्नी के साथ कर्नाटक में रहने लगे। शिवाजी और जीजाबाई पूना में रहने लगे, जहाँ शिवाजी ने दादाजी कोंडदेव जैसे योग्य गुरु से सैनिक सगठन, राज्य प्रबन्ध आदि बातों की शिक्षा प्राप्त की। शिवाजी की माता जीजाबाई प्रतिभा सम्पन्न और धार्मिक स्त्री थी। उन्होंने शिवाजी को रामायण, महाभारत और शूरवीरों की कहानियाँ सुनाकर उसके मन में शूरवीर बनने की अभिलाषा उत्पन्न कर दी थी। युवावस्था में कई मावले शिवाजी के साथी बन गये और उन्होंने मुसलमानों के दमन को अपना लक्ष्य बना लिया। तब तक शिवाजी केवल अपनी जागीर का प्रबन्ध किया करते थे किन्तु उनका लक्ष्य अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना था। अतः अवसर पाते ही उन्होंने इस दिशा में कदम उठाया।

३. शिवाजी के आक्रमण—१६४६ ई० में शिवाजी ने तोरण का किला जीत लिया। इसके बाद शिवाजी ने हर सम्भव उपाय से और कई किले जीत लिए और नये किले भी बनवाये। शिवाजी की गतिविधियों से अप्रसन्न होकर बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने शाहजी को कैद करवा लिया। शिवाजी बड़ी उलझन में पड़ गये। उन्होंने दिल्ली के सम्राट् शाहजहाँ से शाहजी को मुक्त करा देने की प्रार्थना

की। शाहजहाँ ने बीजापुर के सुल्तान को एक पत्र लिखकर शाहजी को कैद से मुक्त करा दिया। इसके बाद कोई छः वर्ष तक शिवाजी ने कोई किले नहीं जीते। वह अपने राज्य के प्रबन्ध को ठीक करने में ही लगे रहे। १६५५ ई० में शिवाजी ने बीजापुर की जावली जागीर पर अपना अधिकार जमा लिया। १६५६ ई० में बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के दमन के लिए अफजल खां नामक अनुभवी सरदार को भेजा। अफजल खां अपनी हिन्दू-विरोधी और असहिष्णु नीति के लिए प्रसिद्ध था। उसने प्रतापगढ़ पर घेरा डाला और जब वह शिवाजी को वहां से बाहर निकालने में सफल न हुआ तो उसने संधि की बात-चीत शुरू कर दी। शिवाजी और अफजल खां दोनों एक नियत स्थान पर मिले। इस भेंट के समय दोनों के अंगरक्षक पास नहीं थे। अफजल खां ने शिवाजी को गले लगाया और वह शिवाजी की पीठ में छुरी भोंकने वाला ही था कि शिवाजी ने बघनखे से उसका अन्त कर दिया। अफजल खां की हत्या के पश्चात् मुसलमानों की हिम्मत टूट गई और शिवाजी ने उन्हें लूट कर खदेड़ दिया।

अफजल खां के वध से बीजापुर की बड़ी अप्रतिष्ठा हुई और शिवाजी का यश चारों ओर फैल गया। अपनी योग्यता से कई किले और जागीरें जीत कर उन्होंने बीजापुर के शाह को आतंकित कर दिया। अब बीजापुर की सेना ने उनके क्षेत्र पर धावे शुरू कर दिये और बीजापुर के दक्षिण के सूबेदार शाइस्ता खां ने शिवाजी से चाकन का किला छीन लिया। कल्याण जिला भी शिवाजी के हाथ से निकल गया। शिवाजी ने रात में शाइस्ता खां पर आक्रमण कर दिया। शाइस्ता खां इसके लिए प्रस्तुत न था। इस गड़बड़ी में उसका लड़का मारा गया। शाइस्ता खां बड़ी कठिनाई से जान बचा कर भाग निकला। शाइस्ता खां की इस हार से शिवाजी की धाक जम गई और अगले वर्ष ही उन्होंने सूरत पर हमला कर दिया। सूरत व्यापार का केन्द्र होने के कारण अत्यन्त समृद्ध था। मुगल सैनिकों को भागने की राह न मिली और मराठों ने चार दिन तक सूरत को लूटकर अपार धन प्राप्त किया।

शाइस्ता खां की पराजय और सूरत की लूटमार से औरंगजेब चिंतित हो उठा। उसने अम्बर के राजा जयसिंह और अपने पुत्र मुअज्जम को शिवाजी को हराने के लिए दक्षिण भेजा। जयसिंह अनुभवी और कुशल सेनानी था और अच्छा कूटनीतिज्ञ भी था। पुरन्दर का किला छिन जाने पर शिवाजी ने जयसिंह से संधि कर ली। पुरंन्दर की संधि के अनुसार शिवाजी ने बीजापुर को हराने के लिए औरंगजेब की सहायता करना स्वीकार किया। जयसिंह ने शिवाजी को समझा-बुझाकर आगरा जाकर औरंगजेब के दरबार में उपस्थित होने के लिए प्रस्तुत कर लिया। शिवाजी पहले तो आपत्ति करने लगे किन्तु जयसिंह ने उसे प्राण रक्षा का वचन देकर राजी कर लिया। १६६६ ई० में शिवाजी अपने पुत्र संभाजी के साथ औरंगजेब के दरबार में पहुंचे। औरंगजेब ने उन्हें छः हजारी मनसबदारों के साथ खड़ा किया। शिवाजी को यह अपमान सहन नहीं हुआ और उन्होंने औरंगजेब का समुचित अभिवादन न किया। परिणाम यह हुआ कि शिवाजी और संभाजी नजरबन्द कर दिये गये। एक दिन वे दोनों मिठाई के टोकरों में बैठकर भाग निकले। इस प्रकार आगरा से छूटकर शिवाजी पुनः दक्षिण आ पहुंचे।

दक्षिण पहुंचकर शिवाजी ने अपने पुराने किलों को पुनः जीत लिया। उसके उपद्रव बढ़ने लगे और मुअज्जम को फिर दक्षिण भेजा गया। मुअज्जम ने शिवाजी के साथ संधि कर ली और औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की उपाधि प्रदान कर संभाजी को पंचहजारी मनसबदार बना दिया। शिवाजी को बरार की जागीर भी दी गई। किन्तु यह शांति संधि अधिक समय तक न रही। औरंगजेब ने बाद में बरार की जागीर शिवाजी से ले लेने का आदेश दिया। इससे लाभ उठाकर शिवाजी ने १६७० ई० में मुगलों पर हमला कर दिया। शिवाजी ने कई किले जीत लिए और सूरत पर पुनः आक्रमण किया। गोलकुण्डा के शासक से उसने काफी धन वसूल किया।

१६६४ ई० में शाहजी की मृत्यु हो जाने पर शिवाजी ने खुल्लमखुल्ला

अपना राज्य स्थापित कर अपने नाम के सिक्के चलाए। १६७१ ई० में बीजापुर के सुल्तान की मृत्यु हो गई। शिवाजी ने बीजापुर के राज्य पर आक्रमण कर वहां के सरदारों को नीचा दिखाया। किन्तु फिर उसने उनसे संधि कर ली और औरंगजेब से लड़ने में उसकी सहायता भी की। शिवाजी का विधिवत् राज्याभिषेक ६ जून, १६७४ ई० को हुआ। इस अवसर पर शिवाजी ने 'छत्रपति' और 'गोब्राह्मण प्रतिपालक' की उपाधियां धारण कीं। रामदास के शिष्यत्व को दर्शाने के लिए शिवाजी ने अपने ध्वज का रंग भगवा रखा। शिवाजी के राज्याभिषेक पर लगभग ५ करोड़ रुपये खर्च हुए थे। इस खर्च को पूरा करने के लिए १६७५ ई० में शिवाजी ने खानदेश पर आक्रमण कर दिया। सन् १६७७ में उसने कर्नाटक प्रान्त पर चढ़ाई कर दी और उसका अधिकांश भाग जीत लिया। इसी समय औरंगजेब ने दिलेर खां को एक बड़ी सेना देकर बीजापुर जीतने के लिये भेजा। इस युद्ध में शिवाजी ने बीजापुर का साथ दिया। यह युद्ध औरंगजेब की मृत्यु तक चलता रहा। इधर शिवाजी भी थक गया था और १६८० ई० में उसका देहान्त हो गया।

४. शिवाजी का शासन—शिवाजी एक कुशल योद्धा और शासक था, जिसने बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार कार्यवाही कर मराठा राज्य की स्थापना की। वह अपने राज्य का निरंकुश शासक था और वह उच्च अफसरों की नियुक्ति, राज्य का व्यय और बाहरी आक्रमणों के निराकरण पर विशेष ध्यान देता था। उसकी सहायता के लिए आठ मंत्रियों की एक परिषद् थी जिसे अष्ट प्रधान कहा जाता था। आरंभ में इनकी पदवियां फारसी ढंग से रखी गई थीं परन्तु शीघ्र ही शिवाजी ने इन्हें संस्कृत उपाधियां दी थीं। यह परिषद् राज्य का कार्यभार संभाल कर शिवाजी को सलाह देती थी। शासन की सुविधा के लिए राज्य प्रान्तों और जिलों में विभक्त था। शिवाजी ने जागीरें समाप्त कर नकद वेतन देने की प्रथा शुरू की थी। किलों की रक्षा का भार योग्य हवलदारों पर रहता था। इन किलों में बारूद, रसद

पानी आदि का अच्छा प्रबन्ध रखा जाता था। शिवाजी के सैनिकों के लिए शिविर में दासी, स्त्री और शराब लाना निषिद्ध था। आक्रमण के समय बच्चों और स्त्रियों पर हाथ उठाना भी उनके लिए निषिद्ध था। पराक्रमी सैनिकों को वेतनवृद्धि और पारितोषिक मिलते थे।

किसानों की जमीन की सही पैमाइश कर उनसे उपज का दो पंचमांश भाग राज्य कर के बतौर लिया जाता था। लगान के रूप में राज्य की आय अधिक नहीं थी। अतः शिवाजी विजित राज्यों से सरदेशमुखी और चौथ नामक कर वसूल करता था। धार्मिक विचारों में शिवाजी उदार और सहिष्णु था। उसने मन्दिरों और मसजिदों के लिए वार्षिक अनुदान प्रदान किये थे। उसके शासन में विद्वानों को राज्याश्रय भी प्राप्त था। उसने मसजिदो को कभी नष्ट नहीं किया और जब कभी उसके हाथ कुरान की कोई प्रति आ जाती थी तो उसे वह अत्यन्त आदर से किसी धार्मिक मुसलमान को दे देता था। उसकी प्रजा उससे अत्यन्त संतुष्ट थी और उसे शिव का अवतार समझती थी। भारत के इतिहास में शिवाजी का स्थान बहुत ऊँचा है।

सिक्खों का उदय तथा उत्कर्ष

५. गुरु नानक—सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक का जन्म १४६९ में पंजाब में तलवण्डी (वर्तमान ननकाना) ग्राम में हुआ था। नानक को बचपन में हिन्दी, संस्कृत और फारसी की शिक्षा मिली थी। बचपन से ही उनका झुकाव रहस्यवाद की ओर था। १८ वर्ष की आयु में उनका विवाह हुआ, उनके दो पुत्र हुए। ३० वर्ष की आयु में उन्होंने घर-बार छोड़ दिया और देश के तीर्थ स्थानों का भ्रमण कर आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त किया। नानक पर हिन्दू, इस्लाम और सूफी सम्प्रदाय इन तीनों का काफी प्रभाव पड़ा था। नानक ने पैगम्बरवाद को अपनाया तथा अपने अनुयायियों को ईश्वर की सेवा की शिक्षा दी थी। हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए उन्होंने सदा परिश्रम किया। १५३८ ई० में गुरु नानक का देहान्त हो गया।

६. सिक्ख धर्म का उदय तथा उसके गुरु—नानक के पश्चात नौ गुरु हुए । गुरु के पद के लिए उत्तराधिकार का कोई नियम न था। जो व्यक्ति नानक की आध्यात्मिक शिक्षाओं की रक्षा के लिए सर्वाधिक योग्य समझा जाता था वही गुरु बनाया जाता था । नानक के उत्तराधिकारियों ने अपना कर्त्तव्य पालन उचित ढंग से किया । गुरु नानक का धर्म किसी अन्य धर्म में विलीन होने या उससे समझौता करने के विरुद्ध था। अतः उसमें एक संगठित धर्म की भावना का पोषण हुआ और लगभग दो सौ वर्षों तक यह धर्म विकसित होता रहा ।

नानक के उत्तराधिकारी दूसरे गुरु अंगद ने उत्तरी भारत की लिपियों को मिलाकर गुरुमुखी लिपी का विकास किया। उन्होंने नानक की शिक्षाओं के प्रचारार्थ कई केन्द्र स्थापित किये तथा नानक की रचनाओं का एक संग्रह भी निर्माण किया । अंगद के पश्चात् गुरु अमरदास हुए । उन्होंने सिख धर्म के उदासियों को निकाल बाहर किया जिससे सिक्ख धर्म नष्ट होने से बच गया । अमरदास के पश्चात् उनके जामाता रामदास सिक्खों के गुरु हुए । सम्राट अकबर गुरु रामदास का काफी सम्मान करता था । गुरु रामदास के काल में ही अमृतसर के प्रसिद्ध सुवर्ण मन्दिर की नींव डाली गई थी । बाद में अमृतसर सिक्खों का प्रमुख केन्द्र बन गया।

सिखों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव थे । उन्होंने गुरु की गद्दी अमृतसर में स्थापित की। उन्होंने अपने से पहले गुरुओं की शिक्षाओं का एक संकलन तैयार किया, जिसे सिक्ख 'आदि ग्रंथ' कहते हैं । अर्जुन देव ने मन्दिर में अनिवार्य भेंट चढ़ाने की प्रथा शुरू की । अर्जुन देव की सम्पति तथा प्रभाव से जहांगीर को उन पर संदेह हो गया और उसके विद्रोही पुत्र खुसरो ने जब अर्जुन देव के यहां शरण ली, तो अर्जुन देव को राजद्रोह के अपराध में मार डाला गया । अर्जुन देव की मृत्यु के पश्चात् सिक्ख धर्म में बहुत परिवर्तन हो गया । उनके उत्तराधिकारी

गुरु हरगोविन्द ने अमृतसर में एक सुदृढ़ किला बनवाया तथा अपने अनुयायियों को शस्त्र-प्रयोग की शिक्षा दी। उन्होंने मांस खाना भी शुरु कर दिया। उनके पास अपनी छोटी सी सेना भी थी। जहांगीर पहले उनसे प्रसन्न था और हरगोविन्द को भत्ता भी दिया जाता था परन्तु कुछ समय पश्चात् जहांगीर नाराज हो गया और हरगोविन्द को ग्वालियर के किले में बारह वर्ष तक बन्दी रखा गया। वहां से छूटने पर हरगोविन्द ने मुसलमानों पर आक्रमण किये, किन्तु उन्हें विशेष सफलता न मिली। १६४४ ई० में गुरु हरगोविन्द की मृत्यु हो गई।

गुरु हरगोविन्द के बाद उनके पुत्र गुरु हरराय सिक्खों के नेता बने। वे स्वभाव से शांतिप्रिय थे। उन्होंने शाहजहां के पुत्र दारा शिकोह को उत्तराधिकार के झगड़े के समय सहायता दी थी। गुरु हरराय के पश्चात् उनके दो पुत्रों में से छोटे पुत्र हर कृष्ण को गद्दी पर बैठाया गया परन्तु तीन वर्ष के बाद उसकी मृत्यु हो गई। अतः गुरु हरराय के बड़े पुत्र तेग बहादुर गद्दी पर बैठे। उनकी गतिविधियों से औरंगजेब बहुत अप्रसन्न था। उसने १६७५ में उन्हें अपने दरबार में बुलवा भेजा और मरवा दिया।

सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्दसिंह थे। उन्होंने अपने पिता के वध का बदला लेने का निश्चय कर लिया। सिक्खों को एक सैनिक जाति बनाने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। अपने अनुयायियों में उन्होंने एक नई चेतना उत्पन्न कर दी और उन्हें गुरु नानक के सामान्य सिद्धान्तों की शिक्षा दी। वे जानते थे कि अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उन्हें धर्म के सिद्धान्तों में कुछ परिवर्तन करने होंगे। उनका कहना था कि जब सब उपाय असफल हो जायें, तो तलवार उठाना ही न्यायसंगत है। उनकी शिक्षा के परिणामस्वरूप सिक्ख धर्म का स्वरूप ही बदल गया और वे तलवार को अपने धर्म का प्रतीक मानने लगे।

७. खालसा—१६९९ ई० में हिन्दू वर्ष के प्रथम दिन (बैसाखी)

को गुरु गोविन्द सिंह ने अपने पांच प्रिय शिष्यों (पंज पियारा) का निर्वाचन किया था। उनमें से एक क्षत्रिय था और बाकी नीच जाति के थे। गुरु ने उन्हें एक ही पात्र से पानी पिलाया तथा उन्हें पांच 'ककार' अर्थात् केश रखने, कंघा व कच्छा पहनने, कृपाण रखने तथा कड़ा पहनने की शिक्षा दी। इन खालसाओं के लिए शराब, बीड़ी सिगरेट, हुक्का आदि पीना वर्जित था। वे हलाल किये गए जानवरों का मांस नहीं खा सकते थे। और मुसलमानों की लड़कियों से शादी नहीं कर सकते थे। जिन सिक्खों ने इस शिक्षा को स्वीकार किया वे खालसा कहलाने लगे।

इस प्रकार गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों को एक सैनिक जाति बना दिया, जो मुगलों से टक्कर लेने के लिए सदैव आतुर रहती थी। उन्होंने पांवता, आनन्द गढ़, लोह गढ़, केश गढ़ और फतह गढ़ में सुदृढ़ किले बनवाये। गुरु गोविन्द सिंह की सेना ने मुगल सेना से युद्ध किया। इस युद्ध में गुरु गोविन्द सिंह तो बच गये किन्तु उनके दो छोटे पुत्रों को मुसलमानों ने दीवार में जीवित ही चुनवा दिया। गोविन्द सिंह और औरंगजेब के बीच कई लड़ाइयां हुई और उभय पक्षों में वैमनस्य बढ़ता गया। अन्त में, औरंगजेब ने गुरु गोविन्द सिंह को बुलवा भेजा। गुरु गोविन्द सिंह के दक्षिण पहुंचने से पहले ही औरंगजेब की मृत्यु हो गई। उनके सब पुत्र उनके जीवनकाल में ही मर गये थे अतः गोविन्दसिंह के बाद सिक्खों का कोई गुरु नहीं हुआ। गोविन्द सिंह की मृत्यु के पश्चात् भी उनकी शिक्षा का प्रभाव बना रहा और सिक्ख अपनी नैतिक शक्ति धीरे-धीरे बढ़ा कर कालान्तर में बड़े शक्तिशाली बन गये।

८. बन्दा बैरागी—गुरु गोविन्द सिंह जब दक्षिण गये थे, तब उन्होंने बन्दा बैरागी को अपना शिष्य बना लिया था। बन्दा के प्रारम्भिक जीवन की ठीक जानकारी उपलब्ध नहीं है। फिर भी पता चलता है कि सिक्खों ने उसे अपना नेता स्वीकार कर लिया था। बन्दा ने सरहिन्द प्रान्त पर आक्रमण कर दिया और अपने गुरु की हत्या का

बदला चुकाने के लिये सरहिन्द के गवर्नर को मार डाला। सरहिन्द और आस-पास के इलाकों में बन्दा का आतंक फैल गया। लोहगढ़ के किले पर मुसलमानी सेना ने घेरा डाल दिया किन्तु बन्दा वहां से भाग निकला। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए जो अराजकता उत्पन्न हुई, उसका लाभ उठा कर बन्दा ने लूटमार आरम्भ कर दी। १७१५ ई० में गुरदासपुर के किले में उसे कैद कर लिया गया। बन्दा के अनुयायी कत्ल कर दिए गए और बन्दा को भी अनेक यातनायें देकर मार डाला गया किन्तु बन्दा की मृत्यु के पश्चात् भी सिक्खों की सैनिक शक्ति बनी रही।

यूरोपीय जातियों का आगमन

१. पुर्तगालियों का आगमन—यूनान और भारत का व्यापारिक सम्बन्ध बहुत पुराना था। यूनान के साथ व्यापार करने से भारत को बहुत लाभ होता था। अरब के लोगों ने जब मिस्र पर विजय कर ली, तो यूनान वालों का भारत के साथ व्यापार कम हो गया। इसके विपरीत अरब के लोगों का व्यापार समृद्ध हो गया। इस बीच १४९८ ई० में वास्को-डी-गामा नामक पुर्तगाली ने भारत के लिए एक नया समुद्री मार्ग ढूंढ निकाला। दक्षिणी अफ्रीका के उत्तमाशा (गुड-होप) अन्तरीप को पार करके अफ्रीका के पूर्वी तट से होता हुआ उसका जहाज भारत आ पहुंचा। भारत के पश्चिमी तट पर उसने कुछ व्यापार किया, और फिर अपने देश को लौट गया। अरब के लोगों ने पुर्तगालियों के व्यापार को रोकने के बड़े प्रयत्न किए, पर पुर्तगालियों का व्यापार बढ़ता ही गया। पश्चिमी तट के शासकों ने, अर्थात् कालीकट और कोचीन के राजाओं ने, पुर्तगालियों का पहले-पहल बड़ा स्वागत किया। लंका और मलक्का के टापुओं से व्यापार करने में भी पुर्तगालियों को काफी लाभ रहा। दक्षिण भारत का विजयनगर साम्राज्य उन दिनों विशेष उन्नति पर था। पुर्तगालियों ने सोचा कि

शान्तिपूर्वक व्यापार करने और विजयनगर से मित्रता बढ़ाने में उनके व्यापार को काफी लाभ होगा। गोआ के आस-पास काफी भूमि पर पुर्तगालियों ने अपना अधिकार जमा लिया। गोआ के निकट बीजापुर का राज्य था, पर बीजापुर पुर्तगालियों को रोक नहीं पाया क्योंकि न तो बीजापुर के पास उतना शक्तिशाली जहाजी बेड़ा था, जितना शक्तिशाली जहाजी बेड़ा पुर्तगालियों के पास था साथ ही बीजापुर राज्य के झगड़े विजय नगर साम्राज्य से होते रहते थे।

१५०२ ई० में वास्को-डी-गामा पुनः भारत आया। उसने कोचीन के राजा से मित्रता करके पश्चिमी तट से अरब देश के लोगों के व्यापार को समाप्त कर दिया और अरब सागर पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। कालीकट और कन्नूर में इस समय पुर्तगालियों ने अपनी फैक्टरियाँ या व्यापारिक कोठियाँ खोल ली थीं। १५०५ ई० में अलमीडा पुर्तगालियों का प्रथम वायसराय बनकर भारत आया। उसने मलाबार तट के उन बन्दरगाहों को भी अपने अधीन कर लिया, जिन पर अभी तक अरब के लोग व्यापार करते थे। व्यापार की उन्नति के लिए उसने अपनी समुद्री शक्ति काफी शक्तिशाली बनाई। एक ही वर्ष में उसने सम्पूर्ण मलाबार तट तथा लंका पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

१०. **अल्बुकर्क**—१५०९ ई० में अल्बुकर्क पुर्तगालियों का वायसराय बन कर आया। उसने भारतीय प्रजा पर मुख्यतया मुसलमानों पर धार्मिक अत्याचार किए। १५१० ई० में अल्बुकर्क ने बीजापुर राज्य से गोआ छीन लिया। गोआ पर अधिकार पाने के पश्चात् पुर्तगालियों की स्थिति बहुत शक्तिशाली हो गई। पुर्तगालियों के धार्मिक हस्तक्षेप के कारण भारतीय उन से बहुत असन्तुष्ट हो गये।

लगभग १५८० ई० में पुर्तगाल राज्य स्पेन के अधीन आ गया। स्पेन को यूरोप में इंगलैंड तथा अन्य राज्यों के साथ कई युद्ध करने

पड़े। अतः भारत के व्यापार की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा सका। उधर विजयनगर साम्राज्य के नष्ट हो जाने से भी उनके व्यापार पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे पुर्तगालियों का व्यापार कम होने लगा और यूरोप की अन्य जातियों ने भी भारत के साथ व्यापार करना शुरू कर दिया। इन्हीं संघर्षों में पुर्तगालियों का व्यापार नष्ट हो गया। केवल गोआ, डामन और ड्यु उनके पास रह गये।

११. हालैंड वालों का आगमन—पुर्तगाली व्यापारियों को देखकर डच (हालैण्ड के निवासियों को डच कहा जाता है) लोगों ने भी भारत से व्यापार करने के लिए एक कम्पनी बनाई। १५९५ ई० में उन्होंने व्यापार करना आरंभ किया। उस समय तक पुर्तगालियों की स्थिति बड़ी कमजोर हो गयी थी। डचों ने पुर्तगालियों को परास्त करके सुमात्रा, मलक्का, जावा और लंका के द्वीप छीन लिए। मसाले के व्यापार के मुख्य केन्द्र यही द्वीप थे। इस प्रकार पुर्तगालियों की रही-सही शक्ति नष्ट हो गयी। पुर्तगालियों का व्यापार नष्ट करने में अंग्रेजों ने भी डचों की सहायता की थी। डचों ने पूर्वी तट पर भी अपना सिक्का जमा लिया। कलकत्ते के पास चिनसुरा में उन्होंने अपनी कोठियां (फैक्टरियां) स्थापित कर लीं। पर भारत में जब अंग्रेज स्वयं व्यापार करने आये तो डचों और अंग्रेजों के हितों में संघर्ष हुआ। अंग्रेज विजयी हुये और डचों को भारत छोड़ना पड़ा। बाद में अंग्रेजों ने लंका द्वीप पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार डचों को भी भारत से जाना पड़ा।

१२. अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी—१६०० ई० में कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने महारानी एलिजाबेथ से भारत के साथ व्यापार करने की अनुमति लेकर एक कम्पनी बनाई, जिसका नाम ईस्ट इण्डिया कम्पनी रखा गया। भारत में आने पर अंग्रेजी कम्पनी को हालैंड वालों (डचों) के साथ संघर्ष करना पड़ा। १६१२ ई० में अंग्रेजों ने सूरत में अपनी

एक कोठी बना ली। इङ्गलैंड के बादशाह जेम्स प्रथम ने सर टामस रो को अपना दूत बनाकर मुगल सम्राट् जहांगीर के दरबार में भेजा था। जहांगीर ने सर टामसरो की मांगें स्वीकार कर ली थीं। १६४० ई० के लगभग अंग्रेजों ने पूर्वी तट पर भी कुछ स्थान प्राप्त कर लिया और उधर भी मद्रास नामक किला बनाकर व्यापार शुरू कर दिया। इसी समय बंगाल के सूबेदार शुजा से अंग्रेजों ने हुगली में एक कोठी बनवाने की आज्ञा ले ली। विजयनगर के वंशजों से अंग्रेजों ने पूर्वी तट पर वह जगह मोल ले ली, जहां पर आजकल मद्रास बसा हुआ है। इसी बीच ब्रिटेन के सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने पुर्तगाल की कैथरिन ब्रेगेजा से विवाह कर लिया। विवाह में चार्ल्स को बम्बई द्वीप दहेज में मिला, जिसे उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया। १६८० ई० में मुगल सम्राट औरंगजेब ने अंग्रेजों को बंगाल में व्यापार करने की अनुमति दे दी। पर १६८६ ई० में औरंगजेब उनसे क्रुद्ध हो गया और उसने अंग्रेजों को बंगाल से बाहर निकाल दिया। बाद में धीरे-धीरे अंग्रेजों को फिर बंगाल में आने एवं व्यापार करने की अनुमति मिल गई। १६९० ई० में अंग्रेजों ने वर्तमान कलकत्ता शहर की नींव डाली। कलकत्ता शहर कालीकट और गोविन्दपुर नामक दो गांवों की भूमि में बसाया गया, जिनको अंग्रेजों ने खरीद लिया था। इस बीच भारत में मरहठों की शक्ति काफी बढ़ रही थी। अंग्रेजों को भय था कि कहीं उनकी कोठी को भी मरहठे लूट न लें। सूरत में मरहठों ने अंग्रेजों की कोठी कई बार लूटी थी। अतः अंग्रेजों ने बंगाल के गवर्नर की आज्ञा से अपने किले एवं कोठी के चारों तरफ एक बड़ी खाई बनवा दी। इस प्रकार अंग्रेजी कम्पनी की उन्नति धीरे-धीरे होती गयी और उत्तरी भारत में उनकी शक्ति भी प्रबल होती गई।

१३. **फ्रांसीसी कम्पनी**—यूरोप के अन्य देशों की देखादेखी फ्रांसीसियों ने भी भारत के साथ व्यापार करने के लिए एक कम्पनी बनाई। पर जब फ्रांसीसी कम्पनी बनी उस समय तक अंग्रेजी कम्पनी का प्रभुत्व भारत में काफी जम चुका था। पूर्वी और पश्चिमी तट पर फ्रांसीसियों

ने भी अपनी बस्तियां बसाईं। अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच निरन्तर संघर्ष होता था। १६७४ ई० में पांडिचेरी में फ्रांसीसियों ने अपनी पहली बस्ती बसाई। बंगाल के चन्द्रनगर में भी उन्होंने अपनी एक फैक्ट्री खोली। दक्षिण भारत में कारीकल और माही में इनकी दो बस्तियां थीं। फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में काफी संघर्ष हुआ। पर बेचारे फ्रांसीसी अन्त में असफल रहे।

१४. राजनीति में विदेशियों द्वारा हस्तक्षेप—विदेशी कम्पनियों ने पूर्वी और पश्चिमी तट पर तथा बंगाल में अपनी कोठियां बना लीं। उनकी फैक्ट्रियां भी थीं। भारत में औरंगजेब की मृत्यु के बाद सर्वत्र अशान्ति फैल रही थी। चारों ओर विद्रोह और हत्याओं का बोल बाला था। राज्य जनता के धन तथा उसके प्राण की रक्षा करने में असफल था। अतः इन कम्पनियों ने अपनी फैक्ट्रियों एवं कोठियों की रक्षा के लिए स्वयं अपनी सेना तथा सिपाही रखने शुरू कर दिये। उन सिपाहियों को यूरोपीय ढंग से शिक्षा दी जाती थी तथा नवीनतम शस्त्र दिये जाते थे। अतः उनके सिपाहियों में भारतीय शासकों की सेनाओं की अपेक्षा अधिक शक्ति थी। इसी कारण जब भारतीय राजे या शासक परस्पर लड़ते थे तो वे इन विदेशी कम्पनियों से सहायता की मांग करते थे। इस प्रकार यूरोपीय कम्पनियों को व्यापार के अतिरिक्त भारत के राजनैतिक मामलों में भी धीरे-धीरे प्रवेश मिलने लगा। फलस्वरूप भारत में जो विदेशी व्यापार कम्पनियां थीं, उनमें भी परस्पर बड़ी होड़ पैदा हो गयी। इन यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों के संघर्षों का पूर्ण वर्णन आगे के अध्याय में दिया जायेगा।

प्रश्न

1. Give a brief account of the life and character of Shivaji.

शिवाजी के जीवन और चरित्र का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

2. Briefly describe the achievement, administration, system of warfare and general policy of the Marathas.

मराठों की सफलताओं, उनके शासन, युद्ध प्रणाली तथा सामान्य नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

3. Who founded Sikhism ? Give an account of his life and teachings.

सिख धर्म का संस्थापक कौन था ? उसके जीवन और उसकी शिक्षाओं का वर्णन कीजिये।

4. How did the Sikhs became a martial race ? What effect it had on Mughal Empire ?

सिख लड़ाकू जाति के कैसे बने ? इस घटना का मुगल साम्राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा ?

5 What do you know about Guru Govind Singh and how he founded the significance of Khalsas ?

गुरु गोविन्दसिंह के विषय में आप क्या जानते हैं और उन्होंने खालसा के महत्व को कैसे स्थापित किया ?

6. Describe the early European settlement in India.

भारत में प्रारम्भिक यूरोपीय बस्तियों का वर्णन कीजिये।

7. Give an account of the Portuguese settlements in India and describe how they were ousted ?

भारत में पुर्तगाली बस्तियों का वर्णन कीजिये और यह भी बताइये कि भारत से उन्हें किन कारणों से निकलना पड़ा ?

8. How and why did the European trading

companies got opportunities to meddle in Indian political affairs ?

यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों को भारतीय राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप का अवसर क्यों तथा कैसे मिला ?

9. Write short notes on :—

(1) The English East India Company.

(2) The French East India Company.

(3) Albuquerque.

(4) Dutch East India Company.

(5) Sir Thomas Roe.

निम्नलिखित पर नोट लिखिये:—

(१) ईस्ट इण्डिया कम्पनी

(२) फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी

(३) अलबुकर्क

(४) डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी

(५) सर टामस रो

—:o:—

अध्याय २४

औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारी

१. **औरंगजेब और मीर जुमला**—औरंगजेब के शासन के प्रारम्भ में दो या तीन वर्ष तक उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़े चलते रहे। अन्त में औरंगजेब विजयी हुआ। इस विजय में मीर जुमला नामक एक सरदार ने उसकी बहुत सहायता की थी। मीर जुमला पहले गोलकुण्डा राज्य की सेवा में दक्षिण भारत में था। फिर वह शाहजहां की सेवा में आ गया था। गद्दी पर बैठने के बाद औरंगजेब यह नहीं चाहता था कि मीर जुमला जैसे सरदार को वह अपने निकट रखे। उसे भय था कि मीर जुमला स्वयं गद्दी पर अधिकार न कर ले। अतः औरंगजेब ने उसे बंगाल का सूबेदार नियुक्त कर दिया और उसे आसाम तथा आराकान पर विजय करने की आज्ञा दे दी। आसाम और आराकान का प्रदेश पहाड़ी है और वर्षा भी बहुत होती है, अतः वहां मलेरिया बहुत फैलता है। बूढ़ा वीर सैनिक मीर जुमला १६६३ ई० में बीमार होकर वहीं मर गया। इस प्रकार औरंगजेब के मार्ग का एक बहुत बड़ा कांटा निकल गया।

२. **औरंगजेब और शिवाजी**—शाहजहां के शासनकाल में औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार रह चुका था। दक्षिण के राज्यों पर विजय की उसकी लालसा पूरी न हो पाई थी कि शाहजहां की बीमारी के कारण उत्तराधिकार के झगड़े शुरू हो गये। अतः गद्दी पर अधिकार कर लेने के पश्चात् अब औरंगजेब दक्षिण विजय की लालसा पूर्ण करना चाहता था। इसी बीच छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण में अपनी शक्ति बहुत काफी बढ़ा ली थी। पहले तो शिवाजी ने बीजापुर और

गोलकुण्डा के शासकों को ही तंग किया था पर अब उसने नर्मदा नदी के उत्तर तक मुगल साम्राज्य पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। शिवाजी को दबाने के लिए औरंगजेब ने शाइस्ता खां को भेजा। पर शाइस्ता खां को अपनी उंगलियां खोकर जान बचा कर भागना पड़ा। इस पर औरंगजेब ने शाइस्ता खां को बङ्गाल का सूबेदार बनाकर बङ्गाल भेज दिया और शिवाजी को दबाने के लिए दिलेर खां और राजा जयसिंह को भेजा। इस बार मुगल सेना ने शिवाजी के २० किले छीन लिए और बाद में जयसिंह ने शिवाजी को समझा बुझाकर दिल्ली दरबार में लाने का प्रयत्न किया। पर जब शिवाजी १६६६ ई० में सम्राट के दरबार में आया तो उसका समुचित सम्मान नहीं किया गया। स्वाभिमानी शिवाजी इस पर बहुत रुष्ट हुआ। उसे नजरबन्द कर लिया गया पर चालाकी से वह भाग निकला और मथुरा, काशी होता हुआ दक्षिण पहुंचा। दक्षिण पहुंच कर उसने मुगलों से अपने सारे किले छीन लिए। औरंगजेब ने दक्षिण के सूबेदार राजकुमार मुअज्जम को आदेश दिया कि शिवाजी के विद्रोहों को दबाया जाए। १६७१ ई० में शिवाजी ने बरार और खानदेश पर आक्रमण किया और सूरत को पुनः लूटा। इसके पश्चात् शिवाजी और मुगलों के बीच शान्ति हो गयी। औरंगजेब ने शिवाजी के पुत्र सम्भाजी को पंचहजारी का मनसब दे दिया। १६७४ ई० में शिवाजी ने रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक किया। दक्षिण के बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों से मिलकर मुगल साम्राज्य के विरुद्ध उसने कई युद्ध किए। १६८० ई० में रायगढ़ में शिवाजी की मृत्यु हो गयी।

३. जाटों का उपद्रव—औरंगजेब द्वारा लगाये गये भारी करों के बोझ से जनता बहुत घबरा गई थी। मथुरा जिले के जाटों ने सर्व प्रथम विद्रोह कर दिया। तिलपत (गोकुल) के जमींदार को उन्होंने अपना नेता बना लिया। मुगलों की एक बहुत बड़ी सेना जाटों को दबाने के लिए भेजी गई और जाटों के विद्रोह का दमन कर दिया गया।

१६८८ ई० में जाटों ने फिर विद्रोह किया । इस विद्रोह को मुगल सेना दबा नहीं पाई और औरंगजेब के शासनकाल के अन्त तक यह विद्रोह चलता ही रहा ।

४ **सतनामियों का विद्रोह**—सतनामी जाति के हिन्दू थे। वे 'सत्यनाम' में विश्वास करते थे, अतः उन्हें सतनामी कहा जाता था। औरंगजेब की धर्मान्धता की नीति के कारण १६७२ ई० में सतनामियों ने विद्रोह कर दिया । आरम्भ में यह झगड़ा एक सैनिक तथा सतनामियों के एक समूह में हुआ था । बाद में इस झगड़े ने धार्मिक झगड़े का रूप ले लिया । औरंगजेब की धार्मिक नीति ने इस झगड़े को और भी प्रोत्साहन दिया । सतनामियों ने खूब लूटपाट की और अन्ततः नारनोल के किले पर अधिकार करके वहां अपना शासन स्थापित कर लिया। इस विद्रोह को दबाने के लिए औरंगजेब ने बहुत खून बहाया ।

५. **औरंगजेब और राजपूत**--राजपूतों के साथ व्यवहार करने में औरंगजेब ने बड़ी कठोरता से काम लिया। अकबर की नीति के कारण राजपूत मुगल साम्राज्य की शक्ति के स्तम्भ बन गये थे। अकबर के अधीन राजपूत वीरों ने मुगल साम्राज्य को बढ़ाया । पर औरंगजेब की धर्मान्धता ने राजपूतों को अपना शत्रु बना लिया। १६७८ ई० में मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह की मृत्यु हो गयी। औरंगजेब ने उसका राज्य हड़प लिया और उसके पुत्रों को पकड़ कर बलपूर्वक उन्हें मुसलमान बनाने की आज्ञा दे दी। इस बात से सभी राजपूत राजा उबल पड़े । मेवाड़ और मारवाड़ के राजपूतों ने औरंगजेब के विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला शस्त्र उठा लिए । औरंगजेब ने राजपूतों को दबाने के लिए अपने पुत्र अकबर को भेजा । राजपूतों ने अकबर को अपनी ओर मिला लिया । पर औरंगजेब ने ऐसी चाल चली कि अकबर राजपूतों का साथ छोड़कर दक्षिण की ओर भाग गया और उसके पश्चात् फारस की ओर चला गया । उसके बाद औरंगजेब ने राजपूतों से युद्ध करने के लिए अपने सेनापति दिलेर खां को भेजा ।

४ वर्ष तक युद्ध चलता रहा। अन्त में बादशाह थक कर निराश हो गया और उसने १६८१ ई० में राजपूतों के साथ सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार मारवाड़ का राज्य यशवन्तसिंह के पुत्रों को मिल गया और यह भी निश्चय हुआ कि राजपूत राजा जजिया कर नहीं देंगे और औरंगजेब उनके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। इस युद्ध द्वारा मुगलों ने राजपूतों की सहानुभूति खोकर हमेशा के लिए उन्हें शत्रु बना लिया।

६. **औरंगजेब और हिन्दू धर्म**—अपनी शक्ति सुदृढ़ करने के पश्चात् १६६९ ई० में औरंगजेब ने हिन्दुओं को नष्ट करने एवं हिन्दू धर्म को मिटाने की नीति आरम्भ की। प्रान्तीय सूबेदारों को उसने आदेश दिया कि हिन्दू धर्म के मानने वालों को नष्ट किया जाये और उनके मन्दिरों को भ्रष्ट किया जाये। इस आज्ञा के पालन में हिन्दुओं को बड़ी यातनायें दी गयीं। उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया और उनके मन्दिरों को नष्ट किया गया। काशी में विश्वनाथ जी के मन्दिर को तोड़कर वहाँ मस्जिद बनवाई गई। वृन्दावन में श्री गोविन्द जी का मन्दिर तोड़ा गया और मथुरा में एक मस्जिद बनवाई गयी। १६७० ई० में औरंगजेब ने हिन्दुओं पर फिर जजिया लगा दिया। हिन्दुओं को त्योहार मनाने की मनाही कर दी गयी और उन्हें पालकी एवं हाथी पर चढ़ने या हथियार लेकर निकलने की रोक लगा दी गयी।

७. **औरंगजेब और सिक्ख**—सिक्खों के साथ भी औरंगजेब ने बहुत बल प्रयोग और अत्याचार किया। १६७५ ई० में औरंगजेब ने सिक्खों के गुरु तेगबहादुर को मार डाला। उसके बाद सिक्खों के गुरु गोविन्द सिंह हुये। गोविन्द सिंह ने सिक्खों में सैनिक शक्ति उत्पन्न की और उनका संगठन किया। औरंगजेब चाहता था कि सिक्ख भी इस्लाम धर्म स्वीकार करलें। गोविन्दसिंह के दो बच्चों को बलपूर्वक पकड़ कर उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। इस्लाम

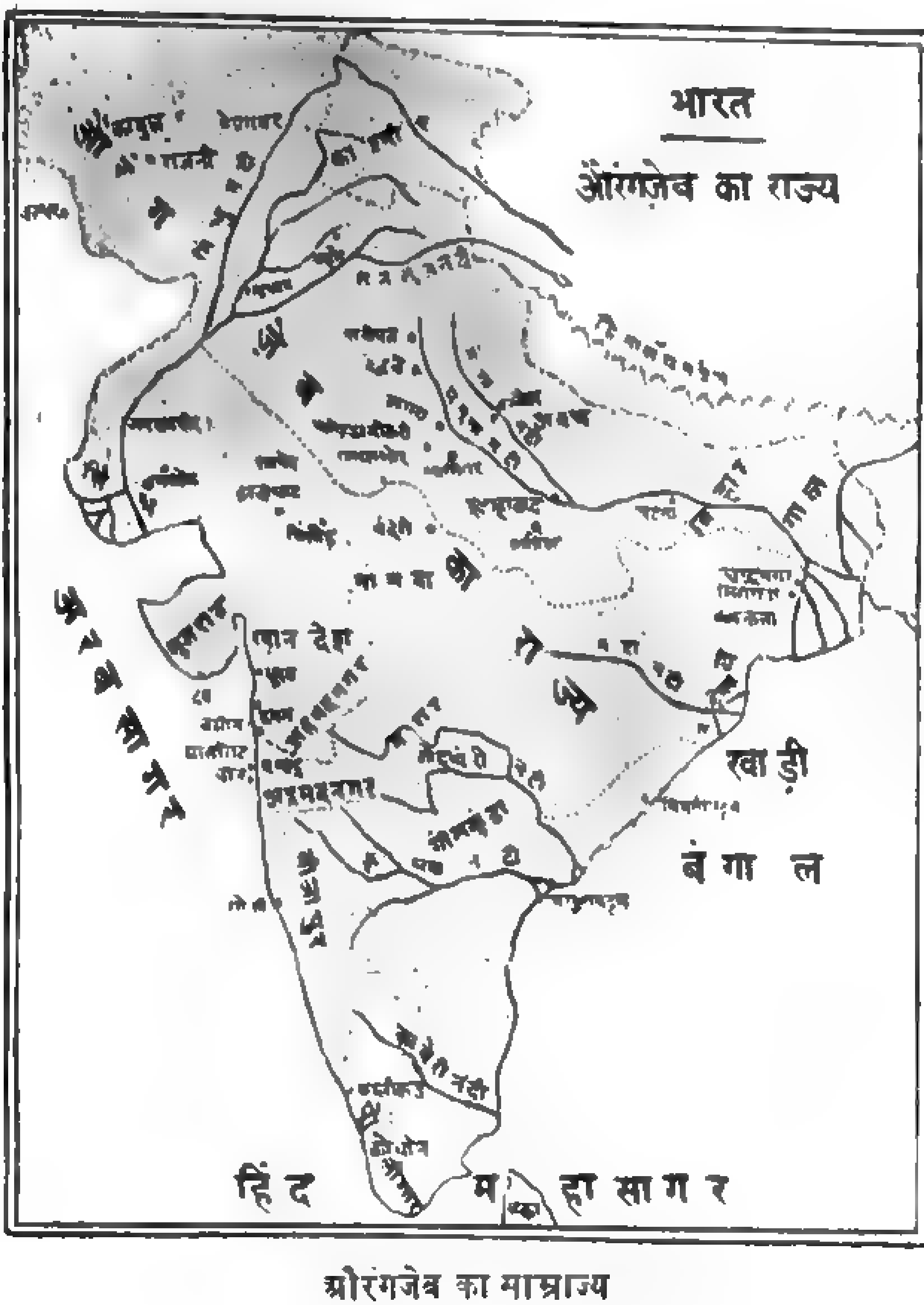
धर्म स्वीकार न करने पर औरंगजेब ने उन्हें जीवित ही दीवार में चुनवा दिया। इन बातों से सिक्खों के हृदय में औरंगजेब के प्रति और भी घृणा उत्पन्न हो गयी। सिक्खों से शत्रुता मोल लेना मुगल साम्राज्य के लिए बहुत अहितकर सिद्ध हुआ।

८. औरंगजेब की दक्षिण विजय—राजपूतों को दबाने के पश्चात् औरंगजेब दक्षिण विजय के लिए चला। इस समय, अर्थात् १६८१ ई० में, दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा नामक दो शक्तिशाली राज्य थे। औरंगजेब स्वयं सुन्नी था और इन दोनों राज्यों के शासक शिया थे। अतः वह अपने राज्य को बढ़ाने के लिए इन राज्यों का अन्त करना चाहता था। १६८० ई० में शिवाजी की मृत्यु हो चुकी थी। १६८१ ई० में औरंगजेब ने शिवाजी के पुत्र सम्भा जी को पराजित कर बड़ी निर्दयता से मरवा डाला और उसके पुत्र शाहू जी को पकड़ कर दिल्ली भेज दिया। मरहठों की शक्ति दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। १६८२ ई० में औरंगजेब ने दौलताबाद में अपना सैनिक अड्डा बनाया। १६८६ ई० में उसने बीजापुर को अपने अधिकार में कर लिया १६८७ में गोलकुण्डा ने भी मुगलों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों के नष्ट हो जाने से मरहठों की शक्ति बढ़ गयी। १६९१ ई० तक औरंगजेब की सेना ने तंजौर और त्रिचनापल्ली तक विजय प्राप्त कर ली। पर फिर भी दक्षिण में शान्ति स्थापित न हो सकी। मरहठों का उत्पात बहुत बढ़ गया। वे कभी मैदान में आकर युद्ध न करते थे। मुगलों का सामना होते ही वे छिप जाते थे और फिर पीछे से उन पर आक्रमण करके उनका माल तथा सामान आदि छीन लेते थे। मुगल सेना मरहठों के किलों पर कब्जा कर लेती थी पर ज्यों ही मुगल सेना अन्य किलों को जीतने के लिए आगे बढ़ती थी, मरहठे अपने किलों पर पुनः कब्जा कर लेते थे। यही हाल २५ वर्ष तक चलता रहा। सारे दक्षिण भारत में अशान्ति, लूट-मार और कुव्यवस्था चलती रही। मुगल साम्राज्य का खजाना खाली होने लगा। उत्तर भारत में भी अशान्ति के लक्षण

दिखाई पड़ने लगे, क्योंकि सम्राट बहुत दिनों से दक्षिण में पड़ा हुआ था। दिल्ली में सतनामियों ने विद्रोह कर दिया और अन्य प्रान्तों के हिन्दू भी सम्राट की नीति से बहुत त्रस्त थे। अब सम्राट को अपनी त्रुटियों का आभास होने लगा कि हिन्दू-विरोधी नीति ने उसके साम्राज्य को सर्वथा नष्ट कर दिया। सारा महाराष्ट्र प्रदेश मुगल साम्राज्य की ईंट से ईंट बजाने के लिए उतावला था। इस प्रकार दक्षिण भारत में २५ वर्ष तक कठिनाइयों का सामना करते रहने के बाद १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। दौलताबाद में उसकी कब्र बनवाई गई।

१. **औरंगजेब का चरित्र**—औरंगजेब एक वीर सम्राट था। वह सादा जीवन व्यतीत करता था। विलास उसे प्रिय नहीं था। दया उसमें तनिक भी नहीं थी। कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण वह हिन्दुओं और शिया मुसलमानों का शत्रु था। औरंगजेब में एक कमी यह भी थी कि वह किसी का भी विश्वास नहीं करता था। अपना अधिकांश समय वह नमाज एवं पूजा आदि में व्यतीत करता था। शाही खजाने से अपने खर्च के लिए वह कुछ भी नहीं लेता था। कुरान की नकल करके और टोपियां सींकर वह अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए धन कमाता था। धर्म की कट्टरता के कारण ही उसका कहना था कि इस्लाम की शिक्षाओं के अनुसार ही राज्य का शासन होना चाहिए। अपनी इसी नीति के कारण हिन्दुओं को उसने अपना शत्रु बना लिया था। धर्म को राजनीति के साथ मिलाकर औरंगजेब ने एक बहुत बड़ी भूल की।

औरंगजेब इतने सन्देहपूर्ण स्वभाव का था कि वह अपने पुत्रों का भी विश्वास नहीं करता था। इसी कारण उसकी मृत्यु के पश्चात् ऐसा कोई उत्तराधिकारी नहीं था, जो शासन कार्य में अनुभवी होता और साम्राज्य को संभालता। वह एक विद्वान, अच्छा लेखक, गूढ़ राजनीतिज्ञ तथा योग्य शासक था। किसी की चिन्ता न करते हुए उसने ४९ वर्ष



ओरंगजेब का साम्राज्य

तक निरकुंश शासन किया। १६७० ई० में औरंगजेब ने एक आदेश निकाला था कि उसके शासन-काल का इतिहास कोई न लिखे। फिर भी कुछ व्यक्ति लुके-छिपे सारी घटनायें लिखते रहे। मुगलकाल में दो महान् शासक हुये एक अकबर और दूसरा औरंगजेब—एक ने साम्राज्य को बढ़ाया और उसकी नींव मजबूत की और दूसरे ने साम्राज्य को पतनोन्मुख कर दिया।

१०. **औरंगजेब की भूलें**—औरंगजेब ने ऐसी अनेक भूलें कीं, जो मुगल साम्राज्य के नष्ट होने के लिए उत्तरदायी थीं। हिन्दुओं पर जजिया लगाना उसकी सबसे बड़ी राजनैतिक भूल थी। इसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति बहुत अधिक कटुता पैदा हो गयी। मारवाड़ और मेवाड़ राज्यों पर आक्रमण करने से उसे दो बड़ी हानियां हुई। एक तो राजपूत जाति उसकी कट्टर शत्रु हो गई और दूसरे उसकी सेना में वीर राजपूत योद्धाओं की भरती बन्द हो जाने से उसकी सैन्य शक्ति भी कमजोर हो गयी। सिक्खों के गुरु को मरवा कर औरंगजेब ने एक और बड़ी भारी गलती की क्योंकि इस कारण उसके विरुद्ध सिक्खों का एक पूरा सैनिक संगठन बन गया। अफगानों के प्रति उसकी जो नीति थी, वह भी कोई बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं थी क्योंकि अफगानों को दबाने में उसके खजाने का बहुत सारा धन नष्ट हुआ। मरहठों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर भी उसने उनके साथ मित्रता करने की अपेक्षा शत्रुता कर ली, जो कि मुगल साम्राज्य के लिए बड़ी घातक बात सिद्ध हुई। बीजापुर और गोल-कुण्डा के राज्यों को उसने अपने साम्राज्य में मिला लिया इससे मरहठों को लूट-मार की खुली छूट मिल गई। औरंगजेब की दक्षिण विजय एक प्रकार से उसकी मूर्खता की योजना थी। दक्षिण विजय में मुगल साम्राज्य की मर्यादा को बहुत धक्का लगा और यही नहीं, बल्कि इसी में औरंगजेब की जान भी गयी। एक लम्बे काल तक दिल्ली से

अनुपस्थित रहने के कारण उत्तर भारत में अराजकता फैल गयी। करों के भार से दबी हुई जनता विद्रोह के लिए उतावली हो रही थी।

११. उत्तराधिकार के लिए गृह-युद्ध—औरंगजेब के पुत्रों का जैसा चरित्र और औरंगजेब ने उनके साथ जैसा व्यवहार किया था, उसे देखते हुये यह अवश्यम्भावी था कि औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए गृह-युद्ध हो। औरंगजेब का सबसे बड़ा लड़का मुअज्जम, जो बाद में शाहआलम और बहादुरशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ, उस समय काबुल और पेशावर का गवर्नर था। दूसरा पुत्र आजमशाह था, जो दक्षिण में था। तीसरे पुत्र का नाम कामबख्श था और औरंगजेब की उस पर बहुत कृपादृष्टि थी। औरंगजेब ने कोई वसीयत नहीं की थी। अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् तीनों पुत्र गद्दी पर कब्जा करने की कोशिश में लग गये।

१२. बहादुरशाह—मुअज्जम ने काबुल में अपना राज्याभिषेक करा लिया। राजकुमार आजम ने भी दक्षिण में बादशाह की उपाधि ले ली। दिल्ली के सिंहासन पर आधिपत्य जमाने के लिए मुअज्जम और आजम दोनों की सेनायें चलीं। आगरे के पास उनमें मुठभेड़ हो गयी और युद्ध में आजम मारा गया। विजयी मुअज्जम बहादुरशाह प्रथम अथवा शाह आलम के नाम से गद्दी पर बैठ गया। कामबख्श ने भी दक्षिण में विद्रोह कर दिया। बहादुर शाह अपनी सेना लेकर दक्षिण गया और हैदराबाद के पास उसने कामबख्श को मार दिया। इस प्रकार १७०८ ई० में बहादुरशाह की सत्ता का सामना करने वाला कोई नहीं बचा। बादुरशाह ने मरहठों से झगड़ा करना ठीक नहीं समझा। अतः उसने सम्भाजी के पुत्र शाहूजी को जिसे औरंगजेब ने कैद कर रखा था, छोड़ दिया। इतना ही नहीं दक्षिण में मुगल साम्राज्य के प्रतिनिधि ने एक सन्धि करके मरहठों को दक्षिण के छः सूबों से सरदेश मुखी और चौथ वसूल करने का अधिकार भी दे दिया। इस प्रकार

दक्षिण में बहादुरशाह के शासन काल में मुगलों को कोई कठिनाई नहीं हुई।

राजपूतों के साथ भी बहादुरशाह ने बहुत अच्छे सम्बन्ध रखे। जयपुर, उदयपुर और जोधपुर के राजपूत राजाओं को उसने पर्याप्त रूप से स्वतन्त्र कर दिया और उनका सम्मान किया। इसी बीच गुरु गोविन्द सिंह के प्रतिनिधि बन्दा ने सिक्खों को संगठित करके उपद्रव शुरू कर दिया। सच पूछा जाय तो सरहिन्द से लेकर जमुना तक सिक्खों ने मुसलमानों को सताना प्रारम्भ कर दिया था। बहादुरशाह सिक्खों को दबाने के लिए स्वयं गया। सिक्ख पराजित होकर भाग गये। बन्दा बाद में आस-पास के क्षेत्रों में लोगों को सताता रहा। १७१२ ई० में बहादुरशाह की मृत्यु हो गयी। वह एक दयालु और उदार चरित्र का व्यक्ति था पर शासन की विशेष योग्यता उसमें न थी। "उसके शासन काल में साम्राज्य का गौरव काफी सीमा तक सुरक्षित रहा।"*

१३. जहाँदार शाह—बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए झगड़ा प्रारम्भ हो गया। उसके सबसे बड़े पुत्र जहांदारशाह ने जुलफिकार खां की सहायता से अपने मुख्य विरोधी भाई अजीमुशाह को परास्त करके गद्दी पर अधिकार कर लिया। पर गद्दी के अन्य दावेदारों ने उसे चैन से नहीं बैठने दिया। जहाँदारशाह एक बहुत अयोग्य शासक था। गद्दी पर बैठते ही उसने विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। शासन का कार्य देखना उसने बिल्कुल बन्द कर दिया। उसके भाई अजीमुशाह के पुत्र फर्रुखसियर ने, जो कि बंगाल का गवर्नर था, बिहार के गवर्नर सैयद हुसैन अली, इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्ला और चिन-किलिच-खां—जो बाद में निजामुल-मुल्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ,—की सहायता से जहांदार शाह को हराकर मार डाला और गद्दी पर अधिकार कर लिया।

* *The Irvine—the Later Maghas.*

१४. फर्रुखसियर—१७१३ ई० में फर्रुखसियर गद्दी पर बैठा। अब्दुल्ला उसका प्रधान मंत्री बना और हुसेन अली प्रधान सेनापति। पर सच पूछा जाये तो शासन की सारी शक्ति इन दोनों सैयद भाइयों ने अपने हाथों में ले रखी थी। फर्रुखसियर सैयद भाइयों के हाथ का खिलौना बन कर रहना पसन्द नहीं करता था। पर वह कुछ भी नहीं कर सका। फर्रुखसियर के समय में ही डा० हैमिल्टन आया था। उसने फर्रुखसियर का इलाज भी किया था। इससे खुश होकर फर्रुखसियर ने अंग्रेजों को कलकत्ते के पास २४ परगने खरीदने की अनुमति दे दी थी और यह भी फर्मान दे दिया था कि अंग्रेजों के माल पर किसी तरह का भी कर न लगाया जाये।

फर्रुखसियर के राज्य काल में सिक्खों के नेता बन्दा ने फिर विद्रोह किया। बादशाह ने सिक्खों को दबाने के लिए एक सेना भेज दी। सिक्खों की हार हुई और बन्दा तथा उसके ८०० साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। १७१६ ई० में बन्दा को बहुत निर्दयतापूर्वक मार डाला गया। फर्रुखसियर सैयद भाइयों के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था। पर वह मुक्त न हो सका और मुक्त होने के प्रयत्न में ही १७१९ ई० में मार डाला गया। फर्रुखसियर के पश्चात् सैयद भाइयों ने उसके दो भतीजों को एक-एक करके गद्दी पर बैठाया। पर दोनों कुछ ही सप्ताह तक शासन कर पाये। उसके पश्चात् सैयद भाइयों ने जहांदार शाह के भाई मोहम्मद शाह को गद्दी पर बैठाया।

१५. मोहम्मद शाह—१७१९ ई० में मोहम्मद शाह गद्दी पर बैठा। इसके शासन काल में सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया। १७२० ई० में सैयद भाइयों को मार डाला गया। प्रान्तीय गवर्नरों ने भी अपने को स्वतन्त्र बना लिया। मुर्शिद कुली खाँ बंगाल, बिहार और उड़ीसा का स्वतन्त्र शासक बन बैठा। सफदर अली ने अवध में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया।

दिल्ली और आगरा प्रदेश में भी कुछ सरदारों ने अपने छोटे-छोटे राज्य बना लिये। चिन-किलिच-खां ने दक्षिण में जाकर हैदराबाद नामक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। यही-दक्षिण का निजाम राज्य बना। इसी समय रुहेलों ने भी रुहेलखण्ड पर अपना स्वतन्त्र अधिकार जमा लिया।

१६. नादिरशाह का आक्रमण—नादिरशाह ने अपनी साधारण स्थिति से उन्नति करके फारस के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया था। धीरे-धीरे उसने काबुल और गजनी पर भी अधिकार कर लिया, क्योंकि काबुल और गजनी में अराजकता फैली हुई थी। १७३९ ई० में उसने भारत पर आक्रमण कर दिया। पानीपत के पास करनाल नामक स्थान पर नादिरशाह की सेना और मुगल सेना का सामना हुआ। मुगल सेना पराजित हो गयी। मोहम्मदशाह ने नादिरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। नादिरशाह दिल्ली आया। दिल्ली के कुछ लोगों ने नादिरशाह के सैनिकों पर आक्रमण कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर नादिरशाह ने दिल्ली को लूटने की आज्ञा दे दी। नादिरशाह के सिपाहियों ने दिल्ली शहर को जी भर कर लूटा। जब मोहम्मदशाह ने नादिरशाह से प्रार्थना की, तब यह लूटमार बन्द हुई। नादिरशाह लगभग दो महीने तक दिल्ली में रहा। दिल्ली से लौटते समय वह बहुत से हीरे जवाहरात, दिल्ली का तख्ते-ताऊस तथा बहुत-सी सम्पत्ति ले गया। जाते समय वह मोहम्मदशाह को गद्दी पर बैठा गया। १७४८ ई० में मोहम्मदशाह की मृत्यु हो गयी और उसका बेटा अहमदशाह गद्दी पर बैठा।

१७. मरहठों का उत्कर्ष—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब शाहूजी दिल्ली से छोड़ दिया गया, तो वह मरहठा साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। उसने सतारा को अपनी राजधानी बनाया। बालाजी विश्वनाथ शाहूजी का सबसे बड़ा सहायक था। १७१३ ई० में शाहूजी ने बालाजी विश्वनाथ को पेशवा नियुक्त कर दिया। १७२० ई० में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र बाजीराव प्रथम पेशवा

बना। उधर दक्षिण भारत में निजामुल-मुल्क ने दक्षिण में अपना स्वतन्त्र राज्य बना लिया।

१८. बाजीराव पेशवा—बाजीराव एक वीर सैनिक था। वह मरहठा राज्य को बढ़ाना चाहता था। उसका कहना था कि मुगलों के राज्य में छापा मार कर धन लूट कर अपना खर्च पूरा करो। उसके कहने से १७२४ ई० में शाहूजी ने मालवा पर आक्रमण कर दिया। वहां के मुगल गवर्नर पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् शाहूजी ने उदाजी पवार को वहाँ नियुक्त कर दिया। उसके पश्चात् निजाम को दबाने की योजना बनाई गयी। निजाम मरहठों को नष्ट करने की ताक में था। बाजीराव मरहठों की सेना लेकर निजाम पर चढ़ गया। निजाम को विवश होकर मरहठों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा और चौथ तथा सरदेशमुखी दोनों कर भी देने पड़े। अगले साल पेशवा ने गुजरात के गवर्नर को हराकर वहाँ से चौथ वसूल करने का अधिकार ले लिया।

बाजीराव ने इसके पश्चात् अपने कदम दिल्ली की ओर बढ़ाये। मोहम्मदशाह ने अपनी सहायता के लिए अवध के नवाब सादतअली को बुलाया। दोनों अजमेर रोड़ की तरफ बाजीराव के आने की राह देख रहे थे। उधर बाजीराव पीछे से दिल्ली पहुँच गया। दिल्ली को लूटने के पश्चात् बाजीराव दक्षिण की ओर चला गया। इसी बीच दिल्ली के सम्राट मोहम्मदशाह ने निजाम को बुलाया। निजाम एक फौज लेकर दिल्ली आ ही रहा था, कि मार्ग में बाजीराव ने उसे घेर लिया और निजाम से एक शर्तनामे पर हस्ताक्षर करवा लिये, जिसके द्वारा मरहठे चम्बल और नर्मदा के बीच के भाग के स्वामी बन गये। इस प्रकार सारा दक्षिण मरहठों की छत्रछाया में आ गया। रघुजी भोंसले ने मैसूर के राजा को हराकर उससे अधीनता स्वीकार करवा ली। इसी बीच में १७४० ई० में बाजीराव की मृत्यु हो गई।

१८. बालाजी बाजीराव—बाजीराव की मृत्यु के बाद बालाजी बाजीराव पेशवा बना। बरार का शासक रघुजी भोंसले बालाजी बाजीराव

के विरुद्ध था। उसने बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ के विरुद्ध आक्रमण कर दिया। कटक और उड़ीसा पर आक्रमण करने के पश्चात् वह मुर्शिदाबाद तक पहुँच गया। अलीवर्दी खाँ ने उड़ीसा का प्रदेश चौथ के रूप में रघुजी भोंसले को दे दिया। यह घटना लगभग १७४७ ई० की है। १७४८ ई० में शाहूजी की मृत्यु हो गई। शाहूजी की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी सम्बन्धी कुछ झगड़े हुये। परिणाम स्वरूप पेशवा की शक्ति और भी बढ़ गई। शाहूजी के कोई पुत्र न था। अतः पेशवा ही शासक होने लगे। उस समय मरहठों के जागीरदारों या शिलेदारों के ५ मुख्य वंश थे—गायकवाड़, सिन्धिया, भोंसला, होलकर और पेशवा। सभी वंशों ने अपने अलग-अलग राज्य स्थापित कर लिए। गायकवाड़ ने बड़ोदा में, सिन्धिया ने ग्वालियर में, भोंसला ने नागपुर में, होल्कर ने इन्दौर में और पेशवा ने पूना में अपने राज्य स्थापित किये।

२०. **अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण**—नादिरशाह के लौटने के एक वर्ष पश्चात् अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया। पानीपत के निकट सरहिन्द के मैदान में मुगलों से पराजित होकर उसे लौट जाना पड़ा। १७४८ ई० में उसने दिल्ली पर आक्रमण करके वहाँ खूब लूट मार मचाई। कुछ समय पश्चात् उसकी सेना में बीमारी फैल गई, अतः उसे वापस लौटना पड़ा। इस समय मरहठों की शक्ति बहुत प्रबल हो गई थी। देश में कोई भी शक्ति ऐसी नहीं थी, जो उसका सामना कर सकती। इसी बीच दिल्ली के सम्राट अहमदशाह की हत्या हो गयी और उसके स्थान पर आलमगीर गद्दी पर बैठा। आलमगीर रुहेला सरदार नजीबुद्दौला के प्रभाव में था। दिल्ली पर १७५७ ई० में रघुनाथराव ने, जो कि बालाजी बाजीराव का भाई था, अधिकार कर लिया। दिल्ली के पश्चात् रघुनाथराव लाहौर की ओर गया और उसने अहमदशाह अब्दाली के बेटे तिमूर को, जो उस समय पंजाब का स्वामी बन बैठा था, पंजाब से मार भगाया। इस प्रकार सिन्धु नदी की घाटी तक मरहठों का आधिपत्य हो गया।

२१. पानीपत की तीसरी लड़ाई— १७५९ ई० में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर फिर आक्रमण किया। इस आक्रमण का एक कारण यह था कि उसके पुत्र तिमूर को पंजाब से भगा दिया था। दूसरे, अवध के नवाब तथा रुहेलों ने स्वयं अब्दाली को भारत आक्रमण का निमन्त्रण दिया था। इसी बीच शहाबुद्दीन ने सम्राट आलमगीर की हत्या कर दी। दिल्ली की रक्षा के लिए शहाबुद्दीन ने मरहठों को बुलाया। अतः मरहठों और अब्दाली के बीच एक भयानक युद्ध की आशंका थी। अब्दाली पंजाब पर विजय करता हुआ जमुना के किनारे तक आ पहुँचा। मरहठों ने पेशवा के पुत्र विश्वासराव को दिल्ली का सम्राट बना दिया। सदाशिवराव भाऊ १०,००० सैनिक लेकर पानीपत के मैदान में आ गया। खाद्य सामग्री समाप्त हो जाने तथा दक्षिण भारत से नई सेना समय पर न आ सकने के कारण मरहठों की पराजय हुई। मरहठों के बड़े-बड़े सेनापति इसी युद्ध में मारे गये। विश्वासराव और सदाशिवराव दोनों इस युद्ध में मारे गये।

२२. बालाजी बाजीराव की मृत्यु—मरहठों की हार तथा विश्वासराव और सदाशिवराव की मृत्यु का समाचार सुनकर मरहठा पेशवा बालाजी बाजीराव हताश हो गया और इसी दुख में उसकी मृत्यु हो गई। इस युद्ध में मरहठों का सारा वैभव नष्ट हो गया। अहमदशाह के लौट जाने के पश्चात् भारत की दशा बड़ी दयनीय हो गयी। पेशवा की मृत्यु पर मरहठों का संगठन भी बिल्कुल निर्बल हो गया। ऐसी स्थिति में जब कि मरहठा शक्ति का ह्रास हो रहा था और मुगल साम्राज्य अपनी अन्तिम घड़ियां गिन रहा था, अंग्रेजों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अच्छा अवसर मिला। आलमगीर की मृत्यु और पानीपत की तीसरी लड़ाई के बाद टूटे-फूटे दिल्ली साम्राज्य की गद्दी पर १७६० ई० में शाहआलम बैठा। १८०६ ई० तक वह सम्राट रहा। उधर बालाजी बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् १७६१ ई० में माधवराव पेशवा बना। पर शासन का सारा काम उसके चाचा रघुनाथराव ने अपने हाथ में रखा।

प्रश्न

1. Give an account of the wars of succession after Shahjehan.

शाहजहां के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए जो झगड़े हुए, उनका वर्णन कीजिए।

2. Explain the relations subsisting between Aurangzeb and Shivaji.

ग्रौरंगजेब ग्रौर शिवाजी के बीच सम्बन्ध कैसे थे, वर्णन कीजिए।

3. What role did the Rajputs play in the history of the Mughal Empire during the reign of Aurangzeb ?

ग्रौरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य के इतिहास में राजपूतों का क्या महत्व है ?

4. Give a Short account of south campaigns of Aurangzeb.

ग्रौरंगजेब के दक्षिण ग्राक्रमणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

5. Briefly describing the character of Aurangzeb bring out the significance of his policy towards Hindus and Sikhs.

ग्रौरंगजेब के चरित्र का संक्षिप्त में वर्णन करते हुए यह बताइए कि हिन्दुग्रों ग्रौर सिक्खों के प्रति उसकी क्या नीति थी ?

6. What were the blunders committed by Aurangzeb and explain how far he was responsible for the fall of the Mughal Empire ?

ग्रौरंगजेब की बड़ी-बड़ी गलतियों का वर्णन करते हुए यह बताइए कि मुगल साम्राज्य के पतन के लिए वह कहां तक उत्तरदायी था ?

7. Explain the circumstances under which Bahadur Shah ascended the throne of Delhi. Give an account of his reign ?

बहादुरशाह किन परिस्थितियों में दिल्ली की गद्दी पर बैठा ? उसके शासन का वर्णन कीजिए।

8. Give an account of the invasion of Nadir shah.

नादिरशाह के आक्रमण का वर्णन कीजिए।

9. Give an account of the conflict of the Marathas and Mughals after the death of Aurangzeb.

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मरहठों और मुगलों के बीच हुए संघर्ष का वर्णन कीजिए।

10. Describe the Maratha conquests of Peshwa Balaji Baji Rao.

पेशवा बालाजी बाजीराव की विजयों का वर्णन कीजिए।

11. Give an account of the third battle of Panipat and account for the defeat of the Maratha in this battle.

पानीपत की तीसरी लड़ाई का वर्णन कीजिए और इस लड़ाई में मराठों की हार के कारणों का उल्लेख कीजिए।

12. What was the result of third battle of Panipat . How did it affect the Maratha empire ?

पानीपत की तीसरी लड़ाई का क्या परिणाम हुआ और इस युद्ध ने मराठा साम्राज्य पर क्या प्रभाव डाला ?

—: • :—

अध्याय २५

मुगल साम्राज्य का ह्रास और पतन

१. **मुगल साम्राज्य का ह्रास**—मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब की धर्मान्धता और विदेशियों के आक्रमण ही उत्तरदायी नहीं थे, वरन् और भी कारण थे और पतन की यह क्रिया शाहजहां के शासन काल में ही आरम्भ हो चुकी थी। औरंगजेब के काल में साम्राज्य का बड़ा विस्तार हो चुका था और इतने विशाल साम्राज्य में सर्वत्र शान्ति बनाये रखना सरल कार्य न था। विद्रोही जहां मौका पाते थे, सिर उठाते थे। अतः मुगल शासकों का सारा समय साम्राज्य में शान्ति बनाये रखने में ही चला जाता था। वे ऐसी कोई संस्थायें आदि स्थापित नहीं कर सके, जो उनके राज्य की प्रगति में सहायक होतीं। मुगल साम्राज्य के पतन के कारण इस प्रकार हैं। (१) उत्तराधिकार के कोई नियम न होना, (२) मराठे, सिक्ख, राजपूत, जाट आदि का स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न करना, (३) औरंगजेब का अदूरदर्शी शासन (४) नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण और (५) कुशल सैनिकों का अभाव। इन कारणों में से प्रत्येक को नीचे विशद रूप से समझाया गया है।

२. **उत्तराधिकार की अनिश्चितता**—मुगल शासकों की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए सदा झगड़े हुआ करते थे। औरंगजेब की मृत्यु पर उसके पुत्र कामबख्श, शाहआलम (बहादुरशाह) और आजमशाह के मध्य गद्दी पर बैठने के लिए संघर्ष हुआ, जिसमें आजम मारा गया। अब बहादुरशाह ने दक्षिण की ओर रुख किया, जहां कामबख्श भी मारा गया और बहादुरशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। इस समय तक सिक्खों की सैनिक शक्ति का विकास हो चुका था और उन्होंने बहा-

दुरशाह के लिए काफी खतरा पैदा कर दिया था।

बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का जहांदारशाह १७१२ ई० में गद्दी पर बैठा। उसका भतीजा फर्रुखसियर था, जिसने बंगाल में विद्रोह कर दिया और दिल्ली पर चढ़ आया। जहांदार और जुलफिकार खां दोनों मारे गए और फर्रुखसियर ने दिल्ली के तख्त पर कब्जा कर लिया। फर्रुखसियर अयोग्य, दुष्ट और दगाबाज था। दिल्ली की गद्दी दिलाने में बिहार के सूबेदार सैयद हुसैन अली और इलाहाबाद के सूबेदार सैयद अब्दुल्ला ने उसकी पर्याप्त सहायता की थी। ये दोनों सगे भाई थे। फर्रुखसियर ने अब्दुल्ला को वजीर और हुसैन को अपना सेनापति नियुक्त कर दिया। फर्रुखसियर ने १७१३ ई० से लेकर १७१९ ई० तक राज्य किया।

फर्रुखसियर के पश्चात् दो शासक अल्प-काल के लिए गद्दी पर बैठे। उनके पदच्युत होने पर सैयद बन्धुओं ने मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया। मुहम्मदशाह बहादुरशाह का नाती था और यद्यपि वह १८ वर्ष का था, उसने अपनी चातुरी से सैयद बन्धुओं को अपने मार्ग से हटा दिया। मुहम्मदशाह ने राज्य की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वह सदा ऐश-आराम में ही व्यस्त रहा। उनका वजीर निजाम-उल-मुल्क था, जिसने शासन को सुधारने का पर्याप्त प्रयत्न किया। परन्तु मुहम्मद और उसके निकम्मे साथियों के कारण उसे कोई सफलता नहीं मिली। निजाम-उल-मुल्क का असली नाम कमरुद्दीन खां था। औरंगजेब ने उसे चिन-किलिज खां की उपाधि दी थी। उसने जुलफिकार खां से लड़ाई के अवसर पर सैयद बन्धुओं की सहायता की और इसके फलस्वरूप उसे आसफजाह और निजाम-उल-मुल्क की उपाधि मिली थी। मुहम्मदशाह के दरबारियों ने मुहम्मद और वजीर के बीच मनमुटाव उत्पन्न कर दिया और वजीर निरुपाय होकर दक्षिण चला गया। १७२५ ई० में उसने हैदराबाद प्रान्त पर अधिकार कर लिया और वह एक स्वतन्त्र शासक बन गया।

मुहम्मदशाह की अयोग्यता से लाभ उठाकर फारस के एक सैनिक सादत खां ने अवध में अपना राज्य स्थापित कर लिया। उधर बंगाल में अलीवर्दी खां भी स्वतन्त्र हो गया। रोहिल्ला के अफगानों ने गंगा के उत्तर में कटिहार में अपना अड्डा जमाया। उनका नेता दाऊद खान था। उसका लड़का अली मुहम्मद खान महत्वाकांक्षी था और उसने अपने लिए एक राज्य स्थापित कर लिया। जाटों के नेता चूड़ामन ने भी सर उठाया, किन्तु, राजा जयसिंह सिवाई ने उसे दबा दिया। मराठे दक्षिण में अत्यन्त शक्तिशाली हो गये थे।

इस प्रकार १७३८-३६ ई० में मुगल साम्राज्य की दशा बड़ी शोचनीय हो गई थी। सरकारी खजाना खाली हो चुका था। शासक विलास में ही मग्न रहते थे। दरबारियों ने उन्हें अपना खिलौना बना लिया था। दरबार में दलबन्दी और सन्देह का वातावरण उत्पन्न हो गया था। राज्य में सुरक्षा नाम मात्र को भी न थी और आपसी मतभेदों के कारण चारों ओर अराजकता का बोलबाला था। साम्राज्य की सैनिक शक्ति का ह्रास हो चुका था और वह किसी विदेशी आक्रमण का सामना करने योग्य नहीं रह गया था। १७३६ ई० में नादिरशाह का भारत पर जो आक्रमण हुआ, वह लड़खड़ाते हुए मुगल साम्राज्य के लिए एक घातक प्रहार सिद्ध हुआ। इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु के बीस वर्षों में ही उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और सत्ता मरहठों के हाथों में चली गई।

३. सिक्ख और मरहठों की बढ़ती—सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक थे। नानक के पश्चात् सिक्खों के नौ गुरु और हुए। उनके नेतृत्व में सिक्ख धर्म दो शताब्दी तक उन्नति करता रहा। गुरु अर्जुनदेव को जहांगीर ने राजद्रोह के अपराध में मृत्यु दण्ड दिया था। अतः उनके पुत्र गुरु हरगोविंद सिंह ने अपने अनुयायियों को सैनिक शिक्षा देकर युद्ध करने योग्य बनाया। उनके काल में मुसलमान शासक हिन्दुओं को बहुत तंग करते थे। इन्हीं अत्याचारों के दमन की प्रेरणा ने सिक्खों

को एक सैनिक जाति में बदल दिया। कालान्तर में सिक्ख राजनीतिक क्षेत्र में भी उत्तर आये। औरंगजेब के समय तक सिक्खों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। औरंगजेब ने नवें गुरु तेगबहादुर को दिल्ली बुलवा कर उन्हें मरवा दिया। इस घटना से सिक्खों में अत्यन्त रोष फैल गया। सिक्खों के दसवें गुरु गोविंद सिंह ने सिक्खों में नया जोश उत्पन्न कर दिया और उन्होंने 'खालसा' पंथ भी बनाया। गोविन्द सिंह ने अमृतसर में फौजी ढंग का प्रजातन्त्र शासन चलाया। उन्होंने गोवध निषिद्ध कर हिन्दुओं को अपनी ओर मिला लिया। गुरु गोविंद सिंह के समय में सिक्खों की फौजों ने कई किले बनवाये थे। औरंगजेब ने इनका पीछा करना शुरू कर दिया और इनके दो छोटे लड़कों को दीवार में जिन्दा चुनवा कर मार डाला। १७०८ ई० में नादेड (दक्षिण) में गुरु गोविन्द सिंह भी मारे गए। इन अत्याचारों ने सिक्खों को मुगल साम्राज्य का कट्टर दुश्मन बना दिया। औरंगजेब के राज्य में व्याप्त अराजकता ने सिक्खों की बड़ी सहायता की। उन्होंने गोविन्द सिंह के एक प्रिय शिष्य बन्दा बैरागी के नेतृत्व में इन अत्याचारों का बदला लेना आरम्भ कर दिया। उन्होंने सरहिन्द को लूटा। कई मस्जिदें तोड़ दीं और मुसलमानों को हर संभव तरीके से तंग किया। बन्दा और उसके साथियों के निर्मम वध के पश्चात् कोई तीस वर्ष तक सिक्ख चुप बैठे रहे और इसी बीच नादिरशाह, तथा अब्दाली के आक्रमण हुए। इन आक्रमणों ने सिक्खों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्रदान किया। सिक्खों ने पंजाब में छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिए और मुगल साम्राज्य को पतन की खाई में गिराने में योग दिया।

४. मराठों का उत्कर्ष - मुगल साम्राज्य के पतन का कारण जैसा कि पहले कहा जा चुका है, साम्राज्य का अति विशाल होना था। इस कारण साम्राज्य पर नियंत्रण ठीक नहीं हो पाता था और आज यहां तो कल वहां विद्रोही तत्व हमेशा सिर उठाया करते थे। १६वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में संगठन और एकता की भावना उत्पन्न हो गई

और राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए अनुकूल वातावरण बन गया। संगठित मराठों का मार्गदर्शन शिवाजी ने किया और उन्होंने अपनी योग्यता से दक्षिण में मुसलमानों के कई राज्य छीन लिए। औरंगजेब इससे बहुत आतंकित था। उसने शिवाजी को दबाने की बहुतेरी कोशिश की किन्तु वह सफल न हो सका। मुसलमानों में आपसी कलह, उनका निकृष्ट शासन और उनके अत्याचारों ने मराठा राज्य को स्थायित्व प्रदान कर दिया। औरंगजेब के अन्तिम दिनों तक मरहठों की मुगलों पर अच्छी धाक जम गई थी। १७७३ ई० में पेशवा वंश के उदय के साथ मराठों की शक्ति बहुत बढ़ गई। १७१७ ई० में बालाजी पेशवा ने सैयद हुसेनअली को परास्त कर उससे 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' का अधिकार प्राप्त किया। उसके शासनकाल में मराठों ने गुजरात, मालवा और बुन्देलखंड पर आक्रमण किए थे। बालाजी की मृत्यु के बाद बाजीराव (प्रथम पेशवा बना। वह कुशल योद्धा और महत्वाकांक्षी था। पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य ने उसे अपना राज्य बढ़ाने में बड़ी सहायता प्रदान की। वह दिल्ली पर आ धमका। सम्राट ने हर्जाने के रूप में पचास लाख रुपये पेशवा को दिये। बाजीराव प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र १७४० ई० में गद्दी पर बैठा। वह भी कुशल योद्धा और महत्वाकांक्षी था। राघोजी भोंसले और भास्कर पंडित के सेनापतित्व में मराठों ने उड़ीसा को पदाक्रांत किया और बंगाल के गवर्नर अलीवर्दी खां को हराया। राघोजी के साथ संधि कर ली गई, जिसके अनुसार उसे प्रति वर्ष १२ लाख रुपये की 'चौथ' वसूल करने का अधिकार मिला। १७४८ ई० में निजाम की मृत्यु के पश्चात् 'मसनद' के उत्तराधिकार के लिए संघर्ष हुआ। मराठों ने इस गड़बड़ी से लाभ उठाकर निजाम को उदयगीर की लड़ाई में हरा दिया। अब मराठे दक्षिण में सर्वेसर्वा बन गये। १७६० ई० तक मराठों की शक्ति का चरम उत्कर्ष हो चुका था। उनका साम्राज्य चम्बल से लेकर गोदावरी और अरब सागर से बंगाल

की खाड़ी तक फैला हुआ था। उन्हें लगभग सारे भारत से 'चौथ' मिलती थी और रुहेलखंड के अफगानों, जाटों तथा राजपूतों ने उनकी सत्ता स्वीकार कर ली थी।

५. औरंगजेब का अदूरदर्शी शासन—मुगल साम्राज्य के पतन के लिए अकेले औरंगजेब को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि उसके अदूरदर्शी शासन ने मुगल साम्राज्य का पतन बहुत निकट ला दिया। औरंगजेब स्वभाव से अत्यन्त सन्देह करने वाला था और वह अपने पुत्रों का भी विश्वास नहीं करता था। वह कट्टर मुसलमान था और धर्म के सिद्धान्तों का पालन बड़ी कठोरता से करता था। उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य इस्लाम के वैभव को बनाये रखना था। लेकिन इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसने जो कार्य किये, उनसे वह अत्यन्त निरादर से देखा जाने लगा। धर्म के प्रति उसकी निष्ठा वास्तव में श्लाघ्य थी, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति उसमें कोई आदर भाव न था। वह किसी मुसलमान देश का सफल शासक सिद्ध होता। भारत में उसकी अधिकांश प्रजा हिन्दू थी, जिसकी उसने कोई परवाह न की। उसने हिन्दुओं को निरंकुशता से दबाया और उनसे जजिया कर वसूल किया। उसके अत्याचारों से त्रस्त होकर हिन्दू उसके विरुद्ध हो गये और कालान्तर में उसके साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती गई। राजनैतिक दृष्टि से औरंगजेब एक असफल शासक रहा। उसने सारी सत्ता अपने पास ही रखी और अफसरों को कभी स्वतन्त्रता से कार्य नहीं करने दिया। उसके दरबारियों में से अधिकांश विलास-प्रिय थे और युद्ध कला का उन्हें विशेष ज्ञान नहीं था। दक्षिण में उसके समय में ही मराठों ने अल्पकाल में ही कई राज्य जीत लिए थे। उनके दमन के लिए उसे कई बार दक्षिण आना पड़ा और २७ वर्ष तो वह वहीं रहा और उसे एक अति विशाल सेना रखनी पड़ी। इस सेना के खर्च के कारण औरंगजेब के खजाने में धन की कमी आ गई और बाद में उसे सैनिकों की छटनी भी करनी पड़ी। औरंगजेब ने सिक्खों के गुरु

तेग बहादुर को मरवा डाला था। इससे सिक्खों ने रुष्ट होकर अपना संगठन बनाकर मुगल साम्राज्य की समाप्ति में योग दिया था। १६८६ ई० में औरंगजेब ने सम्भाजी को परास्त करके उनसे मुसलमान बनने के लिए कहा। सम्भाजी द्वारा अपमान किये जाने पर, उसने सम्भाजी को अत्यन्त क्रूरता के साथ मरवा डाला। इतिहास में औरंगजेब का शासन बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है, किन्तु हिन्दू धर्म को नष्ट करने के निरर्थक प्रयास ने उसके इतने बड़े साम्राज्य को नष्ट कर दिया। उसके अन्तिम दिनों तक मुगल साम्राज्य निर्बल हो चुका था और उसकी मृत्यु के पश्चात् बीस वर्षों में ही वह मुगलों के हाथ से निकलकर मराठों के पास पहुँच गया।

६. नादिरशाह का आक्रमण—नादिरशाह एक तुर्की सैनिक था किन्तु योग्यता और युद्धकला के जोर पर उसने फारिस के तख्त पर अधिकार जमा लिया था। कंधार जीतने के बाद उसे भारत जीतने की अभिलाषा हुई। उस समय भारत में जो असुरक्षा और अराजकता विद्यमान थी, उसे देखकर नादिरशाह का हौसला बढ़ गया। उसने अफगानिस्तान पर बड़ी आसानी से कब्जा कर लिया और कंधार विजय से उसे काफी धन-सम्पत्ति मिली। मुगल शासकों ने सीमा प्रदेश की रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की थी। नादिरशाह बिना किसी कठिनाई के भारत में घुस आया। पंजाब में प्रवेश कर उसने पेशावर और लाहौर पर कब्जा कर लिया। मुगल साम्राज्य में केवल एक व्यक्ति ऐसा था, जो नादिरशाह का मुकाबला कर सकता था और वह था निजाम। किन्तु, मुहम्मदशाह का उस पर विश्वास न था। नादिरशाह दिल्ली की ओर बढ़ा। करनाल के समीप नादिरशाह और मुहम्मदशाह की सेनाओं में मुठभेड़ हुई, जिसमें मुगल सेना बुरी तरह हारी।

नादिरशाह ने बड़े उत्साह के साथ दिल्ली में प्रवेश किया और दीवाने-खास के निकट एक महल में उसका बड़ा सम्मान किया गया। कुछ समय तक शांति बनी रही और नादिरशाह के साथ मित्रों जैसा

व्यवहार किया जाता रहा। एक दिन नादिरशाह के सैनिक किसी दूकानदार से उलझ गये। इस घटना ने गम्भीर रूप धारण कर लिया और नादिरशाह के कुछ सैनिक मार डाले गये। साथ ही किसी ने नादिरशाह की मृत्यु की खबर फैला दी। नादिरशाह को इन बातों से बड़ा क्रोध आया और उसने अपने सैनिकों को कत्ले-आम का आदेश दे दिया। यह कत्ले-आम सुबह नौ बजे से लेकर दोपहर तक चलता रहा। दिल्ली की सड़कों पर लाशें ही लाशें नजर आने लगीं। नादिरशाह के सैनिकों ने बच्चों, बूढ़ों, औरतों को भी नहीं छोड़ा। रक्तपात के साथ उन्होंने दिल्ली को जी-भर कर लूटा। अन्त में मुहम्मदशाह ने दरबारियों के साथ जाकर नादिरशाह से कत्ले-आम बन्द करवाने के लिए प्रार्थना की। नादिरशाह ने उनकी प्रार्थना मान ली। अपने देश फारस को रवाना होने से पहले उसने मुहम्मदशाह को दिल्ली की गद्दी पर पुनः बैठा दिया। अनुमान है कि नादिरशाह को इस लूट-मार में लगभग ७० करोड़ रुपये की सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। इस लूट में वह विश्व विख्यात मयूर सिंहासन (तख्ते ताऊस) भी अपने साथ ले गया।

नादिरशाह के आक्रमण का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि असंख्य प्रजा व सैनिक मारे गये, तथा देश की अपार सम्पत्ति उसने लूटी। नादिरशाह का आक्रमण मुगल साम्राज्य के टिमटिमाते दीपक के लिये हवा का एक तेज झोंका था, जिसे वह सह न सका। उसके आक्रमण से दिल्ली का शासन और भी अराजक हो गया। प्रान्तों की जनता में मुगल सम्राट के प्रति कोई आदर नहीं रह गया। सिन्धु नदी का प्रदेश और अफगानिस्तान मुगलों के हाथ से निकल गया। इसके कारण उसकी सेना में लड़ाकू सैनिकों की भर्ती बन्द हो गई। ये प्रदेश सीमा पर होने से सामयिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। इनके चले जाने से विदेशियों के आक्रमण के लिये मार्ग प्रशस्त हो गया।

७. अहमदशाह का आक्रमण—एक वर्ष बाद अर्थात् १७४८ ई० में अहमदशाह ने पंजाब पर कब्जा कर लिया। इस विजय से उसे काफी

धन सम्पत्ति मिली। पंजाब के बाद वह दिल्ली की तरफ बढ़ा, किन्तु मुगलों ने उसे हराकर भगा दिया। १७४२ ई० से लेकर १७५४ तक दिल्ली में बहुत अराजक स्थिति रही। १७४८ ई० में मुहम्मदशाह के मरने पर अहमदशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। अहमदशाह अब्दाली भला ऐसा अवसर कब चूकने वाला था। १७५०—५१ ई० में उसने भारत पर पुन: आक्रमण कर दिया। इस बार वह सफल हुआ और मुगल सम्राट ने उसे पंजाब का प्रान्त दे दिया और इसके अतिरिक्त हर साल कर के रूप में ५० लाख रुपये देना भी स्वीकार किया।

पंजाब में अपने कर्मचारी नियुक्त कर अहमदशाह लौट गया। उसकी अनुपस्थिति में मराठों ने १७५८ ई० में लाहौर को उसके अफसरों से छीन लिया। तुरन्त अपनी सेना के साथ अहमदशाह दिल्ली की ओर बढ़ा। उसके आने का समाचार सुनते ही मरहठों ने एक बहुत बड़ी सेना लेकर पानीपत के मैदान में अड्डा जमाया। १७६१ ई० में अहमदशाह और मराठों की मुठभेड़ पानीपत के मैदान में हुई। पानीपत की तीसरी लड़ाई ने भारत के भाग्य का निर्णय कर दिया। मुगलों ने मराठों का साथ नहीं दिया वरन् वे शत्रु से जा मिले। इधर राजपूतों ने भी मराठों की सहायता न की और वे तटस्थ रहे। मुगलों को मराठों की बढ़ती हुई शक्ति से बहुत भय था और इसलिये उन्होंने मराठों से विश्वासघात किया। अहमदशाह ने उन्हें बुरी तरह हरा दिया। १७६१ ई० की पानीपत की इस तीसरी लड़ाई ने मराठा साम्राज्य को असंगठित कर दिया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई ने मुगल साम्राज्य पर अन्तिम प्रहार किया, जिसे वह सह न सका। मुगल साम्राज्य की अराजकता कम होने के स्थान पर बढ़ती ही गई। अब्दाली ने भारत से जाने से पहले आलमगीर के पुत्र शाहआलम को दिल्ली का शासक नियुक्त कर दिया था। १७८८ ई० में गुलाम कादिर नामक एक अफगान ने आलमशाह को अन्धा कर उसे गद्दी से हटा दिया। शाहआलम और उसका पुत्र अकबर द्वितीय दोनों अंग्रेजों से पेंशन पाते रहे। १८५७

ई० के स्वतन्त्रता संघर्ष में बहादुरशाह के लड़कों ने अंग्रेजों का विरोध किया, इससे अप्रसन्न होकर अंग्रेजों ने बहादुरशाह को देश निकाले का दंड देकर रंगून भेज दिया। १८६२ ई० में रंगून में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार पराक्रमी मुगल वंश का पूर्णरूप से अन्त हो गया।

८. कुशल सैनिकों का अभाव—मुगलों के पतन का एक कारण उनके सैनिक संगठन का अच्छा न होना था। औरंगजेब ने दक्षिण के विद्रोही मराठों के दमन के लिये एक विशाल सेना रखी थी। किन्तु, धीरे-धीरे खर्च पूरा न पड़ने के कारण उसने सैनिकों की छंटनी कर दी। इनमें से अनेक सैनिक शिवाजी के यहाँ भर्ती हो गये थे। मुहम्मदशाह के समय में सैनिक शक्ति का पर्याप्त ह्रास हो चुका था। सरकारी खजाना खाली पड़ा था और मुहम्मदशाह दरबारियों के हाथों का खिलौना बन गया था। इसी समय मराठों ने गुजरात, बंगाल और बुन्देलखण्ड पर हमले कर वहाँ से 'चौथ' उगाहना आरम्भ कर दिया। दूसरे बाजी० राव के समय में तो मराठों ने उत्तर में आक्रमण कर मुसलमानों से भी हर्जाना वसूल किया था। अच्छी सेना न होने के कारण मुगल शासक मराठों की बढ़ती हुई शक्ति का दमन न कर सके और न वे नादिरशाह के आक्रमण का विरोध ही कर पाये। नादिरशाह को पंजाब और अफगानिस्तान का प्रदेश मिल जाने के बाद मुगल सेना में लड़ाकू और साहसी सैनिकों की भर्ती बन्द हो गई, क्योंकि वे सैनिक इन्हीं प्रदेशों से मुगलों की नौकरी करने आते थे। इसी प्रकार अहमद-शाह का आक्रमण मुगलों की दशा को और भी शोचनीय बना गया। उस समय दिल्ली का शासक अहमदशाह था, जो अत्यन्त विलासप्रिय और व्यसनी था। उसने न तो राजकाज ठीक से सम्हाला और न सेना का संगठन ही किया। खजाने में धन न होने से सैनिकों को समय पर वेतन नहीं मिलता था। अतः वे अप्रसन्न थे और विदेशी आक्रमण का वही परिणाम हुआ जो अपेक्षित था—मुगलों की हार।

९. राष्ट्रीय भावना का लोप—अकबर महान् ने अपनी कुशल तथा दूरदर्शी नीति से हिन्दुओं को अपने पक्ष में कर लिया था। जजिया कर

उसने हटा दिया था और हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त करना भी शुरू कर दिया था। इन कार्यों से मुगल शासन के प्रति हिन्दुओं में जो वैमनस्य था, वह समाप्त हो गया। किन्तु अकबर के उत्तराधिकारियों में से किसी ने ऐसी दूरदर्शिता का परिचय नहीं दिया। औरंगजेब ने तो हिन्दुओं पर जजिया कर फिर से लगा दिया और धर्म के नाम पर हिन्दुओं को पीड़ित किया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं में मुगल साम्राज्य के प्रति जो अपनत्व की भावना थी वह भी जाती रही। कुछ काल के पश्चात् मुसलमान प्रजा की श्रद्धा भी इस शासन से उठ गई। मुगल शासकों ने शक्ति के बल पर शासन करने की नीति अपनाई थी और शक्ति घट जाने पर मुगल साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया और कालान्तर में उसका अस्तित्व ही मिट गया।

प्रश्न

1. What were the prominent causes of the downfall of the Mughal Empire ? Describe briefly.

मुगल साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

2. To what extent Aurangzeb's religious Policy was responsible for the decline of the Mughal Empire ?

मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब की धार्मिक नीति कहां तक उत्तरदायी ठहराई जा सकती है ?

3. "The Rise of Sikhs and Marathas dealt a fatal blow to the stumbling Mughal Empire. Discuss.

"सिक्खों और मराठों का उत्कर्ष लड़खड़ाते हुये मुगल साम्राज्य पर घातक प्रहार सिद्ध हुआ।" समझाइये।

4. "It is generally contended that Aurangzeb's

unwise policy hastened the downfall of the Mughal Empire". How far do you agree, give reasons in support of your views.

"सामान्य रूप से ऐसा कहा जाता है कि औरंगजेब की अदूरदर्शी नीति के कारण ही मुगल साम्राज्य का पतन इतनी जल्दी हो गया।" आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं, अपने मत के समर्थन में तर्क उपस्थित कीजिये।

5. Give a brief account of the invasions of Nadir Shah and Ahmad Shah Abdali and their effects on the Mughal Empire.

नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए और बतलाइये कि उनके आक्रमणों का मुगल साम्राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा ?

—:o:—

अध्याय २६

मुगलकालीन भारत

शासन प्रबन्ध

१. **केन्द्रीय शासन**—मुगलकालीन शासन व्यवस्था का भारत के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ अंशों में इसी शासन-प्रणाली का अनुकरण ब्रिटिश काल में भी किया गया और अब भी कुछ बातें पूर्णरूपेण अपने मूलरूप में मिलती हैं। मुगलकाल की शासन व्यवस्था का सुसंगठन अकबर के काल में हो पाया। आरम्भ के दो सम्राट् बाबर और हुमायूं का सारा समय साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने में व्यतीत हो गया। शासन सम्बन्धी सुधारों की ओर ध्यान देने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला। हुमायूं के निष्कासन काल में शेरशाह सूरी ने भूमि तथा लगान सम्बन्धी जो शासन सुधार किये, उन्हें ही आधार मानकर अकबर ने इतना यश कमाया।

२. **सरकार के विभाग**—सम्राट के अधीन एक मंत्रीमंडल होता था, जिसका काम शासन का संचालन करना था। प्रत्येक विभाग का मंत्री अपने विभाग का प्रमुख होता था और पूरी तरह से अपने विभाग के लिये उत्तरदायी होता था। प्रधान मंत्री को वकील कहा जाता था। अकबर के समय में वकील को सबसे अधिक अधिकार प्राप्त थे। आगे चलकर वकील के राजस्व तथा वित्तीय अधिकार 'दीवान' नामक पदाधिकारी को दे दिये गये थे। इस प्रकार वकील का पद केवल नाम-मात्र के लिये महत्वपूर्ण रह गया था। दीवान साम्राज्य का मुख्य कार्यपालक (Executive) पदाधिकारी होता था और राज्य के राजस्व तथा वित्तीय अधिकार उसी के हाथों में थे। इस प्रकार उसका पद वित्तमंत्री के समान था। प्रान्तों के गवर्नरों, फौजदारों,

दीवानों तथा तहसीलदारों आदि की नियुक्ति, तरक्की व तबादले आदि का उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त था। मीर-बख्शी सेना विभाग का प्रधान अधिकारी था। राज्य के बड़े-बड़े पदाधिकारियों तथा मनसबदारों की नियुक्ति वही करता था। सैनिकों का निरीक्षण, सैनिक नियमों का पालन तथा सैनिकों की नियुक्ति उसी के द्वारा होती थी। मीर-बख्शी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण होता था। उसकी सहायता के लिए दो और बख्शी होते थे। मीर-बख्शी और दीवान दोनों के ओहदे लगभग बराबर के होते थे। अतः दोनों एक दूसरे के कार्य पर निगरानी रखते थे। मीर-सामान राज्य के कारखानों और फैक्टरियों की देख-भाल करता था और सरकारी सामान का निरीक्षण करता था। साम्राज्य के हीरे, मोती, जवाहरात, बन्दूकें, तोपें, घोड़े और हाथी उसी की देख-रेख में रहते थे। मीर-सामान की सहायता के लिए दीवान-बयूतत, दरोगा और एकाउन्टेण्ट जैसे पदाधिकारी भी होते थे। दरोगा-कचहरी उसका मुख्य सहायक होता था और वित्तीय मामलों में उसकी मदद के लिए नाजिर नाम का एक पदाधिकारी होता था। सदर-उस-सदूर नामक मंत्री धर्म सम्बन्धी मामलों का प्रभारी होता था। न्याय विभाग का भी वह प्रधान था। काजियों और मुफ्तियों की नियुक्ति वही करता था। सदर-काजी की भी वही निगरानी रखता था। दान तथा शिक्षा विभाग भी उसी के अधीन था। ये सभी मन्त्री परस्पर सहयोग से काम चलाते थे। अपने केन्द्रीय शासन की जिम्मेदारी के साथ-साथ वे अपने प्रान्तीय मामलों की भी देख-भाल करते रहते थे।

३. प्रान्तीय शासन—अकबर ने अपने साम्राज्य को १२ प्रान्तों (सूबों) में बांट दिया था। बाद में जहांगीर के शासनकाल में सूबों की संख्या १७ और औरंगजेब के शासनकाल में २१ तक पहुंच गई थी। इन प्रान्तों के शासन प्रबन्ध के लिए सूबेदार नियुक्त किये जाते थे, जिन्हें 'सिपहसालार' या 'साहिब-सूबा कहा जाता था। सिपहसालार

उसे इसलिए कहा जाता था क्योंकि वह प्रान्त की सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था। प्रान्त की शान्ति और सुरक्षा की जिम्मेदारी उसी की थी। जागीरदारों से कर वसूल करके वह केन्द्रीय सरकार के पास भेजता था। वह सम्राट के आदेशों का पालन करवाता था और प्रान्त के सम्बन्ध में सारी जानकारी सम्राट के पास भेजता था। ऊंची श्रेणी के मनसबदारों तथा शाही खानदानों के लोगों को ही प्रान्तीय गवर्नर (सूबेदार) बनाया जाता था। दीवान प्रान्तों में वित्तमन्त्री का काम करता था। वह प्रान्त में केन्द्रीय दीवान का प्रतिनिधि होता था। प्रान्तीय लगान तथा अन्य कर वह वसूल करवाता था और केन्द्रीय सरकार को भेजता था। प्रान्तीय सूबेदार न उसकी नियुक्ति कर सकता था और न उसे निकाल सकता था। इस प्रकार दीवान का सम्बन्ध सीधे केन्द्रीय सरकार से होता था और वह केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी होता था। बख्शी सेना का प्रधान अधिकारी होता था। बख्शी का पद बहुत महत्वपूर्ण था और उस पर प्रायः उच्च पदाधिकारी ही नियुक्त किये जाते थे। प्रान्तीय सेना का वह निरीक्षण करता था और उसी की आज्ञा से सैनिकों को वेतन दिया जाता था। प्रान्त के सम्बन्ध में सारी जानकारी सम्राट के पास पहुँचाने की जिम्मेदारी उसी की थी। दीवान-बयूतात केन्द्रीय सरकार के दीवान-सामान का प्रतिनिधि होता था। वह प्रान्त की सरकारी इमारतों, सड़कों, कारखानों तथा माल की देख-भाल रखता था। कोतवाल प्रान्त की राजधानी तथा बड़े-बड़े शहरों में पुलिस (बरकन्दाज) विभाग का अधिकारी होता था। उसका काम नगर में अपराधों को रोकना, अपराधियों को पकड़ना तथा उन्हें दण्ड देना होता था। वह जनता से नियमों का पालन करवाता था और छोटे-मोटे दंगों एवं झगड़ों को भी दबाता था। काजी प्रान्त के न्याय-विभाग का प्रधान अधिकारी होता था। राज्य में न्याय-शासन करना उसका कर्त्तव्य था। इसके अतिरिक्त शिक्षा, धर्म तथा दान सम्बन्धी कार्यों में वह केन्द्रीय सरकार के सदर-उस-सदूर का प्रतिनिधि होता था। अनेक दरोगा प्रान्त के

सचिवालय के विभागों के अधिकारी होते थे। सचिवालय का काम चलाने के लिए उनके सहायक भी होते थे।

४. जिला (सरकार) का शासन—शासन की सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक प्रान्त सरकारों में बंटा हुआ था। सरकार आजकल के जिलों के समान होते थे। फौजदार सरकार का सबसे बड़ा शासक समझा जाता था। वह प्रान्त के सूबेदार के अधीन समझा जाता था और उसी के आदेश से काम करता था। शाहजहां के शासनकाल से सरकारो के वित्तीय प्रबन्ध के लिए एक दीवान की नियुक्ति होने लगी। काजी सरकार के न्याय विभाग की देखभाल करता था और कोतवाल शान्ति तथा सुरक्षा की व्यवस्था करता था। प्रत्येक सरकार में कई परगने होते थे। प्रत्येक परगने में फौजदार, अमीन और शिकदार नामक अधिकारी होते थे। फौजदार शासन सम्बन्धी विषयो की देखभाल करता था। अमीन लगान वसूल करने के काम में सहायता करता था और शिकदार खजाने में लगान जमा करता था। परगने का कोषाध्यक्ष वितरची कहलाता था। परगने में कई टप्पे होते थे और टप्पे का अधिकारी टप्पेदार कहलाता था। एक टप्पे में कई गांव होते थे। गांव के पदाधिकारियों के नाम थे मुकद्दम, पटवारी और चौधरी। पटवारी गांव के खेतों का नकशा आदि बनाया करता था। चौकीदार गांव की रखवाली का काम करता था।

मुगल शासन का वास्तविक स्वरूप सैनिक था। सम्राट प्रायः निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी होते थे। उन पर कोई नियंत्रण नही था। यद्यपि राज्य के मंत्री या अमीर-उमरा उसे सलाह दे सकते थे पर सम्राट माने या न माने यह उसकी इच्छा होती थी। सम्राट केवल प्रजा और राज्य का ही स्वामी नहीं होता था वरन् वह धर्म का भी अधिपति होता था। न्याय के क्षेत्र में भी सम्राट की सत्ता सर्वोपरि थी। सबसे बड़ा न्यायालय सम्राट का दरबार होता था और सम्राट के न्याय के विरुद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकती थी। वैसे तो मुगल शासन

की मूल शक्ति उसका सैनिक बल था पर मुगल सम्राटों ने जनता की भलाई के भी बहुत से काम किये।

भूमि-कर व्यवस्था

५. भूमि कर—मुगल साम्राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि-कर अथवा मालगुजारी था। भूमि पर मालगुजारी निर्धारित करने तथा उसकी वसूली की नियमित प्रथा का श्रीगणेश शेरशाह सूरी ने किया था। अकबर के दीवान टोडरमल ने इस प्रथा का बहुत सुन्दर विकास किया। सारी भूमि को चार भागों में विभक्त किया गया—(१) पोलज—जिसमें हर साल खेती होती थी (२) परती—जिसमें एक साल छोड़कर खेती होती थी (३) छाचर—जिसमें ३ या ४ साल में एक बार फसल बोई जा सकती थी और (४) बंजर जिसमें ५ या इससे अधिक समय के पश्चात् फसल बोई जा सकती थी। प्रत्येक किसान की जमीन को तीन किस्मों में—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट—बांट दिया गया। यदि उत्तम भूमि में २० मन प्रति बीघा, मध्यम भूमि में १५ मन प्रति बीघा और निकृष्ट भूमि में १० मन प्रति बीघा पैदावार हुई तो औसत पैदावार १५ मन प्रति बीघा मानी जाती थी और प्रत्येक किसान से औसत पैदावार का एक-तिहाई भाग मालगुजारी के रूप में वसूल किया जाता था। मालगुजारी नकद या अनाज के रूप में दोनों प्रकार से दी जा सकती थी। मालगुजारी लागू करते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि किसान ने अपनी भूमि में क्या फसल बोई है। नकद मालगुजारी का अनुमान लगाने के लिए पिछले १० वर्षों में अनाज की कीमतों का ध्यान रखा जाता था। १० साल बाद जमीन का नया बंदोबस्त किया जाता था। कीमतों में कमी या बढ़ती के अनुसार मालगुजारी में भी कमी अथवा वृद्धि कर दी जाती थी।

६. जमीन का नाप—जमीन की नाप या पैमाइश का ढंग बहुत अच्छा था। पहले भूमि की नाप रस्सी से होती थी। पर अकबर के

समय में गज का इस्तेमाल होने लगा। गज लगभग ३३ इंच का होता था। बाद में गजों को जोड़कर, जो बाँस के बने होते थे, जरीब बनाया गया और उसका इस्तेमाल होने लगा। जरीबों से नाप कर पता लगा लिया जाता था कि प्रत्येक किसान के पास किस-किस श्रेणी की कितनी-कितनी भूमि है। फिर औसत पैदावार निकाल कर मालगुजारी निश्चित कर दी जाती थी। बिहार, इलाहाबाद, आगरा, अवध और दिल्ली के सूबों में यही प्रणाली लागू थी, इसे 'जब्ती' प्रणाली कहा जाता था। गाँवों में पटवारी के पास सब खेतों और उनकी नाप एवं बोई जाने वाली फसल का पूरा ब्योरा रहता था जिसके आधार पर मालगुजारी तय की जाती थी। कारकुन पटवारी की सहायता करता था। कारकुन और पटवारी के ऊपर कानूनगो होता था, जो मालगुजारी निर्धारित करता था। मालगुजारी वसूल करने का काम मुकद्दम का था। मुकद्दम मालगुजारी की रकम पोद्दार के पास जमा करता था और पोद्दार खजान्चियों के पास। मालगुजारी वसूल करने के सम्बन्ध में यदि कोई झगड़ा इत्यादि होता था, तो 'फौजदार' की भी सहायता लेनी पड़ती थी। इस प्रकार मालगुजारी वसूल करने वाले कर्मचारी 'अमलगुजार' कहे जाते थे।

७. अन्य करों का उन्मूलन—यद्यपि अकबर के शासनकाल में उपज की एक तिहाई मालगुजारी ली जाती थी पर अकबर ने अन्य करों को समाप्त कर दिया था। ये कर कई प्रकार के थे, जैसे मछली, सब्जी, तेल, ईंधन और तम्बाकू आदि के क्रय-विक्रय पर; जमीन को गिरवी रखने और जायदाद बेचने पर, शहदारी कर; तहबाजारी कर; अदालती कार्यवाही द्वारा मालगुजारी की वसूली पर रकम का चौथाई भाग 'शुकराना', मल्लाही; टैक्स; चकबन्दी कर और 'पेशकश' जो कि नये राजकर्मचारी की नियुक्ति पर उसे उस इलाके के व्यापारी दिया करते थे। फिर भी बहुत से छोटे-मोटे कर्मचारी उचित अनुचित उपायों से जनता से कुछ न कुछ ले ही लिया करते थे।

सैन्य संगठन

मुग़ल सेना के चार मुख्य विभाग थे; घुड़सवार, पैदल सेना, तोपखाना और नौसेना। इसके अतिरिक्त हाथियों की सेना भी थी। पर हाथियों की सेना का प्रयोग बहुत कम किया जाता था। तोपखानों का मुग़ल सेना में बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। औरंगजेब के समय में तोपखाना बहुत शक्तिशाली हो गया था।

८. मनसबदारी प्रथा मुग़ल सेना में मनसबदारी प्रथा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। अकबर ने इस प्रथा को सुसंगठित किया था। 'मनसब' शब्द का अर्थ है 'पद'। सभी सैनिक और असैनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति मनसब के आधार पर की जाती थी। सबसे छोटा मनसब १० सैनिकों का होता था और सबसे बड़ा १० हज़ार सैनिकों का। इन मनसबदारों से आशा की जाती थी कि वे अपने मनसब के अनुसार घोड़े एवं सैनिक तैयार रखें, जिससे आवश्यकता पड़ने पर उनका प्रयोग किया जा सके। कुछ मनसबदारों को घोड़े तथा सैनिक रखने का खर्च सरकार की ओर से दिया जाता था और कुछ मनसबदारों को इस खर्च के लिए जागीर दे दी जाती थी। मुगलकाल में लगभग ११,५०० मनसबदार थे। पर सब मनसबदार निश्चित संख्या में घोड़े और सवार नहीं रखते थे। अकबर ने इस सम्बन्ध में अनेक सुधार किए। राजाज्ञा निकाली गई कि प्रत्येक मनसबदार अपने सैनिकों के नाम एवं पते का रजिस्टर रखे और घोड़े को दागे, जिससे समय पड़ने पर रजिस्टर एवं घोड़ों का निरीक्षण करके देखा जा सके कि मनसबदार ने निश्चित संख्या में घोड़े एवं सैनिक रखे हैं या नहीं।

इस मनसबदारी प्रथा में कई दोष थे। एक, मनसबदार और उनके सैनिकों के बीच नौकर तथा मालिक जैसा सम्बन्ध होता था जब कि मुग़ल सेना के सैनिकों का सम्बन्ध अपने अफसरों के साथ सैनिकों जैसा होता था। दूसरे, मनसबदार निश्चित संख्या में सैनिक एवं घोड़े नहीं रखते थे और आवश्यकता पड़ने पर कहीं से घोड़े एवं सैनिक पकड़ लेते थे। इस प्रकार पकड़े गये सैनिकों से अच्छी सेवा नहीं मिल

सकती थी। तीसरे, बड़े-बड़े मनसबदार परस्पर एक दूसरे से जलते और ईर्ष्या करते थे। कभी-कभी मनसबदार उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़ों में किसी एक पक्ष का समर्थन करने लगते थे और मुग़ल सेना के विरुद्ध अपने सैनिकों को लड़ने भेजते थे। कुछ हद तक यह प्रथा भी मुगल साम्राज्य के पतन का एक कारण थी।

सामाजिक दशा

१. समाज—मुगल काल का सामाजिक जीवन सामन्त पद्धति पर आधारित था। सम्राट का स्थान समाज में सर्वोच्च था। उसके नीचे मनसबदारों तथा अमीर-उमराओं का स्थान था। अमीर-उमरा हर बात में सम्राट का अनुकरण करने की कोशिश करते थे। उनके पास बड़ी संपत्ति होती थी। वे प्रायः विलासी जीवन व्यतीत करते थे। बड़े-बड़े अमीरों के यहाँ उनके हरम में सैकड़ों और हजारों तक स्त्रियाँ होती थीं। इस वर्ग के लोगों का रहन-सहन उन्हें साधारण प्रजा से बिल्कुल पृथक् कर देता है। उनके यहाँ बड़ी-बड़ी दावतें होती थीं, जिसमें अच्छे-अच्छे भोजन, शराब और नाच-गाने का भी आयोजन होता था। सुन्दर वस्त्र, अच्छे भोजन, शराब, नाच-गाने तथा अन्य विलासी कार्यों में ये लोग पानी की तरह पैसा बहाया करते थे। उनके विलासी जीवन ने उन्हें अकर्मण्य बना दिया था। इन मनसबदारों और अमीर-उमराओं के वर्ग के पश्चात् मध्यम वर्ग था, जिसमें राजकर्मचारी, व्यापारी तथा शिल्पी आदि थे। इन लोगों का जीवन काफी सादा था। वैसे इनके पास धन का अभाव नहीं था पर ये जान-बूझकर अधिक शान-शौकत से नहीं रहते थे क्योंकि उन्हें डर था कि यदि सरकार को पता लग गया कि उनके पास काफी धन है तो उचित अनुचित तरीकों से उनका धन छीन लिया जायेगा।

साधारण प्रजा की दशा हेय थी। इस वर्ग में किसानों और मजदूरों को लिया जा सकता है। इन्हें अपना जीवनयापन करने के लिए भी पर्याप्त धन नहीं मिल पाता था। रेशमी और ऊनी कपड़ों की तो बात ही नहीं, इन्हें अपना तन ढकने के लिए मोटा सूती कपड़ा

तक नहीं मिल पाता था। मजदूरों को वेतन बहुत कम दिया जाता था। राजकर्मचारी उनसे जबरदस्ती बेगार लेते थे। अमीर-उमरा भी मजदूरों को काम पर बुला सकते थे। मजदूर काम पर जाने से इन्कार नहीं कर सकता था। इन सब कार्यों के होते हुए भी चूंकि वस्तुएं बहुत सस्ती थीं अतः सर्वसाधारण का जीवन बहुत कष्टमय नहीं था।

मुगल काल में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के कुलीन परिवारों में पर्दा-प्रथा थी। राजपूतों में भी पर्दा-प्रथा प्रचलित हो गयी थी। समाज के निम्न श्रेणी के परिवारों में पर्दा बिल्कुल नहीं था। उनके यहां की स्त्रियां खुले आम हर जगह आती जाती थीं। राज खानदानों तथा उच्च श्रेणी के लोगों में बहुविवाह की प्रथा थी। पर सामान्य जनता में एक विवाह की ही प्रथा थी। बड़े-बड़े अमीर-उमरा कई-कई स्त्रियां रखते थे। हिन्दुओं में सामान्यतया एक विवाह की प्रथा थी। पत्नी वन्ध्या होने पर दूसरा विवाह करने की छूट थी। बाल-विवाह की प्रथा थी और दहेज भी खूब लिया-दिया जाता था। अकबर ने आदेश निकाल दिया था कि बेमेल विवाह न किए जायें। मुसलमानों में तलाक और पुनर्विवाह की प्रथा थी पर हिन्दुओं में नहीं थी। विधवा विवाह की प्रथा भी मिट चुकी थी। सती प्रथा का प्रचार था और अकबर के प्रयत्नों के होते हुए भी यह प्रथा रुक नहीं सकी। स्त्रियां प्रायः घरेलू काम करती थीं। किसानों की औरतें खेती के कामों में भी हाथ बटाती थीं। स्त्रियों में आभूषण-प्रियता की प्रवृत्ति बड़ी मात्रा में थी। वे शृंगार एवं प्रसाधन का भी काफी ध्यान रखती थीं।

सामान्य हिन्दू वर्ग मांस नहीं खाता था। मुगल शासकों में हुमायूँ ने कुछ समय के लिए मांस खाना छोड़ दिया था। अकबर तो मांस खाना पसन्द ही नहीं करता था। लोगों का सामान्य भोजन दाल, दही, मक्खन, तेल, दूध और दूध की बनी वस्तुएं थीं। त्योहारों पर तथा विशेष अवसरों पर लोग हलवा और पूड़ी खाते थे। मुसलमानों में

भेड़ एवं बकरी का मांस खाने का प्रचार था। शराब पीने का कोई विशेष रिवाज नहीं था। पर दरबारी तथा बड़े-बड़े अमीर-उमरा शराब पीते थे। हुक्का पीने की भी प्रथा चालू हो गई थी।

आर्थिक दशा

१०. आर्थिक दशा—मुगलकालीन आर्थिक दशा के सम्बन्ध में हमें आइने-अकबरी में अच्छा वर्णन मिलता है। भारत में उन दिनों समृद्ध नगरों की कमी नहीं थी। आगरा, फतेहपुर सीकरी, लाहौर, अहमदाबाद, पटना, हुगली, ढाका और चटगांव उस काल के बहुत प्रसिद्ध नगर थे। अकबर के सिक्कों में रुपया और दाम प्रमुख थे। दाम को पैसा भी कहा जाता था। सिक्कों की टकसालें लाहौर, जौनपुर, अहमदाबाद और पटने में थीं। रुपया चांदी का होता था और दाम तांबे का। एक रुपये में ४० दाम होते थे। १ पैसे में ५० जीतल होते थे। आइने-अकबरी में तत्कालीन कीमतों का भी उल्लेख मिलता है। गेहूं १२ दाम प्रतिमन था। बढ़िया चावल ११० दाम प्रतिमन, दूध २५ दाम प्रतिमन और चीनी १२८ दाम प्रतिमन थी। एक गाय का मूल्य लगभग १० रुपये था। वस्तुएं इतनी सस्ती थीं अतः मजदूरों को मजदूरी भी बहुत कम मिलती थी। साधारण मजदूर की दैनिक मजदूरी २ दाम और मिस्त्री, राज और बढ़ई आदि की ७ दाम थी। एडवर्ड टैरी के कथनानुसार "देश भर में खाद्यान्नों का बाहुल्य था और बिना किसी कठिनाई के लोग जीवन व्यतीत करते थे।"

बहुसंख्यक लोगों का उद्यम कृषि था। मुख्य-मुख्य उपज थीं—गेहूं, गन्ना, चावल जौ, ज्वार, नील और लहसुन-प्याज। अन्य अनेक व्यवसायों और शिल्पों का भी विकास हो चुका था। वस्त्र-व्यवसाय पर्याप्त उन्नति पर था। गुजरात, जौनपुर, बनारस और पटना वस्त्र उद्योग के बड़े केन्द्र थे। बंगाल का महीन सूती कपड़ा अपने ढंग का अनोखा होता था। उड़ीसा से बंगाल तक के सम्पूर्ण क्षेत्र में वस्त्र उद्योग की प्रचुर उन्नति थी। ढाके की मलमल संसार में प्रसिद्ध थी। कपड़े

की रंगाई और छपाई का शिल्प बहुत उन्नति पर था। भारत की छींट संसार के बाजारों में बिकती थी। बंगाल में रेशमी कपड़े भी बनते थे। इसके अतिरिक्त लाहौर, आगरा, गुजरात आदि में भी रेशमी कपड़े का निर्माण होता था। शाल और गलीचे के लिए काश्मीर के अतिरिक्त लाहौर और आगरे का भी नाम था। खनिजों, चीनी, नील, अफीम और शोरे के व्यापार में भी हमारे देश की पर्याप्त उन्नति हुई। शोरे की मांग तो बाद में बहुत बढ़ गयी थी। हाथी दांत, आबनूस की लकड़ी तथा सोने की कला-कृतियां तैयार करने में तत्कालीन भारतीय शिल्पी बहुत निपुण थे।

भारत का विदेशी व्यापार स्थल मार्ग और जल मार्ग दोनों से होता था। दो स्थल मार्ग मुख्य थे—(१) लाहौर से काबुल और (२) मुल्तान से कन्धार। समुद्री मार्ग का व्यवसाय अनेक बन्दरगाहों से होता था, जिनमें से मुख्य के नाम हैं सूरत, भड़ौच, बसीन, कालीकट, चटगांव, मछलीपट्टम और नेगापट्टम। गोआ बन्दरगाह भी उन्नत अवस्था में था। भारत मुख्यतया सूती कपड़े, रेशमी कपड़े, मिर्च, मसाले नील, अफीम, आदि का व्यापार विदेशों से करता था और भारत में बाहर से आकर बिकने वाली मुख्य वस्तुयें थीं सोना, चांदी, घोड़े, धातुएं, हाथीदांत, मूंगे तथा इत्र इत्यादि।

शिक्षा और साहित्य

११. **शिक्षा और साहित्य**—मुगल काल में आजकल की भांति स्कूल और कालेज न थे और न राज्य का उत्तरदायित्व था कि वह शिक्षा की व्यवस्था करे। उस समय शिक्षा का काम धार्मिक संस्थाओं के आधीन था और मन्दिरों तथा मस्जिदों में ही पठन-पाठन का काम होता था। हिन्दुओं के मन्दिर केवल पूजा के स्थान ही नहीं थे उनमें शिक्षा भी दी जाती थी। इसी प्रकार मस्जिदों में भी फारसी तथा कुरान व अन्य मुस्लिम धर्म ग्रन्थों की शिक्षा की व्यवस्था थी। इन शिक्षा संस्थाओं का काम अमीर-उमराओं द्वारा प्राप्त जागीरों की आमदनी से चलता था।

प्रथम मुगल शासक बाबर एक साहित्यिक व्यक्ति था। उसने अपने शासन में एक विभाग खोला था, जो स्कूल और मदरसे खुलवाने का काम करता था। हुमायूं स्वयं भूगोल और ज्योतिष का अच्छा विद्वान था और उसने दिल्ली में एक मदरसा तथा एक पुस्तकालय खुलवाया था। शेरशाह ने भी कई मकतब खुलवाये थे। अकबर को शिक्षा तथा कला से विशेष प्यार था। उसने आगरा, फतेहपुर सीकरी तथा अन्य स्थानों पर कई मदरसे खोले। अकबर ने यह भी प्रबन्ध कर दिया कि इन मदरसों में हिन्दू विद्यार्थी भी शिक्षा प्राप्त कर सकें। जहांगीर फारसी का अच्छा विद्वान था। उसने पुराने मकतबों और मदरसों की मरम्मत कराई। जहांगीर ने फर्मान निकाल दिया था, जिस व्यक्ति का कोई वारिस न हो उसकी सम्पत्ति मकतबों और मदरसों के खर्च के लिए दे दी जाए। विद्या और ज्ञान से शाहजहां को भी प्यार था। उसने दिल्ली में एक नया मदरसा खोला। शाहजहां का पुत्र दाराशिकोह अरबी, फारसी और संस्कृत का अच्छा विद्वान था। उसने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का अनुवाद फारसी में किया था। औरंगजेब भी अच्छा विद्वान था। उसने शिक्षा को प्रोत्साहन अवश्य दिया परन्तु केवल मुस्लिम शिक्षा को। अवध, बंगाल और गोलकुण्डा के शासकों ने भी शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए मदरसे खुलवाये।

शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी को मकतबों या मदरसों अथवा मन्दिरों में जाना पड़ता था। इन मकतबों या मन्दिरों में मुख्यतया धार्मिक साहित्य पढ़ाया जाता था पर गणित, ज्योतिष तथा अन्य विषयों की शिक्षा का भी प्रबन्ध था। शिल्प या कारीगरी सीखने के लिए उस्ताद या गुरु की शरण में जाना पड़ता था। बड़े बड़े घराने की लड़कियों और लड़कों को पढ़ाने के लिए घर पर अध्यापक आते थे। ऊंचे खानदानों में लड़कियां अवश्य शिक्षित होती थीं। बाबर की लड़की गुलबदन एक विदुषी थी। नूरजहां और मुमताज महल भी

शिक्षित महिलायें थीं। जहाँआरा और जेबुन्निसा भी राजघराने की सुशिक्षित महिलायें थीं।

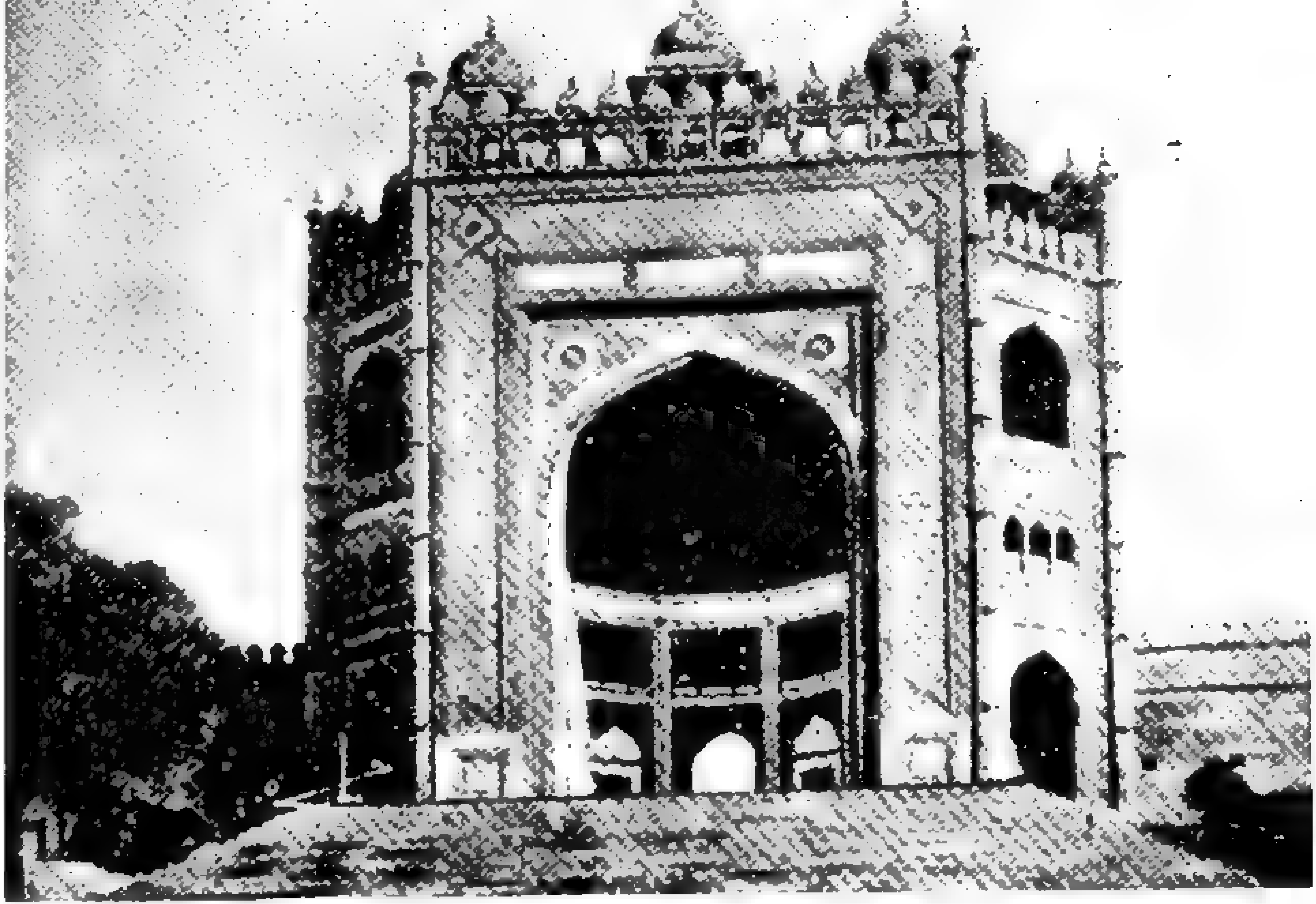
उस समय वर्णमाला की पुस्तकें छपी नहीं होती थीं। अच्छी हस्तलिपि को बहुत महत्त्व दिया जाता था। अध्यापक प्रायः नकद फीस नहीं लेते थे। हिन्दू उच्च शिक्षा के दो केन्द्र—बनारस और नदिया (बंगाल)—मुख्य थे। मुस्लिम उच्च शिक्षा के मुख्य केन्द्र आगरा, दिल्ली, जौनपुर, अहमदाबाद और लाहौर थे। शिक्षा की दृष्टि से जौनपुर इतना प्रसिद्ध था, कि उसे भारत का 'शीराज' कहा जाता था।

१७. साहित्य—शिक्षा को प्रोत्साहन देने वाले सम्राट् स्वयं भी साहित्यकार थे। बाबर एक अच्छा कवि था। हुमायूं में भी ऐसी ही प्रतिभा थी। 'हुमायूं नामा' उसकी बहन गुलबदन का लिखा हुआ है। अकबर का शासनकाल फारसी साहित्य की उन्नति का युग है। इस काल में इतिहास की पुस्तकें लिखी गईं, कवितायें लिखी गयीं और अनुवाद का काम भी हुआ। इतिहास के ग्रन्थों में मुल्ला दाऊद की 'तारीखे अल्फी', अबुलफजल की 'आइने-अकबरी' एवं 'अकबर नामा', निजामुद्दीन अहमद की 'तबकात अकबरी' और फैजी सरहिन्दी का 'अकबर नामा' प्रसिद्ध है। रामायण और महाभारत का अनुवाद किया गया। बदायूनी ने रामायण का अनुवाद फारसी में किया था। फारसी भाषा में काव्य की रचना करने वालों में फैजी, गिजली, मुहम्मद हुसैन नजीरी और सैयद जमालुद्दीन उर्फी के नाम प्रसिद्ध हैं। गणित ग्रन्थ 'लीलावती' का अनुवाद फैजी ने किया। फैजी की अन्य काव्य रचनायें 'मसनवी नलोदमन', 'मरकजे अदवार', 'मेवारिकल्कलाम' आदि हैं। जहाँगीर के दरबार में भी कई विद्वान् लेखक थे। इस काल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों के नाम हैं—'मुआसीरे जहाँगीरी', 'इकबाल नामा जहाँगीरी' और 'जुब्दुत्तवारीख'। शाहजहाँ भी विद्वानों का संरक्षक था। 'पादशाह नामा' और 'शाहजहाँनामा'

उसके समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। औरंगजेब ने भी फारसी साहित्य को प्रोत्साहन दिया। इस्लाम के कानूनों का एक संग्रह उसने प्रकाशित करवाया जिसका नाम है 'फतवा-ये आलमगीरी'। यद्यपि औरंगजेब नहीं चाहता था कि उसके काल का इतिहास लिखा जाये फिर भी छिपकर ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये जैसे 'आलमगीर नामा', 'मआसिरे आलमगीरी', 'फतूहाते आलमगीरी' आदि।

१३. हिन्दी साहित्य— मुगल काल हिन्दी साहित्य की दृष्टि से स्वर्ण-काल माना जा सकता है। हिन्दी के अनेक प्रतिभाशाली कवियों तथा लेखकों ने हिन्दी की रचनायें कर के उसकी श्रीवृद्धि की। हिन्दी, मराठी, गुजराती और बंगला में अच्छे साहित्य का निर्माण हुआ। इस काल का हिन्दी साहित्य प्रायः धर्म प्रधान था। स्वामी रामानन्द, कबीर, नानक और चैतन्य आदि ने भक्ति की जो लहर चलाई थी, वह बलवती हो उठी थी। मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत', सूरदास का 'सूरसागर', नन्ददास का 'रास पंचाध्यायी' आदि इस युग की भक्ति साहित्य की प्रतिनिधि रचनायें हैं। महाकवि तुलसीदास को पाकर साहित्य धन्य हो गया। उनकी 'मानस', 'गीतावली', 'कवितावली' आदि रचनायें सन्त साहित्य में क्रांति उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त सक्षम थीं। इस युग में केशव जैसे आचार्य भी उत्पन्न हुये। 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'अलंकार मंजरी' उनके सुन्दर ग्रंथ हैं। बिहारी, भूषण, मतिराम आदि भी इसी युग में हुये थे। अकबर के दरबारियों में अब्दुर्रहीम खानखाना, टोडरमल तथा बीरबल हिन्दी के अच्छे कवि थे। इस युग के सभी अच्छे कवि किसी न किसी राजा के आश्रय में थे। इसमें सन्देह नहीं कि सम्पूर्ण मुगल काल में हिन्दी साहित्य की निरन्तर उन्नति होती रही।

१४. कला—भारत में विदेशी अपने साथ जो शैली ले आये वह भारत की निर्माण शैली में मिल गई। इस प्रकार कई नई शैलियों का जन्म हुआ। इनमें गुजराती और जौनपुरी शैली काफी प्रसिद्ध हैं।



बलन्द दरवाजा, फतेहपुर सीकरी

मुगलकालीन इमारतों में इन मिश्रित कलाओं का अच्छा रूप दिखाई पड़ता है। औरंगजेब को छोड़कर लगभग सभी मुगल शासक इमारतें बनवाने के शौकीन थे। बाबर ने ग्वालियर, आगरा, सीकरी और बियाना में कुछ इमारतें बनवाई थीं, जिनका उल्लेख बाबरनामा में मिलता है। हुमायूँ की बनवाई इमारतों में इस समय केवल दो मिलती हैं, एक आगरा में और दूसरी हिसार जिले के फतेहाबाद कस्बे में। इन दोनों मस्जिदों में फारसी कला का प्रभाव साफ दिखाई पड़ता है। सहसराम में शेरशाह का मकबरा हिन्दू-मुस्लिम शैली का सुन्दर नमूना है। आगरा के किले में 'जहांगीरी महल' दिल्ली में 'हुमायूँ का मकबरा' सीकरी में 'बुलन्द दरवाजा', 'दीवाने-खास' और सिकन्दरा में 'अकबर का मकबरा' अकबरकालीन भव्य इमारतें हैं। इलाहाबाद का किला भी अकबर ने ही बनवाया था। शाहजहां निर्मित ताजमहल संसार की एक भव्य इमारत है। अकबर की नीति में जैसा धार्मिक समन्वय था, उसी प्रकार उसके समय की इमारतों में भी हमें भारतीय तथा इस्लामिक शैली का समन्वय मिलता है। फतेहपुर सीकरी की इमारतों के सम्बन्ध में प्रशंसा करते हुए स्मिथ ने लिखा है कि यह नगर प्रस्तरों द्वारा निर्मित एक काव्य के समान है, जो कि अपनी उपमा नहीं रखता। शाहजहां ने काबुल, लाहौर, दिल्ली, काश्मीर और अजमेर में अनेक सुन्दर इमारतें बनवाईं। दिल्ली के लाल किले में 'मोती मस्जिद' 'दीवाने आम' और 'दीवाने खास' आदि शाहजहां की कला-प्रियता के उत्कृष्ट प्रमाण हैं।

१५. चित्र कला—हुमायूँ को चित्रकारी का काफी शौक था। मीर सैयदअली ने 'दास्ताने अमीर हमजाह' नामक ग्रन्थ को चित्रित किया। अकबर का शासनकाल कला की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट था। उसने चित्रकारों को प्रोत्साहन दिया। दसवन्त और बसावन नामक दो प्रसिद्ध चित्रकार अकबर के समय में थे। इमारतों में चित्रकारी कराने का अकबर को बड़ा शौक था। जहांगीर चित्रकला का अच्छा मर्मज्ञ

था। उसके समय में उस्ताद मन्सूर, अब्दुल हसन और बिसनदास जैसे प्रसिद्ध चित्रकार हुये। शाहजहां एवं औरंगजेब के समय में चित्र-कला को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिल सका। औरंगजेब को तो चित्रकारी आदि से बड़ी घृणा थी।

१६. संगीत— बाबर को संगीत का काफी शौक था। उसके पश्चात् बच्चू नाम का संगीतज्ञ हुमायूं के समय में हुआ, जिसे राज्याश्रय प्राप्त था। सूरी वंश के शासकों में आदिलशाह सूरी को भी संगीत का बहुत शौक था। अकबर ने संगीत कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। मियां तानसेन नामक संगीतज्ञ अकबर के दरबार में था। तानसेन की कब्र अब भी ग्वालियर में विद्यमान है। जहांगीर और शाहजहां के समय में भी संगीत को काफी प्रोत्साहन मिला। औरंगजेब ललित कलाओं का कट्टर शत्रु था। अतः उसने किसी भी कलाकार को आश्रय नहीं दिया। उपरोक्त विवरण से पता लगता है कि मुगल काल साहित्य, कला और अन्य दृष्टियों से भी मध्यकालीन भारत का स्वर्ण युग था।

प्रश्न

1. Discuss the central administration under the Mughal Empire.

मुगल साम्राज्य की केन्द्रीय शासन व्यवस्था का वर्णन कीजिये।

2 Give an account of the provincial and district administration obtaining during the Mughal period.

मुगल शासनकाल में प्रान्तीय और जिले की शासन व्यवस्था कैसी थी ?

3. Point out the salient features of the land revenue system during Akbar's reign.

अकबर के शासनकाल में मालगुजारी की व्यवस्था की मुख्य विशेषतायें बताइये ?

4. Write a short note on Mansabdari system.

मनसबदारी प्रथा पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

5. Bring out main features of the social life under the Mughals.

मुगल शासनकाल में सामाजिक जीवन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

6. Estimate the achievements in the various aspects of economic development under the Mughals.

मुगल साम्राज्य में आर्थिक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में जो उन्नति हुई उसका मूल्यांकन कीजिये।

7. Estimate the contribution of the Mughal Kings towards the spread of education and creation of literature.

शिक्षा प्रसार और साहित्य निर्माण में मुगल शासकों द्वारा प्रदत्त योग का मूल्यांकन कीजिये।

8. Enumerate the monuments built by the Mughal Kings and discuss their architectural significance.

मुगल सम्राटों द्वारा बनवाई गई इमारतों का वर्णन कीजिये और उनके कलात्मक महत्व पर प्रकाश डालिये।

9. The Mughal period is the golden age of the medieval history of India discuss with

reference to its art, literature and architecture.

कला, साहित्य और वास्तुकला को ध्यान में रखते हुए सिद्ध कीजिये कि 'मुगल काल भारत के मध्यकालीन इतिहास का स्वर्ण युग था'।

10. Give a brief account of literature in provincial languages during the Mughal rule.

मुगल शासनकाल में प्रान्तीय भाषाओं में जो साहित्य निर्माण सम्बन्धी प्रगति हुई, उसका संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

11. Write short notes on:—

(a) Sadr-i-Sudur;
(b) The Red Fort;
(c) Aine-Akbari;
(d) Sarkar; and
(e) Foreign trade during the Mughal period.

संक्षिप्त नोट लिखिये:—

(क) सदरे सुदूर।
(ख) लाल किला।
(ग) आईने अकबरी।
(घ) सरकार।
(ङ) मुगल काल में विदेशी व्यापार।

—:o:—

अध्याय २७

भारत में अंग्रेजी राज्य का विस्तार

प्रथम उत्थान

१. अंग्रेज और फ्रांसीसी—भारत में व्यापार करने के लिए पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेजों की कम्पनियां आईं पर पुर्तगाली और डच लोगों को कोई सफलता न मिली। अन्त में, केवल फ्रांसीसी और अंग्रेजों की कम्पनियों में झगड़े होते रहे। झगड़े की बात भारत के लिए कोई नई नहीं थी। यूरोप में फ्रांस तथा इंगलैंड में प्राय: युद्ध हुआ करते थे। अत: जहां भी वहां अंग्रेज और फ्रांसीसी प्रभुत्व का संघर्ष होता था, वहीं झगड़े प्रारम्भ हो जाते थे।

भारत के पश्चिमी तट पर मरहटों की शक्ति बहुत प्रबल हो रही थी। अत: यूरोपीय जातियों ने पूर्वी तट पर ही अपनी शक्ति का प्रसार किया। फ्रांसीसी कम्पनी ने १६७४ ई० में बीजापुर के वाइसराय से कुछ भूमि जिन्जी नदी के उद्गम के पास प्राप्त कर ली। पर १६९३ ई० में फ्रांसीसियों से यह जगह डच लोगों ने छीन ली। जब यूरोप में रिसविक की सन्धि हुई, तो यह स्थान अर्थात पांडिचेरी फिर फ्रांसीसियों को वापस मिल गया। मार्टिन पांडिचेरी का गवर्नर नियुक्त किया गया और उसने १७०६ ई० तक शासन किया।

२. ड्यूमा का शासन—ड्यूमा बहुत ही योग्य फ्रांसीसी गवर्नर था। १७३५ ई० में वह भारत आया। केवल थोड़े ही समय में उसने फ्रांसीसियों को दक्षिण भारत की सबसे अधिक शक्तिशाली सत्ता बना दिया। उसने करनाट के नवाब दोस्तअली खां से दोस्ती कर ली। नवाब की आज्ञा से उसने १७३९ ई० में कारीकल के किले पर कब्जा कर लिया। १७४० ई० में मरहटों ने दोस्तअली खां पर

आक्रमण कर लिया। नवाब ने आक्रमण रोकना चाहा पर वह युद्ध में मारा गया। उसके पुत्र सफदर अली ने वेलोर के किले में जाकर शरण ली। नवाब का दामाद चन्दा साहब भी त्रिचनापल्ली में छिप गया। मरहटों ने सफदर अली से गुप्त संधि कर ली और चन्दा साहब पर आक्रमण करके उसे कैद कर लिया। दोस्तअली की विधवा पत्नी तथा चन्दा साहब की स्त्री दोनों ने फ्रांसीसियों से सहायता मांगी। उधर मरहटों के सरदार राघोजी भोसले ने जब ड्यूमा से दोनों कैदी मांगे तो ड्यूमा ने साफ इनकार कर दिया और कहा कि हम जीते जी उन्हें नहीं दे सकते। इस वीरतापूर्ण उत्तर से ड्यूमा की ख्याति बहुत बढ़ गई। १७४१ ई० में ड्यूमा ने अपना पद त्याग दिया।

३. डूप्ले — ड्यूमा के चले जाने के बाद डूप्ले फ्रांसीसी गवर्नर बन कर भारत आया। उसने देखा कि भारत में फ्रांसीसियों की स्थिति बड़ी दृढ़ है। उसने यह भी निश्चय किया कि राज्य बढ़ाने के लिए भारतीय राज्यों के झगड़ों में दखल देने से काफी लाभ होगा। सौभाग्य से उसे शीघ्र ही अवसर भी मिल गया। १७४२ ई० में कर्नाटक के नवाब सफदर अली को उसके बहनोई मुर्तजा अली ने मार डाला। यह देखकर निजाम ने मुर्तजा अली को गद्दी से हटा दिया और सफदर अली के एक नाबालिग पुत्र को कर्नाटक की गद्दी पर बैठा दिया और उसकी देख-भाल के लिए अनवरुद्दीन नामक एक अमीर को नियुक्त कर दिया। पर उसी वर्ष सफदर अली के नाबालिग पुत्र की किसी ने हत्या कर दी, अतः निजाम ने अनवरुद्दीन को कर्नाटक का नवाब बना दिया।

४ कर्नाटक की पहली लड़ाई — अंग्रेज और फ्रांसीसी कम्पनियां भारत में व्यापार करने के लिए आई थीं। परन्तु यहां रह कर जब उन्हें देश के निर्बल शासकों की स्थिति का पता लगा, तो उन्होंने राज-नीति में भी हस्तक्षेप शुरू कर दिया। मुगल साम्राज्य के ह्रास के

साथ-साथ दोनों कम्पनियों की आकांक्षायें बढ़ती गईं। परिणामस्वरूप दोनों के बीच कई बार संघर्ष हुए। १७४४ ई० में अंग्रेजों की कम्पनी की स्थिति फ्रांसीसी कम्पनी की अपेक्षा दृढ़ थी। यूरोप में इन दोनों देशों के बीच लड़ाई हो जाने से भारत में भी इन दोनों कम्पनियों के बीच लड़ाई हो गई। मारिशस में नियुक्त फ्रांसीसी कमान्डर ला बोर्डेनेस को अंग्रेजों पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया गया। उसने पांडिचेरी पहुँच कर १७४६ ई० में मद्रास पर अधिकार कर लिया। किन्तु ला बोर्डेनेस और डूप्ले के बीच मतभेद पैदा हो जाने से आक्रमण की प्रगति कुछ देर के लिए धीमी पड़ गई। अनवरुद्दीन ने, जो उस समय अरकाट में नवाब था, फ्रांसीसियों को मार भगाने के लिए एक सेना मद्रास भेजी थी। किन्तु, उसकी सेना बुरी तरह हार गई और वह डूप्ले के साथ संधि करने के लिए बाध्य हो गया। आगे चलकर डूप्ले ने सेंट डेविड के किले को घेर लिया। किन्तु, इस उपक्रम में वह सफल न हो सका। १७४८ ई० में यूरोप में चल रही लड़ाई समाप्त हो गई और मद्रास अंग्रेजों को लौटा दिया गया। इन दो विरोधी देशों में संधि तो हो गई किन्तु वैमनस्य समाप्त नहीं हुआ। भारत में उन्होंने स्वयं लड़ने की अपेक्षा अब भारतीय राजाओं का पक्ष लेकर उनकी ओर से लड़ने का तरीका अपनाया।

५. **कर्नाटक की दूसरी लड़ाई**—कर्नाटक की पहली लड़ाई में यद्यपि किसी पक्ष की जीत नहीं हुई, तथापि दोनों को देश की स्थिति और तत्कालीन शासकों की अयोग्यता का पता लग गया। उन्होंने यह भाँप लिया कि इन राजाओं को सैनिक सहायता देकर उनसे व्यापार सम्बन्धी तथा और भी कई लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। १७४८ ई० में निजाम-उल-मुल्क की मृत्यु ने डूप्ले को वांछित अवसर प्रदान कर दिया। निजाम दक्षिण में स्वतन्त्र राजा बन बैठा था और उसने १७४४ ई० में अनवरुद्दीन को नाबालिग नवाब का अभिभावक बना दिया था। इस नाबालिग नवाब की हत्या कर दी गई और

अनवरुद्दीन को नवाब बना दिया गया। नासिरजंग और मुजफ्फरजंग अनवरुद्दीन को गद्दी से हटाकर स्वयं नवाब बनना चाहते थे। ये दोनों चन्दा साहब से मिल गये। चन्दा साहब भी गद्दी के लिए एक उम्मीदवार था। मुजफ्फरजंग और चन्दा साहब ने डूप्ले से सहायता के लिए याचना की। डूप्ले ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसका विचार था कि चन्दा साहब की सहायता करके कर्नाटक और हैदराबाद में उसका प्रभाव बढ़ जायेगा। देशी राजाओं के मामलों में डूप्ले ने ही हस्तक्षेप किया हो यह बात नहीं है, अंग्रेजों ने तंजोर राज्य के उत्तराधिकार के विवाद में पक्ष लेकर बड़ा लाभ उठाया था। मुजफ्फर जंग और चन्दा साहब की संयुक्त सेना ने अनवरुद्दीन पर आक्रमण कर दिया। अनवरुद्दीन मारा गया, किन्तु उसका लड़का मुहम्मद अली बच निकला और उसने त्रिचनापल्ली में अंग्रेजों की शरण ली। चन्दा साहब कर्नाटक का नवाब बन गया और उसने अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए फ्रांसीसियों को ८० गांव दिये। अब नासिर जंग और मुहम्मद अली ने मिलकर मुजफ्फर जंग पर हमला कर दिया। अंग्रेजों ने उनकी सहायता की जब कि चन्दा साहब और मुजफ्फरजंग की सहायता फ्रांसीसियों ने की। मुजफ्फर जंग को नासिरजंग ने कैद कर दिया किन्तु बाद में नासिर जंग की हत्या हो गई और मुजफ्फर जंग को हैदराबाद की गद्दी पर बैठाया गया। उसकी सहायता के लिए हैदराबाद में फ्रांसीसी सैनिक भी रखे गये। मुजफ्फर जंग ने फ्रांसीसियों को कुछ गांव दिए और डूप्ले को एक जागीर दी। डूप्ले दक्षिण में एक विशाल प्रदेश का गवर्नर बना दिया गया।

६. **अर्काट का घेरा और क्लाइव**—चन्दा साहब की विजय के पश्चात् मुहम्मद अली ने त्रिचनापल्ली में अंग्रेजों की शरण ली थी। चन्दा साहब ने फ्रांसीसी सहायता से त्रिचनापल्ली पर घेरा डाल दिया। इस संघर्ष में फ्रांसीसियों की विजय निश्चितप्राय थी, किन्तु अंग्रेजों के सेनापति क्लाइव ने अपनी चतुराई से पांसा पलट दिया। क्लाइव

ईस्ट इंडिया कम्पनी में पहले क्लर्क बनकर आया था। मद्रास पर जब ला बोर्डेनेस का आक्रमण हुआ, तो क्लाइव ने युद्ध में भाग लेकर अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया था। उसने तंजोर के आक्रमण में भी भाग लिया था। जब उसने देखा कि त्रिचनापल्ली पर चन्दा साहब की विजय होने वाली है, तो उसने चन्दा साहब की राजधानी अर्काट पर कब्जा कर लिया। चन्दा साहब ने तुरन्त अर्काट को छीन लेने के लिए अपनी सेना भेजी। लेकिन क्लाइव ने पचास दिन तक अर्काट पर अधिकार बनाये रखा और नवाब की सेना को परास्त कर दिया। अर्काट के बाद उसने त्रिचनापल्ली का घेरा भी उठवा दिया। इस प्रकार क्लाइव की योग्यता और साहस से अंग्रेजों का भाग्य ही बदल गया। अंग्रेजों की जीत हो जाने से मुहम्मद अली कर्नाटक का नवाब बना। फ्रांसीसियों की हार से डूप्ले का महत्त्व बहुत घट गया और १७५४ ई० में उसे स्वदेश बुला लिया गया।

७. कर्नाटक की तीसरी लड़ाई—कर्नाटक की तीसरी लड़ाई १७५६ ई० में हुई। दूसरी लड़ाई के पश्चात् फ्रांसीसी सेनापति बुसी ने अपनी स्थिति काफी अच्छी बना ली थी। हैदराबाद के नवाब से उसने उत्तरी सरकार के समृद्ध प्रान्तों का अधिकार प्राप्त कर लिया था। बुसी के जाने के बाद लैली आया। लैली को प्रारम्भ से ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लैली योग्य सैनिक था, इसमें संदेह नहीं किन्तु वह अपने अधीनस्थ अफसरों से काम लेने की कला में दक्ष न था। उधर अंग्रेजों की शक्ति बराबर बढ़ती जा रही थी और १७५७ ई० में बंगाल में क्लाइव की विजय से वे अत्यंत शक्तिशाली हो गये। यूरोप में फ्रांसीसी-अंग्रेज युद्ध की खबर पहुंचते ही क्लाइव ने चन्द्रनगर की फ्रांसीसी बस्ती पर कब्जा कर लिया। लैली ने उससे युद्ध किया, किन्तु अपने ही सैनिकों के विद्रोह ने उसे पराजित करा दिया। उसने फोर्ट सेन्ट डेविड पर १७५८ ई० में कब्जा कर लिया और धनाभाव को दूर करने के लिए उसने तंजोर पर आक्रमण कर दिया।

पर अंग्रेजों ने उसे यहाँ जीतने न दिया। अतः लैली ने विवश होकर बुसी को हैदराबाद से बुला लिया। बुसी के चले आने से हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभाव बहुत घट गया। इसी वर्ष लैली ने मद्रास पर घेरा डाल दिया, किन्तु अंग्रेजों ने उसे परास्त कर दिया। १७६० ई० में सर आयर कूट की सेना ने वांदिवास की लड़ाई में लैली को पूर्णरूप से हराया, बुसी को कैद कर लिया और अगले वर्ष पांडेचेरी भी अंग्रेजों के हाथ आ गया। लैली को अंग्रेजों ने कैद कर इंगलैंड भेज दिया, किन्तु वहाँ उसे छोड़ दिया गया। १७६३ ई० में यूरोप में युद्ध समाप्त हुआ और पेरिस में संधि हो गई। इस संधि के पश्चात् अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों की धन-सम्पत्ति उन्हें लौटा दी, किन्तु फ्रांसीसी सत्ता इतनी क्षीण हो चुकी थी कि उसके पुनरुत्थान की कोई आशा न थी। फ्रांसीसियों ने अपने पुराने वैभव को प्राप्त करने के लिए कई प्रयास किए, किन्तु वे सफल नहीं हो सके। अंग्रेजों ने भारत में व्यापार तथा वाणिज्य और राजनीतिक क्षेत्र में अपने यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वियों को सदा के लिए समाप्त कर दिया।

८. **फ्रांसीसियों की असफलता के कारण**—भारत में फ्रांसीसी सत्ता के पतन के लिए न तो डूप्ले और न लैली ही उत्तरदायी थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी एक निजी कम्पनी होने के कारण अपने काम-काज में स्वतन्त्र थी, जबकि फ्रांसीसी कम्पनी को धन के लिए अपने राज्य (फ्रांस) पर निर्भर रहना पड़ता था। इससे उसका व्यापार अंग्रेजों जितना समृद्ध नहीं हो सका और अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप के कारण उसका संगठन भी अच्छा नहीं रह सका। डूप्ले ने जो नीति अपनाई, वह ठीक ही थी और लैली भी कम योग्य न था, किन्तु लैली को आरम्भ से ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उससे जिस प्रकार संघर्ष जारी रखा, वह उसकी योग्यता का अच्छा प्रमाण है। फ्रांसीसी असफलता का एक मुख्य कारण यह था कि अंग्रेजों का जहाजी बेड़ा फ्रांसीसियों से कहीं अधिक मजबूत था। इसी कारण लैली अंग्रेजों से हारा था। फिर, उसे धन की भी कमी थी। इन्हीं सब

बातों ने भारत में फ्रांसीसी सत्ता को समाप्त कर दिया और अंग्रेजों ने धीरे-धीरे अपना प्रभुत्व बढ़ाकर भारत पर अपना आधिपत्य जमा लिया।

अंग्रेजों की बंगाल विजय और हैदरअली का उत्कर्ष

९. मुर्शीद कुली खां और उसके उत्तराधिकारी—मुर्शीद कुली खां पहले एक दीवान था, जिसे औरंगजेब ने पद-वृद्धि द्वारा बंगाल का गवर्नर बनाया था। मुर्शीद कुली खां योग्य शासक था और उसने बंगाल में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद में स्थापित की थी। १७२७ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका जामाता शुजाउद्दीन गद्दी पर बैठा। वह भी नाममात्र के लिए दिल्ली के अधीन था, अन्यथा उसका शासन एक स्वतन्त्र राजा के समान था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का सरफराज खां गद्दी पर बैठा। परन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् वह मारा गया और १७४० ई० में बिहार के गवर्नर अलीवर्दी खां ने बंगाल पर अधिकार कर लिया। अलीवर्दी खां ने मुहम्मदशाह को उपहार आदि भेजकर उससे अपने लिए एक फर्मान प्राप्त कर लिया। वह एक योग्य शासक था और मराठों के आक्रमणों से अपने राज्य की रक्षा के लिए उसने बड़ा प्रयत्न किया। १७५६ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पौत्र सिराजुद्दौला शासक बना और उसके शासन काल में अंग्रेजों ने बंगाल में अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

१०. सिराजुद्दौला के साथ अंग्रेजों के सम्बन्ध—१७१७ ई० में सम्राट फर्रुखसियर से फर्मान प्राप्त कर अंग्रेजों ने कलकत्ता और उसके पास अपनी कोठियां बना ली थीं। अंग्रेजों की कोठियों के पास ही फ्रांसीसी कोठियां भी बनी हुई थीं। अलीवर्दी खां ने इन दोनों को किलेबन्दी करने के विरुद्ध चेतावनी दी थी और उसके शासन काल में अंग्रेज और फ्रांसीसी आपस में लड़ न सके, यद्यपि कर्नाटक में इन दोनों में लड़ाई होती रही। सिराजुद्दौला के शासक बनने पर अंग्रेजों

और फ्रांसीसियों ने किलेबन्दी पुनः प्रारम्भ कर दी। सिराजुद्दौला को यह बात पसन्द न आई और उसने दोनों को रोका। फ्रांसीसियों ने उसका आदेश मान लिया, परन्तु अंग्रेज लोग किले आदि बनाते रहे। इसके अतिरिक्त अंग्रेज गवर्नर ड्रेक सिराजुद्दौला का पर्याप्त सम्मान भी नहीं करता था। अतः १७५६ ई० में सिराजुद्दौला ने अपनी सेना लेकर कलकत्ते पर आक्रमण कर दिया। सिराजुद्दौला के इस आक्रमण की कुछ इतिहासकारों ने आलोचना की है, जब कि कुछ अन्य विद्वान यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि इस आक्रमण के लिए अंग्रेज भी उत्तर-दायी थे। सम्भव है कि सिराजुद्दौला की हठधर्मी और युवावस्था इस आक्रमण के लिए किसी हद तक उत्तरदायी रही हो, परन्तु सिराजुद्दौला के साथ अंग्रेजों के जो सम्बन्ध थे, उन्हें देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह लड़ाई अवश्यम्भावी थी। ड्रेक इस आक्रमण के लिए तैयार न था। वह कलकत्ते से भाग निकला। कलकत्ता सिराजुद्दौला के हाथ आ गया। कहा जाता है कि इस समय कोई १४६ अंग्रेजों को, जिनमें औरतें और बच्चे भी थे, एक छोटी-सी कोठरी में बन्द कर दिया गया इनमें से अधिकांश दम घुटने से मर गये। इस घटना को कलकत्ता की ब्लैक होल की घटना (काली कोठरी कांड) कहा जाता है। इस घटना की सच्चाई के विषय में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है, तब भी वे इस बात से सहमत हैं कि इस दुःखद घटना में सिराजुद्दौला का कोई हाथ नही था।

११. प्लासी की लड़ाई—सिराजुद्दौला की विजय का समाचार मिलते ही क्लाइव ने मद्रास से एक विशाल सेना लेकर कलकत्ते पर आक्रमण कर दिया। उसके साथ पांच बड़े जहाज भी थे। क्लाइव ने १७५७ ई० में कलकत्ते पर पुनः अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौला ने कुछ समय तक उसका विरोध किया, परन्तु बाद में उसने क्लाइव से अनाक्रमण की संधि कर ली। इस संधि के अनुसार सिराजुद्दौला ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को उसके सब किले लौटा दिये। कम्पनी को

पुराने अधिकार और सुविधायें भी पुनः दे दी गईं और उसकी क्षति को पूरा करने का आश्वासन भी दिया गया। अंग्रेज कलकत्ते में अपने किले भी बनवा सकते थे। किन्तु यह शान्ति अल्पकाल ही रही। क्लाइव को यह ज्ञात हो गया था की सिराजुद्दौला के कुछ सरदार उस के विरुद्ध हैं। अतः क्लाइव ने उनसे मिलकर षडयंत्र रचे और सिराजुद्दौला को हटाने की योजना बनाई। अमीचन्द नामक एक व्यापारी भी इस षडयंत्र में सम्मिलित था। सिराजुद्दौला को पदस्त करके मीरजाफर गद्दी पर बैठाया जाने वाला था। योजना बन जाने के पश्चात् क्लाइव ने सिराजुद्दौला पर सन्धि भंग करने का आरोप लगाया और उस पर आक्रमण कर दिया। सिराजुद्दौला तुरन्त अपनी फौजें लेकर कलकत्ता को चल पड़ा। प्लासी के निकट दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई और नवाब की हार हो गई। अंग्रेजों ने मीर जाफर को नवाब बना दिया।

१२. मीर जाफर—मीर जाफर ने अपने वचन के अनुसार कम्पनी को एक करोड़ रुपया और चौबीस परगनों का प्रदेश दे दिया। क्लाइव को षडयंत्र सफल बनाने के उपलक्ष में २,३४,००० पौण्ड की नकद राशि भेंट की गई। उसे वार्षिक ३० हजार रुपये की आय की एक जागीर भी दी गई। १७५७ ई० में हुई प्लासी की लड़ाई का भारत के इतिहास में और विशेषकर अंग्रेजों के लिये बहुत महत्व है। इस लड़ाई के फलस्वरूप अंग्रेजों को पर्याप्त धन मिला, जिसे उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये प्रयोग किया। जिन परिस्थितियों में मीर जाफर नवाब बना, उनमें वह नाममात्र का नवाब था और वास्तविक शासन क्लाइव के हाथों में ही था। १७५९ ई० में मीर जाफर पर दिल्ली के शाहजादे ने आक्रमण किया, तो क्लाइव ने उसे परास्त करके भगा दिया। इन सब बातों के बावजूद भी मीर जाफर को अपनी हेय स्थिति पसन्द न थी। उसने तंग आकर डच लोगों से पत्र व्यवहार करके उनसे सहायता मांगी। डच अंग्रेजों से बहुत जलते थे और

उन्होंने मीर जाफर की प्रार्थना स्वीकार कर ली। परन्तु, क्लाइव ने उनके जहाज रोक लिये और १७५९ ई० में डच लोगों ने क्लाइव के हाथों करारी हार खाई। १७६० ई० में क्लाइव जब इङ्गलैंड, लौटा। तब बंगाल में अंग्रेजों की सत्ता अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी।

१३. मीरकासिम—मीर जाफर की दशा बड़ी शोचनीय हो गई थी। संधि की शर्तों के अनुसार उसे कम्पनी को काफी रुपया देना था। परन्तु उसके पास इतना धन न था। शासन वास्तव में अंग्रेजों का था और वे मीरजाफर को हर प्रकार से परेशान करते थे। अन्त में उन्होंने मीर जाफर को नवाब के पद से हटाकर उसके दामाद मीर कासिम को नवाब बनाया। नवाब बनने पर मीर कासिम ने अंग्रेजों को बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव के जिले दे दिये। कम्पनी के अधिकारियों को भी इनाम के रूप में लाखों रुपये दे दिए गये। मीर जाफर के साथ की गई सन्धि का यह स्पष्ट उल्लंघन था, किन्तु कम्पनी के कर्मचारियों ने अपनी मुट्ठी गरम करने के लिए यह सब किया।

मीर कासिम एक योग्य शासक था। उसने बंगाल की दशा सुधारने का बहुत प्रयत्न किया। वह अपनी राजधानी मुंगेर ले गया और उसने अंग्रेजों के शिकंजे से मुक्त होने का प्रयास किया। किन्तु, अंग्रेज बहुत शक्तिशाली बन चुके थे। उन्होंने उससे भी धन चाहा और व्यापार के लिये बहुत सी सुविधायें मांगी। कम्पनी के कर्मचारियों ने व्यापार की इन सुविधाओं का अनुचित लाभ उठाना शुरू कर दिया। स्थानीय व्यापारियों को इससे बहुत क्षति पहुंची। मीर कासिम ने अंग्रेजों की इस प्रवृत्ति का विरोध किया। किन्तु जब अंग्रेजों ने अपना भ्रष्टाचार पूर्ववत जारी रखा, तो उसने क्रोध में आकर व्यापार सम्बन्धी माल पर से कर उठा दिया। इससे अंग्रेज व्यापारियों में बड़ा असन्तोष फैला। पटना में एलिस नाम के एक अंग्रेज ने पटना पर कब्जा कर लिया। मीर कासिम ने उसका सामना किया, किन्तु वह जीत न सका। क्रोध में आकर उसने अंग्रेजों के कत्ल का हुक्म दे

दिया। पटना में एलिस और २०० अंग्रेज मौत के घाट उतार दिये गये।

१४. बक्सर की लड़ाई—पटना में तीसरी बार हार जाने पर मीर कासिम ने अवध आकर वहां के नवाब शुजाउद्दौला की सहायता प्राप्त की। बक्सर में १७६४ ई० में एक घमासान लड़ाई हुई। अंग्रेजों की सेना का नेतृत्व मेजर मुनरो ने किया था। देशी नवाबों की सेना इस लड़ाई में परास्त हो गई। मीर कासिम से लड़ाई हो जाने पर अंग्रेजों ने मीर जाफर को पुनः नवाब बना दिया। मीर जाफर को अंग्रेजों की हानि को पूरा करना पड़ा और उन्हें व्यापार की कई अन्य सुविधायें भी देनी पड़ीं। मीर जाफर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र नवाब बना। इस अवसर पर उसे अंग्रेजों को लाखों रुपये भेंट में देने पड़े। बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी मनमाना भ्रष्टाचार कर रहे थे और अनुशासन नहीं के बराबर था। इस स्थिति को ठीक करने के लिए क्लाइव को इंग्लैंड से पुनः भारत भेजा गया।

१५. क्लाइव का पुनरागमन—क्लाइव ने आते ही कम्पनी के कर्मचारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर किया। कम्पनी के कर्मचारी उपहार के रूप में काफी रुपया लेते थे और कुछ ने तो अपना निजी व्यापार भी चला रखा था। क्लाइव ने सब कर्मचारियों से लिखित रूप में स्वीकार करवा लिया कि वे भविष्य में बड़े उपहार न लेंगे। उसने व्यापार की एक सहकारी समिति भी बनाई थी, किन्तु कम्पनी के डायरेक्टरों द्वारा विरोध किये जाने पर वह समाप्त कर दी गई। क्लाइव ने इसके पश्चात् सेना में सुधार किये। उसने नवाब की फौजें कम कर दीं और सैनिकों का दुगना भत्ता भी बन्द करवा दिया। इस कार्यवाही का सैनिकों ने विरोध अवश्य किया होगा, परन्तु क्लाइव ने इन सुधारों को लागू करने में बड़ी सख्ती से काम लिया। जो अफसर इस्तीफा देना चाहते थे, उनका इस्तीफा मंजूर कर लिया गया। कम्पनी की स्थिति को सुधारने के पश्चात् क्लाइव ने अवध के नवाब की ओर ध्यान दिया।

१६. अवध के नवाब के साथ संधि और बङ्गाल का दोहरा शासन—क्लाइव ने बक्सर की लड़ाई में पराजित अवध के नवाब के साथ भी संधि कर ली। इस संधि के अनुसार नवाब ने इलाहाबाद और कड़ा के सूबे अंग्रेजों को दे दिये। अंग्रेजों ने ये सूबे दिल्ली के सम्राट शाह आलम को देकर उससे भी संधि कर ली। शाह आलम ने क्लाइव को बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी दे दी। दीवानी के आ जाने से कम्पनी की स्थिति काफी बदल गई। अब कम्पनी को राजस्व वसूल करने का अधिकार मिल गया। निजामत अर्थात् शासन और न्याय बङ्गाल के नवाब के ही पास रहे। इस व्यवस्था का, जिसे 'दोहरा शासन' कहा जाता है, सबसे बड़ा दोष यह था कि कम्पनी के हाथ में सत्ता चली गई, जबकि कम्पनी के ऊपर जिम्मेदारी कुछ भी न थी। इसके लिए शाह आलम को २६ लाख की वार्षिक पेन्शन दी गई। दो साल तक कड़ा परिश्रम करने के पश्चात् क्लाइव स्वदेश लौट गया। उसके शत्रुओं ने उसकी बुराई की और उसकी नियत पर सन्देह व्यक्त किया। इङ्गलैंड की पार्लियामेंट ने एक प्रस्ताव पास कर क्लाइव की सेवाओं की सराहना की। १७७४ ई० में क्लाइव ने आत्महत्या करके अपना जीवन समाप्त कर दिया।

१७ क्लाइव का मूल्यांकन—क्लाइव को भारत में ब्रिटिश सत्ता का वास्तविक संस्थापक कहा जा सकता है। वह निश्चय का पक्का और साहसी था। क्लाइव ने कठिनाइयों के समक्ष कभी सिर नहीं झुकाया। उसने कर्नाटक और बङ्गाल पर जिस प्रकार कब्जा जमाया, वह उसकी कार्य कुशलता के यथेष्ट प्रमाण हैं, किन्तु उसका नैतिक आचरण उच्च नहीं था। वह देशी शासकों से उपहार आदि लिया करता था। उसने वाटसन के जाली दस्तखत करके अमीचन्द को धोखा दिया था। किन्तु इन दोषों के होते हुए भी वह सुलझा हुआ राजनीतिज्ञ और दक्ष अफसर था। यही कारण है कि उसका मूल्यांकन करते

समय इन दोषों को विशेष महत्व नहीं दिया जाता।

१८. क्लाइव के उत्तराधिकारी—क्लाइव के पश्चात् दो गवर्नर—वेरेल्सट् और कार्टियर—आये। इन दोनों में कोई विशेष योग्यता नहीं थी। बङ्गाल के दोहरे शासन के दुष्परिणाम अब अनुभव किये जा रहे थे। १७७० ई० में बंगाल में बहुत भयंकर अकाल पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप बहुत लोग मर गए। खेती नहीं के बराबर हुई। परन्तु त्रस्त जनता को सहायता देने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की गई। कर और लगान पहले के ही तरह वसूल किए गए। उधर मरहठों ने शाह आलम को दिल्ली के सिंहासन पर बैठाने का वचन देकर उसे अपनी ओर मिला लिया था।

१९. कर्नाटक में हैदरअली का उदय—कर्नाटक में भी अंग्रेजों की स्थिति अच्छी न थी। हैदरअली नामक एक मुसलमान सैनिक ने मैसूर में अपना राज्य स्थापित कर लिया था। हैदरअली का जन्म साधारण परिवार में हुआ था। वह अशिक्षित था, किन्तु राजनीति में बड़ा चतुर था। मैसूर के नवाब के यहाँ सैनिक के पद से उन्नति कर वह उसका सेनापति बन गया था। सेनापति बनने के बाद उसने नवाब को गद्दी से हटाकर अपने आप को मैसूर राज्य का शासक घोषित कर दिया। उसने दक्षिण के छोटे-मोटे राज्यों को मिलाकर अपने राज्य का विस्तार कर लिया। किन्तु उत्तर में मराठों ने उसके प्रयत्न विफल कर दिये। मराठों ने उसे परास्त कर उससे हर्जाना भी वसूल किया। हैदरअली की मुहम्मद अली से पटती नहीं थी। अतः उसने निजाम से संधि कर १७६७ ई० में उस पर आक्रमण कर दिया। परन्तु निजाम ने लड़ाई प्रारम्भ होते ही उसका साथ छोड़ दिया। हैदरअली ने विवश होकर अंगरेजों से संधि कर ली। अंगरेजों ने हैदरअली को वचन दिया कि उस पर आक्रमण हुआ तो वे उसकी सहायता करेंगे। हैदरअली को मराहटों से बड़ा खतरा था और इसीलिए उसने यह संधि की थी, किन्तु जब मरहटों ने उस पर आक्रमण किए तो, अंग्रेज तटस्थ बन

रहे। १७७२ ई० में वारेन हेस्टिंग्ज बंगाल का गवर्नर बना।

वारेन हेसिंटग्ज

२०. वारेन हेस्टिंग्ज के सुधार—वारेन हेस्टिंग्ज १७७२ ई० में बंगाल का गवर्नर बनाया गया। इससे पहले वह कम्पनी के राइटर के पद पर बंगाल में काम करता था। अतः बंगाल की स्थिति उसे अच्छी तरह ज्ञात थी। उसने गवर्नर बनते ही कम्पनी के शासन में सुधार किये और उसकी आर्थिक दशा को सुधारा। क्लाइव का दोहरा शासन असफल सिद्ध हो चुका था। हेस्टिंग्ज ने बंगाल और बिहार के डिप्टी नवाबों को निकाल दिया और कम्पनी ने यह निर्णय किया कि भविष्य में बंगाल, बिहार और उड़ीसा का राजस्व कम्पनी के एजेन्टों द्वारा वसूल किया जाये। खजाना मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ता ले जाया गया और वहाँ राजस्व के लिये एक केन्द्रीय बोर्ड स्थापित किया गया। नायब दीवानों के स्थान पर जिलों में अंग्रेज कलेक्टर रखे गये, जो लगान की वसूली के लिये थे। न्याय-व्यवस्था में सुधार किया गया और कलेक्टर के अधीन दीवानी और फौजदारी अदालतें रखी गईं। हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में सदर दीवानी और सदर निजामत (फौजदारी) अदालत की स्थापना की। सदर निजामत अदालत का सर्वोच्च अधिकारी मुसलमान न्यायधीश होता था। भूमि का पंच-साला बन्दोबस्त किया गया और सबसे अधिक रुपया देने वाले व्यक्ति को भूमि दी गई। इस प्रथा से बंगाल के किसानों को बहुत हानि हुई। मुगल सम्राट को २६ लाख रुपये की जो पेंशन स्वीकार की गयी थी, वह उसे बंगाल के अकाल के समय से नहीं दी गई थी। अतः वह काफी असंतुष्ट था। लेकिन हेस्टिंग्ज ने उसकी पेंशन बन्द कर दी। इससे कम्पनी की आर्थिक दशा किसी सीमा तक सुधर गई। पेंशन बन्द होने से पहले ही शाह आलम मराठों के बहकावे में आकर दिल्ली चला गया था।

२१. रोहिला युद्ध (१७७४)—रोहिलखण्ड दोआब के प्रदेश का एक छोटा राज्य था, जिसका शासक हाफिज रहमत खां नामक पठान था। मराठों ने रोहिलखण्ड पर आक्रमण कर हाफिज खां पर अपना

आतंक जमा लिया था। हाफिज रहमत ने १७७२ ई० में बनारस में नवाब वजीर से संधि कर ली। इस संधि के अनुसार रोहिलखण्ड पर मराठों का आक्रमण होने पर नवाब रोहिलों को सहायता देने के लिये वचनबद्ध था। इसके बदले में हाफिज ने नवाब को ४० लाख रुपये देना स्वीकार किया था। १७७३ ई० में मराठों ने आक्रमण किया और नवाब ने उन्हें मार भगाया। नवाब ने हाफिज से ४० लाख रुपये मांगे परन्तु हाफिज ने टाल दिया। नवाब ने हाफिज को परास्त करने के लिये अंग्रेजों की सहायता मांगी। हेस्टिंग्ज को धन की बहुत आवश्यकता थी और उसने नवाब का साथ देना स्वीकार कर लिया। १७७४ ई० में रोहिलों को हरा कर रोहिलखण्ड जीत लिया गया। हजारों रोहिले देश से बाहर खदेड़ दिये गये और यह प्रदेश शुजाउद्दौला के राज्य में मिला दिया गया।

इस युद्ध में नवाब को सहायता देने के लिये हेस्टिंग्ज की कड़ी आलोचना की गई है। रोहिलों ने नवाब के साथ हुई संधि का पालन नहीं किया था, यह ठीक है किन्तु, उन्होंने अंग्रेजों का कुछ भी बिगाड़ा नहीं था। हेस्टिंग्ज को चाहिये था कि वह नवाब और रोहिलों को आपस में निबटने देता। रोहिलखण्ड को जीतने से कोई अच्छा परिणाम नहीं हुआ। हाफिज योग्य शासक था और उसकी प्रजा सुखी थी। शुजाउद्दौला के अधीन चले जाने से रोहिलखण्ड की जनता के कष्ट बहुत बढ़ गये।

२२. रेग्युलेटिंग ऐक्ट (१७७३)— इस समय तक ईस्ट इंडिया कम्पनी की भारत में बड़ी शक्ति हो गयी थी। अतः ब्रिटिश शासन का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ। १७७२ ई० में कम्पनी के काम-काज की जांच की गई जिससे यह पता चला कि कम्पनी का खर्च दिन प्रतिदिन बढ़ रहा था और उसका दिवाला बहुत जल्दी निकलने वाला था। कम्पनी के डायरेक्टरों ने कहा कि उन्हें जब तक ऋण के तौर पर बहुत बड़ी राशि नहीं मिलती, तब तक वे भारत के व्यापार को नहीं चला सकते। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इस पर बहस कर दो ऐक्ट पास

किये। इनमें से पहले ऐक्ट के अनुसार कम्पनी को १४,००,००० पौण्ड का ऋण ४ प्रतिशत ब्याज की दर से दिया गया। दूसरा ऐक्ट रेग्यूलेटिंग ऐक्ट कहलाता है, जिसके मुख्य उपबन्ध इस प्रकार थे।

(१) बंगाल का गवर्नर भारत की समस्त ब्रिटिश बस्तियों का गवर्नर जनरल होगा तथा उसका कार्य काल पांच वर्ष रहेगा।

(२) गवर्नर-जनरल को सहायता देने के लिए चार सदस्यों की परिषद (कौंसिल) होगी, किन्तु सदस्यों के बहुमत से हुए निर्णयों को गवर्नर जनरल स्वीकार करेगा।

(३) गवर्नर-जनरल को मद्रास और बम्बई के प्रान्तों की विदेशी नीति के नियंत्रण का अधिकार होगा।

(४) भारत के राजस्व सम्बन्धी सभी कागज-पत्र सरकार (ब्रिटिश) के समक्ष पेश किए जायेंगे और उसे कम्पनी के दीवानी और सैनिक कार्यों की जानकारी भी दी जायेगी; और

(५) कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया जायेगा, जिस पर गवर्नर जनरल की कोई सत्ता न होगी।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट बन जाने से हेस्टिंग्ज को लाभ की अपेक्षा हानि ही हुई। इस ऐक्ट में गवर्नर जनरल और कौंसिल के सदस्यों के सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई थी और गवर्नर जनरल और मद्रास तथा बम्बई की सरकारों के सम्बन्ध किस प्रकार के हों, यह भी ठीक से बताया नहीं गया था। हेस्टिंग्ज के समय में कौंसिल के जो चार सदस्य थे, वे सदा उसका विरोध करते रहे। इन सब में सर फिलिप फ्रांसिस हेस्टिंग्ज का बहुत विरोध करता था। उसने हेस्टिंग्ज की कई शिकायतें की थीं, जिनमें नन्दकुमार नामक बंगाली ब्राह्मण द्वारा हेस्टिंग्ज पर घूसखोरी का आरोप प्रमुख था। नन्दकुमार ने कौंसिल के समक्ष हेस्टिंग्ज पर मीर जाफर की विधवा से साढ़े तीन लाख रुपए घूस लेने का आरोप लगाया। हेस्टिंग्ज ने इसे अस्वीकार कर कौंसिल की बैठक स्थगित कर दी। हेस्टिंग्ज पर घूसखोरी का मुकदमा चला,

किन्तु इसी बीच मोहन प्रसाद नामक व्यक्ति ने नन्दकुमार पर जालसाजी का मुकदमा चला दिया। यह मुकदमा जस्टिस इम्पे की अदालत (सुप्रीम कोर्ट) में चला और उसने नन्दकुमार को अपराधी पाकर उसे फांसी की सजा दे दी। इस प्रसंग में हेस्टिंग्ज पर आरोप लगाया जाता है, कि उसने जस्टिस इम्पे से कहकर नन्दकुमार को मृत्यु दण्ड दिलवाया था। किन्तु, यह आरोप तथ्यों पर आधारित नहीं है क्योंकि इम्पे के अतिरिक्त तीन और न्यायाधीश भी थे। यदि इम्पे हेस्टिंग्ज का पुराना मित्र था, तो एक अन्य न्यायाधीश सर फ्रांसिस का मित्र था। इसमें सन्देह नहीं कि नन्दकुमार पर जालसाजी का अभियोग सिद्ध हो चुका था। किन्तु, उसे इतनी कड़ी सजा नहीं दी जानी चाहिए थी। नन्दकुमार का मामला भारत के इतिहास की एक घटना मात्र है। उसका देश की राजनैतिक स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

२३. **प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध** (१७७५-८२)—भारत में अंग्रेजों के प्रमुख शत्रु मराठे थे। अंग्रेज उनके आपसी मामलों में दखल देकर अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते थे। १७७४ ई० में चौथे पेशवा माधव राव की मृत्यु ने अंग्रेजों को यह अवसर प्रदान कर दिया। माधव राव की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई नारायण राव गद्दी पर बैठा। एक वर्ष के भीतर ही नारायण राव की हत्या उसके चाचा राघोवा ने करवा दी और वह स्वयं पेशवा बन गया। मराठों के दरबार के शक्तिशाली समूह ने, जिनमें नाना फड़नवीस प्रमुख थे, राघोवा के उत्तराधिकार का विरोध किया। उस समय नारायण राव की पत्नी गर्भवती थी और इन सरदारों ने उसके पुत्र को पेशवा बनाने का निश्चय किया। राघोवा ने यह स्थिति देखकर अंग्रेजों से यह सहायता मांगी। उसने बम्बई सरकार से सूरत में एक संधि कर ली, जिसके अनुसार अंग्रेजों ने उसे सहायता का वचन दिया और बदले में राघोवा ने उन्हें साल्सेट और बसई देना स्वीकार किया। उसने युद्ध का खर्च उठाना भी स्वीकार किया।

बम्बई सरकार ने कर्नल कीटिंग के नेतृत्व में एक सेना भेजी, जिसने गुजरात पर हमला कर दिया। किन्तु इसी बीच हेस्टिंग्ज ने सूरत की संधि अमान्य करते हुए बम्बई सरकार की इस कार्यवाही की कड़ी आलोचना की। कर्नल अप्टन को पूना भेजा गया और उसने १७७६ ई० में नाना फड़नवीस के साथ नई संधि कर ली। पुरन्दर की इस संधि के अनुसार अंग्रेजों ने साष्टी प्रदेश अपने पास रखा और राघोबा को सहायता देना बन्द कर दिया। परन्तु बम्बई सरकार ने, जिसे कौन्सिल के सदस्यों का समर्थन प्राप्त था, इस संधि का उल्लंघन कर राघोबा को अपने यहाँ शरण दे दी। १७७८ ई० में पुनः लड़ाई छिड़ गई। मराठों ने बम्बई सरकार की सेना को बुरी तरह मार भगाया और बम्बई सरकार को बड़ी अपमानजनक शर्तों पर मराठों के साथ संधि करनी पड़ी। यह सन्धि बड़गांव में हुई और इसके अनुसार अंग्रेजों ने १७७३ ई० के पश्चात् मराठों से छीने अथवा जीते हुए सब प्रदेश उन्हें लौटा दिये और राघोबा को मराठों के हवाले करने का वचन दिया। परन्तु हेस्टिंग्ज ने इस सन्धि की शर्तों का उल्लंघन किया और उसने जनरल गोडार्ड के सेनापतित्व में एक सेना मराठों पर आक्रमण करने के लिए भेज दी। इसे प्रारम्भ में पर्याप्त सफलता मिली और मेजर पोफम ने ग्वालियर का किला जीत लिया। ग्वालियर में उस समय सिन्धिया वंश राज्य करता था। हेस्टिंग्ज ने महादाजी सिन्धिया को मराठों के दरबार से अलग करने के लिए संधि की बड़ी अच्छी शर्तें प्रदान कीं। महादाजी की मध्यस्थता से मराठों और अंग्रेजों के बीच १७८२ ई० में संधि हो गई। यह संधि सालबाई की संधि कहलाती है इसकी शर्तों के अनुसार अंग्रेजों ने राघोबा का पक्ष लेना छोड़ दिया और उसे तीन लाख की सालाना पेंशन दे दी गई। साष्टी और बसई के द्वीप अंग्रेजों को दे दिये गये। अंग्रेजों ने जमुना नदी के पश्चिम का सारा प्रदेश सिंधिया को लौटा दिया।

२४. मैसूर की दूसरी लड़ाई (१७८०-८४)— १७७८ ई० में

अमेरिका में अंग्रेज और फ्रांसीसियों के बीच लड़ाई छिड़ जाने से भारत में भी उसकी प्रतिक्रिया हुई। अंग्रेजों ने पांडेचेरी को जीत कर मलाबार तट पर स्थित महाद्वीप पर अधिकार कर लिया। माही द्वीप उस समय हैदरअली के राज्य में था। उसे अंग्रेजों की गतिविधि पर बहुत क्रोध आया। अंग्रेजों से उसकी पहले भी अनबन थी। मराठों से आतंकित होकर उसने अंग्रेजों से जो संधि की थी, उसका अंग्रेजों ने पालन नहीं किया था। उसी समय से वह बदला लेने की ताक में था। उसने निजाम के साथ गठबन्धन कर लिया उधर निजाम ने राघोवा के द्वारा कुछ मराठा राज्यों को अपने पक्ष में कर लिया। इस प्रकार हैदरअली ने एक बड़ी सेना लेकर १७८० ई० में कर्नाटक पर चढ़ाई कर दी।

मद्रास में उस समय अत्यन्त निकम्मे अफसर थे। हैदरअली ने कर्नल बेली को मार डाला। इस प्रकार उसके हाथ अर्काट आ गया। अंग्रेजों के लिए यह काल बहुत संकट का था। परन्तु हेस्टिंग्ज ने इन सब संकटों का सफलतापूर्वक सामना किया। उसने मद्रास के अफसरों को पदच्युत कर दिया और सर आयर कूट के नेतृत्व में बंगाल से एक अच्छी सेना भेज दी। कूट ने हैदरअली को परास्त कर दिया। १७८२ में मराठों के साथ अंग्रेजों ने जो संधि की थी, उसके अनुसार हैदरअली को मराठों की सहायता मिलनी बन्द हो गयी। इस हार के एक वर्ष के भीतर ही हैदरअली की मृत्यु हो गई।

२५. हैदरअली का चरित्र—हैदरअली की मृत्यु से भारतीय राजनीति के क्षेत्र से एक कुशल योद्धा और योग्य शासक उठ गया। वह पढ़ा-लिखा न था, किन्तु उसमें बुद्धिमत्ता की कमी न थी। वह कई भाषाओं का ज्ञाता था और युद्ध और कूटनीति की गूढ़ बातों को बड़ी सरलता से सुलझा लेता था। उसका शासन अच्छा था और हिन्दू और मुसलमान दोनों समान दृष्टि से देखे जाते थे। उसके राज्य में हिन्दुओं को भी उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। राज्य में

उसका बहुत आतंक था क्योंकि वह अपराधियों के साथ बड़ी क्रूरता का व्यवहार करता था। एक साधारण सैनिक के पद से इतने बड़े राज्य का शासक बन जाना उसकी योग्यता का परिचायक है।

हैदरअली की मृत्यु के पश्चात् उसके लड़के टीपू सुल्तान ने युद्ध जारी रखा। टीपू भी हैदरअली के समान कुशल योद्धा था। १७८३ ई० में उसने ब्रिगेडियर मैथ्यूज को उसकी सेना समेत बन्दी बना लिया था। इसी बीच यूरोप में शांति हो जाने का समाचार यहाँ पहुँचा। अतः १७८४ में टीपू और अंग्रेजों के बीच संधि हो गई। मंगलोर की संधि के अनुसार उभय पक्षों ने एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश और युद्ध-बन्दी लौटा दिये।

२६. चेतसिंह का निष्कासन—पिछले आठ वर्षों में भारत में अंग्रेजों के सामने कई कठिनाइयां आईं, जिनको हल करने का श्रेय हेस्टिंग्ज को प्राप्त है। अंग्रेजों को भारत के देशी नरेशों के साथ लड़ाइयां भी करनी पड़ी थीं, जिसके फलस्वरूप खर्च बहुत बढ़ गये। हेस्टिंग्ज को इंगलैंड से सहायता मिलने की कोई आशा न थी। अतः उसने भारत में ही धन प्राप्त करने के लिए उपाय किये, जो न्यायोचित नहीं कहे जा सकते।

धनाभाव से दुःखी होकर हेस्टिंग्ज ने बनारस के राजा चेतसिंह से बड़ी रकम लेनी चाही। चेतसिंह ने १७७५ ई० से कम्पनी की सत्ता स्वीकार कर ली थी और वह कम्पनी को वार्षिक कर भी देता था। हेस्टिंग्ज ने उससे वार्षिक कर के अतिरिक्त ५ लाख रुपये मांगे। चेतसिंह ने थोड़ा-बहुत विरोध करने के पश्चात् ५ लाख रुपये दे दिए। इसी प्रकार उससे और भी रकमें ली गईं। एक बार उससे १००० घुड़सवार देने को कहा गया। राजा ने इस मांग को पूरा करने में कुछ आनाकानी की। अतः हेस्टिंग्ज उससे ५० लाख रुपये का जुर्माना वसूल करने के उद्देश्य से स्वयं बनारस आ धमका। उसने चेतसिंह को गिरफ्तार करना चाहा किन्तु उसके सैनिकों ने ऐसा न होने दिया।

चेतसिंह ग्वालियर भाग गया और उसका राज्य उसके भतीजे को दे दिया गया, जिसने कम्पनी को ४० लाख रुपये कर देना स्वीकार कर लिया। चेतसिंह को निष्कासित कर हेस्टिंग्ज ने उसके साथ बहुत अन्याय किया। कम्पनी की आर्थिक दशा निस्संदेह गिर गई थी, फिर भी हेस्टिंग्ज को धन प्राप्त करने के लिए ऐसे ढंग न अपनाने चाहियें थे।

२७. अवध की बेगमें—हेस्टिंग्ज ने चेतसिंह के साथ जो व्यवहार किया था, उससे भी बुरा व्यवहार उसने अवध की बेगमों के साथ किया। अवध के नवाब वजीर ने कई वर्षों से कम्पनी को कर नहीं दिया था। हेस्टिंग्ज ने उसे जब कर देने के लिए बाध्य किया, तो उसने यह कहा कि अपनी माता और दादी की सम्पत्ति प्राप्त कर लेने पर ही वह कर दे सकेगा। अवध की इन बेगमों के पास कोई २०,००,००० पौंड के लगभग सम्पत्ति थी। १७७५ ई० में इस में से छोटी बेगम ने आसफउद्दौला को कुछ धन दिया था, किन्तु वह इस शर्त पर कि भविष्य में फिर कभी वह या कम्पनी उससे कोई रुपया न मांगेंगे। हेस्टिंग्ज ने नवाब के सुझाव को मान लिया और उसने तुरन्त अपनी सेनाएं अवध भेज दीं। अवध की बेगमों पर मनमाने अत्याचार किए गये और नवाब ने उनकी सारी सम्पत्ति हड़प ली। नवाब ने इसमें से १,००,००० रु० हेस्टिंग्ज को दे दिए। इसमें संदेह नहीं कि यह धन कम्पनी के काम-काज के लिए ही खर्च हुआ तथापि इस अवसर पर संधि का उल्लंघन कर हेस्टिंग्ज ने जिस क्षुद्र भावना का परिचय दिया, वह उससे कदापि अपेक्षित न थी।

हेस्टिंग्ज के इन कार्यों से इंगलैंड के लोग रुष्ट हो गये। उसके विरोधियों ने भी उसकी करतूतों का नमक-मिर्च मिलाकर वर्णन किया। हेस्टिंग्ज ने गवर्नर के पद से इस्तीफा दे दिया और वह इंगलैंड चला गया।

२८. पिट का इंडिया ऐक्ट (१७८४)—रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष प्रशासन में स्पष्ट दिखाई देने लगे और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सदस्यों

ने कम्पनी के सुचारु प्रबन्ध के लिए १७८४ ई० में पिट का इंडिया ऐक्ट पास किया। इस ऐक्ट के फलस्वरूप कम्पनी के गठन और नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कम्पनी के दीवानी और सैनिक कामकाज की देखभाल के लिए इंगलैंड में एक नियन्त्रण बनाया गया, जिसमें छः कमिश्नर थे। भारत के साथ किये जाने वाले पत्र-व्यवहार पर इस बोर्ड का पूर्ण नियंत्रण था। गवर्नर जनरल की कौंसिल में केवल तीन सदस्य रखे गये और सब प्रान्त इस कौंसिल के अधीन कर दिए गये। इस प्रकार रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के कुछ दोष दूर कर दिये गये और भारत में अंग्रेजी शासन पर ब्रिटिश सरकार का पर्याप्त नियंत्रण हो गया। गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल के निर्णय के विरुद्ध भी कार्य करने का अधिकार मिल गया।

२६. **हेस्टिग्ज का अभियोग**— स्वदेश लौटने पर हेस्टिग्ज पर अभियोग लगाकर उसका मुकदमा हाउस आफ कामन्स के समक्ष चलाया गया। यह मुकदमा सात साल तक चला, किन्तु हेस्टिग्ज सभी अभियोगों से मुक्त कर दिया गया। १८१८ ई० में ८५ वर्ष की आयु में हेस्टिग्ज की मृत्यु हो गई।

३०. **हेस्टिग्ज का मूल्यांकन**—हेस्टिग्ज अत्यन्त योग्य और परिश्रमी था। उसने अपनी योग्यता के बल पर एक क्लर्क के पद से गवर्नर जनरल का पद प्राप्त किया था। वह कुशल योद्धा और कूटनीतिज्ञ भी था। उसने अपनी दूरदर्शी कार्यवाही से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पक्की कर दी। इसमें सन्देह नहीं कि अपने कार्य को पूरा करते समय वह उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रखता था, किन्तु कम्पनी की दशा उन्नत करने के लिए उसने कोई कसर उठा न रखी थी। इस कार्य में उसे इतनी लगन थी कि सर फ्रांसिस जैसे विरोधियों की कटु आलोचना होते हुए भी वह अपने पथ पर डटा रहा। हेस्टिग्ज की सेवाओं के लिए ब्रिटिश जनता सदैव उसकी ऋणी रहेगी।

लार्ड कार्नवालिस

१७८६ ई० तक कम्पनी देशी नरेशों के साथ लड़ाई करने के पक्ष में नहीं थी। युद्ध और विवाद को जहाँ तक सम्भव हो सके टाल दिया जाता था। डायरेक्टरों ने गवर्नर जनरलों को आदेश दिए कि वे देश के आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप न करें। तब भी भारत में स्थिति ऐसी थी कि गवर्नर जनरल दखल दिये बिना नहीं रह सकते थे। १७८६ ई० के पश्चात् कम्पनी की नीति में अन्तर आ गया और ब्रिटिश राज्य की निरन्तर प्रगति होती गई। हेस्टिंग्ज के भारत से चले जाने पर कौंसिल के एक सदस्य मैकफर्सन को गवर्नर जनरल बनाया गया। मैकफर्सन डेढ़ वर्ष तक गवर्नर जनरल रहा। किन्तु, उसके काल में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। १७८६ ई० में एक कानून बनाकर गवर्नर जनरल को सेना का प्रधान (कमांडर-इन-चीफ) भी बना दिया गया और आवश्यकता होने पर उसे कौंसिल के बहुमत को अमान्य करने की शक्ति भी दे दी गई। इससे गवर्नर जनरल की स्थिति बहुत दृढ़ हो गयी और वह कौंसिल के सदस्यों के प्रभाव से मुक्त हो गया।

२१. **कार्नवालिस का आगमन और उसके सुधार**—मैकफर्सन के पश्चात् कार्नवालिस को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया। १७८६ ई० में किए गए सुधारों से कार्नवालिस की स्थिति सुदृढ़ हो गई थी और उसने आते ही कम्पनी के शासन, संगठन आदि में सुधार करना आरम्भ किया। कार्नवालिस के तीन सुधार महत्वपूर्ण हैं:—(१) कम्पनी की व्यवस्था में सुधार (२) बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त और (३) न्याय व्यवस्था में सुधार।

(१) **कम्पनी की व्यवस्था में सुधार**—कार्नवालिस गवर्नर जनरल के पद के लिए विशेष रूप से चुनकर भेजा गया था क्योंकि उसे शासन का पर्याप्त अनुभव था। १७८६ ई० के कानून द्वारा वह भारत में सेना का प्रधान भी बन गया था। और उसे कौंसिल के बहुमत को

उपेक्षा का अधिकार भी प्राप्त था। अतः उसकी स्थिति वारेन हेस्टिंग्ज से कहीं अच्छी थी और उसने अपना काम बड़ी निर्भीकता और आत्मविश्वास के साथ किया। कम्पनी के कर्मचारी अब भी भ्रष्टाचार में लिप्त थे। उनमें से कई कर्मचारी अपने रिश्तेदारों के नाम से निजी व्यापार कर बड़ी आमदनी कर रहे थे। कम्पनी के उच्च अधिकारी घूस, उपहार और भेंट आदि ग्रहण कर अपनी स्वार्थसिद्धि में व्यस्त थे। कार्नवालिस ने आते ही उनका भ्रष्ट आचरण समाप्त करवा दिया। उसने अधिकारियों को कमीशन देने की प्रथा समाप्त कर उन्हें निश्चित वेतन देने की प्रथा चलाई। वारेन हेस्टिंग्ज के समय में कलेक्टर लगान भी वसूल करते थे और मुकदमे भी निबटाया करते थे। कार्नवालिस ने यह अनुभव किया कि इन दोनों कार्यों को कलेक्टर के ऊपर छोड़ देने से कलेक्टर की सत्ता बहुत बढ़ जाती है अतः उसने कलेक्टरों को न्यायदान की शक्ति से वंचित कर दिया। कलेक्टरों पर केवल लगान वसूली आदि का दायित्व रह गया।

(२) **बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त**—कार्नवालिस जिस समय भारत आया, उस समय बंगाल में लगान के लिए वार्षिक बन्दोबस्त की व्यवस्था प्रचलित थी। इसके कारण कम्पनी के लगान वसूल करने वाले अधिकारियों में बहुत भ्रष्टाचार फैला था। जमींदार अपना लगान बचाने के लिए उन्हें हर साल घूस, उपहार और भेंट देकर अपनी ओर बनाये रखते थे। इससे कम्पनी सदा घाटे में रहती थी। कार्नवालिस ने वह देखा कि जब तक लगान का सालाना बन्दोबस्त जारी रहेगा, तब तक कर्मचारी भ्रष्ट ही रहेंगे और कम्पनी को पूरा लगान भी नहीं मिलेगा। अतः उसने विचार-विमर्श के पश्चात् लगान का स्थायी बन्दोबस्त लागू कर दिया। इस प्रकार १७९० ई० में जमींदारी का बन्दोबस्त अस्तित्व में आया।

लगान के स्थायी बन्दोबस्त का प्रभाव सरकार, जमींदार और

किसानों पर भी पड़ा। सरकार को पर्याप्त हानि हुई, क्योंकि जमीन की कीमत बढ़ जाने पर भी उसे उतना ही लगान मिलता था। किन्तु सरकार हर साल की नाप-तोल के झंझट से बच गई। जमींदारों की स्थिति बहुत अच्छी हो गई। वे समृद्ध हो गये और फलस्वरूप अंग्रेजी सरकार के प्रति उनकी निष्ठा बढ़ गई। बहुत सी बंजर भूमि कृषि योग्य बना ली गई और जमींदारों ने बहुत धन कमाया। जमींदारों के धनी हो जाने से व्यापार और वाणिज्य को भी पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। किसानों को स्थायी बन्दोबस्त से कोई लाभ न हुआ। उनसे जमींदार मनमाना लगान वसूल करते थे। मालगुजार के कारिन्दे उन्हें बहुत तंग करते थे। किसानों के अधिकारों की खुल कर उपेक्षा होती थी परन्तु उन्हें कानून आदि का पर्याप्त ज्ञान न होने से कभी चैन नहीं मिलता था।

(२) **न्याय व्यवस्था में सुधार**—भूमि का बन्दोबस्त स्थायी हो जाने से न्याय-व्यवस्था में सुधार करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। कार्नवालिस ने ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था के ढांचे पर भारत में अदालतें स्थापित कीं। न्यायाधीश अंग्रेज ही बनाये गये परन्तु हिन्दू और मुसलमान धर्मों के रीतिरिवाज और प्रथाओं की जानकारी देने के लिए उनके आधीन हिन्दू और मुसलमान कर्मचारी रखे गये। कलक्टरों से न्यायदान का काम ले लिया गया और उन पर केवल लगान वसूली का दायित्व रह गया। जिले का मुख्य अधिकारी जिला न्यायाधीश बनाया गया। पुलिस विभाग और मजिस्ट्रेट भी न्यायाधीशों के अधीन कर दिये गये। इस प्रकार न्यायाधीश पर अपने जिले में अमन-चैन बनाये रखने का दायित्व भी आ गया। छोटे-मोटे मुकदमे मुन्सिफ और सदर अमीन निबटाते थे, उन्हें निबटाये गये मुकदमों की संख्या के आधार पर कुछ कमीशन दिया जाता था। चार प्रान्तीय न्यायालय स्थापित किये गये, जिनमें प्रत्येक में तीन अंग्रेज न्यायाधीश थे। दीवानी मामलों की अपील सदर-दीवानी अदालत में होती थी, जिनमें गवर्नर जनरल

और कौंसिल के सदस्य बैठते थे। पुलिस विभाग की सुविधा के लिए प्रत्येक जिले को कई क्षेत्रों में बाँट दिया गया था। ऐसे प्रत्येक क्षेत्र में एक दरोगा रखा गया, जिसके अधीन पुलिस और गाँव के मुखिया थे। ये दरोगा जिला न्यायाधीश के आधीन थे।

३२. कार्नवालिस की व्यवस्था के दोष—कार्नवालिस ने कंपनी के शासन में जो सुधार किए, उनका आदर्श निस्सन्देह उच्च था। किन्तु वे सुधार इस देश के लिए कई बातों में अनुकूल न थे। लगान का स्थायी बन्दोबस्त जमींदारों की स्थिति की पूरी जानकारी पर आधारित नहीं था। कलक्टरों ने जिन जमीनों का स्थायी बन्दोबस्त किया, उनके जमींदारों के अधिकार उनकी जमींदारी का क्षेत्र और जमीन की किस्म आदि के विषय में उन्हें सम्भवतः बहुत कम ज्ञान था। जमींदारों को दिये गये गांवों की सीमायें निश्चित न थीं, अतः उन्हें बहुत सी बंजर भूमि मुफ्त में मिल गई थी। इसके अतिरिक्त किसानों के अधिकार भी स्पष्ट नहीं किये गये थे। कलक्टर जिले के मुख्य स्थान में ही रहता था। अतः उसे लोगों की दशा जानने का कोई अवसर नहीं मिलता था। जिला न्यायाधीश की भी यही स्थिति थी। वह केवल मुकदमे लड़ने वालों की स्थिति ही जान पाता था। कार्नवालिस भारतीयों को योग्य नहीं समझता था, अतः उसने किसी भारतीय को उच्च पद पर नियुक्त नहीं किया।

कार्नवालिस के न्याय-व्यवस्था के सुधार भी सफल नहीं कहे जा सकते। नए कानून अवश्य बनाये गये, किन्तु जनता को उनकी जानकारी देने के कोई साधन नहीं थे। कानून अंग्रेजी में होते थे और कलकत्ते में इने-गिने भारतीय अंग्रेजी पढ़ सकते थे। इन कानूनों का बंगाली में अनुवाद कर उन्हें जिला के मुख्य स्थान में रखा गया। किन्तु ग्रामीण जनता फिर भी उन्हें ग्रहण न कर सकी। इसका परिणाम यह हुआ कि कानून समझने वाले थोड़े व्यक्तियों की बन आई और उन्होंने उसका लाभ उठाया। न्यायदान की व्यवस्था ब्रिटिश न्यायालयों

के समान थी। गवाहों को शपथ दिला कर उनसे तथ्य पूछे जाते थे। किन्तु, शपथ लेना हिन्दुओं को बुरा लगता था और इसलिए बहुत से मुकदमों में झूठे गवाह पेश किए जाते थे। अपील के पर्याप्त अवसर थे। फलस्वरूप पैसे वाले लोग मुकदमा हार जाने पर भी अपील करके विरोधी पक्ष को परेशान करते थे। सारांश यह कि धनी-मानी व्यक्तियों को इस व्यवस्था से कई लाभ थे। "इसके अतिरिक्त न्याया-लयों की संख्या कम होने से उनका काम बहुत बढ़ गया था। मुकदमें वर्षों पश्चात् निबटते थे। लोग कहा करते थे कि हमारा दायर किया मुकदमा हमारे नाती के जीते-जी निबट जाये तो भी बहुत समझो।"*

३३. कार्नवालिस की विदेशी नीति—कार्नवालिस पिट के ऐक्ट के द्वारा निश्चित की गई तटस्थ नीति का पालन करना चाहता था। किन्तु देश में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई कि उसे तटस्थ नीति को त्यागना पड़ा। उसने शाहआलम को दिल्ली के सिंहासन पर कब्जा जमाने में सहायता करने से साफ इनकार कर दिया। कार्नवालिस के गवर्नर-जनरल बनने के पश्चात् महादाजी सिंधिया ने, जो एक शक्तिशाली मराठा राजा था, शाहआलम के सहायक के नाते २६ लाख रुपये की वार्षिक पेंशन मांगी थी। यह पेंशन क्लाइव ने बंगाल की दीवानी के बदले शाहआलम को देना स्वीकार किया था, परन्तु कुछ समय पश्चात् यह पेंशन बन्द कर दी गई थी। महादाजी की इस मांग का समाचार पाकर कार्नवालिस ने उसे तुरन्त चेतावनी दी कि पेंशन की मांग करना उसके लिए ठीक नहीं होगा। महादाजी केवल कार्नवालिस की क्षमता देखना चाहता था, अतः उसने बात वहीं समाप्त कर दी। पिट के इंडिया ऐक्ट के अनुसार उत्तरी भारत में काम करने में कार्नवालिस को विशेष कठिनाई नहीं हुई। किन्तु दक्षिण में टीपू सुलतान सिर उठा रहा था। अतः उसे दबाने के लिए कार्नवालिस को उसके साथ लड़ाई करनी पड़ी। टीपू ने त्रावणकोर के

J. Allan, Wolseley Haig and Dodwell—The Cambridge Shorter History of India.

राजा पर, जो अंग्रेजों का मित्र था, आक्रमण कर दिया। इसके पहले कार्नवालिस ने मद्रास के गवर्नर के द्वारा टीपू के पास संदेश भेजा था कि त्रावणकोर पर आक्रमण अंग्रेजो पर आक्रमण समझा जायेगा। किन्तु टीपू ने इस चेतावनी की उपेक्षा कर आक्रमण कर दिया। यह लड़ाई मैसूर की तीसरी लड़ाई कहलाती है, किन्तु इस लड़ाई में टीपू की स्थिति हैदरअली से, जिसने १७८० ई० में अंग्रेजों पर आक्रमण किया था, भिन्न थी। टीपू ने पहले निजाम व मराठों को समाप्त करने का तथा फिर अंग्रेजों की सत्ता समाप्त कर देने का इरादा किया था। इसी उद्देश्य से उसने सहायता प्राप्त करने के लिए अपना एक दूत पेरिस भेजा था। फ्रांस ने टीपू को प्रत्यक्ष सहायता तो नहीं दी, किन्तु उसकी शह मिलने से टीपू का हौसला बहुत बढ़ गया। कार्नवालिस ने निजाम और पेशवा से अलग-अलग संधि कर १७९० ई० में टीपू पर आक्रमण कर दिया।

कार्नवालिस को प्रारम्भ में तो सफलता नहीं मिली। अतः १७९१ ई० में वह स्वयं एक सेना लेकर टीपू को दबाने के लिए मैसूर राज्य में जा पहुंचा। उसने बंगलोर पर अधिकार कर लिया और वह टीपू की राजधानी सेरिंगपट्टम (श्रीरंगपट्टम) की ओर बढ़ा। किन्तु रसद समाप्त हो जाने के कारण वह टीपू की राजधानी पर घेरा न डाल सका। अगले वर्ष उसने पूर्णरूप से तैयार होकर सेरिंगपट्टम पर घेरा डाल दिया। टीपू को कार्नवालिस की सब शर्तें माननी पड़ीं। टीपू ने अपने राज्य का एक बहुत बड़ा भाग अंग्रेजों को दे दिया। साथ ही उसने एक करोड़ रुपया हर्जाने के रूप में देना भी स्वीकार किया। इन शर्तों के पूरे होने तक उसने अपने दो लड़के जमानत के तौर पर अंग्रेजों को सौंप दिये। टीपू से प्राप्त प्रदेश अंग्रेजों तथा उनके आधीन देशी राज्यों ने आपस में बांट लिया।

सर जान शोर

९४. सर जान शोर—१७९३ ई० में कार्नवालिस सेवा-निवृत्त होकर इंगलैंड लौट गया। उसके पश्चात् सर जान शोर को गवर्नर-

जनरल बनाया गया। सर जान शोर ने पिट के इंडिया ऐक्ट का शब्दश: पालन किया। निजाम अंग्रेजों का मित्र था और १७९५ ई० में जब मराठों ने उसके प्रदेश पर आक्रमण कर दिया तो उसने अंग्रेजों से सहायता मांगी। शोर ने मराठों से शत्रुता मोल लेने के डर से निजाम को कोई सहायता नहीं दी। फलस्वरूप, निजाम हार गया और उसको बड़ी हानि हुई। साथ ही वह अंग्रेजों का शत्रु भी बन गया। किन्तु मराठों के आपसी कलह के कारण ब्रिटिश साम्राज्य पर कोई आंच नहीं आई।

टीपू ने यह अच्छा अवसर देख कर अंग्रेजों को हरा देने का निश्चय किया। इस बार उसने फ्रांस और अफगानिस्तान से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। अफगानिस्तान का जमान शाह पंजाब पर चढ़ आया था, परन्तु इसी बीच अफगानिस्तान में कुछ गड़बड़ी हो गयी, जिसके कारण वह लौट गया। जमान शाह के आक्रमण ने सर जान शोर को अवध के साथ कड़ाई की नीति बरतने के लिए प्रेरित किया। आसफउद्दौला की मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का नवाब बना, किन्तु वह एकदम निकम्मा था। शोर ने उसे हटा कर आसफउद्दौला के भाई सादत अली खां को अवध का नवाब बना दिया। सादत अली खां ने अंग्रेजों को इलाहाबाद का किला दे दिया और प्रति वर्ष ७६ लाख रुपया देना भी स्वीकार किया।

सर जान शोर कम्पनी के राजस्व विभाग का कुशल कर्मचारी था, किन्तु गवर्नर जनरल के उच्च पद के लिए वह योग्य न था। उसके शासन से एक और बात स्पष्ट हुई कि देश के मामलों में कम्पनी द्वारा हस्तक्षेप आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गया था। शोर के सेवा निवृत्त होने पर १७९८ ई० में वेलेजली को गवर्नर जनरल बना कर भेजा गया।

प्रश्न

1. Explain the circumstances under which the

English and the French first come into conflict in South India.

किन परिस्थितियों में अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के बीच दक्षिण भारत में संघर्ष हुआ।

2. Explain the circumstances under which the English and the French intervened in the Arcot (Carnatic) War of succession. Give an account of the Second Anglo-French War in Arcot (Carnatic).

अर्काट (कर्नाटक) के उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़ों में अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों ने क्यों दखल दिया। अर्काट (कर्नाटक) में अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के द्वितीय युद्ध का वर्णन कीजिए।

3. Give main causes why the French failed to establish their Empire in India.

उन मुख्य-मुख्य कारणों का उल्लेख कीजिए, जिनके कारण फ्रांसीसी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में असफल रहे।

4. Explain the circumstances which made it possible for Clive to win an easy victory at Plassey over Siraj-ud-daula.

क्लाइव को किन कारणों से सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में पराजित करने में सफलता मिली, समझाइये।

5. Describe the administration of Mir Kasim and explain the circumstances under which war broke out between him and the British authorities.

मीर कासिम के शासन-प्रबन्ध का वर्णन कीजिए और यह बतलाइये कि अंग्रेजों के साथ उसका युद्ध क्यों हुआ?

6. Explain how did the British acquire Bengal and what do you understand by the 'Dual Administration system' of Bengal.

अंग्रेजों को बंगाल का शासन कैसे प्राप्त हुआ। बंगाल के 'दोहरे शासन' से आप क्या अर्थ समझते हैं।

7. Estimate the achievements of Clive. Why is he regarded to be the real founder of British Empire in India ?

क्लाइव की सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए। उसे भारत में अंग्रेजी राज्य का वास्तविक संस्थापक क्यों कहा जाता है ?

8. Estimate the character and describe the administration of Clive.

क्लाइव के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए और उसके शासन का वर्णन कीजिए।

9. Describe the conflict between Marathas, the Nizam and Hyder Ali for supremacy in South India.

दक्षिणी भारत में प्रभुता स्थापित करने के लिए मरहठों, निजाम तथा हैदरअली में जो संघर्ष हुए, उनका वर्णन कीजिए।

10. What were the causes which led to a war between the English and Hyder Ali ?

अंग्रेजों तथा हैदरअली में युद्ध क्यों हुआ ?

11. Describe how Warren Hastings consolidated British Power in India.

वारेन हेस्टिग्ज ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को कैसे शक्तिशाली बनाया ?

12. Bring out the main features of the administrative reforms of Warren Hastings.

वारेन हेस्टिंग्ज के शासन सम्बन्धी सुधारों की मुख्य-मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

13. Describe the circumstances leading to the passage of the Regulating Act. Discuss its main provisions.

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट किन परिस्थितियों में पास किया गया। उसके मुख्य उपबन्धों का वर्णन कीजिए।

14. Criticise the conduct of Warren Hastings in his treatment of Chetsingh and the Begums of Oudh.

चेतसिंह और अवध की बेगमों के साथ वारेन हेस्टिंग्ज का व्यवहार कैसा था ? आलोचना कीजिए।

15. How far is Warren Hastings responsible for the establishment of the British Power in India.

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना में वारेन हेस्टिंग्ज का कहाँ तक हाथ था ?

16. What administrative reforms were introduced by Lord Cornwallis.

लार्ड कार्नवालिस के शासन सम्बन्धी सुधारों का वर्णन कीजिए।

17. What do you know about the term 'Permanent settlement' in Bengal ?

बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त से आप क्या अर्थ समझते हैं ?

18. Give results of the weak policy of Sir John Shore.

सर जान शोर की दुर्बल नीति के परिणाम लिखिए।

19. Write short notes on :—

(1) Dupleix.

(2) Hyder Ali.
(3) Pitt's India Act.
(4) Tipu Sultan.
(5) Mir Jafar.
(6) The Black Hall.
(7) The Battle of Buxar.
(8) Sir John Shore.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए:—

(१) डूप्ले
(२) हैदर अली
(३) पिट का इण्डिया ऐक्ट
(४) टीपू सुल्तान
(५) मीर जाफर
(६) ब्लैक होल
(७) बक्सर का युद्ध
(८) सर जान शोर

—:०:—

अध्याय २८

भारत में अंग्रेजी राज्य का विस्तार

द्वितीय उत्थान

वेलेजली

१. वेलेजली—लार्ड वेलेजली को १७९८ ई० में भारत का गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा गया। इसके पूर्व हेस्टिंग्ज और कार्नवालिस गवर्नर-जनरल रह चुके थे। इन दोनों ने देश की विरोधी शक्तियों का संतुलन बनाये रखा था और कम्पनी के अस्तित्व को सुरक्षित रखा था। परन्तु वेलेजली ने यह देखा कि ऐसी नीति का पालन असम्भव था। भारत में फ्रांस का प्रभाव बढ़ रहा था। उधर यूरोप में फ्रांस और अंग्रेजों के बीच घमासान लड़ाई हो रही थी। फ्रांस का सम्राट नेपोलियन विश्वविजय की योजना बना रहा था। वेलेजली ने यह अनुभव किया कि इन परिस्थितियों में तटस्थता की नीति से लाभ होने की अपेक्षा हानि होने की सम्भावना अधिक है। अतः उसने देशी राज्यों को एक-एक करके समाप्त कर कम्पनी के अस्तित्व को सुरक्षित करने की नीति अपनाई। वह अत्यन्त योग्य शासक और साम्राज्यवादी था। अपने सात वर्ष के कार्यकाल में उसने कई देशी राज्यों को समाप्त कर कम्पनी के साम्राज्य का विस्तार किया।

वेलेजली ने सबसे पहले हैदराबाद में फ्रांसीसियों के प्रभाव को नष्ट किया। हैदराबाद के निजाम को खर्डे की लड़ाई में पर्याप्त क्षति उठानी पड़ी थी। उस समय अंग्रेजों ने उसका साथ न देकर उसे नष्ट कर दिया था। तब से उसके दरबार में फ्रांसीसियों का प्रभाव बढ़ रहा था। वेलेजली ने निजाम को समझा बुझाकर वहाँ से फ्रांसीसी

सेना को हटवा दिया। निजाम ने ब्रिटिश सेना को अपने यहाँ रखना स्वीकार किया। निजाम ने इस सेना का खर्च उठाना और अपनी विदेश नीति में कम्पनी का परामर्श लेना भी स्वीकार किया। फ्रांसीसी सेना के अधिकारी बन्दी बनाकर इंग्लैंड भेज दिये गये, जब कि उनके सिपाही अंग्रेज सेना में भर्ती हो गये। हैदराबाद से फ्रांसीसियों को हटाकर वेलेजली ने टीपू सुल्तान की ओर ध्यान दिया।

२. **मैसूर की चौथी लड़ाई (१७९९)**—टीपू आरम्भ से अंग्रेजों का विरोध कर रहा था। उसने अपने दूत फ्रांस तथा अन्य देशों को भेजे थे तथा भारत से अंग्रेजों को निकाल बाहर करने के लिए उनसे सहायता मांगी थी। अक्तूबर के महीने में वेलेजली को समाचार मिला, कि नेपोलियन ने मिस्र पर आक्रमण कर दिया है[1]। यह समाचार पाते ही उसने निश्चय कर लिया कि या तो टीपू को फ्रांसीसियों का साथ छोड़ देना चाहिए या यदि यह सम्भव नहीं तो टीपू को समाप्त कर दिया जाये। इधर मराठों का बल भी बढ़ रहा था। वेलेजली ने मराठों से गठबन्धन करना चाहा, किन्तु पेशवा ने यह स्वीकार न किया। निजाम से उसने संधि कर ली थी और उसके यहाँ से फ्रांसीसी सेना हटवा दी थी। वेलेजली ने टीपू से समर्पण करने के लिए कहा। टीपू फ्रांसीसी सहायता की बाट जोह रहा था इसलिए उसने हीले-हवाले करने आरम्भ कर दिए। वेलेजली ने उसकी चाल समझ कर उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

टीपू के खिलाफ हुई इस लड़ाई में जनरल डेविड वेयर्ड, कर्नल आर्थर वेलेजली (गवर्नर-जनरल का भाई) और जनरल स्टुअर्ट जैसे कुशल सेनानियों ने ब्रिटिश सेना का नेतृत्व किया। लार्ड हैरिस ने एक बड़ी सेना लेकर मैसूर की ओर पूर्व दिशा से बढ़ना आरम्भ किया। लार्ड हैरिस के साथ निजाम की सेना भी थी। उधर पश्चिम की ओर से जनरल स्टुअर्ट ने मोर्चा बढ़ाया। टीपू ने इनका मुकाबला बड़ी

---

१. नेपोलियन ने सहायता देने का वचन और संदेश टीपू को भिजवाया था किन्तु वह उसे मिल नहीं पाया।

बहादुरी से किया। परन्तु हैरिस ने उसे मालावली की लड़ाई में हरा दिया। टीपू ने भागकर अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टम में शरण ली। अंग्रेजों ने उसे यहां भी चैन से बैठने नहीं दिया। उन्होंने श्रीरंगपट्टम को घेर लिया और यहां की लड़ाई में टीपू वीरगति को प्राप्त हुआ। वेलेजली ने टीपू के राज्य के कुछ जिले निजाम को दे दिये। मराठों ने ये जिले लेने से इनकार कर दिया। अतः कम्पनी ने पश्चिम में कनारा, दक्षिण में कोयम्बटूर और पूर्व के कुछ जिले तथा श्रीरंगपट्टम का किला अपने राज्य में सम्मिलित कर लिए। टीपू का शेष राज्य पुराने राजवंश के एक हिन्दू बालक को राजा बनाकर दे दिया गया। टीपू के लड़कों को अच्छी पेंशन दी गई।

टीपू की हार से दक्षिण में अंग्रेजों की धाक जम गई। मराठे भी उनसे आतंकित हो गये। निजाम अंग्रेजों का अच्छा मित्र बन गया। उधर भारत पर आधिपत्य जमाने के फ्रांसीसी स्वप्न के साकार होने की संभावनायें सदा के लिए समाप्त हो गईं। टीपू सुलतान की हार से अंग्रेजों को बक्सर की लड़ाई से बंगाल में हुए लाभ की अपेक्षा कहीं अधिक लाभ हुआ।

३. **सहायक संधि**—दक्षिण में टीपू की हार के पश्चात् अंग्रेजों की एकछत्र सत्ता हो गई। वेलेजली ऐसी ही स्थिति उत्तरी भारत में भी निर्माण करना चाहता था। अतः उसने अब सहायक संधि की विस्तृत योजना बनाई। यह योजना नई नहीं थी क्योंकि क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज ने भी ऐसी संधियां की थीं। वे देशी नरेशों को सैनिक सहायता देकर बदले में उनसे भारी रकम लेते थे। जब कोई राजा रकम न दे पाता था, तो उसके राज्य का कुछ भाग कम्पनी के साम्राज्य में मिला दिया जाता था। वेलेजली की योजना में अन्तर इतना ही था, कि संधि करने वाले देशी नरेश ब्रिटिश सत्ता को स्पष्टरूप से सर्वोच्च मान लेते थे। संधि के पश्चात् उन्हें अंग्रेजों की अनुमति लिए बिना किसी अन्य देश के साथ लड़ाई या संधि करने का अधिकार नहीं रहता था। संधि करने वाले राजाओं के यहां

अंग्रेज सैनिक रखे जाते थे और राजाओं को उनका पूरा व्यय सहन करना पड़ता था। उनके दरबार में अंग्रेजों का एक दूत भी रखा जाता था।

वेलेजली द्वारा चलाई गई इस सहायक संधि ने अंग्रेजों की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ बना दी। भारत में उनकी सत्ता सर्वोच्च हो गई। उनकी एक विशाल सेना भी सदा तैयार रहती थी, जिसका सारा खर्च देशी राजे ही देते थे। देशी नरेशों की विदेशी नीति पर नियंत्रण हो जाने से भारत पर किसी यूरोपीय जाति के आक्रमण का संकट भी समाप्त हो गया। वेलेजली ने बड़ी कूटनीति से देशी राजाओं को संधि के लिए तैयार कर लिया। उनमें अधिकांश शासक अयोग्य और स्वार्थी थे। इससे वेलेजली का कार्य सरलता से सम्पन्न हो गया। भारत में इस प्रकार की संधि सबसे पहले हैदराबाद के निजाम ने स्वीकार की थी।

४. वेलेजली द्वारा साम्राज्य विस्तार—वेलेजली, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अत्यन्त कुशल और साम्राज्यवादी था। कम्पनी के साम्राज्य के विस्तार का एक भी अवसर उसने हाथ से जाने नहीं दिया। तंजोर में उत्तराधिकार के विषय में विवाद उत्पन्न होने पर वेलेजली ने वहां हस्तक्षेप किया। तंजोर के राजा ने कम्पनी से संधि कर तंजोर का राज्य कम्पनी को सौंप दिया और इसके बदले में उसे प्रतिवर्ष ४०,००० पौंड देने का आश्वासन दिया गया। सूरत में भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई थी। वेलेजली ने वहां के नवाब को हटाकर सूरत को कम्पनी के साम्राज्य में मिला लिया।

कर्नाटक में दोहरे शासन के कारण वहां की जनता को बहुत कष्ट था। वेलेजली को कुछ ऐसे पत्र भी मिले, जिनसे पता लगा कि टीपू के साथ कर्नाटक के नवाब की सांठ-गांठ थी। १८०१ ई० में कर्नाटक के नवाब की मृत्यु हो गई। वेलेजली ने तुरन्त हस्तक्षेप कर नवाब के लड़के को पेंशन दिलवा दी और कर्नाटक को कम्पनी के साम्राज्य में मिला लिया।

अवध में भी कर्नाटक जैसी दुर्व्यवस्था थी। आसफउद्दौला के शासनकाल में कम्पनी को कर नियमित रूप से नहीं मिलता था। शासन असंतोषजनक था। सैनिकों को वेतन न मिलने से वे भी असंतुष्ट थे। इन सब बातों के अतिरिक्त मराठों के आक्रमण की संभावना सदा बनी रहती थी। अवध को अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त होने से, वह अपना अस्तित्व बनाये रख सका था। आसफउद्दौला की मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का वजीर अली नवाब बना। वह योग्य शासक था किन्तु सर जान शोर ने उसे हटाकर सादत अली खां को अवध का नवाब बनाया था। सादत अली खां ने अफगानिस्तान के जमान शाह के संभाव्य आक्रमण के प्रतिकार के लिए अपने यहाँ रखे गये अंग्रेज सैनिकों की संख्या बढ़ाने के लिये कहा। वेलेजली ने नवाब का कहना मान लिया और उससे ५० लाख रु० कर के रूप में माँगे। नवाब ने विवश होकर इस्तीफा देना चाहा किन्तु वेलेजली की सहायता के आश्वासन पर उसने इस्तीफा वापिस लौटा लिया। वेलेजली ने तंग आकर तीन शर्तों पर उससे संधि कर ली। एक तो उसने नवाब से वित्तीय प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया, क्योंकि नवाब उचित प्रबन्ध नहीं कर सका था। दूसरे, उसने अवध के कुछ जिले कम्पनी के साम्राज्य में विलीन कर लेने के लिए माँगे। ये जिले ऐसे थे कि अवध पर आक्रमण करने वाला कोई भी बाहरी शासक इन जिलों में से होकर ही अवध तक पहुँच सकता था। तीसरी शर्त उसने यह रखी कि कम्पनी के अन्तर्गत अवध जैसा बदनाम शासन कम्पनी के लिए लज्जास्पद था इसलिए भविष्य में नवाब को गवर्नर-जनरल का परामर्श लेना आवश्यक होगा।

५. **वेलेजली और मराठे**—वेलेजली चाहता था कि उत्तरी भारत में भी कम्पनी की एकछत्र सत्ता स्थापित हो जाए। किन्तु, सिन्धिया, होल्कर और अन्य मराठा शासक बड़े शक्तिशाली थे। दुर्भाग्य से इनमें एकता न थी। अतः वेलेजली की इच्छा जल्दी ही पूरी हो गई। बाजीराव पूना की गद्दी पर था किन्तु नाना फड़नवीस ही वास्तविक

शासक था। १८०० ई० में नाना फड़नवीस की मृत्यु के पश्चात् पूना की गद्दी के लिए झगड़े होने लगे। १७९४ ई० में महादाजी सिन्धिया की मृत्यु के पश्चात् दौलतराव सिन्धिया ग्वालियर का शासक बना था। उसमें और होल्कर में पूना की गद्दी के लिए संघर्ष होने लगा। बाजीराव ने दो शक्तिशाली राजाओं से घबड़ाकर अंग्रेजों की शरण ली। उसने पहले तो सिन्धिया के साथ गठबंधन कर लिया। परन्तु जसवंत राव होल्कर ने सिन्धिया की सेना को परास्त कर पूना पर अधिकार जमाया। पूना में होल्कर की सेना ने बहुत लूटमार की। बाजीराव भागकर बेसीन पहुँचा। वलेजली ने बाजीराव को सहायक संधि स्वीकार करने पर सहायता करना स्वीकार किया। बेसीन में १८०२ ई० में बाजीराव और कम्पनी के बीच संधि हो गई।

इस संधि को करने में वेलेजली का उद्देश्य मराठा साम्राज्य के केन्द्रस्थान पूना में ब्रिटिश सत्ता का श्रीगणेश करना था। कई मराठों को वह संधि बहुत खली। इसी प्रकार इंगलैंड में भी वेलेजली की मराठा शासकों के मामलों में दखल देने की नीति की कड़ी आलोचना हुई। किन्तु वेलेजली अच्छी तरह जानता था कि मराठे एक होकर कम्पनी का सामना कर नहीं सकेंगे। अतः वह अपने कार्य में जुटा रहा। किन्तु, कुछ ही दिनों में यह स्पष्ट हो गया कि बाजीराव ने होल्कर से पीछा छुड़ाने के लिए ही संधि कर ली थी। बाजीराव ने प्रमुख मराठा शासकों से अंग्रेजों पर आक्रमण करने के लिए सहायता मांगी। परन्तु होल्कर उससे बहुत नाराज था और उसने सहायता देने से इन्कार कर दिया। गायकवाड़ ने भी बाजीराव का साथ नहीं दिया। केवल नागपुर का राजा और दौलतराव सिन्धिया अपनी-अपनी सेनायें लेकर अंग्रेजों पर आक्रमण करने के लिये चल पड़े। १८०३ ई० में लड़ाई आरम्भ हो गई। अंग्रेजों के सेनापति आर्थर वेलेजली ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया। उसने असोई की लड़ाई में सिंधिया और भोंसले की सेना को परास्त कर दिया। इसके पश्चात् उसने असीरगढ़ और बरहानपुर के किले जीत लिये। अतः

निरुपाय होकर सिन्धिया ने उससे संधि कर ली । अरगांव में भोंसले की भी हार हुई ।

उत्तरी भारत में वेलेजली को इससे भी अधिक सफलता मिली। जनरल लार्ड लेक ने अलीगढ़ पर आधिपत्य कर दिल्ली की लड़ाई में सिन्धिया को हरा दिया। मुगल सम्राट को कम्पनी के संरक्षण में ले लिया गया और उसे ९० हजार की वार्षिक पेंशन दे दी गई। सिंधिया ने अंग्रेजों के साथ संधि कर ली। जसवंत राव होल्कर अब तक तटस्थ था। १८०४ ई० में लेक ने उसे कम्पनी के साथ संधि कर लेने को कहा परन्तु जसवन्त राव ने संधि करने के स्थान पर लड़ाई-छेड़ दी। उसने जयपुर के प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। वेलेजली ने उसे दबाने के लिये जो सेना भेजी थी, वह हार गई और भागकर आगरे लौट आई। होल्कर ने दिल्ली पर आक्रमण किया किन्तु वह असफल रहा और इसके पश्चात् दीग और फर्रुखाबाद में भी उसकी हार हुई। इस प्रकार उत्तरी भारत में भी कम्पनी की सत्ता स्थापित हो गई और मराठों का पतन हो गया।

६. वेलेजली का मूल्यांकन—वेलेजली योग्य, महत्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी नीति का समर्थक था। उसने सात वर्ष के अल्प शासन-काल में कम्पनी के साम्राज्य का इतना विस्तार कर दिया था। इसमें सन्देह नहीं कि साम्राज्य विस्तार करने में उसने बहुत सख्ती से काम लिया, किन्तु उसका विश्वास था कि ब्रिटेन और भारत के हित एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। यही कारण था कि उसने कम्पनी के शासन को सुधार कर कम्पनी के आधीनस्थ देशी शासकों के शासन में भी सुधार किये। उसने फोर्ट विलियम में एक कालेज की स्थापना की, जिसमें कम्पनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषायें सिखाई जाती थीं तथा अन्य आवश्यक बातों की शिक्षा भी दी जाती थी। यदि क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश राज्य का निर्माण किया और हेस्टिंग्ज ने कठिनाइयों के बीच उसकी रक्षा की, तो वेलेजली को ब्रिटिश साम्राज्य के नैतिक और

राजनैतिक महत्व को सर्वप्रथम जान लेने का श्रेय दिया जाना चाहिए।

लार्ड कार्नवालिस

७. **लार्ड कार्नवालिस**—लार्ड वेलेजली ने भारत में जिस नीति को अपनाया था, उसका कड़ा विरोध इंगलैंड की जनता ने किया। अतः १८०५ ई० में उसे इंगलैंड वापस बुला लिया गया। उसकी जगह पर लार्ड कार्नवालिस को पुनः भारत का गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा गया। अपने पहली बार के कार्यकाल (१७८६-१७९३ ई० में कार्नवालिस ने ब्रिटिश राज्य को बढ़ाने की नीति का अनुसरण किया था। पर इस बार उसको यह आज्ञा देकर भेजा गया कि वह भारत में हर प्रकार की शांति स्थापित करने का प्रयत्न करे। इस समय तक कार्नवालिस बहुत वृद्ध हो गया था। उसमें अब पहले की सी कार्य-शक्ति भी शेष नहीं रह गई थी। अतः उसने देश में सब प्रकार शांति को बनाये रखने का प्रयास किया। उसने गोहद और ग्वालियर के किले सिंधिया को देने की स्वीकृति देकर सिंधिया से संधि कर ली। यमुना नदी अंग्रजो और सिंधिया के राज्य के बीच की सीमा मान ली गई। लार्ड कार्नवालिस होल्कर से भी सन्धि करना चाहता था। इसी उद्देश्य से जब वह कलकत्ते से चला तो मार्ग में ५ अक्टूबर, १८०५ में गाजीपुर के पास उसकी मृत्यु हो गई। अपने कुछ महीनों के कार्य-काल में कार्नवालिस ने भारत में शान्ति बनाये रखने की नीति का भरसक अनुसरण किया। मरहठों के साथ उसका जो व्यवहार था उसके परिणामस्वरूप मरहठो ने फिर शक्ति प्राप्त कर ली और उनका प्रभुत्व बढ़ गया।

सर जार्ज बार्लो

८. **सर जार्ज बार्लो**—कार्नवालिस की मृत्यु के पश्चात् कलकत्ता कौंसिल के सबसे सीनियर सदस्य सर जार्ज बार्लो को अस्थायी रूप से गवर्नर-जनरल का काम करने का आदेश दिया गया। लार्ड बार्लो ने भी

शान्तिपूर्ण नीति का अनुसरण किया। सिंधिया और होल्कर के साथ उसने मित्रता रखी। इस बीच निजाम के राज्य की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। अतः बार्लो ने निजाम से कहा कि यदि वह अपने राज्य की स्थिति ठीक नहीं करेगा, तो हमें हस्तक्षेप करना होगा। बार्लो के कुछ काम ऐसे थे, जिनकी निन्दा की गई। उसकी नीति का लाभ उठाकर होल्कर ने राजपूतों को लूटा भी। इस बहाने के आधार पर कि पेशवा के रुष्ट हो जाने से अंग्रेजों की शक्ति क्षीण हो जायेगी, बार्लो ने बेसिन की संधि का सहृदय समर्थन किया।

६. वेलोर में विद्रोह—बार्लो के कार्यकाल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना वेलोर का विद्रोह था। उस समय लार्ड विलियम बैंटिक मद्रास का गवर्नर था। उसने अपने प्रान्त में एक आदेश निकाला जिसके अनुसार सैनिकों को एक विशेष प्रकार की पगड़ी पहननी थी और एक विशेष प्रकार की दाढ़ी रखनी थी। साथ ही यह भी आदेश था कि सैनिक अपने माथे पर तिलक न लगा सकेंगे। इस आज्ञा को सैनिकों ने धार्मिक हस्तक्षेप समझा। उनमें असंतोष फैल गया और वे समझने लगे कि उन्हें ईसाई बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। १० जुलाई १८०६ ई० को वेलोर के किले में सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। अंग्रेज अफसरों को मारकर उन्होंने किले पर अधिकार कर लिया। इस विद्रोह को दबाने के लिए अरकाट से सेना भेजी गई। सैनिकों को कड़ा दण्ड दिया गया और विद्रोह को दबा दिया गया। मैसूर की चौथी लड़ाई में टीपू के मारे जाने पर टीपू के लड़कों को वेलोर के किले में नजरबन्द करके रखा गया था और पेंशन दी जाती थी। अतः कुछ इतिहासकारों का कहना है कि टीपू के लड़कों ने ही सैनिकों को भड़का दिया था। सच चाहे जो कुछ भी हो, पर इतना अवश्य है कि टीपू के पुत्रों का वहां उपस्थित होना इस उपद्रव का एक कारण था। विद्रोह शान्त होने पर टीपू के लड़कों को कलकत्ते भेज दिया गया। बार्लो ने १८०५ ई० से १८०७ ई० तक शासन चलाया।

लार्ड मिन्टो

१०. लार्ड मिन्टो—१८०७ ई० में लार्ड मिन्टो को गवर्नर-जनरल बना कर भेजा गया और लार्ड मार्ली मद्रास का गवर्नर बना दिया गया। लार्ड मिन्टो से भी डाइरेक्टरों ने यही कहा था कि भारत में शान्तिपूर्ण ढंग से शासन किया जाये। पर मिन्टो ने बड़ी बुद्धिमत्ता का मार्ग अपनाया। उसने वेलजली और कार्नवालिस दोनों के बीच की नीति अपनाई। १८०८ ई० में एक विचित्र घटना हो गई। ट्रावनकोर का शासन बहुत बिगड़ा हुआ था। इस बात पर वहां के शासक और अंग्रेज रेजीडेण्ट के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। रेजीडेण्ट के मकान पर आक्रमण कर दिया गया पर किसी प्रकार वह अपनी जान बचा कर भाग गया। चारों ओर उत्तेजना फैल गयी और एक अंग्रेज अफसर तथा २० सिपाहियों की हत्या कर दी गई। मिन्टो ने बड़ी योग्यता से विद्रोह को दबा दिया। ट्रावनकोर के शासक ने आत्महत्या कर ली और विद्रोहियों को पकड़कर फांसी की सजा दी गई। इस वर्ष मद्रास के कई स्थानों पर सैनिकों ने विद्रोह किए। इस विद्रोह का कारण यह था कि लार्ड मार्ले ने सैनिकों के कुछ भत्ते बन्द कर दिए थे।

लगभग इसी समय बुन्देलखण्ड में भी उपद्रव हो गया। लार्ड मिन्टो ने सरदारों को हरा दिया। कालिंजर और अजयगढ़ के किले पर लार्ड मिन्टो ने अधिकार कर लिया। मध्य भारत में पिण्डारियों ने बड़ी लूट-मार मचा रखी थी। उनके नेता अमीर खां को मिन्टो ने बहुत धमकी दी पर कोई लाभ न हुआ। पर मिन्टो ने उसे इस कारण न छेड़ा कि कहीं लड़ाई न हो जाये। राजपूताने में जोधपुर और जयपुर में भी परस्पर शत्रुता थी। अतः झगड़े की तैयारियां हो रही थीं।

११. रणजीत सिंह—अपने पिता की मृत्यु के समय (१७९२ ई०) में रणजीत सिंह केवल १२ वर्ष का था। पिता की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक उसे मुसीबतों का सामना करना पड़ा। १७९८ ई० में रणजीत सिंह ने काबुल के शासक जमान शाह की बड़ी सहायता की

थी। इसके बदले शाह ने उसे लाहौर का गवर्नर नियुक्त कर दिया और राजा की उपाधि दी। उस समय रणजीत सिंह की आयु केवल १६ वर्ष की थी। उस समय सारी सिक्ख जाति कई मिसलों में बंटी हुई थी और पंजाब में जो अराजकता फैली हुई थी, उसके कारण रणजीत सिंह को अपनी शक्ति बढ़ाने का बहुत अच्छा अवसर मिला। रणजीत सिंह ने धीरे-धीरे अफगान शाह की अधीनता से अपने को मुक्त कर लिया और पंजाब तथा काश्मीर पर अपना अधिकार जमा लिया। अपने सैनिकों को ट्रेनिंग दिलाने के लिए रणजीत सिंह ने यूरोपीय पदाधिकारी नौकर रखे थे। यदि अंग्रेज हस्तक्षेप न करते तो सतलुज नदी के दक्षिण में स्थित सिक्ख राज्यों को रणजीत सिंह जीत लेता। १८०६ ई० में सतलज नदी पार करके रणजीत सिंह ने लुधियाने पर अधिकार कर लिया। इस सम्बन्ध में अन्य राजाओं ने अंग्रेजों से मांग की कि वे हस्तक्षेप करें। लार्ड मिन्टो ने देखा कि रणजीत सिंह की शक्ति बहुत बढ़ी हुई है और यूरोप में भी इंगलैण्ड तथा नेपोलियन बोनापार्ट में भीषण युद्ध हो रहा है, अतः उसने रणजीत सिंह से सन्धि करना उचित समझा। सन्धि करने का काम अंग्रेजों की ओर से चार्ल्स मेटकाफ को सौंपा गया। मेटकाफ बहुत बुद्धिमान तथा दूरदर्शी था। १८०६ ई० में रणजीत सिंह व अंग्रेजों के बीच सन्धि हो गयी, जिसके अनुसार रणजीत सिंह ने मान लिया कि वह सतलुज के दक्षिण के राज्यों पर आक्रमण नहीं करेंगे। लुधियाने में अंग्रेजी सेना रख दी गई। रणजीत सिंह ने आजन्म इस सन्धि का पालन किया।

१२. विदेशी नीति—लार्ड मिन्टो बहुत योग्य गवर्नर-जनरल था। विदेशी नीति के सम्बन्ध में उसने बहुत बुद्धिमत्ता से काम लिया। उस समय नेपोलियन ने यूरोप के अनेक देशों को जीत लिया था। ब्रिटेन को हानि पहुंचाने के लिये वह भारत पर भी आक्रमण करना चाहता था। नेपोलियन का आक्रमण स्थल मार्ग से ही हो सकता था, क्योंकि उसके

पास बड़ी जहाजी सेना नहीं थी। इसी भय को दूर करने के लिए लार्ड मिन्टो ने रणजीत सिंह से सन्धि कर ली थी, और फारस तथा अफगानिस्तान में भी अपने राजदूत भेजे थे। सिन्ध के अमीरों से भी मिन्टो ने सन्धि कर ली। इस प्रकार फारस, अफगानिस्तान तथा सिन्ध उसके मित्र हो गए, और इन देशों ने अंग्रेजों से प्रतिज्ञा की, कि वे किसी भी यूरोपीय जाति को अपने देश में होकर भारत पर आक्रमण करने के लिए नहीं आने देंगे। इस प्रकार अपनी विदेशी नीति के बल पर उसने भारत की पश्चिमी सीमा को पूर्णरूपेण सुरक्षित बना दिया।

१३. समुद्री विजय—मोरीशस नाम का द्वीप फान्सीसियों के आधीन था। फान्सीसी लोग अंग्रेजों के व्यापार में अनेक प्रकार की बाधायें डालते थे। यूरोप में फान्स तथा इंगलेंड के बीच युद्ध चल ही रहा था। अतः मिन्टो ने मोरीशस पर अधिकार करने के लिए अपनी जल सेना भेज दी। अंग्रेजों की जल सेना ने मोरीशस पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य द्वीपों पर भी अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। भारत के पूर्व की ओर जावा तथा अन्य कई फ्रांसीसी द्वीपों पर भी अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। आगे चल कर जब यूरोप में फ्रांस और इंगलैण्ड में सन्धि हो गयी तो अंग्रेजों ने उनके सारे द्वीप लौटा दिए।

१४. कम्पनी का नया आज्ञापत्र—१८१३ ई० में कम्पनी को नया आज्ञापत्र मिला। अभी तक केवल ईस्ट इंडिया कम्पनी ही भारत के साथ व्यापार कर सकती थी। अन्य अंग्रेज व्यापार नहीं कर सकते थे। लार्ड वेलजली के शासन-काल में भारत में अंग्रेजों का राज्य बहुत बढ़ गया था। अतः कम्पनी को शासन करने का आदेश दिया गया और यह भी कहा गया कि अब सभी अंग्रेज भारत के साथ व्यापार कर सकते हैं। पर चीन के साथ केवल कम्पनी को ही व्यापार का अधिकार दिया गया। इस आज्ञा-पत्र में यह भी आदेश था कि कम्पनी

भारतीयों की शिक्षा के लिए डेढ़ लाख रुपया वार्षिक व्यय किया करेगी। १८१३ ई० में अपना कार्यकाल समाप्त करके लार्ड मिन्टो इंगलैंड चला गया। मिन्टो ने अपने कार्य-काल में वातावरण को शान्त बनाए रखने का भरसक प्रयत्न किया।

लार्ड हेस्टिंग्ज (१८१३—१८२३)

१५. लार्ड हेस्टिंग्ज—१८१३ ई० में लार्ड मिन्टो इंगलैण्ड वापस चला गया और उसके स्थान पर लार्ड हेस्टिंग्ज गवर्नर-जनरल बन कर भारत आया। लार्ड हेस्टिंग्ज इंगलैंड के एक बहुत ऊंचे परिवार में उत्पन्न हुआ था। जब यह गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया, उस समय इसकी आयु लगभग ५८ वर्ष की थी। अपने १० वर्ष के शासन काल में उसने इतनी योग्यता से काम लिया कि इसे भारत का एक महान् गवर्नर-जनरल माना जाता है। लार्ड हेस्टिंग्ज को भी यह आदेश दिया गया था कि वह शान्ति पूर्वक शासन करे। पर भारत में आकर हेस्टिंग्ज ने देखा कि यहाँ की स्थिति अच्छी नहीं है। चारों तरफ अशान्ति का साम्राज्य है। मराठे फिर शक्तिशाली हो गये हैं। मध्य भारत में पिण्डारियों के उपद्रव बढ़ गये हैं। जब हेस्टिंग्ज ने सारी स्थिति कम्पनी के डायरेक्टरों के सामने रखी तो डायरेक्टरों ने आज्ञा दे दी कि स्थिति को देखते हुए स्वतन्त्र रूप से काम करो। डायरेक्टरों का संकेत मिलने पर हेस्टिंग्ज ने वेलजली की नीति का अनुसरण किया।

१६. गोरखा युद्ध (१८१४--१६)—हेस्टिंग्ज को सबसे पहले गोरखों से युद्ध करना पड़ा। गोरखा नैपाल के निवासी थे। पहाड़ी प्रदेश के रहने वाले होने के कारण यह बड़े साहसी और वीर थे। प्लासी के युद्ध में क्लाइव की विजय होने के पश्चात् पृथ्वी नारायण के सेनापतित्व में गोरखों ने नैपाल की घाटी तथा काठमाण्डू में अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। गोरखों का राज्य बहुत शीघ्रता से बढ़ा और १८१४ ई० तक उनका राज्य इतना बढ़ गया कि उनके

राज्य की दक्षिणी सीमा अंग्रेजों के राज्य की सीमा तक आ गई। कोई सीमा निर्धारित न होने के कारण गोरखा सेना कभी-कभी ब्रिटिश सीमा पर ही आक्रमण कर दिया करती थी। १८१४ ई० में जब गोरखों ने अंग्रेजों के दो गांव श्वोराज और बुटवल पर अधिकार कर लिया तो लार्ड हेस्टिंग्ज ने उनके पास अपना सन्देशा भेजा और उत्तर मांगा पर गोरखों ने कोई उत्तर न दिया।

हेस्टिंग्ज ने युद्ध की घोषणा करदी और चार सेनाओं द्वारा गोरखों पर आक्रमण किये गये। अभी तक अंग्रेजों ने भारत में जितने युद्ध लड़े थे सब मैदानों में लड़े थे। पहाड़ी भागों पर लड़ने का उन्हें कोई अनुभव न था। गोरखों की १२,००० सेना का सामना करने के लिए हेस्टिंग्ज ने ३४,००० सेना भेजी। गोरखा सैनिक बड़ी वीरता से लड़े और अंग्रेजों का सेनापति जिलेप्सी युद्ध में मारा गया। इसके पश्चात् जनरल आक्टरलोनी की सेना से गोरखों को टक्कर लेनी पड़ी। गोरखा सेना का नेता अमरसिंह थापा पराजित हो गया। अंग्रेजों ने १८१५ ई० में गोरखों के मलाऊ किले पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात्, आक्टरलोनी गोरखों की राजधानी की ओर बढ़ा। गोरखों ने देखा कि अब आगे युद्ध करना निरर्थक है।

१७. सिगोली की संधि—१८१६ ई० में अंग्रेजों और गोरखों के बीच संधि हो गई। इस संधि के अनुसार अंग्रेजों को शिमला तथा कुमायूं एवं गढ़वाल के प्रदेश प्राप्त हो गये। गोरखों ने यह भी स्वीकार किया कि उनकी राजधानी में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रहेगा। इस संधि से गोरखे सदा के लिए अंग्रेजों के मित्र बन गये और आवश्यकता पड़ने पर कई बार उन्होंने अपनी मित्रता का परिचय भी दिया।

१८ पिण्डारियों का दमन—गोरखा युद्ध से छुट्टी पाने के पश्चात् लार्ड हेस्टिंग्ज ने पिण्डारियों के उपद्रव को शान्त करने का निश्चय किया। पिण्डारी लोग लुटेरे थे। इनमें जाट, पठान और हिन्दू सभी सम्मिलित थे और इनका पेशा इधर-उधर लूटमार करना था। इससे

जनता बहुत पीड़ित थी । पिंडारी कभी-कभी मराठा सेना को सहायता भी दिया करते थे । अतएव सिन्धिया और होल्कर राज्य के शासक इनको संरक्षण भी देते थे । मुगल साम्राज्य के नष्ट होने के पश्चात् जब अनेक सैनिक बेकार हो गये थे, तो उन्होंने संगठन बनाकर लूटना-मारना आरम्भ कर दिया । यद्यपि इनकी संख्या पर्याप्त थी और इनके पास शस्त्र भी पर्याप्त थे फिर भी ये लोग कभी किसी सेना का सामना खुलकर नहीं करते थे । उनको पकड़ना कोई सरल बात नहीं थी । छोटे-छोटे टट्टुओं पर चढ़कर तीन-तीन और चार-चार हजार के झुंड में ये लोग एक एक दिन में ३० या ४० मील तक का धावा करते थे । १८०६ ई० से १८१४ ई० तक अंग्रेजों की नीति शान्ति बनाये रखने की थी, इस प्रकार पिण्डारियों को लूट-मार करने का बहुत अच्छा अवसर मिला, और उनकी शक्ति बढ़ गई । इनके मुख्य-मुख्य सरदारों के नाम अमीर खां, करीम खां, वसील मुहम्मद और चीतू थे ।

पिण्डारियों ने अंग्रेजों के मित्र निजाम राज्य पर तथा मद्रास पर आक्रमण करके अंग्रेजों को रुष्ट कर दिया । उनको दबाने से पहले अंग्रेजों ने सिन्धिया और होल्कर को छोड़कर अन्य भारतीय शासकों से संधि कर ली । बम्बई, मद्रास और कलकत्ते में पिण्डारियों को दबाने के लिए दो बड़ी सेनायें एकत्रित की गयीं, जिनके पास लगभग ३०० तोपें थीं । उत्तर भारत की सेना स्वयं हेस्टिंग्ज के आधीन थी और दक्षिण की सेना हिलप्स के आधीन थी । दक्षिण की सेना ने जब पिण्डारियों को घेरना आरम्भ किया, तो वे उत्तर की ओर भागे । पर उत्तर में सेना पहले से प्रस्तुत थी । अतः सब ओर से घिर जाने के बाद पिण्डारियों ने आत्म समर्पण कर दिया । बहुत से पिण्डारी मार डाले गये । पिण्डारियों के नेता करीम खां को उत्तर प्रदेश में एक रियासत दे दी गयी । अमीर खां टोंक रियासत का नवाब बना दिया गया । वसील मुहम्मद ने आत्मघात कर लिया और चीतूखां को जंगल में एक चीते ने मार डाला । इस प्रकार १८१८ ई० तक पिण्डारियों

का दमन करके हेस्टिंग्ज ने शान्ति स्थापित कर दी।

१९. मराठों की चौथी लड़ाई—होल्कर और सिन्धिया पिण्डारियों की सहायता किया करते थे। अतः अंग्रेज उनसे अप्रसन्न थे। १८०२ ई० में बेसीन की संधि के पश्चात् पेशवा बाजीराव द्वितीय का प्रभुत्व बहुत कम हो गया था। किसी प्रकार पुनः वह अपना पुराना गौरव प्राप्त करने की ताक में बैठा था। इस बीच पूना (पेशवा राज्य) और बड़ौदा (गायकवाड़ राज्य) के बीच कुछ झगड़ा चल रहा था। अंग्रेजों के परामर्श से गायकवाड़ राज्य की ओर से गंगाधर शास्त्री को पूना भेजा गया, जिससे झगड़ा निवटा दिया जावे। पेशवा के षडयन्त्र से उसके मन्त्री त्रिम्बकजी ने गंगाधर शास्त्री की हत्या करवा दी। जब अंग्रेजों ने पेशवा से कहा कि त्रिम्बकजी को समुचित दण्ड देने के लिए उसे अंग्रेजों के सुपुर्द कर दिया जाये, तो पेशवा ने टालमटोल की। इतना ही नहीं पेशवा ने एक बड़ी सेना एकत्रित करके किर्की की रेजीडेन्सी तथा छावनी पर आक्रमण कर दिया और आग लगा दी। पर यहां के युद्ध में पेशवा की पराजय हुई। अंग्रेजों ने पूना पर अधिकार कर लिया। पेशवा भागकर सतारा की ओर गया, पर वहां भी सर जान मालकम ने उसे पराजित किया। इस समय पेशवा ने संधि कर ली, जिसके परिणामस्वरूप उसे आठ लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के समीप बिठूर में रहने के लिए भेज दिया गया। अंग्रेजों ने खानदेश, नासिक, थाना, अहमदनगर, शोलापुर, बीजापुर, धारवाड़, बेलगांव, रत्नगिरि आदि जिले अपने साम्राज्य में मिला लिये।

पेशवा के विद्रोह का समाचार सुनते ही नागपुर के भोंसला राज्य और इन्दौर के होल्कर राज्य ने भी विद्रोह कर दिया। भोंसला को सीताबल्दी की लड़ाई में हार खानी पड़ी और होल्कर महीदपुर के युद्ध में पराजित हुआ। अंग्रेजों ने भोंसला राज्य के गढ़ मंडल, जबलपुर, दमोह, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी, होशंगाबाद और बैतूल जिले अपने

आधीन कर लिए। होल्कर राज्य के टोंक और सिरोंज जिले को भी अंग्रेजों ने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। टोंक की रियासत ही अमीर खां पिंडारी को दी गई थी। इस प्रकार मराठों की शक्ति लगभग समाप्त हो गई और सिंध, पंजाब, काश्मीर, और काबुल को छोड़कर लगभग शेष सारा भारत अंग्रेजों की छत्रछाया में आ गया।

२०. अन्य घटनायें—लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन काल में कुछ अन्य छोटी छोटी घटनायें भी हुई। काठियावाड़ के उत्तर में कच्छ के शासक ने विद्रोह कर दिया। हेस्टिंग्ज ने विद्रोह दबाने के लिए एक सेना भेजी। कच्छ का शासक पराजित हुआ। उसको अंग्रेजों ने गद्दी से उतार दिया। नमक कर की अधिकता तथा बंगाली कर्मचारियों के दुर्व्यवहार के कारण कटक में विद्रोह हो गया। सेना विद्रोह को दबाने गयी, पर कुछ विशेष लाभ न हुआ। जब यह आश्वासन दिया गया कि कर कम कर दिया जायेगा तो विद्रोह शांत हुआ। वास्तव में कर में कमी कर दी गयी। इसी बीच एक और घटना यह हुई कि अंग्रेजों ने हाथरस के राजा से कहा कि वह अपना किला तोड़ दे। पर उसने अंग्रेजों की बात की कोई परवाह न की। किले को तोड़ने के लिए अंग्रेजों की तोपें पहुंच गयीं। गोलाबारी करके किला तोड़ दिया गया।

२१. हेस्टिंग्ज के सुधार—हेस्टिंग्ज का शासन काल यद्यपि युद्धों का तथा कठिनाइयों का काल था, फिर भी इस काल में अनेक अच्छे सुधार हुए। हेस्टिंग्ज ने जमुना नदी की पुरानी नहर की मरम्मत करा दी। इससे कृषि को बहुत लाभ हुआ। पुलों तथा सड़कों की भी मरम्मत कराई गयी। देशी भाषाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया और अनेक स्कूल खोले गये। हेस्टिंग्ज स्वयं एक कालेज का संरक्षक था। एलफिन्स्टन ने पेशवा से जीते हुए राज्य क्षेत्र में अच्छा शासन किया और शांति स्थापित की। मद्रास के गवर्नर मनरो ने वहां रैयतवाड़ी बन्दोबस्त किया, जो कि प्रजा के लिए बहुत लाभ-

दायक सिद्ध हुआ। इस प्रथा के अनुसार सरकार ने जमींदारों के द्वारा नहीं वरन् किसानों से सीधे लगान वसूल करने का प्रबन्ध किया। अब जमींदार या सरकार किसानों को तब तक बे दखल नहीं कर सकते थे, जब तक कि वे लगान देते रहें। हेस्टिंग्ज ने बंगाल तथा अन्य प्रान्तों में न्यायालयों की संख्या बढ़ा दी। दीवानी और फौजदारी के कानूनों को सरल बनाने तथा न्याय और शासन के लिए अलग-अलग पदाधिकारी रखने की बात पर भी विचार किया गया। मद्रास राज्य में पंचायत परम्परा को फिर से चालू किया गया। लार्ड वेलजली की-सी मौलिकता तथा कार्यकुशलता तो हेस्टिंग्ज में नहीं थी, पर फिर भी उसमें उतावलापन न था, और उसने बड़े परिश्रम से कार्य किया। इसी कारण भारत के महान् गवर्नर-जनरलों में उसकी गणना की जाती है। १८२३ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज इंगलैंड वापस चला गया और उसकी जगह पर लार्ड एमहर्स्ट गवर्नर जनरल बनकर भारत आया।

लार्ड एमहर्स्ट (१८२३-१८२८)

२२. **लार्ड एमहर्स्ट**—लार्ड हेस्टिंग्ज के जाने के बाद १८२३ ई० में लार्ड एमहर्स्ट भारत का गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया। यद्यपि लार्ड एमहर्स्ट यह नहीं चाहता था कि वह युद्ध नीति का पालन करे पर परिस्थितियों के वश उसे युद्ध करने पड़े। एक बात ध्यान देने योग्य है कि अभी तक अंग्रेजों को देश के भीतर की शक्तियों से ही युद्ध करने पड़े थे, परन्तु लार्ड एमहर्स्ट के शासनकाल में उन्हें देश से बाहर की शक्तियों से भी युद्ध करना पड़ा।

२३. **ब्रह्मा की पहली लड़ाई**—जब भारत में लार्ड क्लाइव बंगाल में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना कर रहा था, उसी समय बर्मा में भी एक नये राजवंश का उदय हुआ। १८२२ ई० तक इस वंश ने ब्रह्मा के अतिरिक्त आसाम को भी अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार अंग्रेजों के राज्य की सीमा से ब्रह्मा की सीमा मिल गई। १८२३ ई० में

ब्रह्मा के राजा ने चिटगांव के पास अंग्रेजी राज्य पर आक्रमण कर दिया और ढाका तथा मुर्शिदाबाद पर भी अधिकार करने की चेष्टा की। चिटगांव पर हुये आक्रमण के सम्बन्ध में अंग्रेजों ने ब्रह्मा की सरकार से कारणों का स्पष्टीकरण मांगा, पर ब्रह्मा ने कोई सन्तोषजनक उत्तर न दिया। अतः भारत के गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्ट ने ब्रह्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। १८२४ ई० में युद्ध छिड़ गया।

ब्रह्मा पर आक्रमण करने के लिए अंग्रेजों की दो सेनायें चलीं। एक सेना आसाम की ओर से स्थल मार्ग से गई और दूसरी मद्रास से जहाजों द्वारा रंगून के लिए चल पड़ी। पहले ब्रह्मा के सेनापति बंदूला ने आसाम के मोर्चे पर स्थल सेना का सामना किया। बंदूला को इधर सफलता मिली और उसने चिटगांव के पास रामू पर अधिकार कर लिया था। उधर मद्रास की सेना ने रंगून पर अधिकार कर लिया था। अतः बंदूला को आसाम का मोर्चा छोड़कर रंगून की रक्षा के लिये जाना पड़ा। रंगून की लड़ाई में बंदूला मारा गया। वर्षा और मलेरिया के कारण बहुत से अंग्रेज सैनिक भी मरे। अंग्रेजों की सेना ने आगे बढ़कर दक्षिणी ब्रह्मा की राजधानी प्रोम पर अधिकार कर लिया। जब अंग्रेजी सेना यंडाबू तक पहुंच गई, तो ब्रह्मा के राजा ने संधि की चर्चा प्रारम्भ कर दी। दो वर्ष के युद्ध के पश्चात् १८२६ ई० में यंडाबू की सन्धि हो गई, जिसके अनुसार अंग्रेजी कम्पनी को आसाम, टेनासरम और आराकान के प्रान्त मिल गये। ब्रह्मा के राजा ने कचार और मनीपुर पर भी अपना दावा छोड़ दिया और रंगून में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार किया। ब्रह्मा के राजा ने लड़ाई के हरजाने के रूप में एक करोड़ रुपया कम्पनी को दिया। इस विजय से अंग्रेजों की राज्य सीमा सुरक्षित हो गई और उनको समुद्री आक्रमण का भय न रहा।

२४. भरतपुर का घेरा—जब लार्ड एमहर्स्ट ब्रह्मा की लड़ाई में

व्यस्त था, इसी बीच भरतपुर में एक नई घटना हु । इस समय भरतपुर की गद्दी पर एक अल्प वयस्क राजकुमार था, जिसे अंग्रेजों की सहमति से गद्दी पर बैठाया गया था । उस नाबालिग राजकुमार का चाचा दुर्जनसाल अपने भतीजे को हटाकर स्वयं गद्दी पर बैठना चाहता था। लार्ड एमहर्स्ट को भरतपुर की ओर भी ध्यान देना पड़ा। ब्रह्मा की विजय के पश्चात् १८२६ ई० में लार्ड कॅम्बरमियर को भरतपुर विजय के लिये भेजा गया। यह किला बहुत मजबूत माना जाता था, परन्तु अंग्रेजों ने किले को तोड़कर उस पर अधिकार कर लिया। दुर्जनसाल मारा गया और राजकुमार गद्दी पर रहा । भरतपुर की विजय से अंग्रेजोंकी धाक बहुत बढ़ गई। सन् १८२८ ई० में लार्ड एमहर्स्ट इंगलेंड वापस लौट गया।

प्रश्न

1. Give an account of the administration of Lord Wellesley and explain what do you understand by his Subsidiary Alliances ?

लार्ड वेलेजली के शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिए और यह बताइये कि उसकी सहायक सन्धि से आप क्या अर्थ समझते हैं।

2. Lord Wellesley has been described as the Akbar of the Company's dynasty. How far this estimate is correct ?

लार्ड वेलेजली को कम्पनी के शासन युग में वही स्थान प्राप्त है, जो मुगल वंश में अकबर को। यह मूल्यांकन कहाँ तक सही है ?

3. Briefly describe Wellesley's dealings with the Marathas.

मराठों के साथ वेलेजली के सम्बन्धों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

4. Give an account of the measures which

Wellesley adopted or undertook to reduce the power of Hyder Ali in Deccan.

दक्षिण भारत में हैदर अली की शक्ति को समाप्त करने के लिए वेलेजली द्वारा किए गए उपायों का वर्णन कीजिए।

5. Give an account of the rise of Sikhs under Ranjit Singh.

रणजीत सिंह के शासन काल में सिक्खों के उत्कर्ष का वर्णन कीजिए।

6. Describe the Gorkha War during the tenure of Lord Hastings.

लार्ड हेस्टिग्ज के कार्यकाल में हुए गोरखा युद्ध का वर्णन कीजिए।

7. Who were pindaries and how were they suppressed by Lord Hastings ?

पिन्डारी कौन थे और लार्ड हेस्टिग्ज ने उनका दमन कैसे किया ?

8. Describe the circumstances under which the First Burmese War came about.

ब्रह्मा का प्रथम युद्ध जिन परिस्थितियों में हुआ, उनका वर्णन कीजिए।

9. Form an estimate of the reforms introduced by Lord Hastings.

लार्ड हेस्टिग्ज के सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।

10. Write short notes on:—

(1) Wellesley and Oudh.
(2) Rebellion at Vellore.
(3) Foreign Policy of Lord Minto.
(4) Siege of Bharatpur.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए—

(१) वेलेजली और अवध।

(२) वेलोर का विद्रोह।

(३) लार्ड मिन्टो की विदेश नीति।

(४) भरतपुर का घेरा।

11. How was the Maratha Power finally broken during the rule of Lord Hastings ?

लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में मराठा शक्ति का पूर्णरूप से किस प्रकार अन्त हुआ ?

—:o:—

अध्याय २६

भारत में अंग्रेजी राज्य का विस्तार
तृतीय उत्थान

लार्ड विलियम बैंटिक (१८२८-३५)

१. **विलियम बैंटिक**—लार्ड एमहर्स्ट के लौट जाने के बाद १८२८ ई० में लार्ड विलियम बैंटिक भारत का गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा गया। बैंटिक के पूर्व के गवर्नर जनरलों ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति को बहुत बढ़ा दिया था। अतः बैंटिक ने शान्तिपूर्ण नीति के अनुसार काम करने का निश्चय किया। वह पहले भी मद्रास का गवर्नर रह चुका था और वैलोर का विद्रोह उसी ने दबाया था। अतः कहा जा सकता है कि शासन एवं राजनीति का उसे अच्छा ज्ञान था। सच पूछा जाय तो लार्ड बैंटिक पहला भारतीय गवर्नर जनरल था, जिसने भारत की प्रजा के हितों की ओर ध्यान दिया। उसने सभी सामाजिक कुरीतियों के निराकरण के लिये सुधार तथा शासन सम्बन्धी सुधार किये, जिनके लिये उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए।

२. **हस्तक्षेप न करने की नीति**—बैंटिक ने देशी राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति का अनुसरण किया। सन्धि की शर्तों को मानते हुये भारतीय राजागण अपने शासन में पूर्ण स्वतन्त्र थे। यद्यपि कुछ विषय ऐसे उपस्थित हुए, जिनमें बैंटिक को हस्तक्षेप करना पड़ा, परन्तु बैंटिक के हस्तक्षेप का उद्देश्य यही था कि शासन की दशा में सुधार हो। बैंटिक ने इसलिये हस्तक्षेप नहीं किया था, कि हस्तक्षेप की नीति द्वारा देशी राज्यों को हड़पकर अंग्रेजी साम्राज्य को दृढ़ बनाया जाये। बैंटिक को मैसूर, कछार तथा कुर्ग के शासन में भी हस्तक्षेप करना पड़ा। १८३१ ई० में मैसूर राज्य की दशा बिगड़ने लगी। वहां एक अल्पवयस्क शासक था जिसका नाम कृष्ण था। उसने अपने

मन्त्री पूर्णिया को निकालकर स्वेच्छापूर्वक शासन करना आरम्भ कर दिया। मैसूर का शासन अंग्रेजों के आधीन था। अतः बेंटिक ने कृष्ण को समझाया। पर जब कोई परिणाम न निकला, तो बेंटिक ने मैसूर के शासक को गद्दी से हटा दिया और वहां का शासन अंग्रेज अफसरों के एक कमीशनको सौंप दिया।

कुर्ग के शासन की दशा अच्छी नहीं थी। वहाँ का शासक वीरराज था। कुछ लोगों का कहना है कि उसमें पागलपन के कुछ लक्षण थे। उसने अपने कई सम्बन्धियों को मरवा डाला था और प्रजा भी उसके अत्याचारों से बहुत पीड़ित थी। उसकी बहन तथा बहनोई ने अंग्रेजों से प्रार्थना की कि वे इस स्थिति में हस्तक्षेप करें। बेंटिक ने वीरराज को समझाया पर कोई प्रभाव न हुआ। अन्त में अंग्रेजी सेना भेजी गई, जिसने १८३४ ई० में कुर्ग पर अधिकार कर लिया। वहां के शासक ने आत्मसमर्पण कर दिया। कुर्ग की जनता ने यह इच्छा प्रकट की, कि कुर्ग अंग्रेजी राज्य में मिला लिया जाये। अतः कुर्ग को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया और मैसूर का गवर्नर कुर्ग की देख-भाल करने लगा। वीरराज को पहले वेलोर भेज दिया गया। बनारस से वह इंगलैंड चला गया और उधर ही उसकी मृत्यु हो गई। कचार के शासक की मृत्यु हो जाने पर वहाँ जनता की इच्छानुसार कचार को भी बेंटिक ने अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। बाद में कचार चाय के उद्योग का एक बहुत बड़ा केन्द्र बन गया। इसके अतिरिक्त अवध तथा जयपुर आदि के सम्बन्ध में भी उसे हस्तक्षेप करने का अवसर मिला, पर बेंटिक ने कोई कार्यवाही न की।

बेंटिक को मध्य-एशिया में रूस की बढ़ती हुई शक्ति से बहुत भय था। अपनी सीमा को सुदृढ़ करने के लिए बेंटिक ने यह अच्छा उपाय समझा, कि सीमा प्रान्तीय शासकों से संधि कर ली जाये। सर्व प्रथम बेंटिक ने सिंध के अमीरों से व्यापारिक सन्धि कर ली। इस प्रकार सीमा सुरक्षित होने के साथ-साथ अंग्रेजों को सिंध में व्यापार करने का

भी लाभ मिला। इसके पश्चात् बैंटिक ने रणजीतसिंह से सन्धि करना आवश्यक समझा। इस समय तक रणजीतसिंह ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। बैंटिक स्वयं जाकर रणजीत सिंह से मिला और उसने उससे सन्धि की। इस प्रकार बैंटिक ने अपनी सीमा को सुरक्षित बना लिया।

३. सामाजिक सुधार—बैंटिक ने कई सामाजिक सुधार किये। सती प्रथा को बन्द करना उनमें से एक था। हिन्दुओं की प्रथा थी, कि पुरुष की मृत्यु हो जाने पर उसकी विधवा भी उसके शव के साथ जलकर अपने प्राण गवां देती थी। पहले तो स्त्रियां स्वयं इच्छा से जलना पसन्द करती थीं, परन्तु कालान्तर में यह प्रथा कठोर हो गयी और पति की मृत्यु पर उसकी पत्नी को जबरदस्ती उसके पति के शव के साथ जला दिया जाता था। बैंटिक ने इस प्रथा को बन्द करने के लिए कठोर पग उठाये। समाज सुधारक राजा राममोहन राय ने भी इसी कार्य में बैंटिक की बहुत सहायता की। बैंटिक ने कानून बनाकर सती प्रथा को बन्द कर दिया। उस कुप्रथा को रोककर बैंटिक ने बहुत ख्याति प्राप्त की।

बैंटिक ने ठगों का नाश करके एक बड़ी समाज सेवा की। देश भर में ठगों का जाल बिछा हुआ था। उनमें सभी धर्मों के लोग सम्मिलित थे और उसकी एक विशेष तथा गुप्त भाषा थी। ये साधुओं, फकीरों तथा यात्रियों के रूप में झुण्ड बना कर घूमा करते थे और सीधे-सादे मनुष्यों को लूट लेते थे तथा जान से मार डालते थे। ठगी के आतंक से लोगों को यात्रा करने में भय लगता था। ठगों को नष्ट करने के कार्य को बड़ी दृढ़ता से किया। कर्नल स्लीमेन को इस कार्य का भार सौंपा गया। ६ वर्ष में लगभग साढ़े तीन हजार ठग पकड़े गये। अधिकांश ठगों को मार डाला गया। इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य में हत्याओं, डकैतियों तथा ठगी का अन्त हो गया।

इस समय एक प्रथा यह भी थी, लड़कियों को पैदा होते ही मार डाला जाता था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण उस समय मिलते थे। बेंटिक ने इस नीच प्रथा पर भी रोक लगा दी। हिन्दुओं में एक परिपाटी यह भी थी कि यदि वह अपना धर्म बदल दे, तो उसे पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकार से हाथ धोना पड़ता था पर बेंटिक ने इस परम्परा को भी रद्द कर दिया।

४. **बैंटिक के अन्य सुधार**—बेंटिक ने अदालतों में चलने वाली फारसी भाषा के बजाय देशी भाषाओं के प्रयोग की आज्ञा दे दी। आगरा में भी एक उच्च न्यायालय स्थापित किया गया। इस प्रकार प्रजा कलकत्ते जाने की कठिनाई से बच गयी। न्यायालयों के न्यायाधीशों के पदों पर भारतीयों को भी नियुक्त किया जाने लगा। सेशन जज के फौजदारी के अधिकार सिविल जज को दे दिए गए। इलाहाबाद में बोर्ड आफ रेवेन्यु (Board of Revenue) की स्थापना की गयी। कार्नवालिस ने अपील के लिए प्रान्तों में जो अदालतें खोली थीं, उन्हें बेंटिक ने बन्द कर दिया। बेंटिक ने बड़े-बड़े पदाधिकारियों के भत्ते कम कर के धन की बचत की। रेवेन्यू विभाग तथा प्रान्तीय न्यायालयों का व्यय भी कम कर दिया गया। भारतीयों को नौकरी दी जाने लगी, इससे भी व्यय में कमी हुई। अफीम की निकासी पर लगाये गए कर से बेंटिक ने आय बढ़ाई। ब्रह्मा की लड़ाई में जो धन खर्च हुआ था, उसकी पूर्ति बेंटिक ने अन्य साधनों से कर ली। १८१३ ई० के आज्ञापत्र द्वारा कंपनी को १ लाख रुपये की राशि शिक्षा के लिए मिलती थी। पर अभी तक इस राशि का कोई समुचित उपयोग न हो पाया था। बेंटिक ने शिक्षा का प्रश्न उठाया। मैकाले की सहायता से यह निश्चय किया गया कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखा जाये। फलस्वरूप बंगाल मद्रास और उत्तर प्रदेश में कई कालेज खोले गये। कलकत्ते में एक मेडिकल कालेज भी खोला गया। नहरों तथा सड़कों के निर्माण में भी बेंटिक ने रुचि दिखाई।

५. नया आज्ञापत्र—१८१३ ई० वाले आज्ञापत्र की अवधि समाप्त होने पर १८३३ ई० में कम्पनी को नया आज्ञापत्र मिला। इस आज्ञापत्र द्वारा अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। चीन के साथ व्यापार करने के लिए अभी तक कम्पनी को पूर्ण एकाधिकार प्राप्त था। पर इस आज्ञापत्र द्वारा कम्पनी का एकाधिकार छीन लिया गया और सब लोगों को चीन के साथ व्यापार करने की छूट दे दी गयी। पश्चिमोत्तर प्रदेश के लिये एक लेफ्टीनेण्ट-गवर्नर नियुक्त किया गया। बंगाल का गवर्नर इस आज्ञापत्र के अनुसार ब्रिटिश इण्डिया का गवर्नर जनरल बना दिया गया। बम्बई और मद्रास के गवर्नर उसके आधीन हो गए। गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक सदस्य और बढ़ा दिया गया। इस पद पर सबसे पहले लार्ड मैकाले को नियुक्त किया गया। अब भारत सरकार को रेग्युलेशन बनाने के बजाय ऐक्ट बनाने का अधिकार दे दिया गया। इस आज्ञापत्र के अनुसार अंग्रेजों को भारत में आकर बसने, व्यापार करने व भूमि तथा सम्पत्ति अर्जन करने का भी अधिकार दे दिया गया। अब कम्पनी इंगलैंड के सम्राट की ओर से शासन करने लगी। इस आज्ञापत्र में सबसे बड़ी बात यह थी कि भारत का कोई भी निवासी जाति, धर्म, जन्मस्थान, वर्ण या वंश के कारण किसी पद से वंचित न रखा जायेगा।

६. चार्ल्स मेटकाफ—१८३४ ई० में बेंटिंक ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। उसके जाने के बाद एक वर्ष तक सर चार्ल्स मेटकाफ ने गवर्नर-जनरल का पद संभाला। मेटकाफ ने भारतीय समाचारपत्रों को पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। समाचारपत्रों ने जी-खोल कर लिखना शुरू कर दिया। कम्पनी के डायरेक्टरों को यह बात पसन्द न आई। अतः उन्होंने १८३५ ई० में मेटकाफ को इंगलैंड बुला लिया।

लार्ड आकलैंड और लार्ड एलिनबरा

७. लार्ड आकलैंड—(१८३६-४२)—१८३६ ई० में लार्ड आकलैंड गवर्नर-जनरल बना। इस समय तक अंग्रेजों का राज्य सतलज नदी

तक पहुंच चुका था। रणजीत सिंह और सिंध के अमीरों के साथ संधि हो चुकी थी। समुद्र तट की दृष्टि से पीगू (ब्रह्मा) का समुद्रतट छोड़ कर बंगाल की खाड़ी का सारा समुद्रतट अंग्रेजों के अधिकार में था।

८. प्रथम अफगान युद्ध—अंग्रेजों ने अफगानिस्तान के शासक शाहशुजा के साथ १८०६ ई० में सन्धि कर रखी थी। पर बाद में दोस्त मुहम्मद नामक एक सरदार ने शाहशुजा को हरा कर भगा दिया और काबुल पर अधिकार कर लिया। उधर रणजीत सिंह ने मौका पाकर पेशावर पर कब्जा कर लिया। ईरान का शाह भी अफगानिस्तान को हड़पने की ताक में बैठा था। दोस्त मुहम्मद को रणजीत सिंह और ईरान दोनों से भय था अतः उसने अंग्रेजों से सहायता लेनी चाही। वैसे तो अंग्रेज चाहते थे कि दोस्त मुहम्मद की सहायता की जाये और रूस को अफगानिस्तान की ओर बढ़ने का अवसर न दिया जाये, परन्तु दोस्त मुहम्मद और रणजीत सिंह के बीच झगड़ा था, अतः अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को नाराज करना ठीक न समझा। अंग्रेजों से सहायता न मिलने पर दोस्त मुहम्मद ने रूसियों से सहायता लेने का विचार किया। लार्ड आकलैंड को यह बात पसन्द नहीं आई। सन्धि करने के लिए आकलैंड ने बर्नेस को काबुल भेजा। उधर रूसी राजदूत भी सन्धि का प्रस्ताव लेकर काबुल आ पहुंचा था। चूंकि बर्नेस ने दोस्त मुहम्मद को पेशावर वापस दिलाने का कोई आश्वासन नहीं दिया, अतः उसने रूसी राजदूत का स्वागत किया और बर्नेस को लौटना पड़ा। इसी बीच अंग्रेज, रणजीत सिंह और शाहशुजा के बीच एक सन्धि हुई, कि दोस्त मुहम्मद को काबुल की गद्दी से उतार दिया जाये। सिन्ध के रास्ते से बोलन दर्रे को पार करती हुई अंग्रेज सेना १८३९ ई० में कन्धार पहुंची। कन्धार पर अधिकार करने के पश्चात् शाहशुजा को वहां का शासक घोषित कर दिया गया। मैकनाटन को शाहशुजा के दरबार में रेजीडेण्ट नियुक्त कर दिया गया। दोस्त मुहम्मद ने आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने उसे पकड़ कर

कलकत्ते भेज दिया। अंग्रेजी सेना ने गजनी एवं काबुल पर भी अधिकार कर लिया। अफगानिस्तान के लोगों में शाहशुजा लोकप्रिय न था। इसके अतिरिक्त अफगानियों को यह भी पसन्द न था, कि उनके देश के शासन में अंग्रेज दखल दें। अतः दोस्त मुहम्मद के बेटे अकबरखां के नेतृत्व में अफगानियों ने विद्रोह कर दिया। विद्रोहियों ने मैकनाटन की हत्या कर दी और अंग्रेज सैनिकों को भी मारा। अंग्रेज सैनिक जान बचाकर जलालाबाद की ओर भाग पड़े। जब ये सैनिक खैबर दर्रा पार कर रहे थे, तो अफगानों ने उन पर गोली की बौछार की। १७,००० सैनिकों में से केवल एक सैनिक ही बच पाया। जलालाबाद में जनरल सेल को और कन्धार में जनरल नाट को अफगानियों ने घेर रखा था।

९. आकलैंड की वापिसी—इसी बीच १८४२ ई० में लार्ड आकलैंड को इंगलैंड वापस बुला लिया गया। बिना समझे-बूझे अफगान युद्ध छेड़कर उसने बहुत बड़ी भूल की थी। उसके शासनकाल में १९३७-३८ ई० में उत्तरी भारत में एक भीषण अकाल पड़ा, जिसमें लगभग ८ लाख मनुष्य मर गये।

१०. लार्ड एलिनबरा (१८४२--४४) १८४२ ई० में लार्ड एलिनबरा को भारत का गवर्नर-जनरल बना कर भेजा गया। उस समय जनरल सेल जलालाबाद में और जनरल नाट कन्धार में अफगानियों के चंगुल में फंसे हुए थे। इसके अतिरिक्त काबुल में भी बहुत से अंग्रेज सैनिक बन्दी थे। नये गवर्नर जनरल ने अंग्रेजों को मुक्त कराने का प्रयत्न किया। जनरल पोलक की अध्यक्षता में एक सेना जनरल सेल और जनरल नाट की सहायता के लिए भेजी गई। यह सेना मार्ग के दर्रों को सफलतापूर्वक पार करती हुई काबुल पहुंच गई। जनरल नाट को कन्धार से निकाल कर गजनी के किले पर अधिकार कर लिया गया। जब अंग्रेजों की सेनायें मिल गईं, तो उनकी शक्ति बहुत बढ़ गई और काबुल के बाजार को उन्होंने अच्छी तरह लूटा। लार्ड एलिनबरा इस युद्ध को बन्द करने के पक्ष में था।

अतः उसके आदेश से सेनायें भारत को लौटीं। इस अराजकता में शाहशुजा की हत्या हो गयी थी, अतः अंग्रेजों ने दोस्त मुहम्मद को मुक्त कर दिया और उसे अफगानिस्तान का शासक मान लिया। इस युद्ध से अंग्रेजों की ख्याति को बड़ा धक्का पहुँचा और धन तथा सेना की दृष्टि से भी अंग्रेज घाटे में रहे।

११. सिन्ध-विजय—जब अंग्रेजों का युद्ध अफगानिस्तान के विरुद्ध चल रहा था, तो लार्ड आकलैंड ने सिन्ध में होकर अपनी सेना अफगानिस्तान भेजी थी। सिन्ध के अमीर इस बात से बहुत असंतुष्ट हो गये, क्योंकि अंग्रेजों का यह कार्य सन्धि के विरुद्ध था। अतः अफगान युद्ध के समय सिन्ध के अमीर अंग्रेजों के सामने अनेक प्रकार की कठिनाइयां पैदा करते रहे। अफगान युद्ध समाप्त होने पर सर चार्ल्स नेपियर को इन विषयों की छानबीन करने के लिए सिन्ध भेजा गया। नेपियर ने सिन्ध के अमीरों को दोषी ठहराया और सुझाव दिया कि सिन्ध में अंग्रेजी सेना का रखा जाना आवश्यक है, जिसका खर्च सिन्ध के अमीरों से ही लिया जाना चाहिए। अंग्रेजों के इस निर्णय से सिन्ध के अमीरों को बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने अंग्रेज रेजीडेण्ट आउट्रम की कोठी पर आक्रमण कर दिया। आउट्रम कठिनाई से अपनी जान बचा पाया। यह देख कर नेपियर ने अमीरों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। १८४३ ई० में मियानी के युद्ध में उसने अमीरों को पूर्ण रूप से परास्त किया। सिन्ध अमीरों को गिरफ्तार करके बनारस भेज दिया गया। सिन्ध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। लार्ड एलिनबरा ने नेपियर को सिन्ध का गवर्नर नियुक्त कर दिया।

१२. ग्वालियर में उपद्रव—इस समय ग्वालियर का सिन्धिया राज्य पर्याप्त शक्तिशाली हो रहा था। १८२७ ई० में दौलत राव सिन्धिया की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् लार्ड बैंटिक ने जनकोजी को गद्दी पर बैठा दिया था। १८४३ ई० में जनकोजी की मृत्यु हो गयी। उसके कोई सन्तान नहीं थी। अतः शासन के लिए एक कौंसिल

नियुक्त कर दी गई। इस कौंसिल से जनकोजी की विधवा रानी की पटी नहीं, क्योंकि उसे अंग्रेजों द्वारा नियुक्त अभिभावक रखना स्वीकार न था। इस प्रकार तनाव की स्थिति पैदा हो गई। सिन्धिया की ४० हजार सेना तथा २०० तोपों से अंग्रेजों को बहुत भय था। उधर पंजाब में सिक्ख सेना से भी अंग्रेजों को भय हो गया था। अतः ग्वालियर की शक्ति को घटाना आवश्यक था। अंग्रेजों की सेना ने सर ह्यूगफ की अध्यक्षता में १८४३ ई० में महाराजपुर में सिन्धिया की सेना को पराजित किया। इसके पश्चात् जनरल ग्रे ने पनियार के युद्ध में सिन्धिया की सेना को पुनः पराजित किया। मराठों की सारी सेना तितर-बितर हो गई। ग्वालियर को अंग्रेजों ने अपने संरक्षण में ले लिया और वहाँ के शासन के लिए एक अंग्रेज रेजीडेण्ट नियुक्त कर दिया। वहाँ की ४० हजार सेना घटा कर केवल ९००० कर दी गई, साथ ही १०,००० अंग्रेजी सहायक सेना भी वहाँ रख दी गयी।

१३. एलिनबरा की वापसी—कम्पनी के डायरेक्टर एलिनबरा से प्रसन्न नहीं थे। अतः १८४४ ई० में एलिनबरा इंगलैंड वापस बुला लिया गया। और उसकी जगह लार्ड हार्डिंग को भारत का गवर्नर-जनरल बना कर भेजा गया।

लार्ड हार्डिंग (१८४४-४८)

१४. प्रथम सिक्ख युद्ध—जब अंग्रेजों और अफगानों का युद्ध हो रहा था, उसी बीच १८३९ ई० में रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् पंजाब की दशा दिनों-दिन बिगड़ती ही गई। सैनिक पंचायत के हाथ में शासन की बागडोर चली गई। रणजीत सिंह का अल्प वयस्क बेटा दिलीप सिंह गद्दी पर बैठाया गया। दिलीप सिंह की माँ बहुत चतुर स्त्री थी। उसने देखा कि सिक्खों की ९० हजार सेना अनुशासन से बाहर होती जा रही है और दरबार की आज्ञा भी नहीं मानती। अतः सेना के प्रभाव से अपने राज्य को बचाने के

लिए उसने एक उपाय सोचा। उसने सैनिकों को अंग्रेजों पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। १८४५ ई० में सैनिकों ने सतलज को पार किया। सिक्ख सेना के आने का समाचार मिलते ही लार्ड हार्डिंग ने युद्ध की घोषणा कर दी। पहली लड़ाई मुदकी नामक स्थान पर फिरोजपुर के समीप हुई। इसमें अंग्रेजों की हार हुई। सिक्खों ने अंग्रेजों की बढ़ती हुई सेना को पुनः फिरोजपुर में घेरा। इस युद्ध में सिक्खों की पराजय हुई। तीसरा युद्ध अलीवाल में हुआ। यहां भी सिक्खों की सेना हार कर भाग गई। सिक्खों की अन्तिम लड़ाई सोबरांव में हुई, जिसमें सिक्खों की हार हुई। पर अंग्रेज़ों को भी इसमें पर्याप्त क्षति उठानी पड़ी। विजयी हार्डिंग ने लाहौर में प्रवेश किया। लाहौर की संधि द्वारा युद्ध समाप्त हो गया और सिक्खों की सेना घटा कर २० हजार कर दी गयी। सतलुज और व्यास के बीच का क्षेत्र अंग्रेजों ने अपने राज्य में मिला लिया। सिक्खों ने ५ लाख रुपये तथा काश्मीर का प्रदेश लड़ाई के हरजाने के रूप में अंग्रेजों को दिया। अंग्रेजों ने काश्मीर का राज्य जम्मू के राजा गुलाब सिंह के हाथ एक करोड़ रुपये में बेच दिया। लाहौर में एक अंग्रेजी सेना रख दी गई। दिलीप सिंह गद्दी पर बैठा रहा। शासन प्रबन्ध के लिए हेनरी लारेन्स की अधीनता में एक कौंसिल नियुक्त कर दी गई।

१८४८ ई० में लार्ड हार्डिंग ने अपना पद त्याग दिया। उसके स्थान पर लार्ड डलहौजी गवर्नर जनरल बना कर भारत भेजा गया।

लार्ड डलहौजी (१८४८-५६)

१५. दूसरा सिक्ख युद्ध—१८४८ ई० में लार्ड हार्डिंग के सेवा निवृत्त होने पर लार्ड डलहौजी को गवर्नर-जनरल बनाकर भारत भेजा गया। डलहौजी जिस समय भारत आया, उस समय पंजाब में बड़ी अशांति थी। १८४५ ई० में प्रथम सिक्ख युद्ध में हार हो जाने पर लाहौर दरबार ने लार्ड हार्डिंग के साथ संधि कर ली थी। इस संधि के अनुसार सिक्खों की सैनिक शक्ति घटा दी गई थी, तथा उन पर

ओर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। अतः सिक्ख ब्रिटिश साम्राज्य को अविश्वास की दृष्टि से देखते थे। पंजाब में रखे गये ब्रिटिश रेजीडेंट ने जिस नीति का पालन किया, उससे सिक्खों में और भी असंतोष पैदा हो गया। मुलतान में मूलराज गवर्नर था, जिसने लाहौर कौंसिल द्वारा आय-व्यय का हिसाब मांगे जाने पर विद्रोह कर दिया। लाहौर दरबार ने उससे कर की पिछली शेष राशि मांगी। किन्तु, उसने इनकार कर दिया और गवर्नर के पद से त्याग-पत्र देने की बात चलाई। लाहौर कौंसिल ने, जिसका प्रधान हेनरी लारेन्स था, तुरन्त ही एक सिक्ख अफसर खानसिंह और दो अंग्रेज अफसरों को मुलतान पर अधिकार करने के लिए भेज दिया। परन्तु मूलराज ने इसे अपना अपमान समझा और दोनों अंग्रेज अफसर मार दिये गये। ब्रिटिश सरकार को इस घटना से बहुत क्षोभ हुआ। हर्बर्ट एडवर्ड नामक अफसर के नेतृत्व में अंग्रेजों की एक छोटी फौज ने मुलतान पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों को संदेह था कि अंग्रेज अफसरों की हत्या में रानी जिन्दन का हाथ था। अतः उसे बनारस भेज दिया गया। रानी के निष्कासन से सिक्खों को बहुत ठेस पहुंची और सिक्ख नेताओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध कर दिया। इन लोगों ने अफगान के अमीर दोस्त मुहम्मद से गठबन्धन कर लिया।

लार्ड डलहौजी असावधान नहीं था। उसने सिक्खों के आक्रमण का सामना कर उन्हें पूरी तरह दबाने का निश्चय कर लिया। लार्ड गफ के सेनापतित्व में अंग्रेजों की एक सेना ने रावी को पार कर चिनाब के किनारे राम नगर में सिक्खों से टक्कर ली। इस युद्ध में हार-जीत का निर्णय नहीं हुआ। सादुल्लापुर में सिक्खों की अंग्रेजों से पुनः मुठभेड़ हुई। यहां सिक्खों की पर्याप्त हानि हुई, किन्तु चिलिआं-वाला की लड़ाई में पांसा पलट गया। अंग्रेजों के बहुत से सैनिक मारे गये। बाद में गुजरात में जो लड़ाई हुई उसमें सिक्खों की हार हुई। इसके पश्चात् अंग्रेजों ने फिर मुलतान पर घेरा डाल दिया और

९ महीने तक विरोध करने के पश्चात् मूलराज ने अंग्रेजों के समक्ष समर्पण कर दिया। मूलराज पर हत्या का अभियोग लगाकर, उसे मृत्यु दण्ड दे दिया गया। डलहौजी ने रणजीत सिंह के उत्तराधिकारी दिलीप सिंह के साथ बड़ी क्रूरता की। उसे पदच्युत कर दिया गया तथा उससे यह लिखवा लिया गया, कि पंजाब पर न तो उसका और न उसके उत्तराधिकारियों का कोई अधिकार रहेगा। उसे ५०,००० पौंड रुपये की वार्षिक पेंशन दे दी गई। बाद में वह इंग्लैंड चला गया, जहाँ उसने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पंजाब को डलहौजी ने ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया।

१६. पंजाब का शासन—डलहौजी ने पंजाब को एक ब्रिटिश प्रान्त बना दिया। क्योंकि उसका विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सिक्खों का दमन आवश्यक है। सर हेनरी लारेन्स ने इसका विरोध करते हुए रणजीत सिंह के उत्तराधिकारी को अपदस्थ न करने का सुझाव दिया। परन्तु डलहौजी ने इस सुझाव पर ध्यान नहीं दिया। उसने पंजाब के शासन के लिए तीन अंग्रेज अफसरों का एक बोर्ड बनाया। सर लारेंस भी इस बोर्ड का एक सदस्य था। डलहौजी ने पंजाब के शासन में कई सुधार किए। सिक्खों की जागीरें ले ली गई और जमीन की पैमाइश करा कर उपज का एक-चौथाई भाग लगान के रूप में लिया जाना निश्चय हुआ। न्याय व्यवस्था में भी सुधार किए गए और अङ्ग-भङ्ग तथा यन्त्रणात्मक दंड-विधान समाप्त कर दिए गए। नई नहरें, स्कूल की इमारतें बनवायी गयीं, और सिक्ख समुदाय को सामाजिक सुधार करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया। गुलामी की प्रथा समाप्त कर दी गयी और ठगों तथा डाकुओं को नष्ट कर दिया गया। १८५३ ई० में बोर्ड समाप्त कर दिया गया और सर लारेंस का भाई जान लारेंस पंजाब का पहला चीफ कमिश्नर बना।

१७. ब्रह्मा की दूसरी लड़ाई (१८५२)—ब्रह्मा की दूसरी लड़ाई का कारण वहां बसे अंग्रेज व्यापारियों की शिकायत थी। यह व्यापारी

१८२६ ई० की सन्धि के पश्चात् ब्रह्मा के दक्षिणी तट पर बस गये थे, परन्तु रंगून का गवर्नर उन्हें बहुत दुःखी करता था और उनके व्यापार में भी हस्तक्षेप करता था। अतः उन्होंने इस बात की शिकायत कलकत्ता में ब्रिटिश सरकार से की। डलहोजी ने शीघ्र ही ब्रह्मा के राजा को एक पत्र लिखकर इस बात का स्पष्टीकरण मांगा। साथ ही उसने १,००,००० पौंड हर्जाने की भी मांग की। ब्रह्मा की सरकार ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। ब्रिटिश सेना ने ब्रह्मा पर आक्रमण कर रंगून पर अधिकार कर लिया। इसी तरह प्रोम और पीगू को जीत कर ब्रह्मा का निचला प्रदेश भी ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया गया और लड़ाई समाप्त हो गई। इस प्रकार बंगाल की खाड़ी से लेकर कन्या कुमारी और मालद्वीप तक तटवर्ती प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

१८. लार्ड डलहोजी की सीमान्त नीति—लार्ड डलहोजी, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, साम्राज्यवादी विचारों का था। उसने सीमान्त प्रदेशों के प्रति जो नीति अपनाई, उससे ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार तो हुआ ही, साथ ही विदेशी आक्रमण की सम्भावना भी कम हो गई। डलहोजी ने पंजाब में व्याप्त अशान्ति की चिन्ता न कर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन कर दिया। इसी प्रकार सिक्किम का पहाड़ी प्रदेश मिल जाने से अंग्रेजों के हाथ में चाय पैदा करने वाला विशाल क्षेत्र आ गया। फलस्वरूप उनके व्यापार का भविष्य उज्ज्वल हो गया। डलहोजी ने ब्रह्मा का कुछ प्रदेश जीत कर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया था। इससे ब्रिटिश ब्रह्मा के पूर्वी प्रदेश की सीमा सुरक्षित हो गई और उस प्रदेश के चावल और इमारती लकड़ी का व्यापार अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

१९. डलहोजी और भारतीय राज्य—डलहोजी ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के लिए प्रयत्नरत था। उसका विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार का शासन सबसे अच्छा है और अधिक-से-अधिक लोगों को उसका लाभ मिलना चाहिए। उसने सीमा पर स्थित प्रदेशों को ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन कर अंग्रेजों की स्थिति सुदृढ़ कर दी। भारत के

दुर्बल अथवा निकम्मे शासकों के साथ उसे कोई सहानुभूति नहीं थी और उनके अस्तित्व को बनाये रखना उसे निरर्थक प्रतीत होता था। उसने देश के राज्यों को निम्न तीन श्रेणियों में बांट दिया और उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन कर देने का कोई अवसर जाने नहीं दिया। यह श्रेणियां इस प्रकार थीं। (१) स्वतन्त्र राज्य, जिनके शासकों की मृत्यु के पश्चात् कम्पनी योग्य उत्तराधिकारी की खोज करती थी; (२) ऐसे राज्य, जो ब्रिटिश सत्ता को अथवा पेशवा को देश की सर्वोच्च सत्ता मानते थे; (३) और ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाये गये परतन्त्र राज्य जो ब्रिटिश सरकार के आधीन थे।

प्रायः इन तीनों श्रेणियों के राज्यों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष हुआ करता था। उत्तराधिकार के विषय में कोई नियम आदि न होना मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण था। जिन राज्यों का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता था, वे किसी लड़के को गोद लेकर अपना राज्य उसे सौंप देते थे। डलहौजी ने पहली दो श्रेणी के राजाओं को गोद लेने का अधिकार दिया, किन्तु अपने आधीन राज्यों को उसने यह अधिकार नहीं दिया। उसने यह नियम बना दिया कि यदि किसी राज्य का शासक निःसन्तान मर जाये, तो उसकी निजी सम्पत्ति ही गोद लिये हुए पुत्र को मिलेगी। इस नियम के अनुसार निःसन्तान राजा का राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन कर लिया जाता था और ब्रिटिश सरकार की अनुमति बिना कोई भी राजा किसी को गोद नहीं ले सकता था।

लार्ड डलहौजी की इस नीति का विरोध कम्पनी के कुछ अफसरों ने किया। उनका मत था कि अधीनस्थ राज्य बहुत उपयोगी हैं, क्योंकि वे अमीरों और सरदारों को नियन्त्रण में रख सकते हैं। यदि यह सरदार निरंकुश हो गए, तो देश में अशान्ति फैलने की पूरी आशंका है। इसके अतिरिक्त इस नियम के पालन से अन्य भारतीय राज्यों के शासन भी सशंक हो जायेंगे। तीसरे देश की जनता ब्रिटिश

सरकार के शासन की अपेक्षा अपने राजाओं के शासन को अधिक पसन्द करती थी। डलहौजी ने इस विरोध की ओर कोई ध्यान न देकर देशी राज्यों के विलय की नीति का पालन किया और ब्रिटिश साम्राज्य की आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ बना दिया।

२०. देशी राज्यों का विलय—१८४८ ई० में सतारा के अप्पा साहब की मृत्यु के पश्चात् सतारा ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। यही गति झाँसी की हुई। १८५४ ई० में नागपुर भी अंग्रेजों के हाथ में आ गया। नागपुर का राजा निःसन्तान मरा था और ब्रिटिश सरकार ने उसकी विधवा द्वारा गोद लिए गए दत्तक को राजा मानना अस्वीकार कर दिया ; नागपुर के राजा के कीमती जवाहरातों और अन्य सामान को नीलाम कर दिया गया। इससे देश की जनता के हृदय को बहुत ठेस पहुँची। किन्तु डलहौजी ने अपनी नीति में कोई शिथिलता नहीं आने दी। तत्पश्चात् सम्बलपुर और उदयपुर के राज्य भी अंग्रेजों के हाथ में आ गए। राज्यों के विलय का सिद्धान्त राजाओं की उपाधियों को अमान्य करने के लिए काम में लाया गया। कर्नाटक के नवाब और तन्जोर के राजा की उपाधियाँ अमान्य कर दी गई। किन्तु मुगल सम्राट की उपाधि को अमान्य करने के प्रस्ताव से कम्पनी के डायरेक्टर सहमत नहीं हुए। १८५३ ई० में बाजीराव (द्वितीय) की मृत्यु पर पेशवा की आठ लाख रुपये की पेन्शन बन्द कर दी गई। उसके दत्तक पुत्र धुन्धूपंत (नाना साहब) का अधिकार अमान्य कर दिया गया। उसे बिठूर की जागीर दे दी गई।

२१. अवध का विलय—अवध में नवाब का शासन बहुत निकृष्ट हो गया था, अतः उसे भी ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन कर लिया गया। १८०१ ई० में अवध के नवाब ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली थी। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने नवाब को अन्य राजाओं के आक्रमण से बचाने का वचन दिया था। नवाब ने अपनी तरफ से वचन दिया था कि वह अपना शासन ठीक रखेगा। किन्तु, बाह्य आक्रमण और

आन्तरिक विद्रोह की आशंका से मुक्त होने पर भी नवाब ने अपने राज्य की दुर्दशा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। ब्रिटिश सरकार समय-समय पर अवध के नवाबों को चेतावनी देती रही, किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। १८३१ ई० में विलियम बेंटिक ने अवध के नवाब को चेतावनी दी थी, कि यदि अवध का शासन ठीक न हो सका, तो राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया जायेगा और नवाब को पेन्शन दे दी जायेगी।

१८४८ ई० में डलहौजी ने स्लीमेन को लखनऊ का रेजीडेन्ट बनाकर भेजा और उससे अवध के शासन की स्थिति की जानकारी प्राप्त करने का आदेश दिया। तदनुसार स्लीमेन ने अवध का दौरा कर डलहौजी को सूचित किया कि राज्य की स्थिति बहुत चिन्ताजनक है। वहां किसानों की दशा इतनी हेय है कि वे लगान तक नहीं दे सकते। अवध का वर्णन करते हुए स्लीमेन ने यह भी लिखा कि वह अवध के विलय के पक्ष में नहीं है। उसकी राय थी कि ऐसी कार्यवाही राजनैतिक दृष्टि से कम्पनी के लिये लाभप्रद नहीं होगी।

स्लीमेन से अवध की जानकारी प्राप्त होने पर डलहौजी स्वयं अवध गया। इसके पश्चात् उसने १८५४ ई० में आउट्राम को अवध का रेजीडेन्ट बनाकर भेजा। आउट्राम ने भी अवध की शोचनीय दशा का समाचार प्रेषित किया। डलहौजी ने डायरेक्टरों को सुझाव दिया कि नवाब के पास केवल उपाधि रहने दी जाये और अवध का शासन कम्पनी अपने हाथ में ले ले। डलहौजी का यह सुझाव मान लिया गया और नवाब से कहा गया कि वह शासन-भार कम्पनी को सौंप दे। किन्तु नवाब ने इसे अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप कम्पनी की सेनायें लखनऊ पहुंची और नवाब को गद्दी से हटाकर कलकत्ता भेज दिया गया। इस प्रकार १८५५ ई० में अवध कम्पनी के साम्राज्य में विलीन हो गया।

२२. लार्ड डलहौजी के सुधार कार्य—लार्ड डलहौजी ने अनेक

महत्वपूर्ण सुधार किए। उसके शासन सम्बन्धी सुधारों का मूलमन्त्र था—शक्ति का केन्द्रीयकरण। वह सारी शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करना चाहता था। देश की आवश्यकता को देखते हुए उसने अपने तोपखाने, जो बंगाल में थे, मेरठ भिजवा दिए। इसके अतिरिक्त सेना का दफ्तर भी उसने शिमला पहुँचा दिया। लार्ड डलहौजी ने रेल और डाक विभाग को बहुत महत्व दिया। अनेक महत्वपूर्ण स्थानों पर रेलवे लाइन बनाई गई और रेल चलाई गई। मुख्य-मुख्य केन्द्रों में तार की भी व्यवस्था की गई। १८५७ के विद्रोह के समय अंग्रेजों को रेल तथा तार से बड़ी सहायता मिली। व्यापारिक समृद्धि के लिए डलहौजी ने भारत के सब बन्दरगाहों को मुक्त व्यापार के लिए खोल दिया गया। नये प्रकाश-स्तम्भ बनाए गए। सार्वजनिक निर्माण के कार्यों में भी उसने बड़ी प्रगति की। सड़कों, नहरों तथा पुल बनाने का काम ठेकेदारों द्वारा करवाया गया। डाक प्रणाली में भी डलहौजी ने महत्वपूर्ण सुधार किए। पर उसके सुधारों को सन्देह की भावना से देखा गया। सामान्य धारणा यह फैल गई कि अंग्रेज भारतीयों को ईसाई बनाने के लिए यह सब उपाय प्रयोग में ला रहे हैं।

२३. **डलहौजी का मूल्यांकन**—लार्ड डलहौजी की गणना भारत के महान् ब्रिटिश शासकों में की जाती है। वह साम्राज्यवादी विचारों का था और ब्रिटिश राज्य के विस्तार के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहता था। देशी राज्यों को सरलता से विलीन किया जा सके, इसलिए उसने उत्तराधिकारी के विषय में एक नई नीति का अनुसरण किया। इसके अनुसार यह स्पष्ट कर दिया गया था कि दत्तक पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी नहीं समझा जायेगा। हिन्दू धर्म और कानून में पुत्र और दत्तक पुत्र में कोई अन्तर नहीं माना जाता था। अतः दत्तक पुत्र के उत्तराधिकार की अस्वीकृति से देश के राजाओं एवं जनता की भावनाओं को ठेस लगी। किन्तु डलहौजी ने अपनी नीति कार्यान्वित करने में इन बातों की उपेक्षा कर अधिकाधिक राज्यों को ब्रिटिश

साम्राज्य में विलीन किया। परिणामस्वरूप भारत में ब्रिटिश शासन की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गई।

डलहौजी साम्राज्यवादी होने के साथ-साथ योग्य शासक भी था। उसने कम्पनी के शासन में कई सुधार किए और देश में सड़कें, भवन-निर्माण आदि को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से लोकनिर्माण-विभाग (पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट) की स्थापना की। विधवा पुनर्विवाह के विषय में एक कानून पास करवा कर उसने विधवाओं की शोचनीय अवस्था को सुधारने की चेष्टा की। डलहौजी के शासन-काल में कम्पनी के शासन में पर्याप्त सुधार हुए और उच्च पदों के लिए प्रतियोगिता के आधार पर नियुक्ति की प्रथा का श्रीगणेश हुआ।

लार्ड कैनिंग (१८५६-६२)

२४. कैनिंग—लार्ड डलहौजी के पश्चात् १८५६ ई० में लार्ड कैनिंग को भारत का गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा गया। कैनिंग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अन्तिम गवर्नर-जनरल था और उसके कार्य-काल में भारत के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया। कैनिंग एक योग्य और सहिष्णु शासक था। वह अच्छा विद्वान भी था और उसने भारत आते ही शिक्षा के प्रसारार्थ कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित किए। इन विश्वविद्यालयों ने सामान्य जनता को और विशेषतया देश की शिक्षित जनता को बहुत प्रभावित किया। कैनिंग जिस समय भारत आया, उस समय देश में सर्वत्र असन्तोष व्याप्त था। इसका कारण था ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार और कैनिंग के पूर्व के शासकों की नीति तथा कार्यवाही। १८५७ ई० में यह असन्तोष चरम-सीमा पर पहुंच चुका था। इसकी प्रतिक्रिया सैनिक विप्लव में हुई, जिसने ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें एक बार तो हिला कर ही रख दीं।

२५. विप्लव का स्वरूप—भारत में ब्रिटिश सत्ता के लिये एक संकट बन जाने वाले इस विप्लव पर बहुत कुछ लिखा गया है। भारतीयों और अंग्रेजों ने भी इस विद्रोह पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। किन्तु

इतनी सामग्री के होते हुए भी इस विप्लव का स्वरूप क्या था यह स्पष्ट नहीं हो सका है। जहां तक इस विप्लव के उत्तरदायी कारणों का सम्बन्ध है, प्रायः सभी इतिहासकार एकमत हैं। परन्तु वह केवल सिपाही गदर था अथवा स्वातन्त्र्य-संघर्ष, इस विषय पर बहुत मतभेद है। अधिकांश अंग्रेज लेखकों की राय है कि यह घटना सिपाही गदर के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी। उनके विचार में गदर का कारण सैनिकों का असन्तोष और रायफलों में चर्बी वाले कारतूसों का प्रयोग था। इस विप्लव के दूरगामी परिणामों के स्पष्टीकरण में वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं, कि देश में सर्वत्र जो असन्तोष व्याप्त था, उसका इन विद्रोही सैनिकों ने लाभ उठाया। इसी कारण विद्रोह ने अल्पकाल में ही इतना उग्र रूप धारण कर लिया। सर जान लारेंस का मत है कि चर्बी वाले कारतूसों के कारण ही गदर हुआ, यह एक निर्विवाद तथ्य है। उसका कथन है कि भारतीय सैनिकों ने ही विद्रोह की दिशा में पग उठाये। विद्रोह के उद्देश्य एवं कारणों पर प्रकाश डालते हुए वह कहता है कि इस आन्दोलन के पीछे देशभक्ति या राष्ट्रीयता जैसी कोई भावना नहीं थी।

आउट्रम की राय में यह विप्लव देश में मुसलमानों के षड्यन्त्रों का ही परिणाम था। उनका कथन है कि यदि वह विप्लव परिपक्व स्थिति में हुआ होता और चर्बी वाले कारतूसों के कारण समय से पहले विस्फोटित न हो गया होता, तो उसने और भी भयंकर रूप धारण किया होता। एक अन्य लेखक पी० राबर्ट्स भी चरबी वाले कारतूसों को गदर का प्रधान कारण मानता है। संयोगवश देश में उस समय पर्याप्त असन्तोष था, जिसका देशी सैनिकों ने पूरा लाभ उठाया। गैरेट थामसन जैसे लेखकों ने भी इनसे मिलते जुलते तर्क और प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। वे कहते हैं कि इस आन्दोलन को जन-विप्लव की उपाधि देना भारतीय जनता का अपमान करना है, क्योंकि वास्तव में यदि वह जन-विप्लव होता, तो अंग्रेजों की साधारण-सी सेना उसका

कदापि दमन न कर पाती। उनकी राय में वह केवल सैनिकों का विद्रोह था, क्योंकि भारतीय जनता ने विप्लव में कोई उल्लेखनीय योग नहीं दिया। इस विप्लव को सैनिक गदर कहने वाले लेखक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यह विप्लव नर्मदा के उत्तर में ही सीमित रहा। पंजाब के सिखों ने इस विद्रोह में कोई भाग नहीं लिया। इस प्रकार कई राजा तथा रजवाड़े तटस्थ रहे। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि देश की अधिकांश जनता इस विप्लव की मौन दर्शक रही। ये तथ्य इस आन्दोलन को राष्ट्रीय नहीं मानते। "अवध और शाहबाद के बाहर ऐसी सामान्य सहानुभूति का साक्ष्य नहीं मिलता, जिसे गदर को एक राष्ट्रीय युद्ध की गरिमा से युक्त किया जा सके। इसके साथ ही इसे केवल एक सैनिक विद्रोह कह कर समाप्त कर देना भी गलत होगा। गदर एक विद्रोह हो गया था और उसने उस समय एक राजनीतिक स्वरूप धारण कर लिया था।"*

२६. **स्वातन्त्र्य संघर्ष**—१८५७ ई० के विप्लव का एक और पहलू है, जो सम्भवतः अधिक आकर्षक है। भारत के अधिकांश इतिहासकारों और लेखकों की राय में यह विप्लव भारतीयों का प्रथम स्वातन्त्र्य-संघर्ष था। वे इस विप्लव को अंग्रेजों की सत्ता के विरुद्ध हुई क्रांति मानते हैं। वीर सावरकर ने "भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम" और श्री अशोक महता ने '१८५७' में यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, कि १८५७ ई० की ऐतिहासिक घटनायें तथाकथित गदर नहीं थीं, अपितु वह स्वातन्त्र्य संग्राम था। इसमें सन्देह नहीं कि इस विप्लव का सूत्रपात सैनिकों ने किया था, परन्तु इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि देश की जनता ने संघर्ष को कभी अपना कार्य नहीं माना। यह विप्लव देशभक्ति की भावना से प्रेरित था और यदि इस आन्दोलन में देश की जनता ने भाग नहीं लिया, तो उसके लिए तत्कालीन भारतीय नरेश उत्तरदायी हैं, जो अपना राज्य खोने के भय से तटस्थ रहे।

* श्री सुरेन्द्र नाथ सेन 'अठारह सौ सत्तावन'।

जिन भारतीय सिपाहियों ने इस विप्लव में भाग लिया, उनमें देश-भक्ति की भावना पर्याप्त प्रबल थी। मातृभूमि को विदेशी आधिपत्य से मुक्त कराने के लिए कई सिपाहियों ने प्राणाहुति दे दी। यदि वह विप्लव एक गदर मात्र होता, तो वह इतनी प्रचंडता से कभी न फैलता। अंग्रेजों की सहायता करने वाले व्यक्तियों का सामाजिक बहिष्कार भी किया गया। इसी प्रसंग में यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा, कि एक बार कर्नल हैवलाक अपनी सेना को नदी के दूसरे किनारे पर लिवा जाने में नाव चलाने वाले मल्लाहों की सहायता प्राप्त न कर सका। बड़े से बड़ा प्रलोभन भी उन्हें डिगा न सका। अंगेजों को परास्त कर देने के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों ने अपने मतभेद भुला दिये। बहादुरशाह ने राजस्थान के रजवाड़ों को लिखा था कि उनमें से जो भी चाहे उनकी प्रभुसत्ता ले सकता है। विदेशी सत्ता से संघर्ष में सहकार्य की आवश्यकता ने देश में भ्रातृत्व की भावना उत्पन्न कर दी थी। इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि १८५७ ई० का विप्लव भारत का प्रथम स्वातंत्र्य आन्दोलन था, जो किन्हीं कारणों से सफल न हो सका।

२७. विप्लव के कारण—१८५७ ई० में हुई इस क्रान्ति के कई कारण थे। यह सच है कि ये कारण एक-एक करके लिए जायें, तो विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते। किन्तु, उन सबके सामूहिक प्रभाव की परिणति इस विप्लव के विस्फोट में हुई। कुछ लेखक २९ मार्च को मंगल पांडे से सम्बन्धित घटना को ही इस क्रान्ति का कारण मानते हैं। इसका वास्तविक कारण अंग्रेजों की नीति और कार्यवाही था। "भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के शीघ्रता के विस्तार होने के परिणामस्वरूप देश की प्रशासन व्यवस्था में जो परिवर्तन हुए, उनसे भारतीय जीवन अस्त-व्यस्त हो चला; देश के विभिन्न भागों में हलचल पैदा हो गई; भिन्न-भिन्न स्थानों पर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह होने लगे; यहां तक कि १८५७ ई० में सारे देश में व्यापक रूप

से एक भीषण विद्रोह का झण्डा उठाया गया।"* लार्ड डलहौजी ने तो यह भविष्यवाणी की थी कि हिन्दुस्तान में अन्तिम युद्ध किया जाना शेष है। किन्तु, लार्ड डलहौजी को इस विप्लव के लिए उत्तरदायी ठहराना भूल होगी। इसमें संन्देह नहीं कि उसके कार्यों ने विप्लव को समय से पहले घटित कर दिया। इस आन्दोलन के कई कारण थे, जैसे राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सैनिक इत्यादि। इनमें से प्रत्येक कारण को नीचे समझाया गया है।

(१) राजनैतिक कारण—लार्ड डलहौजी ने देशी राज्यों के विलय के विषय में जो नीति अपनाई, उससे भारतीयों को बहुत असतोष हुआ। नि:सन्तान राजा कम्पनी की अनुमति लिए बिना अपना राज्य दत्तक पुत्र को नहीं सौंप सकते थे। दत्तक पुत्र के साथ इस अवहेलना के व्यवहार ने देशी नरेशों के लिए अत्यधिक चिंता उत्पन्न कर दी। लार्ड डलहौजी ने अपने उत्तराधिकार कानून को बड़ी कड़ाई के साथ लागू किया। सतारा, नागपुर और झांसी के ब्रिटिश राज्य में विलय से हिन्दुओं को बहुत क्षोभ हुआ। उधर अवध को भी जनता की भलाई के बहाने हड़प लिया गया। अवध के नवाब ने अपने राज्य के अपहरण का विरोध नहीं किया, परन्तु उसके राज्य के ताल्लुकेदार, जो नवाब के शासन से पर्याप्त लाभान्वित थे, मन ही मन अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए। देश की छोटी-मोटी रियासतों में असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो गई। लार्ड डलहौजी ने भारतीय शासकों की उपाधि अमान्य करना आरम्भ किया और सर नेपियर जैसे अंग्रेज पदाधिकारी देशी राज्यों के विलय की मांग खुले आम कर रहे थे। पेशवा के अन्तिम उत्तराधिकारी की पेंशन बन्द कर दी गयी थी। अत: वह भी अंग्रेजों का प्रबल विरोधी बन गया।

विलियम बेंटिक ने इनामी जागीरें छीन लेने का आदेश जारी किया था, जिसके परिणामस्वरूप कई जमींदारियां ध्वस्त हो गईं। दक्षिण

---

* "भारत १९५७" पब्लिकेशन डिविज़न।

में इनाम कमीशन ने मराठा शासकों की उपाधियों और जागीरों के विषय में जांच कर जो कार्यवाही की, उससे भी बहुत असंतोष फैला। अवध के विलय के पश्चात् सेना के विघटन के कारण कोई साठ हजार सैनिक बेरोजगार हो गये। भूमि का स्वामित्व अनिश्चित हो गया और अंग्रेजों ने अपनी इच्छानुसार गांवों को हड़प लिया। मुगल साम्राज्य का शासक, जिसे कम्पनी ने पेंशन दे दी थी, दिल्ली में रहता था और उसका अपना दरबार भी था। कम्पनी ने उसके उत्तराधिकारी को इस शर्त पर मान्यता देने को कहा, कि वह अपनी उपाधि त्याग दे और दिल्ली छोड़कर कहीं और चला जाये। कम्पनी के शासन में अंग्रेज अफसरों का आधिक्य था। बहुत कम हिन्दू या मुसलमान उच्च पदों पर नियुक्त थे। अंग्रेज अफसरों को देश की परिस्थिति के विषय में न तो कोई चिन्ता थी और न उन्हें जनता के साथ कोई सहानुभूति ही थी। फलस्वरूप वे मनमानी करते थे और उन्हें कोई रोकता नहीं था।

(२) **सामाजिक और धार्मिक कारण**—१८१८ ई० तक भारत की जनता ने अंग्रेजों के शासन के राजनैतिक प्रभावों का अनुभव नहीं किया था। किन्तु, ब्रिटिश राज्य के शीघ्र विस्तार से स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया। "इस शक्तिशाली सरकार के साथ उत्साही धर्म प्रसारक भी आये, जिन्होंने हिन्दु और इस्लाम दोनों धर्मों के आधारमात्र को चुनौती दी।"* अंग्रेजों ने सती की निर्दय प्रथा को समाप्त कर दिया, विधवाओं के पुनर्विवाह को अनुमति दी और ईसाई धर्म स्वीकार करने वालों की सम्पत्ति और उत्तराधिकार की रक्षा की व्यवस्था की। धर्म के विषय में अंग्रेजों का हस्तक्षेप क्रमशः बढ़ता ही गया। अंग्रेजी शासन ने ईसाई धर्म की शिक्षा और प्रसार को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। ईसाई बन जाने वाले भारतीयों

---

* *The Cambridge Shorter History of India—Allan Wolseley and Dodwell.*

को अनेक प्रकार के प्रलोभन एवं पुरस्कार दिए जाते थे। देश में अल्पकाल में ही यह भावना फैल गयी कि ब्रिटिश सरकार जात-पांत व्यवस्था को नष्ट कर भारतीयों को ईसाई बना देगी। देश की जनता रेल, डाक तथा तार जैसे आविष्कारों को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। लार्ड डलहौजी के उत्तराधिकार कानून में दत्तक पुत्र को पूरे अधिकार नहीं प्रदान किए गये थे। इससे राजाओं की धार्मिक भावनाओं को बहुत ठेस पहुंची। बम्बई में हिन्दुओं और पारसियों के लिए ईसाई धर्म सम्बन्धी एक पुस्तक का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया। इसमें सन्देह नहीं कि सती प्रथा की समाप्ति और विधवा-पुनर्विवाह जैसे सुधार आवश्यक थे और इसके लिए अंग्रेजों को श्रेय दिया जाना चाहिए। किन्तु, दूसरी ओर इस तथ्य को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता, कि उन्होंने अपने धर्म के प्रसार के लिये जो कार्य किये, उनसे देश में असंतोष फैलना स्वाभाविक ही था। बिहार में शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर के दफ्तर को आम-तौर पर "शैतानी दफ्तर" कहा जाता था। इससे ज्ञात होता है कि भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा के प्रति कितनी अश्रद्धा थी।

(३) आर्थिक कारण—भारत में विदेशी आधिपत्य कोई नयी बात नहीं थी। अंग्रेजों से पूर्व मुसलमान आक्रमणों ने भारत पर आक्रमण करके लूटमार भी की थी। किन्तु, उनके आक्रमणों ने भारतीय जनता को उतना क्षुब्ध नहीं किया, जितना कि अंग्रेजों की शोषण नीति ने। इंग्लैंड के उद्योगों को आवश्यक माल की पूर्ति के लिए भारत को माध्यम बना दिया गया। भारत से कच्चा माल ले जाकर इंग्लैंड में बना माल भारत में भेजा जाता था। ब्रिटिश व्यापार की दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होने लगी। परिणामस्वरूप देश की पूंजी बाहर जाने लगी और आर्थिक दशा बहुत गिर गयी। जमींदारों और किसानों की कठिनाइयों की ओर कोई ध्यान न दिया गया। देश में दारिद्र्य बढ़ता जा रहा था। देशी शासकों से हर्जाना वसूल किया

जाता था जो उन्हें बहुत खलता था। देश में बेकारी बढ़ती जा रही थी। अवध के विलय और उसकी सेना के विघटन के परिणामस्वरूप सहस्रों सैनिकों की छंटनी हो गयी। ये सैनिक जनता को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उकसाने में प्रयत्नशील थे।

(४) **सैनिकों में असंतोष**—अंग्रेजी कम्पनी को जब भारत में युद्ध करने पड़े, तो उसे एक बड़ी सेना की आवश्यकता पड़ी। धीरे धीरे कम्पनी की सेना में भारतीयों को सैनिकों के रूप में लिया जाने लगा। इन सैनिकों ने अपने साहस और वीरता से अंग्रेजों के शत्रुओं को प्रायः प्रत्येक युद्ध में परास्त किया। किन्तु, भारतीयों को कम्पनी की सेना में सम्मान प्राप्त न था। अंग्रेज सैनिकों और भारतीय सैनिकों के बीच भेद-भाव किया जाता था। अंग्रेज सैनिकों को भारतीय सैनिकों की अपेक्षा अधिक वेतन मिलता था। उनके भोजन एवं रहन-सहन की व्यवस्था भी भारतीय सैनिकों से बहुत अच्छी होती थी।

अंग्रेजों की सेनायें बंगाल, मद्रास और बम्बई इन तीन प्रान्तों में तैनात थीं। इन सेनाओं में साधारणतः एक अंग्रेज सैनिक और तीन भारतीय सैनिकों का अनुपात रखा जाता था। १८५६ ई० में क्रीमिया में युद्ध आरम्भ हो गया और भारत से पर्याप्त अंग्रेज सैनिकों को वहाँ भेज दिया गया। लार्ड डलहौजी ने अंग्रेज सैनिकों को इस प्रकार भेजने का विरोध किया था। फिर भी क्रीमिया के युद्ध में और अंग्रेज सैनिक भेजे गए। भारत में जो अंग्रेज सैनिक शेष थे, उनमें अधिकांश को पंजाब और समीपस्थ प्रदेश में रख दिया गया। परिणामस्वरूप अंग्रेजों की सेना में अंग्रेज और भारतीयों का अनुपात १ और ६ हो गया।

इसके अतिरिक्त सिपाहियों में अनुशासन का ह्रास हो रहा था, जिसके कई कारण थे। नियन्त्रण के बढ़ते हुए केन्द्रीकरण के परिणामस्वरूप सेना के उच्च पदाधिकारियों की सत्ता बहुत घट गई थी। वे अपने मातहत सैनिकों की शिकायतों का पूरा निराकरण नहीं कर पाते थे। अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला देने से बंगाल की

सेना पर काफी प्रभाव पड़ा, क्योंकि उसमें अधिकांश सैनिक अवध के थे। अवध के विलय से पूर्व यदि कोई सिपाही नवाब के शासन के विरुद्ध कोई शिकायत करता था, तो उसकी जांच लखनऊ के रेजीडेन्ट द्वारा शीघ्र ही की जाती थी। परन्तु, अवध के विलय के पश्चात् सैनिकों ने यह देखा, कि उन्हें जो विशेष अधिकार प्राप्त था, वह समाप्त हो गया। अतः उन्हें काफी सन्तोष हुआ। सेना में पदोन्नति के लिये वरिष्ठता को आधार बना दिया गया। इसके कारण प्रतिभा असाधारण शौर्य आदि गुणों की अपेक्षा हुई और सेना के उच्च पदों पर बूढ़े व्यक्तियों की नियुक्ति की जाने लगी। पदोन्नति के इस नियम का बंगाल में कड़ाई से पालन किया गया। साम्राज्य विस्तार के साथ शासन के लिये कम्पनी को दक्ष अधिकारियों की आवश्यकता बढ़ती जा रही थी। डलहौजी ने जितने देशी राज्यों में ब्रिटिश सत्ता स्थापित की, वहां उसने योग्य पदाधिकारी नियुक्त किए। ऐसे कुशल कर्मचारी सेना से ही लिये गए। फलस्वरूप सेना के सिपाहियों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखना कठिन हो गया। बंगाल की सेना में अनुशासन का ह्रास एक और कारण था। बम्बई और मद्रास के सैनिकों में कई जाति के लोग थे, जबकि बंगाल के सैनिक मुख्यतः ब्राह्मण या अवध के राजपूत थे। ये सैनिक जात-पांत का बहुत ध्यान रखते थे और अनुशासन विषयक कठोर नियमों को पसन्द नहीं करते थे।

सैनिकों में अनुशासन की कमी तो थी ही, साथ ही असन्तोष भी शीघ्रता से फैल रहा था। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के परिणामस्वरूप भारतीय सैनिकों को दूर-दूर भेजा जाने लगा। उनकी नौकरी की शर्तें कष्टप्रद हो गईं। उनकी प्रतिष्ठा बहुत कम हो गई। कैनिंग के आने तक इन सिपाहियों को अपने प्रान्त से बाहर नहीं भेजा जाता था। किन्तु कैनिंग ने आते ही यह नियम बना दिया, कि सिपाहियों को ब्रिटिश साम्राज्य में कहीं भी जाने के लिये तैयार रहना होगा। परिणामस्वरूप भारतीय सिपाहियों में असुरक्षा का भाव उत्पन्न हो गया और ब्रिटिश शासन के प्रति उनमें जो थोड़ी बहुत सहानुभूति थी, वह भी नष्ट हो गई।

देश में जब असन्तोष की अग्नि सुलग रही थी, तभी संयोग से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई, जो विप्लव के लिये पोषक सिद्ध हुई। देश की जनता का विश्वास था कि भारत में अंग्रेजों के सौ साल पूरे होते ही उनका शासन समाप्त हो जाएगा। यह गणना १७५७ ई० के प्लासी के युद्ध से की गई थी, जिसके अनुसार अंग्रेजों का शासन १८५७ ई० में समाप्त होने की भविष्यवाणी की गई थी। समस्त उत्तरी भारत में यह धारणा बलवती होती गयी और इस आन्दोलन के प्रसारार्थ एक गांव से दूसरे गांव के मुखिया को चपातियां भेजी जाने लगीं। उसे यह आदेश दिया जाता था, कि वह पांच चपातियां और बनवाकर किसी अन्य गांव को भिजवा दे। इस रहस्य का कोई स्पष्टीकरण नहीं किया जा सका। किन्तु इस बात से जनता में आतंक और रहस्य के प्रति जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न हो गई। कहा जाता है कि ३१ मई १८५७ को विप्लव का सूत्रपात होना निश्चित किया गया था, परन्तु चर्बी वाले कारतूसों ने विद्रोह का इससे पहले ही विस्फोट कर दिया।

२८. विप्लव का प्रसार और उसके परिणाम—इसी बीच कम्पनी के सैनिकों को एनफील्ड राइफल दी जाने लगी। इस राइफल की नली में कारतूस बहुत सटकर बैठता था। अतः राइफल में भरने से पहले उसमें चर्बी लगानी पड़ती थी। बंगाल की सेना को जो कारतूस दिये जाते थे, वे डमडम में बने होते थे। एक दिन डमडम में खलासी ने एक ब्राह्मण सैनिक से पानी पीने के लिये लोटा मांगा। ब्राह्मण ने लोटा देने से इन्कार कर दिया। इस पर खलासी ने उससे कहा, कि कारतूसों में गाय की चर्बी लगी रहती है, जिससे ब्राह्मणों का धर्म पहले ही नष्ट हो चुका है। यह खबर सभी सैनिकों में बड़ी तेजी से फैल गयी। साथ ही मुसलमानों को भड़काने के लिए यह अफवाह फैलाई गई कि कारतूसों में सूअर की चर्बी लगाई जाती है। सैनिकों ने कारतूसों का प्रयोग करना अस्वीकार कर दिया। उनको यह विश्वास हो गया, कि सरकार ने हमारा धर्म भ्रष्ट करने के लिए ही यह षड्यंत्र रचा

है। सेना में बड़ी अशान्ति फैल गयी। लार्ड कैनिंग ने शीघ्र ही एक घोषणा जारी करते हुए इस भ्रम का निराकरण किया किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। कई स्थानों पर सैनिकों ने कारतूसों को छूने तक से इन्कार कर दिया। बैरकपुर में विद्रोह उठ खड़ा हुआ, परन्तु उसे दबा दिया गया। ३४वीं रेजिमेंट के एक सिपाही ने अंग्रेज एडज्युटेन्ट को गोली मार कर मौत के घाट उतार दिया। भारतीय सिपाहियों ने मंगल पांडे नामक विद्रोही को कैद करने से इन्कार कर दिया। कुछ समय पश्चात् मंगल पांडे व अन्य विद्रोहियों को पकड़ कर फांसी का दण्ड दे दिया गया, किन्तु यह शांति अल्पजीवी ही रही।

मेरठ में कोई ८५ विद्रोही सिपाहियों को कारतूस के प्रयोग से इनकार करने के अपराध में लम्बी कैद का दण्ड दिया गया। ६ मई को उन विद्रोहियों की परेड ली गई और उन्हें बेइज्जती के साथ जेल में डाल दिया गया। १० मई की शाम को भारतीय सैनिकों ने खुलेआम विद्रोह कर दिया। उन्होंने जेल पर धावा बोल दिया और अपने विद्रोही साथियों को मुक्त करा लिया। यूरोपीय अधिकारी मार डाले गये और विद्रोहियों ने बाजार को लूटकर दिल्ली का रास्ता पकड़ा। मेरठ में उस समय जो जनरल था, उसने उन सिपाहियों को दबाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

मेरठ से चले विद्रोहियों ने दूसरे दिन दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली में बहुत से असंतुष्ट व्यक्ति विद्रोह में सम्मिलित हो गये और विद्रोहियों ने कुछ ही घंटों में दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। उन्होंने बहादुर शाह को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। बहादुर शाह के लड़कों ने आन्दोलन का नेतृत्व करने की चेष्टा की, क्योंकि वह मुगल साम्राज्य के वैभव को पुनः प्राप्त करने के अभिलाषी थे। बहुत से अंग्रेज बच निकले, किन्तु जो भाग न सके, वे निर्ममता से मार डाले गये। दिल्ली विद्रोह का केन्द्र-स्थान बन गया और देश भर के विद्रोही दिल्ली की ओर चल पड़े। इस समय दिल्ली में जो रक्त-पात

हुआ, वह भावी संघर्ष और निर्मम हत्याकांड जैसी घटनाओं का सूचक था। सर लारेन्स ने पंजाब में शान्ति बनाये रखी। इसका एक कारण यह था, कि सिक्खों ने इस आन्दोलन में भाग नहीं लिया। यह विद्रोह शीघ्र ही रोहिलखंड और मध्य-भारत में फैल गया और बरेली, लखनऊ बनारस एवं कानपुर विप्लव के केन्द्र बन गये।

(क) दिल्ली का घेरा—दिल्ली में हुए विद्रोह की सूचना तार द्वारा लाहौर भेजी जा चुकी थी, किन्तु कैनिंग को उसका समाचार दो दिन बाद अर्थात् १३ मई को मिला। उसने पंजाब के सर लारेंस और लखनऊ के जान लारेंस को विद्रोह दबाने का आदेश दे दिया। निकलसन के नेतृत्व में पंजाब से एक बड़ी सेना आयी और उसने काश्मीरी दर्वाजा तोड़कर दिल्ली में प्रवेश किया। पांच छः दिनों तक विद्रोही अंग्रेजों से जूझते रहे, किन्तु विजय का सेहरा अंग्रेजों के सिर बंधा। अंग्रेजों ने भी विद्रोहियों से अत्याचारों का बदला लिया। हजारों निरपराध व्यक्ति मौत के घाट उतार दिये गये। महिलाओं के साथ अशोभनीय व्यवहार हुआ। बहादुरशाह को बन्दी बना कर रंगून भेज दिया गया।

(ख) कानपुर और लखनऊ—कानपुर में विद्रोहियों के नेता नाना साहब थे। उन्होंने अपने आपको पेशवा घोषित कर दिया और कानपुर जाकर अंग्रेजों को घेर लिया। अंग्रेज सैनिकों ने तीन सप्ताह तक विद्रोहियों का बड़ी वीरता से सामना किया। जून के महीने में जनरल नील ने इलाहाबाद के किले पर अधिकार कर लिया और वह कर्नल हैवलाक के साथ कानपुर की ओर बढ़ा। परन्तु इनके कानपुर पहुंचने के पूर्व अंग्रेजों ने नाना साहब के समक्ष इस शर्त पर समर्पण कर दिया था, कि उनकी जान न ली जाए। अंग्रेज नावों पर सवार होकर इलाहाबाद जाने के लिए निकले परन्तु नावों में आग लगा दी गई और विद्रोही सिपाहियों ने उन पर गोलियां चलायीं। जो बच गये उन्हें नाना साहब ने कुछ दिन जीवित रखा और इसी बीच नील की फौजों के आने

का समाचार मिलने पर इन लोगों को यंत्रणायें देकर मार डाला गया और उनकी लाशें एक कुएं में फेंक दी गईं। नील और हैवलाक के संयुक्त मोर्चे ने कानपुर के विद्रोहियों को परास्त कर दिया। नाना साहब वहाँ से भाग निकले। नील ने नाना साहब के अत्याचारों का पूरा बदला लिया। लखनऊ में विद्रोह की ज्वाला अत्यन्त प्रचण्ड हो गई थी। सर हेनरी लारेंस ने कुछ समय तक लखनऊ की रक्षा की, परन्तु मारा गया और विद्रोही लखनऊ में घुस आए। कर्नल हैवलाक ने जनरल आउट्रम की सहायता से विद्रोहियों को कई बार परास्त किया, किन्तु दिल्ली से वहां पहुंचे विद्रोहियों ने उन्हें घेर लिया और हैवलाक लखनऊ पर अधिकार करने से वंचित रह गया। अब सर कालिन कैम्पवेल के नेतृत्व में एक सेना लखनऊ को जीतने के लिये भेजी गई। इसी बीच कैम्पवेल को तात्या टोपे के दमन के लिए कानपुर जाना पड़ा। कानपुर से लौटकर उसने लखनऊ शहर पर अधिकार कर लिया। कैम्पवेल ने लखनऊ से बरेली जाकर विद्रोहियों को दबाया।

(ग) **मध्यभारत में विद्रोह का दमन**—मध्य भारत में विप्लव के दो नेता थे, एक तात्या टोपे और दूसरा झांसी की रानी लक्ष्मी बाई। तात्या टोपे ने काल्पी से प्रस्थान कर जनरल विन्डहैम को हराया, जो कानपुर में था। किन्तु सर कैम्पबेल ने वहाँ पहुँच कर तात्या टोपे को परास्त कर दिया। तात्या टोपे और झांसी की रानी ने मध्य भारत में विद्रोह जारी रखा। सर ह्यू रोज ने तात्या टोपे को बेतवा के युद्ध में हरा दिया। तात्या तथा रानी लक्ष्मी बाई ग्वालियर की ओर चले गये। ग्वालियर का राजा तटस्थ रहा, किन्तु उसकी सेना विद्रोही बन गयी। अतः सर ह्यू रोज ने ग्वालियर पर अविलम्ब धावा बोल दिया। झांसी की रानी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुई और तात्या टोपे को पकड़ कर फांसी दे दी गई। नाना साहब नेपाल के जंगलों में भाग गये और फिर उनका कोई पता न लगा।

२६. **महारानी की घोषणा**—यद्यपि १८५७ का विद्रोह असफल

रहा, किन्तु उसने ब्रिटिश साम्राज्य की आँखें खोल दीं। उसने यह अनुभव किया, कि इतने बड़े राज्य का शासनभार कम्पनी के हाथ रहने देना खतरे से खाली नहीं है। अतः भारत का ब्रिटिश शासन कम्पनी से ले लिया गया और भविष्य में इंग्लैंड का सम्राट ही भारत का अधिपति बना दिया गया। ब्रिटेन की संसद ने १८५८ ई० में एक कानून बनाकर कम्पनी का अस्तित्व समाप्त कर दिया। इस कानून के अनुसार भारत का गवर्नर-जनरल वाइसराय कहलाने लगा। ब्रिटिश संसद् में भारत मन्त्री (सेक्रेटरी आफ स्टेट) को पन्द्रह सलाहकारों की समिति सहित भारत के शासन के लिये उत्तरदायी बनाया गया।

लार्ड कैनिंग ने १ नवम्बर को इलाहाबाद में एक दरबार किया और उसमें ब्रिटेन की महारानी की घोषणा पढ़कर सुनाई। महारानी की घोषणा की मुख्य-मुख्य बातें इस प्रकार हैं:

(१) ब्रिटिश सरकार भविष्य में देशी रियासतों पर अधिकार नहीं करेगी। यदि देशी राजा निःसन्तान हों, तो उन्हें दत्तक पुत्र लेने का अधिकार होगा।

(२) भारतीयों के धार्मिक विषयों में सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी।

(३) सरकारी पदों के लिये भारतीयों को समान अवसर दिये जायेंगे और केवल जाति या वर्ण आदि के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा।

(४) ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा देशी नरेशों के साथ की गई सन्धियों का पालन किया जायेगा और देशी रजवाड़ों के हित एवं अधिकार सुरक्षित रहेंगे।

३०. विप्लव के परिणाम—भारतीयों के इस विद्रोह का भारत के इतिहास पर बहुत प्रभाव पड़ा। शासन कम्पनी के हाथ से ब्रिटिश सरकार के हाथों में चला गया। इस विद्रोह ने अंग्रेजों को सावधान

कर दिया। विप्लव को असंतुष्ट नरेशों का समर्थन प्राप्त था, यह देखकर अंग्रेजों ने देशी राज्यों के विलय की नीति समाप्त कर दी। भारतीय सेना में अनेक परिवर्तन किये गये। सेना में अंग्रेजों की संख्या बहुत बढ़ा दी गई। १८५७ ई० का विप्लव उभय-पक्षों के लिए दुःखदायी स्मृतियां छोड़ गया। अंग्रेजों के अत्याचारों ने भारतीयों को उनका विरोधी बना दिया और परिणामस्वरूप भारत में उग्र विचारधारा का विकास हुआ।

३१. कैनिंग वाइसराय के रूप में—१८५८ ई० के भारत के सुशासन कानून के अनुसार कैनिंग भारत का प्रथम वाइसराय बना। १८५७ ई० के विप्लव के पश्चात् देश में असुरक्षा एवं अशांति के चिन्ह तब भी दिखाई दे रहे थे। अतः कैनिंग देश में शान्ति स्थापित करने के कार्य में जुट गया। उसने देशी राजाओं तथा रजवाड़ों को विश्वास दिलाया कि भविष्य में देशी राज्यों को ब्रिटिश राज्य में विलीन न किया जायेगा। १८५७ ई० के विप्लव का एक कारण सेना में भारतीयों का आधिक्य था, अतः अंग्रेज सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई और तोपें उनके अधीन कर दी गईं। कई वर्षों से कानून संकलित किये जा रहे थे, जो कैनिंग के कार्य काल में पूरे हुए। १८६० ई० में इण्डियन पीनल कोड और १८६१ में सिविल तथा क्रिमिनल प्रोसीजर कोड भारत में जारी हुए। इसी वर्ष कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में हाई कोर्ट स्थापित किये गये। किसानों के कल्याण के लिए रैंट ऐक्ट बनाया गया।

लार्ड कैनिंग ने आर्थिक दशा का भी सुधार किया। सिपाही विद्रोह के समय से सरकार का सेना का खर्च भी बढ़ गया। १८५६ ई० में कैनिंग ने अर्थ-सचिव विल्सन की सहायता से सेना के व्यय में कटौती की और आय-कर तथा अन्य कर लगाकर सरकार की आय बढ़ाई। इसी समय धातुओं के सिक्के के साथ कागज के नोटों का

चलन प्रारम्भ हुआ। कैनिंग के इन सुधारों से सरकार की आर्थिक दशा बहुत सुधर गई।

छः वर्ष तक भारत में शासन करने के पश्चात् कैनिंग इंग्लैंड लौट गया, जहां १८६२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

३२. कैनिंग का मूल्यांकन—कैनिंग भारत का प्रथम वाइसराय था। वह बहुत अनुभवी और योग्य राजनीतिज्ञ था। दुर्भाग्यवश उसे आते ही विद्रोह की विपत्ति का सामना करना पड़ा। इस विद्रोह के कारण वह भारतीयों के भलाई के लिये अधिक कार्य न कर सका। कैनिंग अपने पीछे न्यायशीलता और कर्त्तव्यपरायणता की स्मृति छोड़ गया है। उसका चरित्र उच्च था और उसके कामों में उसके व्यक्तित्व की झलक दिखाई देती है।

१८५७ ई० के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार की इच्छा थी कि भारतीयों से विद्रोह का बदला लिया जाये, पर स्वयं लार्ड कैनिंग बदला लेने या ऐसी अन्य किसी-भी नीति के विरुद्ध था। वह निरन्तर शान्तिपूर्ण नीति का पालन करता रहा। कुछ लोगों ने तो कैनिंग के बारे में यहां तक कहा कि कैनिंग की दुर्बल नीति तथा उदारता के कारण ही विद्रोही इतना उत्पात मचा सके। जब उसे भारत से बुलाने की मांग की गयी, तो उसने ब्रिटेन की सरकार को जो उत्तर दिया, उसमें उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि निन्दा या आक्षेप का भय मुझे अपने कर्तव्य मार्ग से विमुख नहीं कर सकता। कैनिंग की उदार नीति की हंसी उड़ाने के लिए उसके विरोधी उसे उदार कैनिंग कहा करते थे।

प्रश्न

1. Give an account of the reforms introduced by Lord William Bentinck.

लार्ड विलियम बैंटिक द्वारा किये गए सुधारों का वर्णन कीजिये।

"William Bentink's rule was an era of internal reforms"—Discuss.

"विलियम बैंटिक का शासन काल आन्तरिक सुधारों का युग था"—अपने विचार प्रकट कीजिये।

2. Describe the policy adopted by Lord Auckland with regard to Afghanistan.

अफगानिस्तान के विषय में लार्ड आकलेंड की नीति का वर्णन कीजिये।

3. State the circumstances under which Sind was conquered by Lord Ellenborough ?

लार्ड एलिनबरा ने सिन्ध पर किन परिस्थितियों में विजय प्राप्त की ?

4. Describe the relations between the British and the Sikhs during the tenure of Lord Hardinge.

लार्ड हार्डिञ्ज के कार्य काल में अंग्रेजों तथा सिक्खों के परस्पर कैसे सम्बन्ध थे ? वर्णन कीजिये।

5. "Lord Dalhousie is called the last maker of British rule in India"—Discuss.

"लार्ड डलहौजी को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का अन्तिम निर्माता कहा जाता है।"—समझाइए।

6. What do you understand by Doctrine of Lapse ? Give an account of its application by Lord Dalhousie.

उत्तराधिकार के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं ? लार्ड डलहौजी ने इस सिद्धान्त से किन-किन राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन कर लिया था ?

7. How was Oudh annexed by Dalhousie ?

अवध को डलहौजी ने ब्रिटिश साम्राज्य में किस प्रकार मिलाया था।

8. The great rebellion of 1857 was not merely the so-called Sepoy Mutiny. It was the first War of Independence—Discuss.

१८५७ ई० का महान् विद्रोह केवल सैनिक विद्रोह न था, अपितु भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम संघर्ष था, समझाइये।

9. Give a brief account of the causes of the Mutiny

विद्रोह के कारणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

10. Give an account of the spread and suppression of the revolt of 1857.

१८५७ के विद्रोह के प्रसार और उसके दमन का वर्णन कीजिये।

11. Enumerate the defects of the great rebellion of 1857 and discuss the statement that the proclamation of the Queen was the Magna Carta for Indians.

१८५७ के महान् विप्लव के क्या परिणाम हुए, यह बताते हुए इस कथन की चर्चा कीजिये कि महारानी की घोषणा भारतीयों के लिए अधिकार पत्र था।

12 Write short notes on—
- (a) Non-interference policy of Bentinck;
- (b) Second Sikh War;
- (c) Tatya Tope;
- (d) Clemency Canning;
- (e) Suppression of rebellion at Kanpur and Lucknow.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए—
- (क) बेंटिक की हस्तक्षेप न करने की नीति।
- (ख) दूसरा सिक्ख युद्ध।
- (ग) तात्या टोपो।
- (घ) 'दयालु केनिंग'।
- (ङ) कानपुर और लखनऊ में विद्रोह का दमन।

13. Give an account of the reforms introduced by Lord Canning.

लार्ड कैनिंग द्वारा किए गए सुधारों का वर्णन कीजिए।

—:०:—

अध्याय ३०

भारत में ब्रिटिश शासन

लार्ड एलगिन और सर लारेन्स

१. लार्ड एलगिन प्रथम (१८६२–१८६३)—लार्ड कैनिंग के उत्तराधिकारी लार्ड एलगिन हुए। भारत आने से पहले लार्ड एलगिन ने कनाडा के गवर्नर-जनरल और चीन में राजदूत के रूप में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली थी। भारत में उनका कार्यकाल केवल एक वर्ष रहा। १८६३ ई० में पंजाब में धर्मशाला नामक स्थान में उनका निधन हो गया। लार्ड एलगिन के शासन की एकमात्र उल्लेखनीय घटना पश्चिमोत्तर प्रदेश के बहावियों का दमन है। एलगिन ने इन जातियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की और उनका महत्वपूर्ण स्थान मलका नष्ट कर दिया।

२. सर जान लारेन्स (१८६४-६९)–१८६४ ई० में सर जान लारेंस ने वाइसराय का पद ग्रहण किया। सर लारेन्स ने विप्लव के समय पंजाब में अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया था। उन्होंने लार्ड कैनिंग द्वारा प्रारम्भ किये गये पुनर्निर्माण को जारी रखा और शान्तिपूर्ण शासन के लिए कई कार्यक्रम बनाये।

३. अफगानिस्तान के बारे में लारेंस की नीति—प्रथम अफगान युद्ध के पश्चात् दोस्त मुहम्मद को अमीर बना दिया गया था और विप्लव के प्रारम्भ होने तक उसके और ब्रिटिश सरकार के बीच सौहार्द के सम्बन्ध रहे। १८६३ ई० में दोस्त मुहम्मद का, ८० वर्ष की आयु में निधन हो गया। उसके मरते ही काबुल के सिंहासन के उत्तराधिकार के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गये। दोस्त मुहम्मद ने अपने पुत्र

शेर अली को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। किन्तु शेर अली के और भाई भी थे, जो गद्दी पर बैठना चाहते थे। काबुल के सिंहासन के लिए १८६४ से लेकर १८६८ तक संघर्ष चलता रहा। दोस्त मुहम्मद के प्रत्येक पुत्र ने सर लारेंस से सहायता की मांग की। परन्तु लारेंस ने इस विषय में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। उसका अटल विश्वास था कि भारत के बाहर होने वाली घटनाओं से ब्रिटिश सरकार को कोई सरोकार नहीं था। सहायता मांगने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उसने यह आश्वासन दिया कि, जो भी व्यक्ति अफगानिस्तान का शासक बन जायेगा, उसे भारत सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की जायगी। सर लारेंस की अफगानिस्तान विषयक नीति को कई आलोचकों ने "पूर्ण निष्क्रियता की नीति' कहा है। लारेन्स की नीति का परिणाम यह हुआ, कि अफगानिस्तान के विरोधी गुटों ने पर्शिया और रूस से सहायता प्राप्त कर ली। इस घटना ने लारेन्स की निष्क्रियता की नीति समाप्त कर दी। उसने शेर अली को, जिसे दोस्त मुहम्मद अपना उत्तराधिकारी बना गया था, तुरन्त सहायता दी। अंग्रेजों की सहायता से शेर अली ने काबुल, कंधार और हिरात पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली। परन्तु शेर अली की यह धारणा बन चुकी थी, कि अंग्रेज अपना ही स्वार्थ देखते हैं और समय आने पर सहायता नहीं देते।

४. **भूटान युद्ध**—अफगानिस्तान के विषय में लारेंस ने जो नीति अपनाई उसके ठीक विपरीत कार्य उसने भूटान के विषय में किया। भूटान हिमालय का एक पूर्वी पहाड़ी प्रदेश है। वहाँ के निवासियों ने अंग्रेजों के उत्तरी बंगाल और आसाम के प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। भारत सरकार ने उनके दमन के लिये एक फौज भेजी। १८६४ ई० में हुए युद्ध में भूटानियों की विजय हुई इसका कारण यह था कि अंग्रेजों का युद्ध संचालन ठीक ढंग से नहीं किया गया। अतः १८६५ ई० में भूटानियों के साथ संधि कर ली गई।

५. **उड़ीसा का अकाल और लार्ड लारेंस के सुधार**—लार्ड लारेंस

योग्य एवं अनुभवी शासक था। उसने देश के शासन को अच्छा बनाने के लिये पर्याप्त प्रयत्न किये। किसानों के साथ उसे बहुत सहानुभूति थी और उनकी दशा सुधारने का भी प्रयत्न उसने किया। लार्ड लारेंस के कार्य काल में १८६८ ई० में उड़ीसा में भीषण अकाल पड़ा। अकाल के साथ ही उड़ीसा को बाढ़ का सामना भी करना पड़ा। इन दैवी आपत्तियों के परिणामस्वरूप उड़ीसा में लाखों लोग नष्ट हो गये। अगले वर्ष बुन्देलखंड और राजपूताना में अकाल पड़ा और सरकार ने घोषणा की, कि अकाल पीड़ितों की सहायता करना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। सरकार की कार्यवाही से इस अकाल के परिणाम उतने भयावह सिद्ध नहीं हुए, जितने कि उड़ीसा के अकाल के थे। भविष्य में ऐसी विपत्तियों का सामना करने के लिए लारेन्स ने एक सिंचाई विभाग स्थापित किया।

लार्ड लारेंस ने रुड़की में एक इञ्जीनियरिंग कालेज की स्थापना की। अवध में ताल्लुकेदारी के अत्याचारों से गरीब किसानों की रक्षा के लिये उसने १८६६ ई० में एक कानून भी बनाया।

लार्ड मेयो और लार्ड नार्थ ब्रुक

६. लार्ड मेयो (१८५६–७२)—लार्ड लारेंस के कार्यकाल में भारत की आर्थिक दशा बहुत खराब हो गयी थी। अमेरिका के गृह-युद्ध ने भारतीय कपास की बहुत मांग उत्पन्न कर दी थी, किन्तु वहां शान्ति हो जाने पर भारत के व्यापार को धक्का लगा। देश के बहुत से व्यापारी नष्ट हो गये और जिस समय लारेंस सेवा-निवृत हुआ, उस समय भारत सरकार ढाई लाख रुपये के घाटे में थी। इङ्गलैंड के प्रधान मन्त्री डिजरेली ने लार्ड मेयो को वाइसराय नियुक्त किया और उदार दल के प्रमुख नेता ग्लैडस्टोन ने इस नियुक्ति की पुष्टि की और कहा कि योग्य व्यक्ति किसी भी दल का हो, उसे उच्च पद दिया जायगा।

७. अम्बाला का दरबार—१८६९ ई० में वाइसराय बनने पर लार्ड

मेयो ने अम्बाला में एक दरबार आयोजित किया, जिसमें अफगानिस्तान के तत्कालीन शासक शेर अली का हार्दिक स्वागत किया गया। शेर अली लार्ड मेयो के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ। उसने मेयो से आर्थिक एवं सैनिक सहायता मांगी। लार्ड मेयो ने उसे सहायता देने का वचन दिया। काठियावाड़ के छोटे-मोटे राज्यों के मामलों में भी उसने सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया।

लार्ड मेयो के कार्यकाल का प्रथम वर्ष १८६९ ई० दो और घटनाओं के कारण उल्लेखनीय है। १८६९ ई० में स्वेज नहर के खुल जाने से भारत और इंग्लैंड की दूरी कम हो गई। दोनों देशों के बीच आवागमन, व्यापार और परस्पर सम्बन्धों की वृद्धि हुई। इसी वर्ष ड्यूक आफ एडिनबरा ने भारत की यात्रा की। इंग्लैंड के राजकुमार की इस प्रथम यात्रा ने उभय देशों के सम्बन्धों को अधिक घनिष्ठ बना दिया।

८. **लार्ड मेयो के आर्थिक सुधार**—लार्ड लारेंस के समय में सरकार को ढाई लाख रुपये की हानि हुई थी। अतः आर्थिक दशा को सुधारने के लिए लार्ड मेयो ने कई सुधार किये। उसने पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट और शिक्षा पर हो रहे व्यय को कम कर दिया। आय-कर बढ़ाकर ३ प्रतिशत कर दिया गया। लार्ड मेयो ने वित्त प्रबन्ध के केन्द्रीयकरण के दोषों का पता लगाया और उसके स्थान पर प्रान्तीय वित्त प्रबन्धक की प्रथा जारी की। उस समय तक यह होता था, कि प्रान्तीय सरकारों को प्रत्येक व्यय के लिए वाइसराय से स्वीकृति लेनी पड़ती थी। अतः प्रान्तीय सरकारें अपनी मांगों को बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत करती थीं। उनके समक्ष मितव्ययता के लिये कोई प्रेरणा न थी। १८७० ई० में मेयो ने प्रान्तीय सरकारों को अनुदान दिये। इन अनुदानों में पांच वर्षों के पश्चात् परिवर्तन किये जा सकते थे। प्रान्तीय सरकारों को अपना बजट बनाकर निश्चित सीमा के भीतर व्यय करने की अनुमति दी गई। उन्हें यह भी छूट दी गई कि किसी कार्य में व्यय कम हो तो बची राशि को वे अन्य कार्यों में लगा सकती हैं।

वित्त-प्रबन्ध के विकेन्द्रीयकरण की यह प्रणाली बहुत सफल हुई और १८७१ ई० के बजट में सरकार को पर्याप्त बचत हुई। लार्ड मेयो के समय में नमक पर प्रति मन साढ़े तीन रुपये कर जाना था। इस कर का बोझ जनसाधारण पर पड़ता था। इसलिए लार्ड मेयो ने कर घटा कर नमक सस्ता कर दिया। कृषि की उन्नति के लिये एक कृषि विभाग की स्थापना की। किसानों को खेती के नये तरीकों और औजारों के प्रयोग की जानकारी दी जाने लगी। नई नहरें बनाई गई और पंजाब में किसानों से अनिवार्य कर लिया जाने लगा।

९. **सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी कार्य**—नई विचारधाराओं के अन्तर्गत भारतीय समाज में द्रुतगति से परिवर्तन हो रहे थे। बंगाल में ब्रह्म समाज अत्यन्त लोक प्रिय हो गया था। ब्रह्म समाज के सदस्यों की सुविधा के लिए सरकार ने विवाह विषयक एक कानून बनाया। १८७० ई० में छोटी लड़कियों की हत्या को रोकने के लिए एक कानून बनाया गया और पीनल कोड (दण्ड विधान संहिता) में आवश्यक संशोधन किया गया। बंगाल में जन गणना लार्ड मेयो के कार्यकाल में ही सर्वप्रथम आरम्भ की गई थी। लार्ड मेयो को शिक्षा प्रसार में पर्याप्त रुचि थी। देश के विभिन्न प्रान्तों में कई प्राथमिक पाठशालायें खोली गयीं। देश के नरेशों के पुत्रों और राजकुमारों की शिक्षा के लिए अजमेर में एक कॉलेज की स्थापना की गई, किन्तु यह कॉलेज १८८५ ई० तक अपना कार्य आरम्भ न कर सका।

जनवरी १८७२ ई० में लार्ड मेयो ने अन्दमान द्वीप की अपराधी जातियों की बस्तियों का दौरा किया। वहाँ एक मुसलमान कैदी ने लार्ड मेयो को छुरा भोंक कर मार डाला। मेयो ने अपने योग्य शासन के कारण पर्याप्त ख्याति एवं लोकप्रियता अर्जित कर ली थी। अतः उसके निधन पर सर्वत्र खेद व्यक्त किया गया।

१०. **लार्ड नार्थब्रुक (१८७२-७६)**—१८७२ ई० में लार्ड नार्थब्रुक वाइसराय बनकर भारत आया। लार्ड नार्थब्रुक को वित्त व्यवस्था का अच्छा ज्ञान था और कभी-कभी वह सर जान स्ट्रेची जैसे विशेषज्ञों

की राय के विरुद्ध भी काम करता था। उसने आयात कर में ५ प्रतिशत की कमी कर दी। तेल, नील, चावल और लाख को छोड़कर शेष वस्तुओं को निर्यात-शुल्क से मुक्त कर दिया गया। उसने मैनचेस्टर के कपड़े को आयात शुल्क से मुक्त करना अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उससे भारतीय व्यापार को निश्चित हानि होती। १८७३-७४ ई० में बंगाल और बिहार में भीषण अकाल पड़ा। लार्ड नार्थब्रुक ने अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए शीघ्र उपाय किए और अधिकारियों को यह आदेश दिया, कि वे जनता की सहायता करें और कोई व्यक्ति भुखमरी से मरने न पाये। अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये लगभग साढ़े छः लाख रुपये खर्च किये गए।

११. लार्ड नार्थब्रुक के समय के अन्य सुधार—नार्थब्रुक के समय में स्कूलों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। चिकित्सा शास्त्र और विज्ञान का अध्ययन लोकप्रिय हुआ और विज्ञान विषयक जानकारी के प्रसार के लिए कलकत्ते में एक विज्ञान संस्था खोली गई। १८७५ ई० में लाहौर में एक केन्द्र स्थापित किया गया, जिसमें उत्पादन वृद्धि के तरीकों की शिक्षा दी जाती थी। धर्म प्रसार के लिए भारत में आई हुई ईसाई महिलाओं ने भारतीय परिवारों में आना-जाना आरम्भ कर दिया। स्त्री-शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला और कुछ हिन्दू परिवारों की लड़कियाँ अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने लगीं। समाज सुधारकों ने विधवा विवाह का प्रबल समर्थन किया और समुद्री यात्रा को धर्म सम्मत बताया। समाचार पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई, किन्तु संकुचित विचारों के अधिकारी यह समझते थे कि शासन की आलोचना से सरकार की प्रतिष्ठा कम होती है।

इङ्गलैंड के प्रिंस आफ वेल्स ने १८७५ ई० में भारत की यात्रा की। देश के नरेशों और भारतीय जनता ने उनका सहर्ष और हार्दिक स्वागत किया। प्रिंस आफ वेल्स ने भारत के कई नगरों को भेंट दी और प्रत्येक स्थान पर उनका पर्याप्त सम्मान किया गया।

अफगानिस्तान की समस्या तथा कपास पर करों के सम्बन्ध में इङ्गलैंड की सरकार से मतभेद होने के कारण लार्ड नार्थब्रुक १८०६ ई० में इङ्गलैंड लौट गया।

लार्ड लिटन (१८७६-८०)

लार्ड लिटन ने १८७६ ई० में भारत के वाइसराय का पद ग्रहण किया। १८७७ ई० में ब्रिटेन की महारानी को दिल्ली के वैभवशाली दरबार में भारत की साम्राज्ञी की उपाधि से विभूषित किया गया। भारत के सभी नगरों में दरबार आयोजित किए गए और कई भारतीयों को पद, उपाधियां आदि दिये गये।

१२. दक्षिण भारत में अकाल—दिल्ली के दरबार में ब्रिटिश साम्राज्य के जिस वैभव का प्रदर्शन हुआ था, उस पर दक्षिण भारत के अकाल की काली छाया पड़ी। यह अकाल अत्यन्त भयंकर सिद्ध हुआ और विशेष कर मद्रास राज्य के कुप्रबन्ध के कारण इस अकाल में मरे लोगों की संख्या ५ लाख से भी ऊपर बढ़ गई। १७७८ ई० में लिटन ने एक दुर्भिक्ष जांच आयोग नियुक्त किया, जिसने १८८० ई० में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और उसकी सिफारिशों के आधार पर अकाल पीड़ितों की सहायता की गयी।

१३. लार्ड लिटन के आर्थिक सुधार—लार्ड लिटन के समय में नमक कर की वसूली में पर्याप्त अनियमितता थी। नमक की चोर बाजारी भी वृद्धि पर थी। इस कर से सरकार को पर्याप्त आय होती थी, अतः सरकार उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती थी। सांभर झील तथा नमक के अन्य स्रोतों को अर्जित करने के उद्देश्य से जयपुर और जोधपुर के शासकों से बातचीत की गयी। जान स्ट्रैची ने अन्य राज्यों से विचार-विमर्श कर उनके नमक के स्रोतों को ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि नमक के मूल्य में जो अन्तर था, वह बहुत कम हो गया। पर नमक पर जो कर लिया, जाता था, वह कम नहीं किया गया। लंकाशायर के व्यापारियों के

आग्रह पर मोटे कपड़े पर से शुल्क हटा लिया गया। लार्ड लिटन के इस कार्य का विरोध कौंसिल के सदस्यों ने किया, किन्तु वाइसराय ने अपनी विशेष शक्ति का प्रयोग कर उनके मत को अमान्य कर दिया।

लार्ड मेयो ने अपने कार्यकाल में वित्त व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण किया था। तब से प्रान्तीय सरकारों को अनुदानों की राशि को व्यय करने का पूरा अधिकार दे दिया गया था। किन्तु इस प्रकार की व्यवस्था से समग्र व्यय में अपेक्षित बचत नहीं हुई, क्योंकि प्रान्तीय सरकारों को बची हुई राशि के व्यय की छूट भी दे दी गई थी। अतः प्रान्तीय सरकारों को अपने शासन में सुधार के लिए प्रेरित करने हेतु, उन्हें राजस्व के कुछ अंश या कर की कुछ मदें, जैसे उत्पादन-शुल्क स्टाम्प-शुल्क आदि सौंप दी गई।

१४. लार्ड लिटन के अन्य कार्य—१८७८ ई० में लार्ड लिटन ने समाचारपत्रों सम्बन्धी एक कानून (वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट) पास कर भारत के पत्रों के अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया। लार्ड लिटन का उद्देश्य यह था कि समाचारपत्रों के माध्यम से जो राजद्रोह की भावना का प्रसार हो रहा है, उसे रोका जाये। समाचार-पत्रों के सम्पादकों को आपत्तिजनक समाचारों के प्रकाशन के लिए जिले के अफसरों के सामने स्पष्टीकरण देना होता था। पर लार्ड लिटन ने उचित आलोचना और राजद्रोह की स्पष्ट व्याख्या नहीं की थी। अतः समाचारपत्रों को अपने दायित्व निर्वाह में पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। १८७८ ई० में लिटन ने लाइसेंस के बिना शस्त्र रखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। १८५८ ई० में महारानी के घोषणापत्र में यह कहा गया था, कि नौकरी के विषय में केवल वर्ण और जाति के आधार पर भारतीयों के साथ कोई विभेद नहीं किया जायेगा। असैनिक सेवा (सिविल सर्विस) की परीक्षा १८५३ ई० से भारतीयों के लिए खोल दी गई। किन्तु यह परीक्षा इङ्गलैंड में होती थी। अतः इस सेवा में भारतीयों की संख्या नगण्य थी।

१८७८ ई० में इस सेवा में कुल नौ भारतीय थे। सर लारेंस ने भारतीयों को छात्रवृत्ति देने की योजना भी चलाई थी, किन्तु वह विशेष सफल न हो पाई। अतः १८७८ ई० में यह घोषित किया गया, कि सिविल सर्विस की कुल संख्या का छठवां भाग भारतीय अफसर होने चाहियें। इसके लिये प्रान्तीय सरकारों द्वारा अधिकारियों का चुनाव किया जाने लगा। कौंसिल से मान्यता प्राप्त होने पर इन अफसरों को सिविल सर्विस में ले लिया जाता था। ये अफसर स्टैच्यूटरी सिविलियन कहलाते थे।

१५. द्वितीय अफगान युद्ध—अफगानिस्तान का शासक शेर अली अंग्रेजों से विशेष प्रसन्न नहीं था। उसने रूस से सहायता प्राप्त करनी चाही, क्योंकि रूस का मध्य एशिया में पर्याप्त प्रभुत्व बढ़ रहा था। लार्ड लिटन ने शेर अली को ब्रिटिश साम्राज्य का शत्रु मान कर १७७६ ई० में काबुल पर आक्रमण कर दिया। उसने क्वेटा, हिरात और कंधार को मिलाकर एक रक्षित राज्य के निर्माण की योजना बनाई। शेर अली अब अंग्रेजों का पक्का विरोधी बन गया। उसने अपने दरबार में रूस के दूत का स्वागत किया, और ब्रिटिश दूत को अपने राज्य में प्रवेश की अनुमति नहीं दी। लार्ड लिटन ने इसे अपमान मानकर १८७८ ई० में काबुल के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटिश सेना ने खैबर दर्रा, कुर्रम घाटी और बोलन दर्रा पार कर कंधार पर आक्रमण कर दिया। अफगानों ने इस आक्रमण का कोई विरोध नहीं किया। शेर अली भाग कर तुर्किस्तान चला गया। वहां से उसने रूस से सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की, किन्तु रूस ने उसकी सहायता नहीं की। १८७९ में शेर अली की मृत्यु हो गई।

शेर अली के पुत्र याकूब खां ने गन्डमक नामक स्थान पर अंग्रेजों के साथ संधि कर ली। संधि के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने उसे अमीर मान लिया और याकूब खां ने यह स्वीकार किया कि उसकी विदेशी नीति पर भारत सरकार का नियन्त्रण होगा। याकूब खां से अपने दरबार में एक ब्रिटिश दूत रखने तथा कुर्रम घाटी

अंग्रेजों के अधीन कर देने के लिये कहा गया। अंग्रेजों ने उसे प्रति वर्ष ६ लाख रुपये की सहायता देने और अपनी फौजें अफगानिस्तान से हटा लेने का वचन दिया। लार्ड लिटन इस विजय से बहुत प्रसन्न था किन्तु उसे यह विदित न था कि अफगानों में विदेशी सत्ता के प्रति कोई आदर या श्रद्धा नहीं है। कुछ ही महीनों बाद ब्रिटिश दूत की हत्या कर दी गयी। परिणामस्वरूप पुन: युद्ध छिड़ गया। जनरल राबर्टस् ने काबुल पर अधिकार कर अफगान विद्रोहियों को कड़ा दण्ड दिया। याकूब खां को कैद कर भारत भेज दिया गया। लार्ड लिटन ने कंधार में एक ब्रिटिश उच्च अधिकारी नियुक्त कर अफगानिस्तान के विभाजन का निश्चय किया। किन्तु इसी बीच इंगलैंड में उदार दल सत्तारूढ़ हो गया। और परिणामस्वरूप लार्ड लिटन १८८० ई० में त्यागपत्र देकर इंगलैंड लौट गया लिटन के उत्तराधिकारी लार्ड रिपन ने अब्दुर रहमान को काबुल का अमीर मान लिया और उसकी विदेशी नीति का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया।

लार्ड रिपन (१८८०–८४ ई०)

१६. **लार्ड रिपन**—१८८० ई० में लार्ड रिपन वाइसराय बनकर भारत आया। उस समय तक अफगान युद्ध समाप्त नहीं होने पाया था। लार्ड रिपन ने आते ही इस युद्ध को समाप्त किया। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है अब्दुर रहमान के साथ सन्धि करके उसे अफगानिस्तान का शासक स्वीकार कर लिया गया। इस युद्ध का लाभ यह रहा, कि बोलन दर्रा अंग्रेजों के हाथ आ गया और अफगानिस्तान की विदेशी नीति पर अंग्रेजों का प्रभुत्व हो गया।

१७. **स्थानीय स्वराज्य**—रिपन एक उदार शासक था। वह चाहता था, कि भारतीयों को भी इस बात का अवसर दिया जाये कि वे अपने देश के शासन में भाग ले सकें। उसे भारतवासियों के साथ पूर्ण सहानुभूति थी। अत उसने कानून बनाये, जिसके अनुसार लोकल बाडीज (स्थानीय संस्थाओं) का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार नगरों में म्युनिसपल बोर्ड बनाये गये, जिन्हें नगर की शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य

तथा सड़कों आदि का सम्पूर्ण अधिकार दिया गया। जिले के डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को जिले भर की शिक्षा, सड़कों तथा सफाई आदि का उत्तरदायित्व दिया गया। बोर्ड के सदस्यों के चुनाव में वही लोग वोट दे सकते थे, जो कर या लगान आदि देते थे। लार्ड रिपन ने यह भी इच्छा प्रकट की, कि इन स्थानीय संस्थाओं का चेयरमैन गैर-सरकारी व्यक्ति को बनाया जाये। परन्तु सरकार ने यह भी प्रबन्ध रखा कि आवश्यकता पड़ने पर सरकार इन संस्थाओं को अपने अधीन कर लेगी। इस कार्य में भारतीयों ने बहुत उत्साह से भाग लिया।

१८. कानूनी सुधार—१८८१ ई० में मजदूरों के लिये पहला कानून पास किया गया। इस कानून के अनुसार यह निश्चय कर दिया गया, कि कोई भी फैक्टरी मालिक अपनी फैक्टरी में बच्चों से कुछ निश्चित घंटों तक ही काम ले सकेगा, साथ ही यदि कोई दुर्घटना हो जायेगी, तो फैक्टरी का मालिक हर्जाना भी देगा। मजदूर स्त्रियों के सम्बन्ध में भी कुछ उपबन्ध किये गये। लार्ड रिपन न्यायप्रिय था। वह चाहता था कि भारतीयों के साथ पूरा न्याय हो। इस समय तक न्याय विभाग में बहुत से हिन्दुस्तानी जज हो गये थे, पर अंग्रेजों के मुकदमों का फैसला करने का हक हिन्दुस्तानी जजों को नहीं था। लार्ड रिपन को यह बात अन्यायपूर्ण लगी। इस भेदभाव को मिटाने के लिए रिपन के कानून विभाग के सदस्य श्री इलबर्ट ने एक बिल पेश कर दिया। भारतवासियों ने इस बिल का समर्थन किया और सभी यूरोपियन लोगों ने इसक विरोध किया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि बिल में संशोधन कर दिया जाये, कि यदि अंग्रेज चाहें तो अपने मुकदमों में आधे यूरोपियन और आधे भारतीय मेम्बरों की 'जूरी' बिठाने की मांग कर सकते हैं। लार्ड रिपन ने "वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट" को रद्द कर दिया। इससे प्रजा बहुत प्रसन्न हुई। रिपन ने एक शिक्षा कमीशन भी नियुक्त किया। १८८५ ई० में रिपन ने बंगाल टेनेन्सी ऐक्ट पास करने का प्रस्ताव किया। लार्ड रिपन के समय में सबसे पहले भारत की जनसंख्या की गणना की गई। १८८१ ई० में रिपन ने

मैसूर का राज्य वहाँ के राजा को लौटा दिया। अब वहाँ का राजा वयस्क हो गया था।

अपने शासनकाल में लार्ड रिपन भारतीयों में बहुत लोकप्रिय हो गया। १८८४ ई० में अपना पद त्याग करके वह इंग्लैंड चला गया और उसके स्थान पर लार्ड डफरिन वाइसराय होकर भारत आया।

१९. लार्ड डफरिन (१८८४–८८)—लार्ड डफरिन एक योग्य शासक था। भारत का वाइसराय बनने के पहले वह टर्की, मिश्र और श्याम में राजनैतिक प्रतिनिधि रह चुका था। भारत में आते ही उसे अफगानिस्तान की समस्या की ओर ध्यान देना पड़ा। घटना इस प्रकार हुई, कि रूस ने अफगानिस्तान की ओर धीरे-धीरे बढ़ने की नीति अपना रखी थी। १८८५ ई० में रूसियों ने अफगानिस्तान की सीमा पर स्थित पंचदेह नामक चौकी पर अधिकार कर लिया और वहां से अफगानों को भगा दिया। अफगानिस्तान ने जब अपनी चौकी मांगी, तो रूस ने युद्ध की घोषणा कर दी। अफगानिस्तान का बादशाह अब्दुर रहमान भारत के वाइसराय से बात करने के लिये रावलपिण्डी आया। रूसियों की इस कार्यवाही से इस बात का भी भय था कि वे धीरे-धीरे भारत पर आक्रमण करेंगे। अतः इंग्लैंड और भारत में भी युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गई। अन्त में रूसियों तथा अफगानियों के बीच सन्धि हो गयी और पंचदेह रूसियों के पास ही रहा। डफरिन ने अब्दुर रहमान को वचन दिया कि वह हमेशा उसका मित्र रहेगा। इससे अफगानिस्तान तथा भारत में स्थायी मित्रता हो गयी।

२०. बर्मा की तीसरी लड़ाई—लार्ड डफरिन के सामने बर्मा का झगड़ा पैदा हुआ। वहाँ का राजा थीबो बहुत कठोर था। उसने बर्मा में बसे अंग्रेजों पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। अंग्रेजों ने अपना राजदूत वहाँ से वापस बुला लिया। उधर थीबो जर्मनी और फ्रांस के साथ गठबन्धन करने का प्रयत्न करने लगा। अंग्रेजी व्यापारिक

कम्पनी पर उसने २३ लाख रुपया जुर्माना कर दिया। भारत सरकार ने उसे बहुत समझाया; पत्र-व्यवहार का भी कोई लाभ न हुआ। अन्त में १८८५ ई० में अंग्रेजी सेना जनरल प्रेन्डारगास्ट के सेनापतित्व में ब्रह्मा की ओर गई। ब्रह्मा का राजा अंग्रेजी सेना का सामना न कर सका। उसे पकड़ कर भारत भेज दिया गया और बम्बई के रत्नगिरि जिले में रखा गया। सारा ब्रह्मा अंग्रेजों के अधीन हो गया। थीबी के पकड़े जाने के पश्चात् भी कुछ समय तक वहाँ झगड़े होते रहे। १८८८ ई० में चीन ने ब्रह्मा पर आक्रमण किया, पर अंग्रेजों ने चीनियों को ब्रह्मा में घुसने नहीं दिया।

२१. अन्य सुधार—लार्ड डफरिन की स्त्री लेडी डफरिन ने भारतीय स्त्रियों की सहायता के लिए 'लेडी डफरिन फण्ड' खोला। इसी फन्ड से बड़े-बड़े शहरों में लेडी डफरिन के नाम से अनेक स्त्री चिकित्सालय खोले गये। लार्ड डफरिन ने बंगाल, अवध और पंजाब के किसानों की रक्षा के लिए तीन ऐक्ट पास कराये, जिनसे किसानों को जमींदारों के चंगुल से बचाया गया। इससे किसानों की बेदखली रुक गयी, जो कृषि के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। १८८५ ई० में ही भारत की राजनैतिक संस्था इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। मि० ए० ओ० ह्यूम इसके संस्थापक थे। १८८६ ई० में लार्ड डफरिन ने ग्वालियर का किला वहां के पुराने शासक को लौटा कर झांसी उसके बदले में ले लिया। १८८८ ई० में डफरिन का कार्यकाल समाप्त हो गया और वह इंगलैंड चला गया।

लार्ड लैन्सडौन और लार्ड एलगिन द्वितीय

२२. लार्ड लैन्सडौन (१८८८–९३)—१८८८ ई० में लार्ड लैन्सडौन वाइसराय बन कर भारत आया। वह शासनकार्य में बहुत योग्य एवं कुशल था। उसने भरसक प्रयास करके भारत में अंग्रेजी राज्य की शक्ति को सुदृढ़ बनाया।

२३. लैन्सडौन और सीमान्त का प्रश्न—भारत में अंग्रेजी राज्य की सीमा निश्चित कराने के लिए लार्ड लैन्सडौन ने अपना दूत अफगा-

निस्तान भेजा। अफगानिस्तान की सीमा निर्धारित की गयी और उसे गोला बारूद आदि रखने की स्वतन्त्रता दे दी गयी। उसकी सहायता के लिए १८ लाख वार्षिक सहायता दी जाने लगी।

१८६० ई० में मनीपुर का राजा मर गया। अतः वहां उत्तराधिकार के झगड़े शुरू हो गये। यह राज्य आसाम की सीमा पर कचार के पूर्व में है। लैन्सडौन ने आसाम के चीफ कमिश्नर को निपटारा करने के लिए भेजा। क्विन्टन ने वहां के सेनापति को पकड़ कर दण्ड देना चाहा, क्योंकि सारा झगड़ा उसी का फैलाया हुआ था। पर सेनापति पकड़ा न जा सका और उसने धोखे से चीफ कमिश्नर क्विन्टन तथा तीन अन्य अंग्रेज अफसरों की हत्या कर दी। यह स्थिति देख कर और अंग्रेज सेना मनीपुर भेजी गयी। इस सेना ने सेनापति को तथा अन्य विद्रोहियों को पकड़ कर सबको फांसी पर चढ़ा दिया। एक अल्पवयस्क राजकुमार को गद्दी पर बैठा दिया गया और अंग्रेज उसकी ओर से शासन करने लगे। इसी समय मनीपुर में गुलामी प्रथा भी बन्द कर दी गयी।

२४. **टकसालों की व्यवस्था**—गत वर्षों में चांदी और सोने के मूल्य में अनुपात बहुत गिर गया था। इंगलैंड को देने के लिए अभी तक चांदी के रुपयों का प्रयोग होता था। पर चांदी के रुपये में कमी होने पर अब हिसाब लगा कर देखा गया, तो पता लगा कि भारत को चांदी के रुपयों के रूप में भुगतान करने से लगभग ६ करोड़ का घाटा होता था। भारत के गवर्नर-जनरल ने अन्य उपायों से घाटे को पूरा करने का प्रयास किया, फिर भी स्थिति में सुधार न हो पाया। अन्त में एक समिति नियुक्त की गई। उसने सभी बातों की छानबीन करके सोने और चांदी के सिक्कों के बीच १५ और १ का अनुपात निर्धारित किया। इसलिए टकसालों में सर्व-साधारण की चांदी का सिक्का डालना बन्द कर दिया गया।

२५. **इण्डियन कौंसिल एक्ट (१८६२)**—लार्ड लैंसडोन के समय

में इण्डियन कौंसिल ऐक्ट पास हुआ। इसके अनुसार वाइसराय की कौंसिल के सदस्यों की संख्या १० से बढ़ाकर १६ तक करदी गयी। इसी प्रकार बम्बई और मद्रास लेजिस्लेटिव कौंसिलों में प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाकर २० कर दी गयी। कौंसिल के मेम्बरों को अन्य अधिकार भी दिये गये। इसी ऐक्ट के अनुसार पब्लिक सर्विस कमीशन बनाया गया और सरकारी नौकरियों को तीन श्रेणी में—इम्पीरियल (साम्राज्य), प्राविन्शियल (प्रान्तीय) और सबार्डीनेट (अधीनस्थ)—बांट दिया गया। इम्पीरियल सेवाओं की परीक्षा इंग्लैंड में होती थी पर शेष दोनों प्रकार की सेवाओं की भरती भारत में ही होती थी।

२६. **लार्ड एलगिन द्वितीय (१८९४-९९)**—१८९४ ई० में लार्ड एलगिन को भारत का वाइसराय बनाया गया। एलगिन के समय में सेना और अफीम के सम्बन्ध में कई सुधार हुये। इसके पूर्व मद्रास बम्बई और बंगाल की सेनायें अलग-अलग थीं। अब सारी सेना मिला दी गयी और उसे कमान्डर-इन-चीफ (प्रधान सेनापति) के अधीन कर दिया गया। पंजाब, सीमाप्रान्त, मद्रास, बम्बई और बंगाल में सेना के लिए लेफ्टीनेन्ट-जनरल नियुक्त कर दिये गये।

अफीम बनाने और बेचने का सारा एकाधिकार सरकार के हाथों में था। सरकार चीन को अफीम का निर्यात करती थी। जनता ने मांग की कि भारत में अफीम का बिकना बन्द कर दिया जाये। पहले तो सरकार ने कोई ध्यान न दिया, पर बाद में अफीम को बेचने का काम काम कर दिया गया।

२७. **प्लेग और अकाल**—१८९६ ई० में बम्बई में प्लेग का प्रकोप हुआ। इस प्लेग में लगभग २० लाख व्यक्ति मर गये। इस कारण जनता में सरकार के विरुद्ध काफी असंतोष फैल गया। कई स्थानों पर उपद्रव हुए। १८९६-९७ ई० में मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में अकाल पड़ा। संयुक्त प्रान्त में अकाल पीड़ितों का बहुत सहायता की गयी। १८९८ ई० में एक अकाल कमीशन नियुक्त कर

दिया गया, ताकि अकाल को रोकने के उपायों पर अमल किया जा सके।

२८. **पश्चिमोत्तर सीमान्त**—लार्ड एलगिन के समय में पश्चिमोत्तर में छोटे-छोटे झगड़े हुये। पहला झगड़ा १८६५ ई० में हुआ। यह झगड़ा चितराल की रियासत के उत्तराधिकार के लिए हुआ था। अंग्रेजों की सेना झगड़े को शान्त करने के लिए भेजी गयी। कुछ कठिनाई के पश्चात् वहां का झगड़ा समाप्त करके शान्ति स्थापित कर दी गयी। दूसरा झगड़ा १८६७ ई० में हुआ। यह झगड़ा अफरीदी लोगों ने किया था उन्होंने खैबर दर्रे के मार्ग पर अपना अधिकार जमा लिया था। अंग्रेजों को इससे बहुत चिन्ता हुई। पश्चिमोत्तर सीमा का प्रश्न अंग्रेजों के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। अंग्रेजों की दो सेनायें विद्रोहियों को दबाने के लिए गई। अफरीदियों की चौकियों को नष्ट करके अंग्रेजों ने उन्हें दबा दिया।

लार्ड कर्जन (१८६६–१६०५)

२६. **लार्ड कर्जन**—१८६६ ई० में लार्ड कर्जन भारत का वायसराय बनकर आया। कर्जन बड़ा अनुभवी शासक था। वह स्वेच्छाचारी था। जनता की इच्छा तथा अनेक अनुभवी लोगों की राय को ठुकरा कर उसने अनेक मनमाने काम किए, जिनके परिणामस्वरूप वह बदनाम हो गया। लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगे और यद्यपि उसने अंग्रेजी शासन को शक्तिशाली बनाया पर जनता के हृदय में उसके प्रति कोई सम्मान न रह गया। लार्ड कर्जन के भारत आते ही १६०० ई० में गुजरात में एक भीषण अकाल पड़ा। बहुत से लोग मर गये। जनता तथा सरकार की ओर से अकाल पीड़ितों की सहायता की गयी और १६०१ ई० में अकाल की जांच करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया।

३०. **कर्जन की विदेशी नीति**—सीमान्त और निकटवर्ती देशों के साथ भारत के अच्छे सम्बन्ध रहे, इस सम्बन्ध में कर्जन ने बड़ी रुचि दिखायी। १६०२ ई० में अफगानिस्तान के शासक अब्दुर रहमान की

मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र हबीबुल्ला गद्दी पर बैठा। उसके साथ कर्जन ने मित्रता रखी और उसे वार्षिक भेंट देना जारी रखा। उसका सम्मान बढ़ाने के लिए कर्जन ने उसे 'हिज मेजेस्टी' की उपाधि से सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया। अभी तक सीमान्त प्रदेश का शासन पंजाब सरकार करती थी। अतः समुचित ध्यान नहीं दिया जा सकता था, कर्जन ने पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त को अलग कर दिया, और उसके शासन के लिए एक चीफ कमिश्नर रख दिया। इस प्रकार सीमा प्रान्त का प्रबन्ध अच्छा हो गया और आगामी कुछ वर्षों तक वहाँ शान्ति रही।

फारस की खाड़ी में अंग्रेजों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। अदन से बम्बई तक का समुद्र निरापद रहे, इसलिए अंग्रेजों ने सारे समुद्र पर अधिकार कर लिया था। फ्रांसीसियों, जर्मन तथा रूसियों के षड्यन्त्रों से अंग्रेजों को भय हुआ, कि कहीं फारस की खाड़ी से उनका प्रभुत्व उठ न जाये। १९०३ ई० में कर्जन स्वयं फारस की खाड़ी गया और उसने समुद्री बन्दरगाहों तथा देश के अन्य व्यापारिक केन्द्रों पर अंग्रेजी के प्रतिनिधियों की नियुक्ति कर दी। इस प्रकार फारस में अंग्रेजी हित सुरक्षित हो गया। तिब्बत के साथ सन्धि का जो सम्बन्ध कर्जन ने स्थापित किया उसके लिए उसकी प्रशंसा बहुत की गयी। तिब्बत और भारत के बहुत लम्बे समय से बहुत अच्छे सम्बन्ध थे। पर जब कर्जन भारत का वायसराय होकर आया उसी बीच यह समाचार सुनायी पड़ा कि तिब्बत का लामा रूसियों के साथ सांठ गांठ कर रहा है। तिब्बत नाममात्र के लिए चीन के अधीन था। अंग्रेजों ने लामा से लिखा पढ़ी की, पर लामा ने कोई जबाब न दिया। इसी बात पर युद्ध की घोषणा हो गयी। अंग्रेजों की फौज तिब्बत में पहुँच गयी। तिब्बतियों को दो स्थानों पर पराजित करने के पश्चात् यह सेना १९०५ ई० में लासा तक पहुँच गयी। लामा ने सन्धि वार्ता आरम्भ कर दी। उसने अंग्रेजों को हर्जाने के रूप में बड़ी राशि दी और एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना भी स्वीकार कर लिया।

३१. लार्ड कर्जन के सुधार—कर्जन के कार्यकाल में नमक का कर कम कर दिया गया। पुलिस की नौकरियों में भी कर्जन ने कुछ सुधार किये। मालगुजारी की नीति कर्जन ने इस प्रकार निर्धारित की कि राज्यों की आमदनी बढ़ने लगी। पुलिस विभाग के कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दिया गया। कृषि की उन्नति के लिए नहरें बनवाने की योजना बनाई गयी। व्यापार तथा उद्योग-धन्धों का एक नया विभाग खोला गया। पुराने स्मारकों की रक्षा के लिये एक कानून बनवाया गया और पुरातत्व विभाग की स्थापना की गयी। कर्जन ने लगभग ३० या ४० देशी राज्यों का दौरा किया। राजकुमारों और रईसों के लड़कों की शिक्षा के लिए इम्पीरियल केडेट कोर बनाई गयी। दक्षिण अफ्रीका के बुअर-युद्ध में भारतीय सेनायें भेजी गयीं, जिन्होंने वहाँ नेटाल की रक्षा की। लार्ड कर्जन ने निजाम से गुप्त भेंट करके बरार का प्रान्त स्थायी रूप से अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।

३२. भूमि सुधार—किसानों की दशा इस समय बहुत शोचनीय हो गयी थी। साहूकार उन्हें चूस रहे थे। कर्ज के बोझ से दबे हुए बेचारे किसानों को दोनों समय पेट भर खाना भी नहीं नसीब होता था। किसानों की भूमि धीरे-धीरे साहूकारों के हाथों में चली जा रही थी। पंजाब के किसानों की दशा तो बहुत ही खराब थी। कर्जन ने १९०० ई० में 'भूमि रक्षा कानून' बनाया। इस कानून में कहा गया, कि यदि किसी किसान पर साहूकार का ऋण शेष हो, तो ऋण की वसूली के बदले में साहूकार किसान की जमीन नहीं ले सकता। इस कानून से किसानों को बहुत लाभ हुआ। वे साहूकारों के पंजे से मुक्त हो गये। किसानों को ऋण देने के लिए कोआपरेटिव सोसाइटी और बैंक खोले गये। ये किसानों को कम सूद पर ऋण देते थे। कुछ समय पश्चात् यह कानून उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रान्तों में भी लागू कर दिया गया।

३३. कर्जन और भारत के विश्वविद्यालय—बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के विश्वविद्यालय तो १८५७ ई० में ही खुल गये थे।

उसके बाद पंजाब और उत्तर प्रदेश (इलाहाबाद) में विश्वविद्यालय खुले। विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार करने के दृष्टिकोण से कर्जन ने एक जाँच कमीशन बैठाया। कमीशन ने १६०४ ई० में अपनी रिपोर्ट दी। रिपोर्ट के आधार पर विश्वविद्यालय ऐक्ट पास किया गया। इस ऐक्ट के द्वारा विश्वविद्यालयों की प्रबन्ध समितियों में सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और सरकार का हस्तक्षेप अन्य प्रकार से भी बढ़ा दिया गया। यद्यपि कर्जन शिक्षा की प्रगति में बाधा नहीं डालना चाहता था पर इतना तो वह चाहता ही था कि शिक्षा प्रणाली में समुचित सुधार हो जाए। भारतीय जनता ने कर्जन की इस नीति को बुरा समझा और उसकी बड़ी आलोचना की गयी। समाचारपत्रों ने कड़े शब्दों में कर्जन की निन्दा की।

३४. बंग-भंग—अप्रैल १६०४ ई० में कर्जन अपने पद से त्याग-पत्र दे कर इंगलैंड चला गया। पर दिसम्बर १६०४ ई० में उसे पुनः भारत का वाइसराय बना कर भेजा गया। इस बीच शासन का कार्य लार्ड एम्पथिल ने स्थायी रूप से चलाया था। जब कर्जन दूसरी बार आया, तो उसने बंगाल के शासन की ओर ध्यान दिया। बंगाल का प्रान्त बहुत बड़ा था, उसका क्षेत्रफल १,८६,००० वर्गमील था और जनसंख्या लगभग ८ करोड़ थी। एक लेफ्टीनेन्ट गवर्नर सारे प्रान्त का शासन करता था। वैसे बंगाल को भी मद्रास और बम्बई की भांति प्रेसीडेन्सी बनाने का विचार था। इससे शासन सुधार भी हो जाता और बंगाली भी संतुष्ट हो जाते। पर कर्जन ने बंगाल को दो भागों में बांट दिया—(१) बंगाल (२) पूर्वी बंगाल और आसाम। विभाजन १६०५ ई० में किया गया। बंगाल की जनता ने इस विभाजन का बहुत विरोध किया। सभायें की गयीं और सरकार के इस कार्य की निन्दा की गयी। पर सरकार ने कुछ भी नहीं सुना। बंगाल में बहुत अराजकता पैदा हो गयी। अंग्रेजों पर बम फेंकने की भी घटनायें हुयीं। पुलिस की सहायता से विद्रोह को दबाया गया, पर लोगों के हृदय में कर्जन के प्रति घृणा पैदा हो गयी। १६११ ई० में

सम्राट जार्ज पंचम ने फिर बंगाल के दोनों भागों को मिलाने की घोषणा की।

३५. **कर्जन का त्यागपत्र**—कर्जन के समय में कमाण्डर-इन चीफ लार्ड किचनर था। गवर्नर-जनरल व कमाण्डर-इन-चीफ के अधिकारों का प्रश्न पैदा होने से कुछ संघर्ष पैदा हो गया। दोनों ही शक्तिवान थे। कोई किसी से डरने वाला न था। वैसे कमाण्डर-इन-चीफ वाइसराय की कौंसिल का एक सदस्य होता था, पर सैनिक विभाग का अध्यक्ष एक अन्य सदस्य होता था। किचनर चाहता था कि सैनिक विभाग को कमाण्डर-इन-चीफ के ही अधीन कर दिया जाये। इसी सम्बन्ध में इंगलैंड की सरकार ने सैनिक विभाग के अधिकारी की नियुक्ति के सम्बन्ध में कर्जन को लिखा, कि वह किचनर से परामर्श कर लें। कर्जन ने इसका अर्थ यह समझा कि इंगलैंड की सरकार कमाण्डर-इन-चीफ के पद को वाइसराय के पद से बड़ा मानती है। इसी बात पर क्रुद्ध होकर उसने १९०५ ई० में त्यागपत्र दे दिया।

प्रश्न

1. Describe the policy adopted by Lord Lawrence towards Afghanistan.

अफगानिस्तान के सम्बन्ध में लार्ड लारेन्स ने जिस नीति का अनुसरण किया, उसका वर्णन कीजिये।

2. Give an account of the administrative, social and educational reforms of Lord Mayo.

लार्ड मेयो के शासन सम्बन्धी, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी सुधारों का वर्णन कीजिये।

3. Give an account of the relations that existed between the Government of India and Afghanistan during the reign of Lord Lytton.

लार्ड लिटन के शासनकाल में भारत सरकार और अफगानिस्तान के बीच कैसे सम्बन्ध थे।

4. Form an estimate of the reforms of Lord Ripon.

लार्ड रिपन के सुधारों का मूल्यांकन कीजिये।

5. Describe briefly the adminstration of Lord Lansdowne, Lord Elgin and Lord Curzon especially referring to the frontier question.

लार्ड लैन्सडौन, लार्ड एलगिन और लार्ड कर्जन के शासन का संक्षिप्त वर्णन कीजिये और बताइये कि सीमान्त प्रदेश के सम्बन्ध में उनकी क्या नीति थी।

6. Give an account of the administration and reforms of Lord Curzon.

लार्ड कर्जन के शासन प्रबन्ध और उसके सुधारों का वर्णन कीजिए।

7. Write short notes on :—

1. Second Afghan War.
2. Indian Councils Act, 1892.
3. Local Self-Government Act, 1883.
4. Vernacular Press Act, 1878.
5. Land Alienation Act, 1900.
6. Partition of Bengal.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिये :—

१. द्वितीय अफगान युद्ध।
२. इंडियन कौंसिल ऐक्ट, १८९२।
३. स्थानीय स्वराज्य ऐक्ट, १८८३।
४. वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट, १८७८।
५. भूमि रक्षा कानून, १९००।
६. बंग-भंग।

अध्याय ३१

सुधार युग (१९०५–१९५०)

१. लार्ड मिन्टो (१९०५-१९५०)—लार्ड कर्जन का उत्तराधिकारी लार्ड मिन्टो था। भारत का वाइसराय बनने के पूर्व वह द्वितीय अफगान युद्ध में भाग ले चुका था और कनाडा का गवर्नर-जनरल भी रह चुका था। वह राजनीतिज्ञ तो था नहीं पर उसने मनुष्यों के विस्तृत तथा विभिन्न अनुभवों का अच्छा अध्ययन किया था। जिस समय वह वायसराय बन कर आया, उस समय भारत की स्थिति बहुत खराब थी। लार्ड कर्जन की कुटिल नीति तथा बंग-भंग के विरोध में जनता बहुत उत्तेजित हो रही थी। भारतवासियों ने खुल्लमखुल्ला इंगलैंड का बहिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया था। स्वदेशी माल के प्रयोग का आन्दोलन बहुत संगठित रूप से चल पड़ा था। कांग्रेस के नेताओं में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय तथा विपिनचन्द्र पाल ने इस आन्दोलन को तीव्रता से चलाया। सरकार ने आन्दोलन का दमन करने के लिए कड़ी कार्यवाही की, पर कुछ विशेष लाभ न हुआ। अनेक स्थानों पर हिंसात्मक घटनायें हुईं। बंगाल और पूना आन्दोलन के मुख्य केन्द्र थे। अनेक अंग्रेज अफसरों की हत्यायें की गयीं। अनेक कांग्रेसी नेताओं को जेलों में बन्द कर दिया गया। कुछ को देश से निर्वासित कर दिया गया। यदि लार्ड मिन्टो केवल दमन नीति से काम लेता, तो स्थिति संभल न पाती। अतः उसने अन्य नीतियों का सहारा लिया। सबसे पहले तो उसने समाचारपत्रों को कड़े लेख लिखने से रोका, फिर कुछ अराजकों को दण्ड दिया और साथ ही कुछ सुधार कार्य करके उसने लोगों को प्रसन्न करने की चेष्टा की।

१९०७ ई० में एक और घटना हुई, जो बहुत महत्वपूर्ण है। इस घटना

से रूस और इंग्लैंड के मतभेद समाप्त हो गये। अंग्रेजों और रूस के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ। फारस के सम्बन्ध में रूस और इंग्लैंड दोनों ने निश्चय किया कि उस देश की स्वतन्त्रता में कोई बाधा नहीं डालेगा। तिब्बत के सम्बन्ध में भी रूस और इंग्लैंड दोनों इस बात से सहमत हो गये, कि वहाँ के आंतरिक मामलों में कोई हस्त-क्षेप नहीं करेगा। इस प्रकार अब इंग्लैंड को यह भय नहीं रहा, कि रूस तिब्बत में अपना प्रभाव बढ़ायेगा। चीन को अफीम का निर्यात करके भारत को लगभग आठ-दस करोड़ की आय होती थी। पर चीन के कहने पर भारत सरकार ने अफीम चीन भेजना धीरे-धीरे कम करके बन्द कर दिया। इस प्रकार भारत को बड़ा आर्थिक घाटा सहना पड़ा।

२. **मिन्टो-मार्ले सुधार**—१९०९ ई० में इण्डियन कौंसिल ऐक्ट पास हुआ। इस सुधार के अनुसार वाइसराय की कौंसिल में एक भारतीय सदस्य नियुक्त किया गया। इस पद पर सबसे पहले लार्ड सिन्हा नियुक्त किये गये। वायसराय की व्यवस्थापिका सभा में सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ६० कर दी गयी, जिसमें २५ सदस्य गैर-सरकारी होने थे। इस सभा के सदस्यों को बजट पर बहस करने तथा प्रश्न पूछने के अधिकार मिल गये। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में भी सरकारी तथा गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी। पर इन सुधारों से भारतीय जनता सन्तुष्ट नहीं हो सकी।

३. **लार्ड हार्डिंग** (१९१०-१६)—लार्ड मिन्टो के पश्चात् लार्ड-हार्डिंग भारत का वायसराय बना कर भेजा गया। हार्डिंग के हृदय में भारतीय जनता के प्रति बहुत सहानुभूति थी। जनता की सेवा के कार्यों में उसने अपने को ऐसे लगा दिया, कि थोड़े ही समय में वह जनता में बहुत लोकप्रिय हो गया। सम्भवतः वह भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय वायसराय था।

४. **दिल्ली दरबार**—१९१० ई० में सम्राट सप्तम एडवर्ड का

देहान्त हो गया। अतः उनका पुत्र जार्ज पंचम गद्दी पर बैठा। १९११ ई० में जार्ज पंचम ने भारत की यात्रा की थी। १२ दिसम्बर, १९११ ई० को दिल्ली में सम्राट का राज्याभिषेक दरबार हुआ। लार्ड हार्डिग ने सम्राट की घोषणा पढ़कर सुनाई। उसमें कहा गया कि भारत की राजधानी कलकत्ते से हटाकर दिल्ली बनायी जाती है। बंगाल का विभाजन रद्द करके दोनों भागों को एक में मिलाया जाता है। आसाम के शासन के लिये अलग चीफ कमिश्नर नियुक्त किया जाता है। बिहार और उड़ीसा का एक अलग प्रान्त बनाया जाता है। इसी समय यह भी घोषणा की गयी कि भारतीय सैनिकों को भी अब 'विक्टोरिया क्रास, नामक पदक प्राप्त करने का अधिकार होगा। इसके अतिरिक्त सम्राट ने भारतीयों की शिक्षा के लिए ५० लाख रुपये की स्वीकृति दी। २३ दिसम्बर, १९१२ को जब लार्ड हार्डिग का जलूस दिल्ली में निकला तो चांदनी चौक में किसी ने उन पर बम फेंका। हार्डिग को बड़ी चोट आई पर उनके साथ जो व्यक्ति बैठा था, उसकी मृत्यु हो गयी। इतनी उत्तेजनापूर्ण कार्यवाही के पश्चात् भी भारतीयों के प्रति हार्डिग की सहानुभूति में कोई अन्तर नहीं आया।

५. **अफ्रीका की नीति**—१९१३ ई० में दक्षिणी अफ्रीका की सरकार ने एक कानून पास किया, जिसके द्वारा दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के प्रवेश पर रोक लगा दी गयी। उन्हें दक्षिणी अफ्रीका में व्यापार करने का एवं सम्पत्ति अर्जित करने का अधिकार भी न रहा। दक्षिणी अफ्रीका की सरकार की इन कार्यवाहियों का विरोध दक्षिणी अफ्रीका स्थित भारतीयों ने गांधी जी के नेतृत्व में किया। महात्मा गांधी तथा अन्य नेताओं को पकड़ कर जेल में डाल दिया गया। कुछ समय पश्चात् भारतीयों की कुछ मांगें पूरी हुई। गांधी जी ने अपनी इस विजय को दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयों की स्वतन्त्रता का घोषणापत्र कहकर वर्णित किया।

६. **यूरोपीय महायुद्ध**—१९१४ ई० में सितम्बर में यूरोपीय

महायुद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध में भारत ने इंग्लैंड के पक्ष का समर्थन किया और सब प्रकार से इंग्लैंड की सहायता की। भारत सरकार ने, यहां के राजामहाराजाओं तथा धनी-निर्धन सबने धन, जन तथा अन्य साधनों से ब्रिटिश सरकार की मदद की। भारतीय सेनाओं ने फ्रांस, मिस्र, अफीका तथा मेसोपोटामियां आदि अनेक देशों में जाकर वहां की सेनाओं से अंग्रेजों की ओर से वीरतापूर्ण युद्ध किये। १९१८ ई० में यह युद्ध समाप्त हुआ।

७. **लार्ड हार्डिङ्ग के सुधार**—लार्ड हार्डिग ने भारत की व्यापारिक तथा औद्योगिक उन्नति के लिये एक औद्योगिक कमीशन नियुक्त किया। पं० मदन मोहन मालवीय भी इस कमीशन के सदस्य बनाये गये। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में उन उपायों का सुझाव दिया, जिनके सहारे भारत में उद्योग की उन्नति की जा सकती थी। सरकारी नौकरियों की जांच के लिये एक पब्लिक सर्विस कमीशन (लोक-सेवा आयोग) नियुक्त किया गया। श्री गोपाल कृष्ण गोखले इस कमीशन के सदस्य थे। जब कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दी, तो सरकारी कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दिया गया।

८. **लार्ड चेम्सफोर्ड (१९१६-२१)**—१९१६ ई० में लार्ड हार्डिग के वापस जाने के पश्चात् लार्ड चेम्सफोर्ड वाइसराय बनकर भारत आया। उस समय यूरोपीय महायुद्ध चल रहा था। भारत में कांग्रेस ने भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग की। अगस्त १९१७ ई० में भारत मंत्री मिस्टर मांटेग्यु ने, इंग्लैंड की पार्लियामेण्ट की भारत संबंधी नीति के बारे में एक वक्तव्य निकाला। उस वक्तव्य का आशय था कि ब्रिटेन की सरकार की इच्छा है, कि वह भारतीयों को धीरे धीरे, जैसे-जैसे वे योग्य होते जायें, स्वराज्य दे देगी। इस वक्तव्य की घोषणा के पश्चात् मिस्टर मांटेग्यु स्वयं भारत आये। उन्होंने भारत के वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ भारत का दौरा किया और सभी राजनैतिक नेताओं से मिले तथा विचार-विमर्श किया। इसके पश्चात् उन्होंने एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसे मांटेग्यु-

चेम्सफोर्ड रिपोर्ट कहा जाता है। इस रिपोर्ट में भारत को स्वराज्य देने की योजना पर प्रकाश डाला गया था। १९१९ ई० में इंगलैंड की पार्लियामेण्ट ने गवर्नमेण्ट ग्राफ इण्डिया ऐक्ट पास किया।

९. १९१९ ई० का **मांटेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधार**—इस सुधार के ग्रनुसार भारत सचिव की कौंसिल में (जो इंग्लैंड में थी) सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी ग्रोर यह भी निश्चय हुआ कि उसमें तीन मेम्बर भारतीय होंगे। भारत सचिव को ग्रभी तक भारत के राजकोष से वेतन मिलता था, पर १९१९ ई० के सुधार के ग्रनुसार उसको इंग्लैंड के राजकोष से वेतन मिलने लगा। इंग्लैंड में भारत का एक हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया ग्रोर भारत सचिव को वाइसराय के कार्यों में ग्रधिक हस्तक्षेप करने का ग्रधिकार न रहा। व्यवस्थापिका के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर १४२ कर दी गयी, जिसमें १०२ निर्वाचित सदस्य होने लगे। 'कौंसिल ग्राफ स्टेट' के सदस्यों की संख्या बढ़ा कर ६० कर दी गई, जिसमें ३३ निर्वाचित सदस्य होने लगे। वाइसराय की कौंसिल में भी भारतीयों की संख्या बढ़ाकर ३ कर दी गयी।

प्रान्तीय धारासभाओं में भी सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गयी। इनमें ७० प्रतिशत सदस्य निर्वाचित तथा तीस प्रतिशत गवर्नर द्वारा मनोनीत होते थे। १९१९ ई० के सुधार द्वारा प्रान्तों में दोहरा शासन आरम्भ हो गया। शासन के सभी विषय दो भागों में बाँट दिये गये—रिजर्वड (रक्षित) तथा ट्रांसफर्ड (हस्तान्तरित)। रक्षित विषयों का प्रबन्ध गवर्नर ग्रपनी कौंसिल की सहायता से करता था। ध्यान रहे कि कौंसिल के सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत होते थे। हस्तान्तरित विषयों का प्रबन्ध गवर्नर मंत्रियों की सहायता से करता था। मंत्री निर्वाचित होते थे तथा धारासभा के सामने उत्तरदायी होते थे।

१०. **चौथा ग्रफगान युद्ध**—लार्ड चेम्सफोर्ड के समय में ग्रफगानिस्तान में बड़ी गड़बड़ी फैली। ग्रफगानिस्तान के ग्रमीर हबीबुल्ला से

क्रुद्ध होकर वहां की जनता ने उसकी हत्या कर दी। हबीबुल्ला के बड़े लड़के इनायत उल्ला ने अपने चाचा नसरुल्ला के पक्ष में गद्दी छोड़ दी। पर हबीबुल्ला के छोटे बेटों ने नसरुल्ला का विरोध किया। नसरुल्ला ने भय में आकर गद्दी छोड़ दी। और हबीबुल्ला का छोटा लड़का अमानुल्ला गद्दी पर बैठा। इस समय भारत मे रौलट ऐक्ट के विरुद्ध प्रभावशाली आन्दोलन चल रहा था। अमानुल्ला ने भारत के कुछ भागों पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेनायें भेजीं। भारतीय सेना ने जलालाबाद और काबुल पर आक्रमण करके उन पर अधिकार कर लिया। अगस्त १९२१ ई० में भारत तथा अफगानिस्तान के बीच सन्धि हो गयी। इस सन्धि के अनुसार भारत सरकार ने अमीर को वह वार्षिक सहायता देना बन्द कर दिया, जो पहले उसे दी जाती थी। खैबर की घाटी में सेना पहुंचाने के लिए भारत सरकार ने रेल निकाल कर अपनी सीमा की सुरक्षा का भी प्रबन्ध कर लिया।

११. रौलट ऐक्ट—देश में अराजकता तथा आन्दोलनों को दबाने के लिए रौलट ऐक्ट पास किया गया। पंजाब में इस ऐक्ट का प्रबल विरोध हुआ। इस ऐक्ट में कहा गया था कि राजनैतिक आन्दोलन करने वालों को कठिन दण्ड दिया जाना चाहिए। कौंसिल के भारतीय सदस्यों ने इसका विरोध किया था, पर सरकार ने अपने बहुमत द्वारा इसे पास कर दिया। बड़े-बड़े नगरों में जुलूस निकाले गये, सभायें की गयीं और सरकार की नीति तथा रौलट ऐक्ट का विरोध किया गया। अंग्रेज सरकार ने मार्शललॉ (फौजी कानून) जारी कर दिया। अमृतसर में जलियां वाले बाग में जनता की मीटिंग बुलाई गयी। जनरल डायर ने सेना ले जाकर निहत्थी जनता पर गोलियों की बौछार करा दी। फिर तो सारे देश में अंग्रेजों की हत्यायें की गयीं और बैंकों को लूटा गया। १९२१ ई० में लार्ड चेम्सफोर्ड जब इंग्लैंड वापिस गया, उस समय देश में यह भयानक स्थिति विद्यमान थी।

१२. लार्डरीडिंग (१६२१-२६)—लार्ड चेम्सफोर्ड के जाने के पश्चात् लार्ड रीडिंग वायसराय बना। उसके समय में भारत में आन्दोलन चल रहा था। कांग्रेस में भी फूट पड़ गई थी। एक पक्ष चाहता था कि विधानसभाओं में प्रवेश कर वैधानिक व्यवस्था को नष्ट किया जाये। दूसरा पक्ष इस नीति के विरुद्ध था। सरकार ने नमक पर कर बढ़ा दिया। इसका जनता ने बहुत प्रबल विरोध किया। दूसरे वर्ष यह कर फिर कम कर दिया गया। रीडिंग के कार्यकाल में सरकार ने देहरादून में एक सैनिक कालेज खोला और इंग्लैंड के सैंडहर्स्ट के सैनिक कालेज में भी भारतीयों के लिए १० जगहें रक्षित कर दी गयीं। लार्ड रीडिंग के समय में सिक्खों ने भी आन्दोलन किये। सिक्ख सरकार की गुरुद्वारा नीति के विरुद्ध थे। सरकार ने सिक्खों की कई मांगों को स्वीकार कर लिया। इसी बीच नाभा के नरेश को गद्दी छोड़नी पड़ी और उन्हें देहरादून भेज दिया गया। इन्दौर के महाराज सर तुकोराव होल्कर को भी कुछ शर्तों के अधीन गद्दी छोड़नी पड़ी।

१३. लार्ड इरविन (१६२६-३१)—१६२६ ई० में लार्ड इरविन भारत का वायसराय बन कर आया। इरविन किसानों के प्रति बहुत दिलचस्पी रखता था। उसने कृषकों की उन्नति के लिए एक कृषि-कमीशन नियुक्त किया।

१४. साइमन कमीशन—१६२७ ई० में इंग्लैंड की सरकार ने गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया ऐक्ट की शर्त के अनुसार एक कमीशन नियुक्त किया कि वह इस ऐक्ट के सुधारों के अधीन होने वाले कार्यों का निरीक्षण करे और अपनी रिपोर्ट में बताये कि अभी क्या-क्या त्रुटियां हैं, ताकि अग्रेतर सुधार किए जा सकें। १६२७ ई० में जाड़े की ऋतु में यह कमीशन भारत आया। इस कमीशन के प्रधान सर जान साइमन थे और ब्रिटेन की पार्लियामेन्ट के ६ सदस्य उनके साथ थे। चूंकि इस कमीशन के सब सदस्य यूरोपीयन थे और भारतीय एक भी

न था, अतः भारत में इस कमीशन का विरोध बहुत जोर-शोर से हुआ। इस विरोध को कम करने के लिये सरकार ने एक उपाय सोचा। सर शंकरन नायर के सभापतित्व में भारतीयों की एक समिति साक्ष्य (गवाही) लेने के लिये बना दी गयी। इससे स्थिति में कुछ सुधार तो हुआ पर भारतीयों को पूर्ण परितोष न हुआ। बाद में कुछ प्रान्तों की कौंसिल ने कमीशन के कार्य में सहायता दी। जब यह कमीशन अपनी रिपोर्ट तैयार रहा था, तभी भारत के वायसराय ने एक वक्तव्य निकाला कि भारत सरकार का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करना है। १६२८ ई० में कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसमें कांग्रेस ने सरकार के सामने मांग रखी कि एक वर्ष के भीतर हमें औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जाये। १६२६ ई० में कांग्रेस ने लाहोर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य घोषित किया। अतएव झगड़ा फिर आरम्भ हो गया। और गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया। नमक का कानून तोड़ने का प्रयत्न किया गया। सरकार ने नेताओं को गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया। लगभग ५०,००० व्यक्तियों को जेलों में ठूंस दिया गया। इसी बीच १६३० ई० में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट को किसी ने पसन्द नहीं किया। मामले को भी सुलझाने के लिये इसी वर्ष लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेंस हुई। पर उससे कुछ भी लाभ न हुआ। फिर लार्ड इरविन ने गांधी जी तथा अन्य नेताओं से बातचीत की। सर तेज बहादुर सप्रू तथा जयकर के प्रयत्नों से गांधी जी तथा लार्ड इरविन के बीच समझौता हो गया जिसे गांधी-इरविन पैक्ट कहते हैं। इस समझौते की शर्त यह थी कि यदि कांग्रेस आन्दोलन बन्द कर दे तो सभी राजनैतिक बन्दियों को छोड़ दिया जायेगा और बिना कर दिये नमक बनाने की अनुमति भी दे दी जायगी। इसके बाद पश्चात् लार्ड इरविन ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

१५ लार्ड विलिंगडन (१६३१-३६)—लार्ड इरविन के जाने पर लार्ड विलिंगडन भारत का वायसराय बनकर भारत आया। दूसरी

गोलमेज कान्फ्रेंस की तैयारी की गयी। कांग्रेस के प्रतिनिधि बनकर गांधी जी गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिये लन्दन गये। पर यह कान्फ्रेंस सफल न हो सकी। जब १६३१ ई० में गांधी जी लन्दन से लौटे, तो उन्हें बन्दी बना लिया गया, क्योंकि सरकार को भय था कि कहीं पुनः आन्दोलन आरम्भ न हो जाये। गाधी जी के बन्दी होते ही आन्दोलन आरम्भ हो गया और १६३२ ई० में कांग्रेस के नेताओं को पकड़ कर जेलों में भर दिया गया। सरकार के दमन के उद्देश्य से कई आर्डीनेन्स निकाले। १६३२ ई० में सरकार ने साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा की। महात्मा गांधी ने इसका विरोध किया और कहा कि यदि इस निर्णय में दलित जातियों के सम्बन्ध में परिवर्तन न किये गये तो मैं आमरण अनशन कर दूंगा जब उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया, तो पूना में समझौते पर हस्ताक्षर हुये और दलित जातियों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में परिवर्तन किये गये। १६३२ ई० में तीसरी गोलमेज कान्फ्रेंस लन्दन में हुई। मार्च १६३३ ई० में भारत के नये शासन के सुधार के लिये सरकारी घोषणा की गयी। इस घोषणा के आधार पर १६३५ ई० में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट पास हुआ। इस ऐक्ट को भारतीय जनता ने पसन्द नहीं किया। १६३५ ई० के ऐक्ट को बनाने में लार्ड लिनलियगो का भी पर्याप्त हाथ था, अतः १६३६ ई० में उसी ऐक्ट को कार्यान्वित करने के लिए उसे वायसराय बनाकर भारत भेजा गया।

१६. **लार्ड लिनलियगो (१६३७–४४)**—लार्ड लिनलियगो को शासन कार्य का पहले से पर्याप्त अनुभव था। यह एक योग्य व्यक्ति था। १६३७ ई० में १६३५ के ऐक्ट के प्रान्तीय भाग को लागू किया गया, केन्द्रीय भाग को नहीं। प्रान्तों की धारासभाओं के निर्वाचन हुए। कांग्रेस ने बड़े उत्साह से निर्वाचन में भाग लिया। निर्वाचनों में भाग लेकर कांग्रेस यह सिद्ध करना चाहती थी कि १६३५ ई० का ऐक्ट व्यवहार्य नहीं है। ग्यारह प्रान्तों में से ८ प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत स्थान प्राप्त हुए। इतना होने पर भी कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाने से

इंकार कर दिया जब तक कि गवर्नरों की ओर से उसे यह आश्वासन न मिल जाये कि वे दैनिक कार्यों में मन्त्रियों के विभागों के संचालन में कोई हस्तक्षेप न करेंगे। गवर्नरों के आश्वासन मिलने पर कांग्रेस ने अपने मन्त्रि-मंडल बनाये। लगभग सवा दो वर्ष तक अर्थात् अक्टूबर १९३९ ई० तक जब कि यूरोप में दूसरा महायुद्ध हुआ, कांग्रेसी मंत्रि-मंडल अच्छी प्रकार अपना कार्य चलाते रहे। कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने सिद्ध कर दिया कि कठिनाईपूर्ण परिस्थितियों में भी उत्तरदायी शासन चलाया जा सकता है। इन मंत्रि-मंडलों ने सुधार सम्बंधी अनेक कार्य किये। लगान और मालगुजारी के कानूनों में सुधार करके कृषि तथा किसानों की दशा सुधारी गयी। मद्य-निषेध योजना को सफल बनाया गया। शिक्षा व्यवस्था में समुचित सुधार करके शिक्षा का विस्तार किया गया। १९१९ ई० में कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने त्यागपत्र दे दिया। इस असंतोष का कारण यह था कि द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेजों ने भारत को भी सम्मिलित कर लिया था पर भारत की धारासभाओं की न सम्मति ली गयी और न स्वीकृति।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों द्वारा त्यागपत्र देने पर गवर्नरों ने १९३५ के ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय शासन अपने हाथ में ले लिया। इसी बीच कांग्रेस में फूट पड़ गयी। १९३९ ई० में सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। पर गांधी जी तथा उनके अनुयायियों से मतभेद होने के कारण सुभाष ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया और फारवर्ड ब्लाक बनाया। १९४० ई० में लार्ड लिनलिथगो ने अपनी कौंसिल में राजनैतिक दलों के नेताओं के लेने का प्रस्ताव रखा, सभी राजनैतिक दलों ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। १९४१ में उनकी कौंसिल में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी। १५ में से ११ सदस्य भारतीय कर दिये गये और कुछ महत्वपूर्ण विषय भी भारतीयों के अधीन कर दिये गये।

१७. क्रिप्स मिशन—मार्च, १९४२ ई० में स्टैफर्ड क्रिप्स भारत आये। वह भारत के लिये उत्तरदायी शासन की योजना लाये थे।

भारत के मुख्य-मुख्य राजनैतिक दलों के सामने उन्होंने अपनी योजना रखी। सभी दलों के नेताओं ने विचार-विनिमय किया। ऊपर से देखने में यह योजना बड़ी अच्छी लगती थी। इस योजना के अनुसार वायसराय की कौंसिल में सभी दलों के नेताओं को एक निश्चित अनुपात से प्रतिनिधित्व देने की बात कही गयी थी। पर इसमें एक बात यह थी कि युद्ध सम्बन्धी सभी विषय ब्रिटिश सरकार के अधीन रहेंगे। कांग्रेस ने इस योजना को कुछ कारणों से अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार क्रिप्स मिशन भी असफल रहा।

अगस्त, १९४२ ई० में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव कांग्रेस ने स्वीकृत किया और देश भर में आन्दोलन तथा उपद्रव आरम्भ हो गये। कांग्रेस के सभी बड़े-बड़े नेता बन्दी कर लिये गये और द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के बाद उन्हें छोड़ा गया।

१८. **लार्ड वेवल (१९४४-४७)**—लार्ड वेवल के कार्यकाल में द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो गया और इस युद्ध में जर्मनी पराजित हुआ। १९४५ ई० में लार्ड वेवल ने भारत के राजनैतिक दलों का एक सम्मेलन शिमले में किया। इस सम्मेलन में मुस्लिम लीग की हठधर्मी नीति के परिणामस्वरूप कोई भी निर्णय न किया जा सका। १९४६ ई० में इंग्लैंड में मजदूर दल सत्तारूढ़ हुआ। वहाँ के मंत्रिमंडल का एक मिशन जिसमें पैंथिक लारेंस, क्रिप्स तथा ए० वी० एलेक्जेण्डर थे भारत आया। भारत के राजनैतिक दलों के साथ लम्बी वार्ता करने के पश्चात् इस मिशन ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की। उस रिपोर्ट के अनुसार भारत में अन्तरिम सरकार बनाने की योजना रखी गयी। पहले तो मुस्लिम लीग इसे स्वीकार करने के पक्ष में थी, पर कांग्रेस इसे स्वीकार करना नहीं चाहती थी। बाद में कांग्रेस ने जब स्वीकार कर लिया, तो लीग ने अस्वीकृति की बात रखी। १९४६ ई० में कलकत्ते में साम्प्रदायिक दंगा हुआ और इसी वर्ष पं० नेहरू ने अन्तरिम सरकार बनाई। पहले लीग ने

अन्तरिम सरकार में भाग लेने से इन्कार कर दिया, पर कुछ समय पश्चात् वह सम्मिलित हो गयी। दिसम्बर, १९४६ ई० में दिल्ली में विधान परिषद् की बैठक प्रारम्भ हुई। १९४७ में लार्ड वेवल इंग्लैंड लौटे।

१९. लार्ड माउण्टबेटन (१९४७ से १९४८ जून)—१९४७ में लार्ड वेवल के इंग्लैंड जाने के पश्चात् लार्ड माउण्टबेटन वायसराय बन कर भारत आये। इस समय भारत की राजनैतिक स्थिति बहुत अस्त-व्यस्त थी। लार्ड माउण्टबेटन ने बड़ी समझदारी से काम लिया। उन्होंने निश्चय किया कि भारत को शीघ्र-से-शीघ्र शासन की बागडोर दे देनी चाहिये। लीग की मांगों के परिणाम-स्वरूप १९४७ ई० में भीषण दंगे हुये। ३ जून, १९४७ को अपनी घोषणा में लार्ड माउण्टबेटन ने बताया कि भारत को दो भागों में विभाजित किया जाता है—भारत और पाकिस्तान। दोनों उप-निवेशों को स्वतन्त्रता दे दी गयी। इस योजना को कांग्रेस और लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया। इस घोषणा के अनुसार १९४७ ई० में भारतीय स्वतन्त्रता ऐक्ट बना। अगस्त १९४७ ई० में देश का विभाजन हो गया। भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् भी लार्ड माउण्टबेटन भारत के गवर्नर-जनरल रहे। जून १९४८ ई० में वे निवृत्त होकर इंग्लैंड चले गये। इसी बीच पाकिस्तान ने काश्मीर के कुछ भाग पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। काश्मीर की सरकार ने अपना निर्णय दिया कि वह भारत के साथ रहना चाहती है। काश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्रसंघ के सामने ले जाया गया और वह अब भी विचाराधीन है।

चूंकि भारत और पाकिस्तान का विभाजन साम्प्रदायिकता के आधार पर किया गया था, अतः हिन्दुओं और मुसलमानों में भयानक दंगे हुये। दोनों ओर के बहुत से व्यक्ति मारे गये। भारत और पाकिस्तान के बीच जनसंख्या का परिवर्तन हुआ, अर्थात् पाकिस्तान से हिन्दू

लोग भारत आये और भारत से मुसलमान पाकिस्तान गये। लार्ड माउण्टबेटन के भारत से जाने के पश्चात् चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य १९४८ ई० में भारत के गवर्नर-जनरल बने। इस समय हैदराबाद की निजाम सरकार को भी भारत में मिला लिया गया। इस समय तक भारत व पाकिस्तान में कई कारणों से आन्तरिक कटुता बढ़ गई थी। विधान परिषद् ने संविधान बनाकर तैयार किया, जिसे २६ जनवरी १९५० से लागू कर दिया गया।

नये संविधान के अनुसार भारत के प्रथम राष्ट्रपति का चुनाव हुआ। डा० राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुये।

प्रश्न

1. Describe the condition of India after departure of Lord Curzan from India and state what do you know about Minto-Morley Reforms of 1909 ?

लार्ड कर्जन जब भारत से चला गया, उस समय भारत की स्थिति कैसी थी और यह भी बतलाइये कि १९०९ ई० के मिन्टो-मार्ले सुधार के बारे में आप क्या जानते हैं ?

2. Why is Lord Hardinge's administration considered liberal ?

लार्ड हार्डिंग के शासन को उदार शासन क्यों कहा जाता है ?

3. Summarise the leading events of the Viceroyalty of Lord Hardinge.

लार्ड हार्डिंग के वायसराय कालीन मुख्य-मुख्य घटनाओं का वर्णन संक्षेप में कीजिए।

4. Give the main features of the Montague-Chelmsford Reforms of 1919.

१९१९ ई० में मांटेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधार की मुख्य-मुख्य विशेषताओं

का वर्णन कीजिए ?

5. Write short notes on :—
   1. Simon Commission ;
   2. Rowlatt Act ;
   3. Cripps Mission ;
   4. Cabinet Mission ;
   5. Mountbatten Plan of 3rd June.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए :—

१. साइमन कमीशन ।

२. रौलट ऐक्ट ।

३. क्रिप्स मिशन ।

४. कैबिनेट मिशन (मन्त्रिमंडल मिशन) ।

५. ३ जून की माउन्टबेटन योजना ।

—: o :—

अध्याय ३२

समाज सुधार तथा नवजागरण का युग

१. **परिचय**—भारत में अंग्रेजों के आगमन और पाश्चात्य संस्कृति के साथ सम्पर्क के कारण भारतवासियों का दृष्टिकोण बहुत बदल गया। भारत में ब्रिटिश शासन की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि उसने इस देश में नवजागरण का सूत्रपात किया। अंग्रेजों के आने से पूर्व भारतीय रूढ़ियों के बन्धनों में जकड़े हुए थे और घटनाओं को सत्य की कसौटी पर कसने की अपेक्षा वे शास्त्रों के प्रमाणों से समस्याओं का समाधान कर लेते थे। अठारहवीं शताब्दी में जब बंगाल पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो चुका था, तब भारत में शिक्षा धर्म संस्थाओं द्वारा दी जाती थी। इस प्रकार की शिक्षा में केवल धर्म-ग्रंथों के अध्ययन और मनन पर जोर दिया जाता था। हिन्दुओं की पाठशालाएं संस्कृत और मुसलमानों के मदरसे अरबी और फारसी की शिक्षा देते थे। किन्तु विज्ञान, गणित, भूगोल, इतिहास जैसे विषयों का नामोल्लेख भी नहीं होता था। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने शिक्षा की इस प्रणाली में किसी प्रकार का परिवर्तन आवश्यक नहीं समझा। इसका कारण यह था कि उनके देश में भी शिक्षा का कार्य ईसाई चर्च द्वारा किया जाता था। दूसरे, अंग्रेज समझते थे कि भारत में प्राचीन काल से चली आ रही शिक्षा-प्रणाली ही भारतीयों के लिये सर्वथा उपयुक्त है। यही कारण है कि वारेन हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में १८७१ ई० में जो स्कूल खोला था, उसमें अरबी और फारसी की उच्च शिक्षा की व्यवस्था की गयी। इसी प्रकार प्राच्य शिक्षा के प्रसारार्थ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल और बनारस के संस्कृत कालेज की स्थापना की गयी।

भारत में जब ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पक्की हो गयी, तो

इंग्लैंड से यहां धर्म प्रचारक आये। उन्होंने अनुभव किया कि ईसाई धर्म प्रसार के लिए अंग्रेजी शिक्षा बहुत सहायक हो सकती है। अतः उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा की कई संस्थाएं मद्रास प्रान्त तथा अन्य स्थानों में भी स्थापित कीं। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार की ओर भारत के तत्कालीन विचारक और सुधारक आकृष्ट हुए। राजा राममोहन राय के प्रयत्न से कलकत्ता में एक कॉलिज की स्थापना हुई। यही कॉलेज आगे चलकर प्रेसीडेन्सी कॉलेज कहलाने लगा।

अंग्रेजी शिक्षा में भारतीयों की रुचि देखकर सरकार ने भारत में दी जाने वाली शिक्षा के समस्त बिन्दुओं पर विचार किया। अधिकांश अंग्रेजों का मत था कि अरबी फारसी आदि की शिक्षा ही भारतीयों को दी जाये और सरकार अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का विचार त्याग दे। इसके विपरीत मैकॉले जैसे विद्वानों की यह राय थी कि भारत के शासन को ठीक ढंग से चलाने के लिए भारतीयों का सहयोग परम आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जबकि भारतीय अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजों की कार्यप्रणाली को भली-भांति जान लें। प्रारम्भ में तो पहला मत प्रबल रहा जिसके परिणामस्वरूप देश में प्राच्य शिक्षा की संस्थाओं की स्थापना हुई। आगे चलकर ब्रिटिश सरकार ने ऐसी शिक्षा संस्थाएं स्थापित कीं, जिन में अंग्रेजी के अतिरिक्त विज्ञान, इतिहास, गणित जैसे विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। १८५७ ई० में कैनिंग ने कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विश्वविद्यालयों की स्थापना की। अंग्रेजी जानने वाले भारतीय को सरकारी नौकरियां दी जाने लगीं और विशेषतः मध्यम वर्ग के लोगों ने जीविकोपार्जन के उद्देश्य से अंग्रेजी शिक्षा को ग्रहण किया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप देश में एक ऐसे वर्ग का विकास हुआ, जो अंग्रेजी शिक्षा को जीविकोपार्जन एवं प्रतिष्ठा का साधन मानने के अतिरिक्त यह आकांक्षा भी रखता था कि देश का शासन भारतीयों के हाथ में ही हो। शिक्षित समुदाय की इस अनुभूति ने भारत में अनेक

सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों को जन्म दिया। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस प्रकार के सभी आन्दोलन सुधार के उद्देश्य से प्रेरित नहीं हुए थे। आर्य समाज जैसे आन्दोलन हिन्दू धर्म की बुराइयों को दूर कर वैदिक धर्म की स्थापना के लिए कार्यरत थे। इस प्रकार के आन्दोलनों को नीचे स्पष्ट किया जाता है।

ब्रह्म समाज

२. राजा राममोहन राय—उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक और सामाजिक सुधारकों में राजा राममोहन राय का स्थान अग्रगण्य है। पाश्चात्य शिक्षा ने मध्यकालीन परिस्थितियों में उथल-पुथल पैदा कर दी। अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई धर्म का प्रभाव उस समय के सुधारकों पर पड़ा। राजा राममोहन राय ने मूर्तिपूजा का विरोध कर एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रसार आरम्भ कर दिया। १८२८ ई० में उन्होंने ब्रह्म सभा नामक एक संस्था की स्थापना की जिसमें वे सब लोग सम्मिलित हो सकते थे, जो ईश्वर में विश्वास करते हों तथा मूर्ति पूजा के विरोधी हों। इस सभा के लिए कलकत्ता में एक भवन का निर्माण किया गया। इस ब्रह्म सभा को ब्रह्म समाज का जनक समझा जाता है, किन्तु ब्रह्म समाज राजा राममोहन की मृत्यु के पश्चात् स्थापित हुआ है। राजा राममोहन राय हिन्दू धर्म के संस्कारों का पालन करते थे और ब्रह्म सभा में वेद मंत्रों द्वारा ईश्वर की उपासना की जाती थी।

ब्रह्म समाज के संस्थापक देवेन्द्रनाथ टैगोर थे। १८४३ ई० में वे ब्रह्म आन्दोलन में सम्मिलित हुए और उन्हीं के प्रयत्नों से ब्रह्म समाज एक पृथक् सम्प्रदाय के रूप में अस्तित्व में आया। देवेन्द्रनाथ टैगोर वेदों में विश्वास रखते थे, परन्तु आगे चल कर इस समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति आये, जिन्होंने वेदों को प्रमाण न मानकर बुद्धि और तर्क के प्रयोग को ही महत्व दिया। १८५७ ई० में श्री केशवचन्द्र सेन के आगमन से ब्रह्म समाज में अदम्य उत्साह और चेतना का संचार

हुआ। केशवचन्द्र के प्रयत्न और लगन से १८६५ ई० तक भारत के विभिन्न प्रान्तों में ब्रह्म समाज की ५४ शाखायें स्थापित हो गईं आगे चल कर केशवचन्द्र और देवेन्द्रनाथ टैगोर के मतभेद तीव्र हो गये और केशवचन्द्र के अनुयायियों ने एक पृथक् संगठन बना लिया। उनके नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने बहुत उन्नति की। किन्तु कालान्तर में इस संगठन में प्रगतिशील विचार रखने वाले व्यक्ति सम्मिलित हुए जिन्होंने केशवचन्द्र के भक्ति विषयक सिद्धान्तों के विरोध में अपना एक पृथक् संगठन बना लिया।

३. **ब्रह्म समाज के सुधार**—ब्रह्म समाज की विचारधारा के सबसे पहले प्रचारक राजा राममोहन राय थे, जिन्होंने हिन्दू समाज की कुप्रथाओं की समाप्ति के लिये पर्याप्त प्रयास किये। उन्होंने सती की निर्दय प्रथा का विरोध और विधवा-विवाह का समर्थन किया। उन्होंने हिन्दू समाज की बुराइयों को दूर करने के लिये कम्पनी के डायरेक्टरों को कई ज्ञापन भेजे। लार्ड विलियम बैंटिक के कई सुधार राजा राम-मोहन राय के सुझावों पर आधारित थे।

राजा राममोहन राय ने भारतीयों के लिये अंग्रेजी शिक्षा के महत्त्व का प्रतिपादन किया। उनका मत था कि अंग्रेजी के अभाव में भारत के निवासी विज्ञान आदि के अध्ययन से वंचित रहेंगे और देश प्रगति न कर सकेगा। उन्होंने कलकत्ता में अंग्रेजी शिक्षा के अध्ययन के लिये एक कालिज की स्थापना की। राजा राममोहन राय समाचार-पत्रों के स्वातन्त्र्य का समर्थन करते थे। वे चाहते थे कि शासन में, सेना में भारतीयों को प्रवेश दिया जाए और न्यायालयों की भाषा फारसी के स्थान पर अंग्रेजी हो। किसानों की शोचनीय दशा ने भी उनका ध्यान आकर्षित किया था और उन्होंने जमींदारों के अत्याचारों का स्पष्ट विरोध किया। उन्होंने मालगुजारी कम करने का आन्दोलन भी आरम्भ किया था।

ब्रह्म समाज ने आगे चलकर बहुत उन्नति की। इसके अनुयायी

सामाजिक सुधार पर बहुत बल देते थे और यही कारण था कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उनके विचार बहुत क्रान्तिकारी समझे जाते थे। परन्तु, बीसवीं शताब्दी हिन्दू धर्म के प्रगतिशील व्यक्तियों ने ब्रह्म समाज के सुधारों की उपयोगिता का अनुभव किया। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षित वर्ग और ब्रह्म समाज के मतभेद बहुत घट गये। ब्रह्म समाज के आन्दोलन से हिन्दू धर्म में अनेक सुधार सम्भव हो सके।

आर्य समाज

४. **स्वामी दयानन्द**—उन्नीसवीं सदी में जिन सुधारक आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ, उनमें आर्य समाज का स्थान बहुत ऊंचा है। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का जन्म काठियावाड़ में हुआ था। स्वामी दयानन्द ने युवावस्था में परिव्रजन कर सत्य की खोज करने का प्रयत्न किया था। इस उपक्रम में उन्होंने कई साधु-सन्तों से विचार-विमर्श किया, अनेक प्रकार की तपस्याएँ कीं और देश में दूर-दूर तक भ्रमण किया। स्वामी दयानन्द को न तो अंग्रेजी का ज्ञान था और न उनका ईसाई धर्म के प्रसारकों के साथ सम्पर्क हुआ। वे केवल वेदों के मर्म को ग्रहण कर इस निष्कर्ष पर पहुंच गये कि बाल विवाह एक कुप्रथा है और किन्हीं विशेष परिस्थितियों में विधवा विवाह शास्त्र सम्मत है। उनका मत था कि वर्ण-व्यवस्था आदिकाल में मनुष्य के गुण-स्वभाव-कर्म के आधार पर बनाई गई थी, किन्तु मनुष्य प्रयत्न द्वारा उच्च वर्ण को प्राप्त कर सकता था। अतः जाति-भेद उस वर्ण-व्यवस्था का विकृत रूप है जो समाप्त कर दिया जाना चाहिये।

दयानन्द ने हिन्दू धर्म की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न ही नहीं किया, अपितु उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि अन्य मतावलम्बी भी वैदिक धर्म की दीक्षा ले सकते हैं। इतिहास में इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं. कि प्राचीन काल में शक, ण आदि विदेशी जातियों ने

हिन्दू धर्म को स्वीकार किया था। परन्तु, इस्लाम के आगमन से हिन्दू धर्म का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित हो गया था। इस बात का लाभ उठाकर मुसलमान एवं ईसाई अनेकों हिन्दुओं को अपने धर्म की दीक्षा देते थे। स्वामी दयानन्द ने इस बात का समर्थन किया कि कोई भी व्यक्ति आर्य धर्म का अनुयायी बन सकता है।

वेदों के अनुशीलन के पश्चात् दयानन्द ने जो विचार व्यक्त किये, वे निस्संदेह क्रांतिकारी थे। उन्होंने छुआछूत का विरोध और स्त्री शिक्षा का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि ईश्वर एक है और उसकी उपासना के लिए मूर्तिपूजा अनावश्यक है। मृत्यु के पश्चात आत्मा पुनः जन्म लेती है। अतः उसके लिये तर्पण व श्राद्ध जैसे संस्कार कदापि आवश्यक नहीं हैं। अपने विचारों के प्रतिपादन और प्रसार के लिये स्वामी दयानन्द ने अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनमें 'सत्यार्थप्रकाश' उल्लेखनीय है। वेदों का सन्देश जनसाधारण तक पहुंचाने के लिये उन्होंने वैदिक संहिताओं का हिन्दी में अनुवाद भी किया। अपने विचारों के प्रसार के लिये उन्होंने 'आर्य समाज' की स्थापना की, जो अल्पकाल में ही लोकप्रिय हो गयी।

भारत के नवजागरण के इतिहास में दयानंद का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक सुधारों के साथ-साथ भारतवासियों में राजनैतिक चैतन्यता लाने का कार्य भी किया। भारत की राजनैतिक दुर्दशा का उन्होंने तीव्रता से अनुभव किया और अपने अनुयायियों को भारत के उस लुप्त गौरव और वैभव को पुनः प्राप्त करने के लिये कहा, जो इस देश को चक्रवर्ती सम्राटों के समय में प्राप्त था। विदेशी शासन का अन्त करने का घोष सर्वप्रथम स्वामी दयानंद ने ही किया। ' उन्होंने यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया कि 'सुशासन' कभी 'स्वशासन' का स्थान नहीं ले सकता। विदेशी राज चाहे कितना ही उत्कृष्ट और सुशासित क्यों न हो, स्वराज्य उसकी अपेक्षा अधिक अच्छा है।"*

*डा० सत्यकेतु विद्यालंकार—"भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास (द्वितीय भाग)

शिक्षा प्रसार में आर्य समाज ने महत्वपूर्ण योग दिया है। आर्य समाज ने वैदिक साहित्य के अध्ययन के लिए गुरुकुलों की स्थापना की, जिनमें ब्रह्मचारी छात्रों के निवास और उनकी निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई। ये गुरुकुल भारत की प्राचीनकाल की शिक्षा प्रणाली पर आधारित हैं और स्वामी श्रद्धानन्द इनके प्रवर्तक हैं। वैदिक साहित्य के पठन-पाठन के अतिरिक्त आधुनिक शिक्षा के महत्व को देखते हुए कई स्कूलों और कालिजों की स्थापना की गई। उल्लेखनीय है कि आर्य समाज ने स्त्री शिक्षा पर पर्याप्त बल दिया और आर्य समाज के प्रायः सभी मन्दिरों के साथ कन्या पाठशालायें स्थापित की गयीं।

राम कृष्ण मिशन

५ रामकृष्ण मिशन उस संस्था का नाम है, जो रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं के प्रसारार्थ स्थापित की गई थी। रामकृष्ण परमहंस (१८३४-८६ ई०) का कार्यक्षेत्र उनके जीवनकाल में बंगाल तक ही सीमित रहा। उन्होंने किसी नये समाज या संस्था की स्थापना नहीं की। उनके अध्यात्मवाद, सरल जीवन और उच्च आदर्श से तत्कालीन शिक्षित वर्ग पर्याप्त प्रभावित हुआ। उनके परम शिष्य नरेन्द्रनाथ दत्त थे, जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। विवेकानन्द अत्यन्त मेधावी थे और उन्होंने रामकृष्ण परमहंस के आध्यात्मवाद को आत्मसात कर उसे देश और विदेशों में भी प्रसारित किया। १८९३ ई० में शिकागो में एक विश्व धर्म सम्मेलन हुआ, जिसमें स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय आध्यात्मवाद पर अत्यन्त मार्मिक भाषण दिया। आध्यात्म का इतना सुन्दर और सूक्ष्म विवेचन सुनकर पाश्चात्य देशों की जनता उनसे बहुत प्रभावित हुई। स्वामी विवेकानन्द ने तीन वर्ष अमेरिका में रहकर रामकृष्ण की शिक्षा का प्रसार किया। इन शिक्षाओं के प्रसार के उद्देश्य से रामकृष्ण मिशन नामक संस्था की स्थापना की गई। रामकृष्ण विविध धर्मों की आधारभूत एकता पर

विश्वास करते थे। और उनका मत था कि मनुष्य को आध्यात्मवाद का पालन कर ब्रह्म में विलीन हो जाना चाहिये। ईश्वर अमर और अजेय है, उसकी उपासना सगुण और निगुण दोनों प्रकार से की जा सकती है तथा विश्व के सारे धर्म एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने के भिन्न-भिन्न साधन हैं।

राकक्रृष्ण परमहंस की आध्यात्म शिक्षा ने हिन्दू जनता को पर्याप्त प्रभावित किया। रामकृष्ण मिशन आध्यात्म शिक्षा के प्रसार के अतिरिक्त अशिक्षित तथा दलितों के उन्नयन एवं उपेक्षित तथा रोगपीड़ित जनों की सेवा का कार्य भी करता है। स्वामी विवेकानन्द जहां भारतीय अध्यात्म दर्शन पर प्रकाश डालते थे वहां वे भारत की दशा की ओर अन्य देशों का ध्यान भी आकृष्ट करते थे। रामकृष्ण मिशन ने भारतीय नवजागरण में पर्याप्त योग दिया है।

प्रार्थना समाज आदि

६. राजा राममोहन राय के धार्मिक और सामाजिक सुधारों ने महाराष्ट्र जैसे दूरस्थ प्रदेशों को भी प्रभावित किया। इसी आन्दोलन से प्रेरित होकर महाराष्ट्र में १८४९ ई० में एक परमहंस सभा स्थापित की गई। किन्तु यह सभा विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सकी। केशवचन्द्र के नेतृत्व में ब्रह्म समाज की असाधारण प्रगति से प्रभावित होकर महाराष्ट्र में १८६७ ई० में एक नई संस्था स्थापित की गई, जिसे प्रार्थना समाज कहा जाने लगा। प्रार्थना समाज ने हिन्दू धर्म के स्वरूप अथवा सिद्धान्तों में परिवर्तन के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। वह सामाजिक कुप्रथाओं की समाप्ति के लिये ही प्रयत्नशील रहा। इस प्रसंग में यहां यह उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है कि सोलहवीं शताब्दी में रामदास, तुकाराम और नामदेव जैसे सन्त पुरुषों ने भक्ति आन्दोलन का जो प्रसार किया था, उसका महाराष्ट्र पर बहुत प्रभाव पड़ा था। अतः महाराष्ट्र की जनता ब्रह्म समाज जैसी संस्थाओं की अनुयायी नहीं बन सकी। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि

वह हिन्दू धर्म की कुप्रथाओं को समाप्त कर देने की आवश्यकता पर सहमत थी। प्रार्थना समाज ने कई अनाथालय, विधवाश्रम और कन्या पाठशालाओं की स्थापना की। अछूतों के उद्धार के लिए दलितोद्धार मिशन नामक एक संस्था भी स्थापित की गई।

प्रार्थना समाज के प्रधान नेता जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे थे। उनके समाज सुधार सम्बन्धी विचार बहुत परिष्कृत थे। उनका मत था कि शताब्दियों से चली आ रही प्रथाओं और परम्परा का त्याग एकदम संभव नहीं है। अतः सुधारक को प्राचीन संस्कारों को ध्यान में रखकर कुप्रथाओं के निराकरण का प्रयत्न करना चाहिये। प्रार्थना समाज के आदर्श से प्रभावित होकर कुछ सुधारकों ने महाराष्ट्र में १८८४ ई० में 'डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी' की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य छात्रों को देश-सेवा के लिये प्रेरित करना था। इस संस्था के सदस्यों को केवल जीवन निर्वाह के लिए वेतन मिलता था और इसमें संदेह नहीं कि इन शिक्षकों ने अपने छात्रों के समक्ष जो त्याग और आदर्श प्रस्तुत किया, उससे छात्रों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। इस संस्था के एक सदस्य देश सेवक गोपालकृष्ण गोखले थे। उन्होंने १९०५ ई० में पूना में 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी' की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य ऐसे देशवासियों का निर्माण था, जो वैध उपायों से देश के कल्याण के लिए आजीवन कार्य करें। इसके सदस्यों को निर्वाह के लिये नाममात्र वेतन दिया जाता था। कुछ समय बाद लाला लाजपतराय ने पंजाब में 'सर्वेन्ट्स आफ पीपुल सोसाइटी, नामक संस्था स्थापित की। यह संस्था भी निष्काम सेवा भाव की समर्थक थी।

थियोसोफिकल सोसाइटी

७. थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना मेडम ब्लावत्सकी और कर्नल आलकोट ने १८७५ ई० में अमेरिका में की। १८७६ ई० में भारत आने पर इनका सम्पर्क तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों के साथ हुआ। इस सोसाइटी के प्रवर्तकों ने आर्यसमाज और अपनी संस्था को एक संस्था

बनाकर कार्य करने का प्रस्ताव आर्य समाजियों के समक्ष रखा, किन्तु वे इससे सहमत न हुए। अतः सोसाइटी की ओर से अड्यार (मद्रास) में एक केन्द्र स्थापित किया गया। यह संस्था सभी धर्मों के मौलिक सिद्धान्तों में विश्वास करती है। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य विश्वव्यापी मानवसमाज में भ्रातृ-भाव उत्पन्न करना था। प्रारम्भ में तो इस संस्था को विशेष सफलता नहीं मिली। परन्तु, १८६३ ई० में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट नामक महिला ने भारत आकर इस संस्था का संचालन किया, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षित जन इसकी ओर आकृष्ट हुए।

श्रीमती बेसेन्ट ने भारत को अपनी मातृभूमि मानकर देश-सेवा में अपना जीवन लगा दिया। उनका मत था कि भारत अपने प्राचीन आदर्शों के पुनरुत्थान से ही प्रगति कर सकता है। भारत में नव राष्ट्र का निर्माण तभी सम्भव है, जब कि देशवासी अपनी सभ्यता, संस्कृति और धर्म के लिए गर्व अनुभव करें। श्रीमती बेसेन्ट कुशल वक्ता और लेखिका थीं और उनके कार्यों ने भारतीय जनता में पर्याप्त चेतना उत्पन्न की। भारत के प्रति उन्हें अपार श्रद्धा थी और उन्होंने स्वराज्य आन्दोलन में कार्य भी किया। उन्होंने लोकमान्य तिलक द्वारा स्थापित होम रूल लीग के विचारों के प्रचार में पर्याप्त योग दिया। भारतीय जनता और कांग्रेस के नेतागण उनका बहुत आदर करते थे। श्रीमती बेसेन्ट को कांग्रेस के एक वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष पद का सम्मान भी मिला था।

श्रीमती बेसेन्ट ने भारत के कई नगरों में थियोसोफिकल सोसाइटी की शाखाओं की स्थापना की। उन्होंने बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल स्थापित किया, जो आगे चलकर कॉलिज बन गया। १६१५ ई० में पंडित मदनमोहन मालवीय ने इसी कॉलिज को केन्द्र बनाकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। यह विश्वविद्यालय आधुनिक शिक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त भारत की प्राचीन संस्कृति पर भी जोर देता है।

नवजागरण का इस्लाम पर प्रभाव

८. भारत में उन्नीसवीं सदी में जो नवजागरण हो रहा था, उसने इस्लाम धर्म को भी प्रभावित किया। मुसलमानों को प्रारम्भ से ही ब्रिटिश शासन से विशेष सहानुभूति नहीं थी। १८५७ ई० का विप्लव असफल हो जाने पर मुसलमान और अंग्रेज और भी दूर हो गये। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक मुसलमानों को विश्वास था कि कुरान में सम्पूर्ण ज्ञान निहित है। मुसलमानों द्वारा स्थापित मदरसों में केवल अरबी और फारसी पढ़ाई जाती थी। अतः प्रारम्भ में मुसलमानों ने अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य ज्ञान की उपेक्षा की। परन्तु आगे चलकर उनमें सर सैयद अहमद खाँ जैसे सुधारक हुए, जिन्होंने मुसलमानों में जागृति के लिए अथक परिश्रम किया। उन्होंने मुसलमानों को यह उपदेश दिया कि आधुनिक शिक्षा की उपेक्षा करने के कारण वे हिंदुओं से बहुत पिछड़ गये हैं और उन्हें अंग्रेजी भाषा और साहित्य का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए। १८७५ ई० में उन्होंने अलीगढ़ में एंग्लो-ओरिएन्टल कॉलिज स्थापित किया, जो कालान्तर में मुस्लिम संस्कृति और इस्लाम के नवजागरण का मुख्य केन्द्र बन गया। १९२० ई० में इसे विश्वविद्यालय बना दिया गया। सर सैयद अहमद खाँ के प्रयत्न से मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। खिलाफत आन्दोलन में कांग्रेस और लीग ने मिलकर कार्य किया, किन्तु आगे चलकर मुस्लिम लीग कांग्रेस से अलग हो गयी और वह एक साम्प्रदायिक संस्था बन गयी।

९. **नवजागरण काल में साहित्य का विकास**—भारत में नयी शिक्षा और धार्मिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप भारत की विभिन्न भाषाओं में नवीन साहित्य का सृजन और विकास प्रारम्भ हुआ। अठारहवीं शताब्दी में देश में मुद्रण कला आ चुकी थी और छपी पुस्तकों के माध्यम से धार्मिक आन्दोलनों के विचार और सिद्धांत जनसाधारण तक पहुंचना संभव हो गया था। अंग्रेजों ने सर्वप्रथम बंगाल पर

शासन स्थापित किया था और आधुनिक शिक्षा का विकास सर्वप्रथम वहीं हुआ। अतः बंगाल में उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक लेखक हुए, जिन्होंने अंग्रेजी ग्रन्थों का बंगाली में अनुवाद किया। कुछ ने तो अंग्रेजी में ही साहित्यरचना की। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे लेखकों ने बंगाली साहित्य की गद्य शैली को परिष्कृत करने का प्रयास किया। बंकिमचन्द्र की मौलिक रचनायें इस देश के साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनके 'आनंदमठ' नामक उपन्यास ने बंगाल में देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। बंगाल के क्रांतिकारी 'आनंदमठ' को क्रांति का प्रेरक समझते थे और उसका 'वन्दे मातरम्' गीत तो भारत का राष्ट्रीय गीत बन गया। इस युग के साहित्यकारों में कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है उनकी अमर रचना 'गीताञ्जलि' को १९१३ ई० में नोबल पुरस्कार प्रदान कर विश्व ने इस महान् कवि को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। गीताञ्जलि का अनुवाद भारत की और अन्य देशों की भाषाओं में भी हो चुका है। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक नयी क्रांति उत्पन्न की। उनकी रचनाओं में पर्याप्त देश-प्रेम तथा ओज था। भारत दुर्दशा नामक उनकी पुस्तक में भारत की ब्रिटिशकालीन दुर्दशा का वर्णन है। नवयुवकों में राष्ट्र-प्रेम की चेतना भरने में हरिश्चन्द्र ने एक बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया।

प्रश्न

1. Indicate briefly the main features of the religious and social reforms in India in the 19th century.

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में जो धार्मिक तथा सामाजिक सुधार हुए, उनकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2. What do you know about Raja Ram Mohan Roy? What did he do for India?

राजा राममोहन राय के विषय में आप क्या जानते हैं ? उन्होंने भारत के लिए क्या किया ?

3. Who was the founder of Arya Samaj ? What are the contributions of Arya Samaj to our social reforms ?

आर्य समाज के संस्थापक कौन थे ? हमारे सामाजिक सुधारों में आर्य समाज का कितना हाथ रहा है ?

4. What do you know about the Ram Krishna Mission ?

राम कृष्ण मिशन के विषय में आप क्या जानते हैं ?

5. Trace the progress of social reforms in India upto 1935 through the popular agencies ?

लोकप्रिय संस्थाओं के माध्यम से १९३५ ई० तक भारत में जो सामाजिक सुधार हुए, उनका वर्णन कीजिए।

6. "The half second of the 19th century was marked by a strong wave of reform-activities in society." Comment.

'उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाज-सुधार विषयक गतिविधियों की एक प्रबल लहर आयी थी।' इस कथन को समझाइए।

7. Describe the contribution of Prarthana Samaj and Theosophical Society to the Contemporary, Social and Cultural Movement.

समकालीन, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन में प्रार्थना समाज तथा थियोसोफिकल सोसाइटी का कितना योग रहा है। समझाइए ?

—: o :—

अध्याय ३३

राजनैतिक जागृति और गणतन्त्र की स्थापना

१८५७–१९५०

१. कांग्रेस का जन्म—कांग्रेस का इतिहास भारतीय राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष का इतिहास है। अपने अनवरत प्रयत्नों से भारत को स्वतंत्र कराने वाली इस संस्था का पूर्ण महत्व समझने के लिये उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में देश में विद्यमान परिस्थिति का अध्ययन आवश्यक है। कांग्रेस का जन्म १८८५ ई० में मिस्टर ह्यूम नामक अंग्रेज के प्रयत्न के फलस्वरूप बम्बई नगर में हुआ था। अंग्रेज इस देश में सर्वप्रथम व्यापार करने के लिये आये थे। परन्तु उन्होंने तत्कालीन अराजकता का लाभ उठाकर सौ वर्ष के भीतर ही भारत में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। साम्राज्य विस्तार के साथ ही अंग्रेजों ने भारत में दमन और शोषण की जो नीति अपनाई, उससे देश में असंतोष फैला और १८५७ ई० का विप्लव इसी असंतोष का विस्फोट था। इसमें सन्देह नहीं, कि अंग्रेजों ने ठगी, सती आदि को रोककर सुधार के पर्याप्त कार्य किये, परन्तु यदि सब मिलाकर देखा जाय तो उनका शासन जनसाधारण के लिये विशेष कल्याणकारी सिद्ध नहीं हुआ। किसानों की स्थिति बिगड़ती ही गई और सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों ने उन्हें नष्ट कर देने में कोई कसर उठा नहीं रखी। उधर समाचारपत्रों की आजादी, नागरिक स्वातंत्र्य और नगरपालिका के स्वशासन अधिकार भी सीमित कर दिये गये। अंग्रेज शासक भारतीयों के साथ समान व्यवहार आदि की घोषणा करते थे, परन्तु व्यवहार में भारतीयों को अपमान और निरादर ही सहना पड़ता था। अतः भारत-

वासियों के मन में इस विदेशी शासन के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रह गई।

अंग्रेजों के शासन के प्रारम्भिक काल में देश में राष्ट्रीयता का नाम भी न था। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द जैसे सुधारकों द्वारा चलाये गये धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों ने देश में पर्याप्त चेतना उत्पन्न कर दी। आधुनिक शिक्षा के प्रसार के कारण शिक्षित वर्ग को देश की शोचनीय स्थिति के लिए उत्तरदायी कारणों का भान होने लगा। १८५७ ई० के विप्लव की सफलता ने भारतीयों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये कोई अन्य मार्ग अपनाने के लिये बाध्य कर दिया। १८५७ ई० में अंग्रेजों ने भारतीयों के ऊपर जो निर्मम अत्याचार किये थे, उनकी कटु स्मृतियों को भारतीय जनता विस्मृत नहीं कर पायी थी। देश में अशान्ति की आग धीरे-धीरे सुलग रही थी और १८५७ ई० के पश्चात् देश के कई युवकों ने क्रांतिकारी तरीके अपनाये। किन्तु अंग्रेजों की प्रबल शक्ति ने उन्हें पनपने न दिया। मिस्टर ह्यूम को ऐसी सात रिपोर्टें मिली थीं, जिनमें विभिन्न जिलों में विद्रोह की भावना के प्रसार का वर्णन था। अतः उन्होंने एक ऐसे संगठन—कांग्रेस—की स्थापना की, जिसके माध्यम से भारतीय जनता अपनी आवश्यकताओं से सरकार को परिचित करा सके और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वैध आन्दोलन के मार्ग पर चल सके। उन्होंने देश के प्रमुख नेताओं से पत्र-व्यवहार कर १८८५ ई० में इस संस्था को जन्म दिया, जो आज तक देश की जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व कर रही है। देश के शिक्षित समुदाय को किसी ऐसी ही संस्था की आवश्यकता एक अरसे से प्रतीत हो रही थी। अतः सभी ने उसका स्वागत किया।

२. कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन—कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन दिसम्बर १८८५ ई० में हुआ, जिसके अध्यक्ष श्री डब्ल्यु० सी० बैनर्जी थे। इस अधिवेशन में कोई ७० महानुभाव उपस्थित थे। इस अधिवेशन

ने नौ प्रस्ताव पास किए, जो आगे चलकर भारतीयों की प्रमुख माँगों का आधार बने। इसके पश्चात् कांग्रेस का अधिवेशन प्रति वर्ष भारत के भिन्न-भिन्न नगरों में होने लगा।

आरम्भ में कांग्रेस के प्रति सरकार का व्यवहार बहुत अनुकूल था। कांग्रेस की बैठकों में सरकारी कर्मचारी भाग ले सकते थे। १८८७ ई० में गवर्नर जनरल ने कांग्रेसी सदस्यों के सम्मान में एक दावत का आयोजन भी किया था। कांग्रेस के अधिवेशनों में सामान्यत: पुराने प्रस्तावों की पुनरावृत्ति होती थी और एक-दो नये प्रस्ताव पास किए जाते थे। कांग्रेस की माँगें शासन में सुधार, भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्ति तथा किसी कानून को रद्द कराने आदि के विषय में होती थीं। कोई बीस वर्ष तक कांग्रेस ने यही कार्यक्रम अपनाया और इसलिए अंग्रेजों ने उसे आपत्तिजनक नहीं समझा।

कालान्तर में कांग्रेसी जनों ने देश की गरीबी, अंग्रेजों द्वारा देश का शोषण, शासन में आवश्यक सुधार आदि विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त करना आरम्भ किया। इन बातों के परिणामस्वरूप देश में सुधार और न्यायप्रियता के प्रति जागरूकता उत्पन्न होने लगी। अंग्रेजों को कांग्रेस का यह स्वरूप अच्छा न लगा और उन्होंने तुरन्त ही उसे क्षीण कर देने के उपाय अपनाये। सरकारी नौकरों को कांग्रेस से सम्पर्क रखने के विरुद्ध चेतावनी दे दी गई। परन्तु इन सब उपायों के होते हुये भी कांग्रेस ने अपना कार्य चालू रखा। कांग्रेस ने अपने उद्देश्यों के प्रचारार्थ इंग्लैंड में एक कार्यालय खोला, जो एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करता था। इंग्लैंड में कांग्रेस का पर्याप्त प्रचार हुआ और उसके पाँचवें अधिवेशन में ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक सदस्य ब्रेडलाफ ने भाग लिया। इन्होंने १८९२ ई० में कौंसिल ऐक्ट को पास कराने के लिए पर्याप्त परिश्रम किया।

१८८५ ई० से लेकर १९४५ ई० तक के साठ वर्षों में कांग्रेस के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आयें। किंतु, उसका संगठन प्रबल ही होता

गया और महात्मा गांधी जैसे महान् नायक के मार्गदर्शन में उसने देश को विदेशी शासन से मुक्त करा लिया। कांग्रेस के एक मुख्य नेता डा० पट्टाभि सीतारमैया ने कांग्रेस की जीवनी का सम्पूर्ण इतिहास लिखा है और उसमें उन्होंने जो मुख्य खण्ड बनाये हैं, वे देश की राजनैतिक स्थिति के प्रसंग में उचित प्रतीत होते हैं। उन्हीं खण्डों में यहाँ कांग्रेस के इतिहास का विशद वर्णन किया जाता है।

३. सुधारों का युग (१८८५–१९०५ ई०)—कांग्रेस ने अपने पहले अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर १८६१ ई० के इण्डिया कौंसिल ऐक्ट के प्रति असंतोष व्यक्त किया था। भारतीयों ने अपने अधिकारों की मांगें ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखीं। १८९२ ई० में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नया इण्डियन कौंसिल ऐक्ट बनाया गया। "इण्डियन नेशनल कांग्रेस के परिश्रम का पहला परिणाम था सन् १८९२ ई० का इण्डिया कौंसिल ऐक्ट। कांग्रेस ने अपने पहले ही अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा सरकार की वर्तमान व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट किया था और यह निवेदन किया था कि कौंसिलों में निर्वाचित सदस्यों को प्रचुर अनुपात में सम्मिलित करके·········सुधार और विस्तार किया जाये।"*

इस ऐक्ट के अनुसार केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् के सदस्यों की संख्या १२ से १६ कर दी गई। प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों की सदस्य संख्या में भी वृद्धि हुई। इन परिषदों में सरकार का बहुमत होता था। सदस्य बजट पर चर्चा कर सकते थे और प्रश्न पूछ सकते थे, किन्तु उन्हें पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार न था। १८९२ ई० के इण्डियन कौंसिल ऐक्ट के सुधारों से भारतीयों को संतोष नहीं हुआ। तब भी उस स्थिति में यह प्रगति उल्लेखनीय थी। १८९२ ई० के ऐक्ट से देश की संसदीय और प्रतिनिधि संस्थाओं के क्षेत्र में प्रगति का सूत्रपात हुआ। कांग्रेस के कुछ नेता यह अनुभव करने लगे कि ब्रिटिश

*श्री गुरुमुख निहाल सिंह—भारत में ब्रिटिश राज्य।

सरकार उन्हें इस प्रकार भिक्षा माँगने पर कुछ नहीं देगी। इसी समय कांग्रेस में बाल गंगाधर तिलक का आगमन हुआ। इन्होंने अपने पत्र 'केसरी' और 'मराठा' के माध्यम से देश की जनता को सचेत किया। १९०५ ई० में बंगाल का विभाजन कर दिया गया। इससे देश भर को बहुत असंतोष हुआ। बंगाल के कुछ लोगों ने क्रांतिकारी उपायों का आश्रय लिया। ब्रिटिश सरकार ने इस क्रांतिकारी आन्दोलन का दमन किया, किन्तु जनता में व्याप्त राष्ट्रीयता की भावना को नष्ट न कर सकी। अतः भारतीय जनता को संतुष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को कुछ और अधिकार देने का निश्चय किया।

४ स्वशासन का युग (१९०६-१९१६)—१९०५ ई० में ब्रिटिश सरकार ने शासन की सुविधा और दक्षता के बहाने बंगाल का विभाजन कर दिया। सच पूछा जाय तो ब्रिटिश सरकार की यह कूटनीतिक चाल थी, जिसने भारत में साम्प्रदायिकता के बीज बो दिये। जिस ढंग से विभाजन की योजना बनाई गयी और उसको कार्यान्वित किया गया, उससे और साथ ही लार्ड कर्जन के भाषणों से यह स्पष्ट है कि वास्तविक उद्देश्य फूट डाल कर लोगों को धर्म के आधार पर विभाजित करना और हिन्दुओं और मुसलमानों में द्वेषभाव फैलाना था। "नई चेतना को कुचलने के लिए, लोगों को परस्पर विभाजित करने के उद्देश्य से लार्ड कर्जन पूर्वी बंगाल गये, वहाँ पर इसी उद्देश्य से आयोजित मुसलमानों की सभाओं में उन्होंने कहा कि यह विभाजन केवल शासन की सुविधा के लिए ही नहीं वरन् एक मुस्लिम प्रान्त के निर्माण के लिए भी किया जा रहा है, जिसमें इस्लाम और उसके अनुयायियों की प्रधानता होगी।"*

लार्ड कर्जन के छः वर्ष के दमनात्मक शासन ने भारतीयों को अंग्रेजी शासन का पूर्ण विरोधी बना दिया। देश भर में अशांति ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। स्वदेशी आन्दोलन ने जनता में स्फूर्ति

A. C. Mazumdar Indian National Evolution.

और उत्साह की एक नयी लहर दौड़ा दी। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। अनेक स्थानों पर राष्ट्रीय स्कूल और विद्यालय स्थापित किये गये। बंकिमचन्द्र का 'वन्दे मातरम्' गीत असाधारण रूप से लोकप्रिय हो गया। समाचारपत्रों के अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर कई प्रतिबन्ध लगाये गये। अनेक नेताओं को लम्बी अवधि की सजायें दी गयीं। सारांश यह कि भारतीयों में उत्पन्न इस अभूतपूर्व चेतना को नष्ट कर देने के लिए ब्रिटिश सरकार ने हर संभव उपाय का प्रयोग किया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में कुछ युवकों ने हिंसा का मार्ग अपनाया।

अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमान द्वेष के जो बीज बोये थे, उनका अपेक्षित परिणाम हुआ। आरम्भ में कांग्रेस में अधिक मुसलमान न थे, मुसलमान पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करने में भी हिचकिचाते थे। किन्तु सर-सैयद अहमद खाँ जैसे लोगों ने मुसलमानों को आधुनिक शिक्षा का महत्व समझाया और उन्हीं के प्रयत्न से १८७५ ई० में अलीगढ़ में एक ओरियेन्टल कॉलेज की स्थापना हुई। यही कॉलेज आगे चलकर मुस्लिम विश्वविद्यालय बन गया। सरसैयद अहमद खाँ ने मुसलमानों को कांग्रेस से सदैव दूर रहने की शिक्षा दी और ब्रिटिश शासन के प्रति स्वामिभक्ति पर जोर दिया। उन्होंने १८९३ ई० में अपर इंडिया मुस्लिम डिफेन्स नामक एक संस्था स्थापित की। मुसलमानों ने १९०६ ई० में अंग्रेजों के संकेत पर मुस्लिम लीग नामक संस्था स्थापित की। इस संस्था ने अनुकूल अवसर पाकर पृथक निर्वाचन की मांग की, जो मिन्टो-मार्ले सुधार में सम्मिलित कर ली गई थी। मुस्लिम लीग की स्थापना और अंग्रेजों द्वारा उनके साथ किए गये पक्षपात के कारण हिन्दू और मुसलमानों के मतभेद बढ़ते गये।

राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में कांग्रेस का १९०६ ई० का अधिवेशन विशेष महत्व का है। इस वर्ष कांग्रेस ने पहली बार स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया। कांग्रेस के सदस्य नरम और उग्र इन

दो विचारधाराओं में बंटते जा रहे थे। नरम दल के लोग अनुनय-विनय का मार्ग अपनाये रहना चाहते थे। जबकि उग्र दलीय सदस्यों की धारणा थी कि भिक्षावृत्ति से कोई लाभ संभव नहीं है और सरकार को विवश करके ही कुछ प्राप्त किया जा सकता है। १९०६ ई० में कलकत्ते के अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी थे, जिनकी सूझ-बूझ ने इन दलों को पृथक होने से बचाया। किन्तु १९०७ ई० के सूरत अधिवेशन में इनके मतभेद तीव्र हो उठे और ऐसी परिस्थिति में फूट अनिवार्य थी। समझौते के सारे प्रयत्न असफल रहे और उपद्रव तथा अव्यवस्था के वातावरण में सूरत का अधिवेशन समाप्त हो गया। इसके पश्चात् १९१६ ई० तक कांग्रेस का नेतृत्व नरम दल वालों के हाथ में रहा।

१९०५ ई० में भारत के वायसराय लार्ड मिन्टो थे। इसी समय जॉन मार्ले भारत-मन्त्री हो गये। नरम दल के एक प्रमुख नेता श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने मार्ले से भेंट कर उन्हें भारत के शासन सुधार के विषय में कुछ परामर्श दिया। भारत-मन्त्री और वायसराय में विचार-विमर्श होने के पश्चात् ये सुधार १९०९ ई० से भारत में लागू हो गये। इन्हें मिन्टो-मार्ले सुधार कहा जाता है। इन सुधारों के अनुसार विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। गवर्नर-जनरल की विधान-सभा में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ६० कर दी गई। निर्वाचन पद्धति चालू की गई, परन्तु निर्वाचन अप्रत्यक्ष होने के कारण जनता और निर्वाचित सदस्यों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं होता था। विधानसभाओं की शक्तियां बढ़ा दी गयीं और सदस्यों को बजट के ब्योरों पर वाद-विवाद का अधिकार दिया गया। सदस्य लोक-कल्याण के विषयों पर भी चर्चा कर सकते थे। इस प्रकार अब सदस्य सरकार की नीति और कार्यवाही की आलोचना भी करने लगे।

मिन्टो-मार्ले सुधार कांग्रेस के आंदोलन को शान्त करने के उद्देश्य से किया गया था। इसकी सबसे बड़ी त्रुटि थी पृथक निर्वाचन पद्धति अर्थात् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त, जिसे मुस्लिम लीग ने

स्वीकार किया। किन्तु इस सिद्धान्त ने हिन्दू-मुसलमानों को सदा के लिए अलग कर दिया। जनता का असंतोष पूर्ववत् बना रहा और राष्ट्रीय आन्दोलन ने जोर पकड़ा। १९११ ई० में दिल्ली में सम्राट जार्ज पंचम का राजतिलक मनाया गया और सम्राट की ओर से बंग-भंग को रद्द कर देने की घोषणा की गई। इसी समय से देश की राज-धानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली बना दी गई।

१९०७ ई० के सूरत अधिवेशन के पश्चात् कांग्रेस एक विशुद्ध नरम दलीय संस्था बन गई थी। अतः देश में उसकी प्रतिष्ठा घट गई थी। किन्तु उसने अपनी आन्तरिक शक्ति के बल पर १९१४ ई० के अन्त तक अपनी राजनैतिक प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर लिया। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि सरकार की दमनात्मक नीति के परिणाम-स्वरूप उग्र दल सक्रिय नेतृत्व से वंचित हो गया था। १९१४ ई० में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने देश के राजनीतिक जीवन में प्रवेश किया। श्रीमती बेसेन्ट भारत में थ्योसोफिकल सोसाइटी की संस्थापक थीं। उन्होंने भारत को अपनी मातृभूमि मान लिया था और भारत के नवजागरण में पर्याप्त योग दिया था। उन्होंने अल्पकाल में ही कांग्रेस में एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। १९१७ ई० के कांग्रेस अधिवेशन में उन्हें अध्यक्ष पद का सम्मान प्राप्त हुआ। उन्हीं के प्रयत्न और प्रभाव के परिणामस्वरूप १९१६ ई० के लखनऊ अधिवेशन में नरम और उग्र दलों का सम्मिलन हुआ। लोकमान्य तिलक और उनके अनुयायी पुनः कांग्रेस में आ गये। १९१६ ई० में कांग्रेस तथा लीग ने सुधारों की एक मिली-जुली योजना बनाई, जो लखनऊ पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। लखनऊ अधिवेशन में मुस्लिम लीग के नेता और सदस्य भी उपस्थित थे। कांग्रेस ने स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग की बाधाओं को दूर करने के उद्देश्य से लीग की कई माँगों को स्वीकार कर लिया। परन्तु यह समझौता स्थायी न हो सका और कुछ काल उपरान्त ये दोनों संस्थायें अलग हो गईं।

५. होम रूल (स्वशासन) युग (१९१७-१९२० ई०)—१९०९ ई० में किये गये सुधारों से कांग्रेस के नरम दलीय सदस्य किसी सीमा तक सन्तुष्ट थे। किन्तु देश में असंतोष बढ़ता ही गया। इसके दो मुख्य कारण थे, जिनमें एक दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार था। १९०७ ई० में ट्रान्सवाल की पार्लियामेंट द्वारा बनाये गये एशियाटिक रजिस्ट्रेशन ऐक्ट ने भारतीयों पर अपमानजनक शर्तें लगा दी थीं। अतः महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आरम्भ किया और सत्याग्रह का जोर बढ़ने पर महात्मा गांधी और जनरल स्मट्स के बीच समझौता हो गया। परन्तु कुछ समय के पश्चात् जनरल स्मट्स ने उक्त कानून को रद्द करने से इन्कार कर दिया। इसी बीच ट्रान्सवाल की पार्लियामेंट ने एक और कानून बनाकर प्रत्येक नये भारतीय को वहाँ बसने से रोक दिया। इन परिस्थितियों से गांधी जी ने पुनः सत्याग्रह कर दिया। इस सत्याग्रह के पश्चात् भारत में विभिन्न स्थानों पर सभायें हुईं तथा संघर्ष को जारी रखने के लिये चन्दा एकत्र किया गया। दक्षिण अफ्रीका के सारे भारतीय यूरोपियनों के अत्याचारों का सामना करने के लिये सगठित हो गये। भारतवासियों ने इस संघर्ष के प्रति अपनी पूरी सहानुभूति व्यक्त की।

भारतीय जनता के बढ़ते हुए असंतोष का एक और कारण यह था कि १९१३ ई० में यूरोपीय महायुद्ध में भारतीयों ने जो वीरता दिखलाई थी, उसका उन्हें कोई फल नहीं मिला। अंग्रेज सरकार ने भारतीयों की पर्याप्त प्रशंसा की थी और उन्हें स्वराज्य देने का आश्वासन दिया था। परन्तु, युद्ध समाप्त होने पर भारत को अंग्रेजों ने कुछ नहीं दिया। इन्हीं परिस्थितियों में कांग्रेस ने मुस्लिम लीग से समझौता कर लिया, जो दुर्भाग्य से अधिक काल तक नहीं टिक सका। श्रीमती बेसेन्ट ने लोकमान्य तिलक के होमरूल आन्दोलन को देश भर में फैलाया। १९१७ ई० में यह आन्दोलन अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। होमरूल लीग की शाखायें देश भर में खुल गईं। अंग्रेज सरकार को

यह सब बहुत खल रहा था। अतः एनी बेसेन्ट और कुछ अन्य कार्यकर्त्ता नजरबन्द कर दिये गये। स्कूल, कॉलिजों के विद्यार्थियों का होमरूल आन्दोलन में भाग लेने से रोका गया। इन सब प्रतिबन्धों के विरोध मे अनेक सभाएं हुई। अखिल भारतीय कांग्रेस ने लोकमान्य तिलक के आग्रह पर वायसराय और भारत मंत्री के समक्ष प्रतिनिधित्व कर सरकार की दमन नीति के प्रति विरोध व्यक्त किया और स्वराज्य का कुछ भाग अविलम्ब प्रदान करने की मांग की।

इंग्लैंड में इसी समय भारत मंत्री श्री चेम्बरलेन को अचानक त्यागपत्र देना पड़ा। उनके उत्तराधिकारी मिस्टर मांटेग्यु हुए, जो भारत के हितैषी समझे जाते थे। १६०६ के ऐक्ट के दोषों को दूर करने और भारत की राजनैतिक स्थिति का पता लगाने के उद्देश्य से १६१७ ई० में उन्होंने भारत की यात्रा की। इस यात्रा में भारत के वायसराय चेम्सफोर्ड भी उनके साथ थे। २० अगस्त १६१७ ई० को उन्हाने पार्लियामेंट में एक घोषणा की कि भारत को शनैः शनैः स्वराज्य की ओर ले जाया जायेगा। इस घटना से भारतवासियों के मन में आशा का संचार हुआ और देश के सभी दलों ने भारत के भविष्य के विषय में अपनी-अपनी योजना बनानी आरम्भ कर दी। मांटेग्यु ने देश का दौरा कर सभी दलों के प्रतिनिधियों से विचार विनिमय करने के पश्चात् एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो 'मांटेग्यु-चेम्सफोर्ड' रिपोर्ट कहलाती है।

मांटेग्यु-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में निहित सिद्धान्तों की कार्यान्विति के लिये १६२६ ई० में एक ऐक्ट बनाया गया, जिसे 'मान्ट-फोर्ड' सुधार भी कहते हैं। १६१६ ई० के इस ऐक्ट ने भारतीय शासन व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किये। भारत के स्वातंत्र्य संग्राम के इतिहास में इस समय से एक नया चरण आरम्भ हुआ। इस ऐक्ट के तीन भाग थे, जिनका सम्बन्ध गृह-सरकार, केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों में किये गये परिवर्तनों से था। शासन व्यवस्था में किये गये ये परिवर्तन इस प्रकार थे :—

(क) गृह-सरकार—भारत सरकार का निरीक्षण, संचालन और नियंत्रण लन्दन स्थित भारत मंत्री के हाथ में था। भारत मंत्री का वेतन अब तक भारत के खजाने से दिया जाता था, किन्तु इस ऐक्ट के अनुसार उसका वेतन इंग्लैंड के खजाने से दिया जाने लगा। राज्य मंत्री की परिषद् के सदस्यों की अधिकतम संख्या १२ और न्यूनतम संख्या ८ रखी गई और उसका कार्यकाल ५ वर्ष कर दिया गया। इंग्लैंड में भारत के एक उच्च आयुक्त की नियुक्ति की गई। यह नियुक्ति भारत सरकार करती थी और उसका वेतन भी सरकार को देना पड़ता था। (ख) केन्द्रीय सरकार—वायसराय की कार्य-कारिणी परिषद् में सदस्यों की अधिकतम संख्या पर जो प्रतिबंध था, वह हटा दिया गया। शासन सम्बन्धी विषयों का विभाजन केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सूचियों में कर दिया गया। कोई विषय केन्द्रीय सूची का है अथवा प्रान्तीय सूची का, इस सम्बन्ध में विवाद उत्पन्न होने पर गवर्नर-जनरल का निर्णय अन्तिम कर दिया गया। केन्द्र में द्वि-सदनीय विधान मंडल (bi-cameral legislature) स्थापित किया गया। उच्च सदन का नाम कौंसिल आफ स्टेटस था जिसमें ६० सदस्य थे। दूसरे सदन का नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली था, जिसमें १४० सदस्य होते थे। उच्च सदन के ३३ और निम्न सदन के १०० सदस्यों के निर्वाचन का उपबन्ध किया गया। गवर्नर-जनरल दोनों सदनों की बैठक बुला सकता था, उनका कार्य स्थगित कर सकता था और उनका विगठन भी कर सकता था। विधान मण्डल द्वारा पास किये गये किसी बिल को गवर्नर-जनरल रद्द कर सकता था। गवर्नर-जनरल स्वयं ऐक्ट और आर्डिनेन्स पास कर सकता था। (ग) प्रान्तीय सरकारें—१९१९ ई० के ऐक्ट के अनुसार प्रान्तों में द्वैध-शासन प्रणाली का सूत्रपात हुआ। प्रान्तीय सूची को दो विभागों में—रक्षित तथा हस्तान्तरित—बांटा गया। प्रान्तीय विधान सभाओं की सदस्य संख्या बढ़ा दी गई और ७० प्रतिशत से अधिक सदस्यों के निर्वाचन की

व्यवस्था की गई। सदस्यों को अनुपूरक प्रश्न पूछने और स्थगन-प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार दिया गया। गवर्नर-जनरल की भाँति गवर्नर को भी विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। प्रान्त के शासन में वह सर्वेसर्वा था। इस प्रकार १९१९ ई० के ऐक्ट ने भारत में उत्तरदायी शासन का श्रीगणेश किया, देशी नरेशों को भारतीय शासन में साथ लिया और द्वैध-शासन प्रणाली का परिवर्तन किया।

मान्टफोर्ड योजना वस्तुतः झगड़े की जड़ सिद्ध हुई। इतने परिश्रम और त्याग के उपरान्त देश में जो ऐक्य स्थापित हुआ था, वह शीघ्र ही नष्ट हो गया। कांग्रेस के नरम दल वाले सदस्य अलग हो गये। देश में कई साम्प्रदायिक संस्थाएं अस्तित्व में आई तथा कई अन्य संस्थाओं को बढ़ावा मिला। १९१९ ई० का वर्ष स्वतंत्रता संघर्ष में बहुत महत्वपूर्ण है। इसी वर्ष महात्मा गांधी ने देश के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया और वे भारतीय जनता के नेता बन गये। दूसरे, इसी वर्ष में भारतीय जनता ने अन्यायों के परिमार्जन के लिये सत्याग्रह के अमोघ शस्त्र का सर्व प्रथम प्रयोग किया।

१९१९ ई० में भारत में और विशेषकर पंजाब में बहुत उथल-पुथल हुई। इसके कई कारण थे। एक तो भारतीय जनता को युद्ध काल में बहुत कष्ट उठाने पड़े थे। उसका उन्हें कोई श्रेय न मिला, वरन् भारत पर कई नये कर लगा दिये गये। इसके अतिरिक्त चीजों के दाम बहुत बढ़ गये, जिससे गरीबों का जीवन-निर्वाह और भी कठिन हो गया। उधर चम्पारन में किसानों पर बहुत अत्याचार हुए। खेड़ा (गुजरात) में भी लगभग यही स्थिति थी। १९१८-१९ ई० में अकाल, प्लेग तथा इनफ्लूएन्जा जैसे रोगों का भीषण प्रकोप हुआ, जिसने लोगों के कष्ट और भी बढ़ा दिये। इन सब विपत्तियों का स्वाभाविक परिणाम देश में व्यापक असंतोष हुआ, जो राजनैतिक कारणों के परिणामस्वरूप चरम सीमा पर पहुंच गया। बंगाल में क्रान्तिकारियों के विरुद्ध दमनात्मककार्यवाही की गई। पंजाब में सर

माइकेल ने अपने उग्र शासन से बहुत असंतोष फैला दिया था। उधर तुर्किस्तान की भावी स्थिति और खलीफा के साथ अंग्रेज क्या व्यवहार करेंगे, इस विषय में भारतीय मुसलमान बहुत चिंतित थे। मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली ने देश में खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु, जनता के असंतोष के विस्फोट का तत्कालिक कारण 'रौलेट बिल' का पास किया जाना था। इस काले कानून में अराजकता और कथित राजद्रोह तथा क्रांति के दमन के लिए दण्ड विधान की नयी व्यवस्था की गयी थी। इस कानून ने देश में भीषण आन्दोलन को जन्म दिया। पंजाब में जलियांवाला बाग की सभा में हजारों निरपराध नागरिकों पर गोलियां बरसाकर उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। बाद में वहां "मार्शल ला" भी बड़ी कड़ाई के साथ लागू कर दिया गया।

इन्हीं परिस्थितियों में १६२० ई० में कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन हुआ, जिसमें भारत की जनता का ध्येय 'पूर्ण स्वराज्य' है, यह घोषणा की गयी। गांधी जी ने देश की जनता के समक्ष सत्याग्रह का कार्यक्रम रखा। इस आन्दोलन का सूत्रपात खिलाफत आन्दोलन द्वारा हो चुका था। इसी वर्ष कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ, जिसमें लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग का प्रस्ताव पास किया गया। गांधी जी के आह्वान पर देश की जनता ने असहयोग का आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। हजारों लोगों ने सरकारी नौकरियां छोड़ दीं। विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल छोड़ दिये। वकीलों ने वकालत का व्यवसाय छोड़कर अदालतों के बहिष्कार की नीति अपनायी। विदेशी माल की होलियां अनेक स्थानों पर जलीं और स्वदेशी माल को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया। म्युनिस्पैल्टी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और कौंसिल के चुनाव का भी बहिष्कार किया गया, जो बहुत सफल रहा।

६. **स्वराज्य युग (१६२१–२८ ई०)**—१६२१ ई० तक असहयोग

आन्दोलन बहुत प्रबल हो चुका था। हजारों भारतीयों को जेल में डालने पर भी यह आन्दोलन समाप्त न हुआ और १६२४ तक उत्साह के साथ चलता रहा। १६२२ ई० में कांग्रेस ने इस बात की जांच के लिये कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिये देशवासी कहां तक तैयार हैं, एक समिति नियुक्त की। समिति के सदस्यों ने देश का दौरा किया और तथ्यों की जांच कर उसने दो प्रकार की रिपोर्ट प्रस्तुत की। एक में, कौंसिल में प्रवेश करने का समर्थन किया गया, जिसके पक्ष में पंडित मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमल खां और श्री पटेल थे। दूसरी रिपोर्ट में कौंसिल के बहिष्कार का समर्थन किया गया। डा० अंसारी, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और श्री कस्तूरी रंगा ने दूसरी रिपोर्ट का समर्थन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि कौंसिल प्रवेश की समस्या पर मत-भेद रखने वाले दो दल उत्पन्न हो गये। कौंसिल प्रवेश के समर्थक श्री चितरंजन दास, पंडित मोतीलाल जैसे प्रभावी व्यक्ति थे, जो अपने सिद्धान्तों के लिये बहुमत के साथ समझौता नहीं कर सके। अतः उन्होंने गया अधिवेशन के पश्चात् अपनी एक अलग पार्टी—स्वराज्य—पार्टी—स्थापित कर ली। इसके पश्चात कौंसिल प्रवेश की समस्या को हल करने के लिए दिल्ली में विशेष अधिवेशन हुआ, जिसके अध्यक्ष मौलाना आजाद हुए। इस अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर कौंसिलों मे जाने वालों का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया। कौंसिल विरोधी प्रचार समाप्त हो गया और रचनात्मक कार्य पर विशेष बल दिया गया। इसके अतिरिक्त हिन्दू-मुस्लिम एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए एक समिति संगठित की गयी।

१६२५ ई० से लेकर १६२७ ई० तक का काल राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास मे स्थिरता और अवकाश का काल माना जाता है। देश में राजनैतिक वातावरण अच्छा नही था। खिलाफत आन्दोलन की समाप्ति पर मुसलमानों को हिन्दुओं के सहयोग की आवश्यकता नहीं रही। हिन्दू-मुस्लिम एकता क्षीण हो जाने के कारण देश में साम्प्रदायिक दंगे हुए। कांग्रेस ने कौंसिल प्रवेश को अपना कार्यक्रम बना लिया

था। तदनुसार धारा-सभाओं में स्वराज्य पार्टी के सदस्यों ने अनेक स्थान प्राप्त कर सरकार का विरोध करने की चेष्टा की, किंतु गवर्नर-जनरल और गवर्नर को जो विशाल सत्ता दी गयी थी, उसके कारण कांग्रेसी सदस्यों का विरोध सफल न हो पाता था। १९२५ ई० में देशबंधु सी० आर० दास० का निधन हो जाने से स्वराज्य पार्टी का कार्यभार पंडित मोतीलाल नेहरू पर आ पड़ा। उन्होंने अपना दायित्व निर्वाह कुशलता से किया। किन्तु पार्टी में फूट के लक्षण दृष्टि-गोचर हो रहे थे और मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के स्वराज्य पार्टी के सदस्यों ने प्रतियोगी सहयोग का नारा लगाकर अपना एक पृथक् दल बना लिया। सितम्बर, १९२५ ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की एक बैठक में यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस का पूरा कार्यक्रम स्वराज्य पार्टी की इच्छानुसार बना दिया जाये अतः इसके पश्चात् कांग्रेस और स्वराज्य पार्टी में कोई अन्तर नहीं रह गया।

१९२६ ई० में कौंसिलों के चुनाव हुए। देश में अनेक दल बन गये थे और सबने अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किये। परिणाम यह हुआ कि मद्रास को छोड़ अन्य किसी धारा सभा में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। १९२७ ई० तक देश का राजनैतिक वातावरण बहुत दूषित हो चुका था। स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या एक मुसलमान ने कर दी, जिससे हिंदू-मुसलमान एकता को बहुत धक्का लगा। अनेक स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुए। काकोरी डकैती के अभियोग में कई युवकों को गिरफ्तार किया गया और उनमें से कुछ को अमानुषिक दंड दिये गये। इस काल की दो अन्य महत्वपूर्ण घटनायें हैं—साइमन कमीशन का आगमन और बार्डोली का सत्याग्रह। १९२७ में मांट-फोर्ट सुधारों की स्थिति की जाँच के उद्देश्य से एक कमीशन भारत भेजा गया। जो साइमन कमीशन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं रखा गया, जिससे देश भर में असंतोष फैल गया। अतः देश के सभी राजनीतिक दलों ने इस कमीशन का बहिष्कार

किया। जिस दिन यह कमीशन भारत पहुँचा, उस दिन देशव्यापी हड़ताल हुई। स्थान-स्थान पर "साइमन लौट जाग्रो" के नारे लगाये गये। कमीशन के इस सफल बहिष्कार से ब्रिटिश सरकार अत्यन्त क्षुब्ध हो गयी। भारतीयों के इस आन्दोलन को दबाने के लिये सभी सम्भव उपाय किये गये, किंतु भारतीय जनता ने यह सिद्ध कर दिया कि उसके आन्दोलन में प्रबल शक्ति है।

गुजरात में १९२८ ई० में बार्डोली में कांग्रेस द्वारा किया गया सत्याग्रह स्वराज्य आन्दोलन से सम्बन्धित न था। यह सत्याग्रह वहां के किसानों पर बढ़ाई गयी मालगुजारी के विरोध में किया गया था। वल्लभ भाई पटेल ने इस सत्याग्रह का नेतत्व किया था। मालगुजारी की वृद्धि के विरोध में जब वैध उपायों का कोई परिणाम न हुआ, तो किसानों ने संगठित होकर कर न देने की घोषणा कर दी। सरकार ने इस सत्याग्रह को दबाने की पूरी चेष्टा की और मालगुजारी वसूल करने के लिये बाहर के पठानों की भी सहायता ली परन्तु अन्त में विजय किसानो की हुई। मालगुजारी की वृद्धि रोक दी गयी और किसानों की जो भूमि छीन कर नीलाम कर दी गयी थी, वह उन्हें वापस कर दी गयी। बार्डोली का सत्याग्रह अहिंसात्मक आन्दोलन की उल्लेखनीय सफलता थी।

१९२७ ई० में मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसमें पुनः यह घोषणा की गयी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति ही कांग्रेस का ध्येय है। १९२८ ई० में दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ। इसमें पंडित मोतीलाल नेहरू तथा सर तेजबहादुर सप्रू के नेतृत्व में एक समिति को देश का विधान बनाने का कार्य सौंपा गया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में भारत को स्वतन्त्र उपनिवेश की मर्यादा दिये जाने की सिफारिश की। इसी बीच कांग्रेस में एक स्वतन्त्रता लीग की स्थापना हुई, जिसके समर्थक श्री निवास, आयंगर पंडित जवाहर लाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस थे। इन लोगों का मत था कि भारत को पूर्ण

स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। कलकत्ते के अधिवेशन में कांग्रेस ने अन्य प्रस्तावों के साथ यह प्रस्ताव भी पास किया कि यदि ३१ दिसम्बर, १६२६ ई० तक भारत को उपनिवेश की मर्यादा प्रदान न की गयी, तो कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर देगी।

७. **पूर्ण स्वाधीनता युग (१६२६-३५)**—१६२६ ई० में कांग्रेस ने अपने दूसरे असहयोग आन्दोलन की तैयारियां आरम्भ कर दी। तत्कालीन वाइसराय लार्ड इरविन ने अक्तूबर, १६२६ ई० में यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना है। साथ ही उन्होंने यह कहा कि इस विषय पर विचार के लिए लन्दन में एक गोलमेज परिषद् भी होगी। १६२६ ई० में श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर का अधिवेशन हुआ, जिसमें यह घोषणा की गई कि कांग्रेस का उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना है।

१६३० ई० में गांधीजी ने दूसरा असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया। यह आन्दोलन शीघ्र ही देश भर में फैल गया। शराब बन्दी, विलायती कपड़ों की दुकानों पर धरना, कर बन्दी, आदि में जनता ने विशेष उत्साह के साथ कार्य किया। सरकार के दमन से आन्दोलन दबा नहीं, अपितु और भी विकराल होता गया। इस आन्दोलन की एक विशेषता यह थी, कि इसमें देश की महिलाओं ने भी हजारों की संख्या में योग दिया। पहले पहल तो सरकार ने आन्दोलनकारियों की धर-पकड़ की नीति अपनाई। परन्तु बाद में दमन के अनेक उपाय अपनाये गये, जो इस आन्दोलन को नष्ट कर देने में असफल रहे।

१६३० ई० में लन्दन में पहली गोलमेज सभा हुई, किन्तु देश की सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था कांग्रेस ने इसमें भाग नहीं लिया। अतः इस सभा का कोई निष्कर्ष नहीं निकला। २५ जनवरी, १६३१ ई० को सभी राजनैतिक नेता छोड़ दिए गये। गांधीजी और इरविन के बीच विचार विनिमय के पश्चात् एक समझौता हो गया, जिसे 'इरविन पैक्ट' कहा जाता है। इसके पश्चात् लन्दन में दूसरी गोलमेज सभा

भी हुई, जिसमें गांधीजी सम्मिलित हुए। यह सभा भी अनिर्णायक ही रही। क्योंकि अंग्रेज भारतीयों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने के लिए प्रस्तुत न थे। निराश होकर गांधीजी स्वदेश लौटे, किन्तु यहां आते ही उन्हें बन्दी बना लिया गया। कांग्रेस और ऐसी ही अन्य संस्थायें गैर-कानूनी घोषित कर दी गयीं और सरकार ने दमन का चक्र पुनः चला दिया। इस बार दमन पहले की अपेक्षा अधिक कठोर था, अतः भारतीयों को बहुत कष्ट सहने पड़े।

गोलमेज सभा के पश्चात् शासन विधान का एक ढांचा बना, जिसके आधार पर १९३५ ई० का कानून पास किया गया। इस ऐक्ट का उद्देश्य भारत में पहले से अच्छा शासन स्थापित करना था। इसके अनुसार बर्मा को हिन्दुस्तान से अलग कर दिया गया और ब्रिटिश भारत को ग्यारह प्रान्तों में बांट दिया गया। केन्द्र में भारतीय संघ की स्थापना की व्यवस्था भी की गयी थी। किन्तु सभी राजनैतिक दलों, विद्वानों और विचारकों ने इस विधान का विरोध किया। इस ऐक्ट ने प्रान्तों को स्वायत्त शासन के कई अधिकार प्रदान किये थे। कांग्रेस ने इन उपबन्धों को स्वीकार कर १९३७ ई० में हुए चुनावों में भाग लिया। ७ प्रान्तों में कांग्रेस का भारी बहुमत रहा। उसने मंत्रिमण्डल इस शर्त पर स्वीकार किया कि गवर्नर दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप न करें। गवर्नर-जनरल ने यह आश्वासन दे दिया और कांग्रेस ने ८ प्रान्तों में अपने मंत्रिमण्डल बनाये।

८. **पूर्ण स्वतन्त्रता के पथ पर (१९३५–४७)**—कांग्रेस ने जिन छः प्रान्तों में शासन भार सम्भाला था, वहां उसने प्रत्येक क्षेत्र में सुधार के कार्य आरम्भ कर दिये। सर्वप्रथम राजनैतिक बन्दियों की रिहाई की गई, व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य एवं अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य पर लगाये गये प्रतिबन्ध हटा लिए गये। तदनन्तर ग्राम सुधार, शिक्षा सुधार, शराब-बन्दी जैसे रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान दिया गया। किसानों की स्थिति

में पर्याप्त सुधार हुआ और कांग्रेस के इस सुशासन को देखकर अंग्रेजों ने दाँतों तले अंगुली दबा ली।

इस बीच यूरोप पर युद्ध के बादल मंडरा रहे थे और जर्मनी में हिटलर के उदय के कारण युद्ध की सम्भावना बहुत बढ़ गई थी। अतः कांग्रेस ने युद्ध आरम्भ होने से पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि आगामी युद्ध में वह अंग्रेजों का साथ नहीं देगी। १९३९ ई० में पोलैंड के मामले को लेकर इंग्लैंड और फ्रांस की ओर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा हो गई। इस समय भारतीय नेताओं के मत की उपेक्षा कर भारत को युद्ध में सम्मिलित कर लिया गया। कांग्रेस ने इस शर्त पर अंग्रेजों का साथ देना स्वीकार किया कि युद्ध समाप्त होने पर भारतीयों को आत्मनिर्णय का अधिकार दे दिया जायगा। किन्तु, ब्रिटिश सरकार द्वारा यह शर्त स्वीकार न की गई और परिणामस्वरूप कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया।

मन्त्रिमण्डलों के त्यागपत्र देने पर कांग्रेस पुनः पुरानी स्थिति में आ गयी। इसी बीच में कांग्रेस में मतभेद तीव्र हो गये थे। १९३९ ई० में कांग्रेस का ऐतिहासिक त्रिपुरा अधिवेशन हुआ। इसके अध्यक्ष पद के लिए दो उम्मीदवार—श्री सुभाषचन्द्र बोस और डा० पट्टाभि सीतारमैया थे। गांधीजी डा० पट्टाभि के समर्थक थे और उन्होंने यहां तक कह दिया कि, 'पट्टाभि की हार मेरी हार होगी'। चुनाव में सुभाषचन्द्र बोस जीत गये और वे त्रिपुरी अधिवेशन के अध्यक्ष बनाये गये। आगे चलकर सुभाषचन्द्र ने कांग्रेस से त्यागपत्र देकर अपना एक पृथक दल—फारवर्ड ब्लाक—स्थापित किया। गांधी जी ने १९४० ई० में शासन की दुर्नीति तथा राष्ट्र के स्वाभिमान के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ किया। इस सत्याग्रह को सर्वथा संयत, सीमित और प्रतीकात्मक रखने का पूर्ण प्रयत्न किया गया। बाद में सत्याग्रहियों की संख्या बहुत बढ़ जाने पर स्वयं गांधीजी ने सत्याग्रहियों को रोका। सरकार ने भी देखा कि सत्याग्रही निर्दोष हैं और उन्हें स्वतन्त्र कर दिया गया। ३० दिसम्बर १९४१ को बार्डोली में एक प्रस्ताव पास कर

यह सत्याग्रह वापस ले लिया गया। इसी समय कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, जिनसे कांग्रेस को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा।

पूर्व में जापान ने सिंगापुर, मलाया, बर्मा तक के प्रदेश पर आधिपत्य कर लिया था। मित्र राष्ट्रों की सेना जापानियों का सामना नहीं कर पा रही थीं और ऐसा लगता था कि जापानी भारत में जल्दी ही आ पहुँचेंगे। उधर पश्चिम में हिटलर की सेनायें प्रबल वेग से आगे बढ़ रही थी। संसार के प्रगतिशील राष्ट्रों की सहानुभूति रूस और चीन के साथ थीं, जिन्हें क्रमशः जर्मनी और जापानी सेनायें जीत लेने के लिए प्रयत्नशील थीं। अतः कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह को वापस लेकर किसी ऐसी नीति का अनुसरण करने का निर्णय किया, जो परिस्थिति से मेल खाती हो। बार्डोली प्रस्ताव पास करते समय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के अन्दर दो दल हो गये थे। एक दल का मत था कि भारत को पूर्णरूप से तटस्थ रहना चाहिए। दूसरा दल मित्र राष्ट्रों की सहायता करने के पक्ष में था।

ब्रिटिश सरकार ने इस स्थिति से लाभ उठाने के उद्देश्य से सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। सर क्रिप्स २३ मार्च, १९४२ ई० को भारत आये। क्रिप्स मिशन ने कांग्रेस, लीग, सिख तथा देश के अन्य नेताओं के साथ विचार विनिमय किया। क्रिप्स मिशन ने वचन दिया कि युद्ध समाप्त होने पर भारत को अधिराज्य का स्थान दे दिया जायेगा। परन्तु, यदि कोई प्रान्त चाहे तो वह भारतीय संघ से अलग हो सकेगा। सरकार प्रतिरक्षा विभाग को छोड़कर बाकी सब विभाग भारतीयों को सौंप देने के लिए तैयार हो गई। किन्तु कांग्रेस ने इस योजना को देश की एकता के हित को देखते हुए स्वीकार नहीं किया।

क्रिप्स मिशन की असफलता के पश्चात् गांधीजी ने "भारत छोड़ो" का नारा लगाया। अगस्त १९४२ ई० में देशव्यापी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता जेल में डाल दिए गये।

यह आन्दोलन प्रारम्भ में शांतिपूर्ण और अहिंसात्मक रहा। परन्तु, थोड़े दिनों में कई स्थानों पर आन्दोलन ने विद्रोह का रूप धारण कर लिया। जनता ने भावावेश में आकर सरकारी इमारतें जला दीं, रेल की पटरियां उखाड़ दीं और सरकारी सम्पत्ति को हानि पहुंचाई। ब्रिटिश सरकार ने बल प्रयोग, बंदूक और संगीनों की सहायता से इस आन्दोलन का दमन कर दिया।

१९४५ ई० में द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो गया और मित्र राष्ट्रों की विजय हुई। इंग्लैंड में मजदूर दल सत्तारूढ़ हुआ और श्री एटली इंग्लैंड के प्रधान मंत्री बने। मजदूर दल ने अपने चुनाव कार्यक्रम में भारत को स्वराज्य देने का वचन दिया था। मजदूर दल की विजय से भारत की स्थिति बहुत बदल गई। भारतीय नेता तथा राजनैतिक कार्यकर्त्ता जेल से छोड़ दिए गए। देश में प्रान्तीय चुनाव हुए। भारत की स्थिति की जाँच करने एवं भारत की समस्या पर रिपोर्ट देने के लिए एक कैबिनेट मिशन (कुछ मंत्रिगण) भारत आया। १६ मई, १९४६ ई० को इस मिशन ने एक घोषणा की, जिसमें कहा गया कि केन्द्र में एक संघीय सरकार बनायी जाय, जिसके अन्तर्गत वैदेशिक-कार्य, प्रतिरक्षा तथा संचार विभाग होंगे। इस मिशन की सिफारिशों के अनुसार केन्द्र में एक अंतरिम राष्ट्रीय सरकार और संविधान सभा की भी स्थापना होनी थी। इस योजना में कई कमियां थीं। तब भी कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह विदेशी गुलामी से किसी भी प्रकार छुटकारा चाहती थी। श्री जवाहरलाल के नेतृत्व में २ सितम्बर, १९४६ ई० से एक अंतरिम सरकार ने देश का शासन भार सम्हाला। मुस्लिम लीग ने इस योजना का विरोध करते हुए पाकिस्तान की मांग की। संविधान सभा में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस को सहयोग नहीं दिया। १९४७ ई० में पंजाब और बंगाल में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिनमें लाखों हिंदू और मुसलमान तबाह हो गए।

उस समय भारत के वाइसराय लार्ड माउन्टबेटन थे, जिन्होंने मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौते का एक नया सूत्र ढूंढ

निकाला। अन्त में यह निर्णय हुआ कि पंजाब और बंगाल को जन-संख्या के आधार पर बाँट दिया जाये। ब्रिटिश पार्लियामेंट में ४ जुलाई १९४७ ई० को भारतीय स्वतंत्रता बिल प्रस्तुत किया गया और दो सप्ताह के भीतर ही वह पास कर दिया गया। १४ अगस्त, १९४७ ई० की मध्य रात्रि को अंग्रेजों ने सत्ता के सभी सूत्र भारतीयों को सौंप दिए। इस प्रकार विदेशी शासन का अन्त तो हुआ, किन्तु इसके लिए भारत को बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ा और वह था देश का विभाजन। इस विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान नामक एक पृथक् राज्य का निर्माण हुआ और उसे पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब, सिंध, सीमा प्रांत एवं बिलोचिस्तान के प्रदेश दिये गये।

९. **भारतीय गणतंत्र की स्थापना**—ब्रिटिश पार्लियामेंट ने जुलाई १९४७ ई० में भारतीय स्वतंत्रता ऐक्ट पास कर १५ अगस्त १९४७ ई० को सत्ता के सारे सूत्र भारतीयों को सौंप दिये थे। इस ऐक्ट के अनुसार भारत एवं पाकिस्तान नामक दो अधिराज्यों की स्थापना की गयी। पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान और सीमाप्रान्त सम्मिलित किए गए। शेष प्रदेशों को मिलाकर भारतीय संघ बना। साम्प्रदायिकता के आधार पर पंजाब और बंगाल का विभाजन कर दिया गया। इस विभाजन के अनुसार पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान को दे दिये गये। दोनों अधिराज्यों के मुख्य कार्यपालक अधिकारी गवर्नर-जनरल नियुक्त हुए और जून, १९४८ ई० में लार्ड माउन्टबेटन के इंग्लैंड चले जाने पर चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य भारत के प्रथम गवर्नर-जनरल बने।

(क) रियासतों का विलीनीकरण—१९४७ ई० में भारत के स्वतंत्र हो जाने पर देश के समक्ष रियासतों की समस्या आई। १९४७ ई० के ऐक्ट के अनुसार देशी रियासतों पर ब्रिटेन के सम्राट का प्रभुत्व समाप्त हो गया था और उनके साथ हुई संधि या समझौते भी समाप्त कर दिए गए। उस समय देश में लगभग ६०० छोटी-बड़ी रियासतें थीं

और उनके अस्तित्व को बने रहने देने से भारत में ६०० स्वतंत्र राज्य हो जाते। इससे देश के शासन और सुरक्षा को पर्याप्त संकट था। किंतु सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपनी दूरदर्शिता से इन रियासतों को भारतीय संघ में विलीन कर देश की आंतरिक स्थिति को अत्यंत सुदृढ़ बना दिया।

सरदार पटेल ने देशी रियासतों से अपील की कि वे भारतीय संघ तथा संविधान सभा में सम्मिलित होने के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दें और अपनी रियासतों के सुरक्षा, विदेशी मामले और संचार विभाग भारत सरकार को सौंप दें। देश की लगभग सभी रियासतों ने इस अपील को मानकर अपने आपको भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया, किंतु जूनागढ़ और हैदराबाद राज्यों ने भारतीय संघ में सम्मिलित होना स्वीकार न किया। जूनागढ़ का नवाब पाकिस्तान में मिलना चाहता था, जो भारतीय स्वतंत्रता ऐक्ट के प्रतिकूल था। परन्तु जूनागढ़ की जनता ने नवाब के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। नवाब पाकिस्तान भाग गया और भारत सरकार ने जूनागढ़ की प्रजा की इच्छा के अनुसार उसे अपने संघ में विलीन कर लिया। हैदराबाद के निजाम ने, जो रजाकारों (साम्प्रदायिक दल) के हाथों में कठपुतली बना हुआ था, भारतीय संघ में मिलना स्वीकार नहीं किया। इसी बीच हैदराबाद में रजाकारों ने उपद्रव भी आरम्भ कर दिया। अतः भारत सरकार ने निजाम के विरुद्ध पुलिस कार्यवाही कर दी और हैदराबाद को भी भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया गया।

जम्मू और काश्मीर की समस्या देशी रियासतों से भिन्न थी। उसने भारत तथा पाकिस्तान के साथ यथास्थिति (Status quo) बनाये रखने का समझौता कर लिया। किन्तु अफ्रीदी एवं अन्य कबाइलियों ने पाकिस्तान की सहमति पाकर काश्मीर पर आक्रमण कर दिया। काश्मीर के शासक ने भारत में सम्मिलित होने का निर्णय किया। भारतीय सेनायें काश्मीर भेजी गई और आक्रमणकारियों

को परास्त कर खदेड़ दिया गया। काश्मीर की जनता ने एक संविधान सभा निर्वाचित की, जिसने भारत में विलय संबंधी निर्णय की पुष्टि की। किंतु पाकिस्तान ने इसे अस्वीकार किया और काश्मीर की समस्या राष्ट्र संघ में ले जायी गई। यह समस्या अब भी अनिर्णित है।

(ख) रियासतों का समूहीकरण—देश की सभी रियासतों को अलग-अलग रखना न तो सम्भव था और न लाभप्रद ही था। अतः राज्य मंत्रालय ने रियासतों के समूहीकरण का निर्णय किया। समूहीकरण के इस कार्य का श्रीगणेश जनवरी १६४८ ई० में किया गया। कुछ छोटी रियासतों को समीपस्थ राज्यों में मिला दिया गया। उड़ीसा की २५ रियासतों को उड़ीसा में मिला दिया गया। इसी प्रकार मध्य प्रदेश और बम्बई राज्य की रियासतें भी उन राज्यों में मिला दी गईं। कुछ रियासतें इतनी बड़ी थीं, कि उन्हें किसी राज्य में मिलाना सम्भव न था। अतः ऐसी कुछ रियासतों को मिलाकर पृथक् राज्य बना दिये गये। काठियावाड़ की रियासतों को मिलाकर सौराष्ट्र और पटियाला, नाभा, जींद, फरीदकोट तथा मलेरकोटला को मिलाकर 'पेप्सू' राज्य बना दिया गया। इसी प्रकार राजस्थान, मध्यभारत और त्रिवांकुर-कोचीन के राज्य बनाये गये। इन राज्यों को राजप्रमुख के अधीन रखा गया और नए संविधान के अन्तर्गत इन राज्यों की भाग 'ख' राज्यों में गणना की गयी। कुछ रियासतों को भाग 'ग' राज्य की संज्ञा दी गई। शिमला पहाड़ियों को मिलाकर हिमाचल प्रदेश बना। इसी प्रकार विंध्य प्रदेश अस्तित्व में आया। ये राज्य लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर के अधीन रखे गये। भोपाल, बिलासपुर, कच्छ, मनीपुर और त्रिपुरा भाग 'ग' राज्य थे, किंतु इनका शासन केन्द्र के अधीन रखा गया। हैदराबाद, काश्मीर तथा मैसूर जैसी बड़ी रियासतों के अलग-अलग राज्य बना दिए गए। इस प्रकार देशी रियासतों के विलय और समूहीकरण की समस्या को हल कर लिया गया, जिसका श्रेय सरदार पटेल की दूरदर्शिता और निर्भीक नीति को है।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के प्रतिनिधि मण्डल की रिपोर्ट के अनुसार भारत का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा स्थापित की गई। संविधान सभा की पहली बैठक ९ दिसम्बर १९४६ ई० को हुई और डा० राजेन्द्रप्रसाद उसके प्रथम सभापति निर्वाचित हुए। १५ अगस्त, १९४७ ई० को ब्रिटिश सरकार द्वारा सत्ता हस्तांतरित किये जाने पर यह सभा प्रभुत्वसम्पन्न सभा हो गई। २९ अगस्त, १९४७ ई० को डा० अम्बेडकर के सभापतित्व में संविधान का प्रारूप बनाने के लिए एक समिति गठित की गई। इस समिति ने ४ नवम्बर, १९४८ ई० को संविधान का प्रारूप प्रस्तुत किया, जिसके प्रत्येक खण्ड और धारा पर संविधान सभा में चर्चा की गई। २६ नवम्बर, १९४९ ई० को संविधान स्वीकार कर लिया गया, जो २६ जनवरी, १९५० ई० को लागू हुआ। संविधान द्वारा भारत को एक गणराज्य घोषित कर दिया गया।

(ग) राज्यों का पुनर्गठन–भारत में दीर्घकाल से यह अनुभव किया जा रहा था, कि राज्यों का निर्माण भाषा के आधार पर किया जाना चाहिये। अंग्रेजों के शासनकाल में जो प्रान्त बनाये गये, उनका निर्माण शासन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए किया गया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति एवं उनके अधिकाधिक कल्याण के प्रसंग में भाषावार राज्यों के निर्माण पर विचार किया गया। इसके लिये भाषावार राज्य समिति बनाई गई जो दर समिति के नाम से प्रसिद्ध है। समिति ने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं, जिनकी परीक्षा श्री नेहरू, डा० पट्टाभि सीतारमैया और सरदार पटेल की एक समिति ने की। भाषा के आधार पर राज्य निर्माण के लिए आंध्र की जनता बहुत उत्सुक थी। वहां इस आन्दोलन ने जोर पकड़ा और आंध्र के निर्माण के लिए रामुलु नामक प्रतिष्ठित कांग्रेस जन ने आमरण अनशन आरम्भ किया। दुर्भाग्य से उसकी मृत्यु हो गई और इसलिए आंध्र की जनता की भावनाओं का ध्यान रखते हुए भाषा के आधार पर आंध्र राज्य का निर्माण किया गया।

प्रधान मंत्री नेहरू ने २२ दिसम्बर, १९५३ ई० को संसद में घोषणा की कि एक उच्च समिति नियुक्त की जायगी, जिसका उद्देश्य भारतीय संघ के राज्यों के पुनर्गठन की समस्या पर गंभीरतापूर्वक तथा बिना किसी पक्षपात के विचार करना होगा, "जिससे कि प्रत्येक निर्वाचित इकाई तथा राष्ट्र की जनता के कल्याण की सामूहिक रूप से वृद्धि की जा सके।" इस आयोग के सभापति श्री फजल अली तथा अन्य दो सदस्य श्री हृदयनाथ कुंजरू और सरदार के० एम० पणीक्कर थे। इस समिति ने देश भर का दौरा किया, जनता के प्रतिनिधियों की गवाही ली और अत्यन्त परिश्रम से एक राज्य पुनर्गठन रिपोर्ट ३० सितम्बर, १९५५ को प्रस्तुत की।

इस रिपोर्ट में भाषा के आधार पर १४ राज्यों के निर्माण की सिफारिश की गई थी। इसके अतिरिक्त ६ संघ राज्य क्षेत्र (Union territories) बनाये गये। आयोग ने अल्पसंख्यक भाषा वाले लोगों के हितों की रक्षा के लिए कुछ परित्राण (Safeguards) भी दिए हैं। आयोग की रिपोर्ट सामान्यतया जनता की आकांक्षा एवं देश के वृहत्तर हित को ध्यान में रखकर बनाई गई थी, किन्तु देश के कुछ भागों में इसका विरोध भी हुआ। इसमें बम्बई को लेकर महाराष्ट्र और गुजरात के बीच मतभेद हुआ। बम्बई को द्वि-भाषी राज्य बना दिया गया और बम्बई नगर को इस समय किसी राज्य को नहीं दिया गया है। उधर पंजाब में एक पृथक् पंजाब सूबे के निर्माण की माँग की गई, किन्तु भाषा के आधार पर उनकी यह माँग उचित नहीं समझी गई। आयोग ने पुनर्गठित मध्य प्रदेश की राजधानी जबलपुर में रखने की सहमति दी थी। परन्तु, भोपाल की जनता ने इसका विरोध किया। इस विवाद को निबटाने के लिए एक उच्च-स्तरीय समिति बनाई गई, जिसमें पंडित नेहरू, श्री ढेबर तथा मौलाना आजाद थे। इस समिति ने भोपाल की माँग पर विचार कर यह निर्णय किया कि मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में रखना उचित होगा। तदनुसार भोपाल मध्य

प्रदेश की राजधानी बनाई गई।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट में भाग 'क', 'ख' आदि राज्य तथा राज-प्रमुख के पद समाप्त कर देने की सिफारिश की थी। रिपोर्ट के अनुसार देश को पाँच मण्डलों (Zones) में बाँट दिया गया।

पंजाब तथा तेलंगाना की विधान सभाओं में प्रादेशिक परिषदें, (Territorial Councils) बनाई गई हैं। कहा गया है कि ये परिषदें राज्य सरकार को शासन में सहायता देंगी, परन्तु उसका कार्य परामर्श देना होगा। राज्य पुनर्गठन के परिणामस्वरूप समस्त देश में प्रशासन की समान प्रणाली हो गयी और जिस प्रकार यह कठिन कार्य सम्पन्न किया गया, वह सरकार की उल्लेखनीय सफलता है।

प्रश्न

1. Give a brief account of the national movement and its influence on the political history of the country.

राष्ट्रीय आन्दोलन का संक्षिप्त विवरण दीजिए और यह बताइये कि देश के राजनैतिक इतिहास पर उसका क्या प्रभाव पड़ा।

2. When and how was the Indian National Congress established? Discuss its contribution to the political and economic life of the country.

अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना कब और कैसे हुई? देश के राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन पर उसने क्या प्रभाव डाला, समझाइये।

3. Briefly discuss the programme and policy of the Indian National Congress for the last fifty years.

पिछले ५० वर्षों में अखिल भारतीय कांग्रेस के कार्यक्रमों तथा

उसकी नीति का वर्णन संक्षेप में कीजिए।

4. Give a brief account of the role played by Mahatma Gandhi in the Freedom Movement of the country.

देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महात्मा गांधी ने जो योग दिया, उसका वर्णन संक्षेप में कीजिए।

5. Describe the formation of the Indian Republic and state the role played by Sardar Patel in connection with the integration of the Indian States.

भारतीय गणतंत्र की स्थापना कैसे हुई और भारतीय राज्यों के विलीनीकरण में सरदार पटेल ने क्या योग दिया ?

6. What do you know about the Reorganisation of States.

राज्यों के पुनर्गठन के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

—: o :—

अध्याय ३४

भारत का संवैधानिक विकास

ईस्ट इण्डिया कम्पनी वास्तव में एक व्यापारिक कम्पनी थी। उसका उद्देश्य व्यापार करना था। पर जब यह कम्पनी बनी उस समय भारत में अन्य यूरोपीय कम्पनियां भी व्यापार कर रहीं थीं। अन्य कम्पनियों के साथ प्रतिद्वन्द्विता करने में अंग्रेजी कम्पनी ने भी फ्रेन्च कम्पनी की भांति यह आवश्यक समझा कि यदि भारत के देशी राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप किया जाये, तो कोई हानि न होगी वरन् लाभ ही होगा। अतः उसने देशी राज्यों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे स्थिति यह आई कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सामने पुर्तगालियों, हालैंड वालों तथा फ्रांसीसियों की कम्पनियां टिक नहीं पाईं। बहुत ही शीघ्र बंगाल में अंग्रेजी कम्पनी का प्रभुत्व जम गया। १७६४ ई० में बक्सर का युद्ध हुआ और इसमें अंग्रेजों की विजय हुई। १७६५ ई० में क्लाइव दूसरी बार भारत का गवर्नर बन कर आया। इसी वर्ष उसने मुगल सम्राट शाहआलम के साथ सन्धि की, जिस में कम्पनी को बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई। बंगाल में कम्पनी के बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखकर ब्रिटेन की सरकार को चिन्ता होने लगी। कम्पनी के आय के साधन बढ़ गये, अतः कम्पनी के शेयर होल्डरों ने भी अधिक लाभांश की मांग की अतः लाभांश की दर बढ़ाकर १२½% कर दी गई। इंग्लैंड की सरकार भी बहती गंगा में हाथ धोने को उतावली हो उठी। १७६७ ई० के पश्चात् वह भी कम्पनी से ४ लाख पौण्ड वार्षिक लेने लगी। यद्यपि कम्पनी तथा इंग्लैंड की सरकार दोनों को लाभ हुआ पर बंगाल प्रान्त की दशा बहुत बिगड़ गयी। वहां दुर्भिक्ष पड़े और कम्पनी के

कर्मचारियों ने जनता का रहा सहा खून भी चूस लिया। घनी आबादी वाले समृद्ध नगर उजड़ गये। इस बीच में कम्पनी की आर्थिक दशा भी गिर गई। १७७२ ई० में कम्पनी की आर्थिक स्थिति की जांच करने के लिए ३१ सदस्यों की एक समिति नियुक्त की गई। इस समय कम्पनी की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि कम्पनी ने इंग्लैंड की सरकार से ऋण की मांग की। पार्लियामेंट की समिति की रिपोर्ट पर १७७३ ई० में इंग्लैंड की पार्लियामेंट में रेग्युलेटिंग ऐक्ट पास किया गया।

१. रेग्युलेटिंग ऐक्ट—१७७६ ई० के रेग्युलेटिंग ऐक्ट का भारत के संवैधानिक इतिहास में बड़ा महत्व है। इस ऐक्ट का उद्देश्य था :—कम्पनी के विधान की त्रुटियों को दूर करना और भारत में कम्पनी के शासन के दोषों का निवारण करना। इस ऐक्ट में अनेक बातें थीं, जिनमें से कुछ का वर्णन नीचे किया जाता है।

(१) इस ऐक्ट के अनुसार अब केवल उन्हीं शेयर होल्डरों को कम्पनी के डायरेक्टरों के चुनाव में वोट देने का अधिकार रह गया, जिनके पास १००० पौण्ड का माल हो। इस ऐक्ट में यह भी कहा गया कि कम्पनी के डायरेक्टरों का चुनाव अब एक वर्ष के स्थान पर ४ वर्ष के लिए हुआ करेगा। यह भी निश्चित हुआ कि एक-चौथाई डायरेक्टर प्रतिवर्ष रिटायर होंगे। ऐक्ट में यह भी व्यवस्था की गई कि बंगाल के गवर्नर-जनरल और बम्बई तथा मद्रास के गवर्नरों को कम्पनी के डायरेक्टरों की आज्ञा पालन करनी पड़ेगी।

(२) बंगाल के गवर्नर को गवर्नर-जनरल बना दिया गया और उसकी सहायता के लिए चार सदस्यों की एक कौंसिल बना दी गई। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष रख दिया गया। उन्हें इंग्लैंड की सरकार के अतिरिक्त अन्य कोई पदच्युत नहीं कर सकता था। गवर्नर-जनरल को कौंसिल के बहुमत को मानना आवश्यक था, पर किसी मामले में समान संख्या

में वोट आने पर उसे अपना निर्णायक वोट देने का अधिकार था। सामान्यता गवर्नर-जनरल को बम्बई तथा मद्रास की प्रेसीडेन्सी की व्यवस्था पर भी नियंत्रण रखने का अधिकार था, पर विशेष परिस्थितियों में यदि बम्बई व मद्रास के गवर्नरों को सीधे कम्पनी के डायरेक्टरों से आदेश प्राप्त हों, तो इन्हें डायरेक्टरों के आदेश का पालन करना था न कि बंगाल के गवर्नर-जनरल का।

(३) बम्बई और मद्रास के गवर्नर बंगाल के गवर्नर-जनरल के आदेशों का पालन करेंगे। शासन, राजस्व तथा कम्पनी के हितों वाले मामलों में बम्बई और मद्रास के गवर्नर बंगाल के गवर्नर-जनरल के अधीन होंगे। गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह बम्बई और मद्रास के गवर्नरों को अस्थायी रूप से पदच्युत (Suspend) कर सके।

(४) गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया कि वह फोर्ट विलियम की बस्तियों, कारखानों आदि के लिए कानून एवं नियम बना सकता है, पर वे नियम ब्रिटेन के कानूनों के विरुद्ध न हों।

(५) कलकत्ते में एक सुप्रीमकोर्ट की स्थापना की गई, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन न्यायाधीश नियुक्त किये गये। दीवानी, फौजदारी, फौजी तथा धार्मिक सभी प्रकार के मामलों की सुनवाई उस न्यायालय में हो सकती थी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा के ब्रिटिश प्रजाजनों के लिए यह न्यायालय खोला गया था। कम्पनी के कर्मचारियों पर लगाये गये आरोपों पर भी इस न्यायालय में विचार किया जा सकता था। इस न्यायालय को मौलिक तथा अपील सम्बन्धी दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त थे।

(६) कम्पनी के कर्मचारियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वे किसी प्रकार की रिश्वत, भेंट या उपहार स्वीकार न करें। ऐसा अपराध करने पर उन्हें जुर्माना देना होगा और उन्हें इंग्लैंड वापस भेज दिया जायेगा।

२. **रेग्युलेटिंग ऐक्ट के दोष**—रेग्युलेटिंग ऐक्ट बनाने वालों को भारत की स्थिति का समुचित ज्ञान नहीं था। अतः इस ऐक्ट में ऐसी बहुत सी बातें आ गईं, जो त्रुटिपूर्ण थीं। कुछ दोषों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१) इस ऐक्ट का सबसे बड़ा दोष यह था कि गवर्नर-जनरल, उसकी कौंसिल के सदस्यों और सुप्रीम कोर्ट के सदस्यों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का क्षेत्र स्पष्ट नहीं था। इस कारण सुप्रीम कोर्ट तथा गवर्नर-जनरल के बीच कई बार संघर्ष पैदा हुए और कार्य के सुसंचालन में कठिनाई उत्पन्न हुई।

(२) यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था कि सुप्रीम कोर्ट हिन्दू कानून, मुस्लिम कानून या अंग्रेजी कानून या किस कानून के आधार पर न्याय करे। फिर यदि किसी मामले में एक पक्ष हिन्दू हो और दूसरा मुस्लिम या अंग्रेज हो, तो निर्णय किस पक्ष के कानून के अनुसार किया जायेगा। वैसे ये न्यायाधीश केवल अंग्रेजी कानून के पण्डित थे, फिर उपरोक्त बात का स्पष्टीकरण भी नहीं किया गया था, अतः वे प्रायः अंग्रेजी कानून के आधार पर न्याय करते थे, जिससे जनता को कठिनाई होती थी।

(३) गवर्नर-जनरल को कौंसिल के सदस्यों के बहुमत के अधीन करके सरकार ने बहुत बड़ी भूल की। उस समय की स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक था कि गवर्नर-जनरल को पूर्ण अधिकार दिये जायें। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के सदस्यों में कई बार संघर्ष हुए। बेचारा गवर्नर-जनरल विवश होकर रह जाता था। बहुत कठिनाइयों के पश्चात् वारेन हेस्टिंग्ज अपनी कौंसिल की स्थिति सुधार सका।

(४) कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की गई, जिससे बम्बई और मद्रास पर बंगाल का प्रभावपूर्ण नियंत्रण रहे।

(५) इस ऐक्ट में "ब्रिटिश प्रजाजन" (ए ब्रिटिश सब्जेक्ट) और

"कम्पनी का कर्मचारी" (ए सर्वेन्ट ग्राफ दी कम्पनी) की स्पष्ट व्याख्या भी नहीं की गई थी।

३. **१७८१ का संशोधन ऐक्ट**—रेग्युलेटिंग ऐक्ट की न्यूनताओं को अनुभव करने के पश्चात् १७८१ ई० में एक ऐक्ट पास किया गया, जिसके द्वारा रेग्युलेटिंग ऐक्ट के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। इस नये ऐक्ट में कहा गया था कि कम्पनी के कर्मचारी जो काम अधिकृत रूप में करेंगे, उन कामों के लिए सुप्रीम कोर्ट उन पर कार्यवाही नहीं कर सकेगी। यह भी कहा गया कि गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल के सदस्यों पर व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से उनके द्वारा किये गये कार्यों पर सुप्रीम कोर्ट का कोई अधिकार नहीं होगा। सुप्रीम कोर्ट को आज्ञा दी गई कि वह अपना कानून लागू करते समय धार्मिक तथा सामाजिक नियमों एवं परम्पराओं का भी ध्यान रखे। इस प्रकार गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल तथा राजस्व सम्बन्धी विषय सुप्रीम कोर्ट के क्षेत्राधिकार से बाहर हो गये।

इस ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय अदालतों और कौंसिलों के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया। यह भी कहा गया कि प्रान्तीय न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध गवर्नर-जनरल के सामने अपील की जा सकती है। ५,००० पौण्ड तक के अभियोगों के निर्णय के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल का निर्णय अन्तिम होगा, पर ५,००० पौण्ड से अधिक के अभियोगों को इंग्लैंड के सम्राट् तक ले जाया जा सकता है।

४. **फाक्स इण्डिया बिल १७८३**—अभी रेग्युलेटिंग ऐक्ट के सारे दोष दूर नहीं हो पाये थे और भारत की शासन प्रणाली को ठीक करने के लिए कुछ सुधार आवश्यक थे। १७८३ ई० में फाक्स (Fox) ने फाक्स इण्डिया बिल इंग्लैंड की पार्लियामेंट में पेश किया। इस बिल में कहा गया था कि भारत के राजस्व तथा प्रदेशों के प्रबन्ध के लिए सात कमिश्नरों का एक बोर्ड बना दिया जाये। यह भी कहा गया था

कि बोर्ड ग्राफ डायरेक्टर्स को समाप्त कर दिया जाये और उसके सारे अधिकार कमिश्नरों के बोर्ड को दे दिये जायें। कमिश्नरों के बोर्ड की सहायता के लिए नौ सहायक डायरेक्टरों की नियुक्ति का भी विचार प्रस्तुत किया गया था। यह बिल इंग्लैंड के हाउस ग्राफ कामन्स (House of Commons) द्वारा बहुमत से पास हो गया, पर हाउस ग्राफ लार्ड्स (House of Lords) में अस्वीकृत हो गया। जार्ज तृतीय स्वयं इस बिल के विरुद्ध था।

५. **पिट का इण्डिया ऐक्ट १७८४**—१७८४ ई० में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री यंगर पिट (Pitt the Younger) ने इंग्लैंड की पालियामेंट में अपना बिल पेश किया। यह बिल पालियामेंट द्वारा स्वीकृत हो गया। इस ऐक्ट की मुख्य-मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं :—

(१) भारत के शासन के निरीक्षण, नियन्त्रण एवं मार्ग-दर्शन के लिए बोर्ड ग्राफ कन्ट्रोल बना दिया गया, जिसमें वहां के वित्त मन्त्री (Chancellor of Exchequer), राज्य सचिव (Secretary of State) तथा प्रीवी कौंसिल के चार सदस्य रखे गये। सारा अधिकार बोर्ड ग्राफ कन्ट्रोल के सभापति (प्रेसीडेण्ट) के हाथों में दे दिया गया।

(२) बोर्ड ग्राफ कन्ट्रोल को बहुत अधिकार दिये गये। भारत के सम्बन्ध में जो कुछ भी पत्र व्यवहार होता था, सब उसकी आज्ञा से होता था और भारत के शासन के लिए भेजे जाने वाले सभी आदेशों में बोर्ड ग्राफ कन्ट्रोल को समुचित परिवर्तन या संशोधन करने का अधिकार दिया गया।

(३) राजनैतिक तथा सैनिक विषयों की देखभाल करने के लिए बोर्ड ग्राफ डायरेक्टर्स के स्थान पर एक गुप्त समिति (Committee of Secrecy) बना दी गई, जिसमें तीन डायरेक्टर रखे गये। यह समिति डायरेक्टरों को बताये बिना बोर्ड ग्राफ कन्ट्रोल के आदेशों को भारत भेज दिया करती थी।

(४) कम्पनी के विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार डायरेक्टरों के पास सुरक्षित रखा गया। अब कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स को यह अधिकार नहीं रहा, कि वह डायरेक्टरों के बोर्ड का निर्णय न माने।

(५) गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया कि वह प्रेसीडेन्सियों के शासन का नियंत्रण निरीक्षण तथा मार्ग दर्शन करे। पिट के इस ऐक्ट के अनुसार गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की कौंसिलों के सदस्यों की संख्या चार से घटाकर तीन कर दी गयी, जिसमें से एक सदस्य स्थानीय प्रधान सेनापति (Commander-in-Chief) होता था।

(६) यह भी कहा गया कि अंग्रेजों द्वारा भारत में किये गये अपराधों के मुकदमें भारत में नहीं इंग्लैंड में चलाये जायें और ऐसे मुकदमों के लिए वहां ३ न्यायाधीशों, ४ पीयरों (Peers) और हाउस आफ कामन्स के ६ सदस्यों का एक विशेष न्यायालय बनाया गया।

(७) गवर्नर-जनरल को आदेश दिया गया कि डायरेक्टरों की आज्ञा के बिना वह भारत के किसी राज्य के विरुद्ध युद्ध या कार्यवाही न कर सकेगा।

(८) गवर्नर-जनरल की नियुक्ति का अधिकार डायरेक्टरों को था। पर सम्राट् की स्वीकृति भी आवश्यक थी। सम्राट् गवर्नर-जनरल या गवर्नरों को कभी भी वापस बुला सकता था।

६. **१७८६ का ऐक्ट**—१७८६ में लार्ड कार्नवालिस को गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। इस पद को स्वीकार करने के लिए उसने एक शर्त रखी कि उसे यह अधिकार दिया जाये कि वह अपनी कौंसिल की सम्मति चाहे माने या न माने। अतः १७८६ ई० में एक ऐक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार उसे अधिकार दिया गया कि वह अपने उत्तरदायित्व पर कौंसिल के सदस्यों के निर्णय के विरुद्ध भी कार्यवाही कर सकेगा।

७. १७९३ का चार्टर ऐक्ट—इस ऐक्ट में विशेष रूप से कोई नई बात नहीं थी। पुराने ऐक्टों को संग्रह करके इसमें रखा गया था। फिर भी, इस ऐक्ट की मुख्य-मुख्य व्यवस्थायें निम्नलिखित थीं।:—

(१) गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को अधिकार दिया गया कि वे अपनी कौंसिलों के निर्णय के विरुद्ध भी कार्य कर सकते हैं।

(२) कम्पनी को आगामी २० वर्ष के लिये भारत के व्यापारिक एकाधिकार का आज्ञा-पत्र दिया गया।

(३) बम्बई और मद्रास के गवर्नरों पर गवर्नर-जनरल का नियंत्रण अपेक्षाकृत बढ़ा दिया गया।

(४) प्रधान सेनापति (Commander-in-Chief) गवर्नर-जनरल की कौंसिल का अतिरिक्त सदस्य बना दिया गया और डायरेक्टरों की विशेष अनुमति के अतिरिक्त वह कौंसिल की बैठकों में भाग नहीं ले सकता था।

(५) यह भी व्यवस्था की गई कि गवर्नर-जनरल, गवर्नर और मुख्य सेनापति अपने कार्य-काल में भारत से बाहर नहीं जायेंगे।

(६) बोर्ड आफ कन्ट्रोल के दो सदस्यों के लिए प्रीवी कौंसिल का सदस्य होना अनिवार्य नहीं रखा गया।

(७) यह भी कहा गया कि बोर्ड आफ कन्ट्रोल के सदस्यों तथा कर्मचारियों को भारतीय राजस्व में से वेतन दिया जायेगा।

(८) प्रति २० वर्ष के समय के पश्चात् कम्पनी को स्वीकृति देने के लिए चार्टर पुनः पार्लियामेंट के समक्ष पेश किया जायेगा।

८. १८१३ का चार्टर ऐक्ट—इस ऐक्ट द्वारा भारतीय शासन में कुछ परिवर्तन हुए, जैसे—

(१) कम्पनी को प्राप्त भारत का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया, पर चीन के सम्बन्ध में उसे आगामी २० वर्ष के लिये व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त हो गया।

(२) सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजों के हितों का ध्यान रखने के लिये एक पादरी (Bishop) नियुक्त किया गया और उसके साथ-साथ

छोटे पादरियों को भी नियुक्त किया गया।

(३) भारत के लोगों की शिक्षा तथा साहित्य की उन्नति के लिए १ लाख रुपये प्रति वर्ष की राशि स्वीकृत की गयी।

(४) यह कहा गया कि कम्पनी के राजस्व में से सर्वप्रथम व्यय सेना पर होगा, उसके पश्चात् ब्याज देने की मदों पर होगा और फिर कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन पर होगा।

(५) भारतीय सेना के लिए युद्ध के नियम बनाने का अधिकार कम्पनी को दे दिया गया।

६. **१८३३ का चार्टर ऐक्ट**—१८३३ में कम्पनी को नया आज्ञा-पत्र दिया गया। इस ऐक्ट की मुख्य-मुख्य व्यवस्थायें निम्नलिखित थीं :—

(१) चीन के व्यापार पर से कम्पनी का एकाधिकार हटा दिया गया। अब उसे वाणिज्य सम्बन्धी कार्य करने का अधिकार न रहा। कम्पनी के ऊपर जो ऋण थे, उन्हें भारत के राजस्व में से भुगतान करने की व्यवस्था कर दी गई।

(२) भारत में आकर बसने के लिए अंग्रेजों पर जो प्रतिबन्ध थे, उन्हें समाप्त कर दिया गया और उन्हें भारत में आकर बसने तथा सम्पत्ति या भूमि आदि का स्वामी बनने की छूट दे दी गयी।

(३) इस ऐक्ट में कहा गया कि भविष्य में किसी पद के लिए योग्यता ही कसौटी मानी जायेगी। केवल अपने धर्म, जन्मस्थान, जाति अथवा वर्ण के कारण कोई भी भारतीय अथवा इंग्लैंड के सम्राट का कोई भी प्रजाजन कम्पनी के किसी पद या किसी सेवा के लिये अयोग्य नहीं समझा जायेगा।

(४) बंगाल के गवर्नर-जनरल को भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया गया और प्रेसीडेन्सियों के गवर्नर पूर्णतः उसके अधीन बना दिये गये।

(५) इस ऐक्ट के द्वारा भारत का वैधानिक केन्द्रीकरण कर दिया गया। इस समय भारत में ५ प्रकार के विधान (कानून) लागू

हो रहे थे। हर प्रेसीडेन्सी की सरकार को कानून बनाने का अधिकार था। अतः कानून की सामान्य पद्धति की स्थापना करने के लिये प्रेसीडेन्सियों को कानून बनाने के लिये अधिकार से वंचित कर दिया गया। गवर्नर-जनरल को युद्ध सम्बन्धी कानून तथा फौजी अनुशासन सम्बन्धी कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया। इन विधानों का क्षेत्राधिकार सब व्यक्तियों, न्यायालयों, स्थानों तथा वस्तुओं पर था। गवर्नर-जनरल द्वारा बनाये गए कानूनों को रेग्युलेशन के स्थान पर ऐक्ट कहा जाने लगा।

(६) गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक चौथा सदस्य, जिसे कानूनी सदस्य कहा जाता था, बढ़ा दिया गया। इस सदस्य का काम गवर्नर-जनरल को कानूनी सम्मति देना था। कौंसिल की बैठक में उसे वोट देने का अधिकार नहीं दिया गया। इस पद पर सबसे पहले लार्ड मैकाले नियुक्त किया गया। मैकाले की अध्यक्षता में एक कानून कमीशन (Law Commission) नियुक्त किया गया, जिसने सारे भारतवर्ष के लिए कानून बनाया।

(७) गवर्नर-जनरल को आदेश दिया गया कि वह देश के लिए कोई भी कानून बना सकता है, पर कानून इंग्लैंड के परम्परागत कानूनों के विरुद्ध न हो।

(८) गवर्नर-जनरल को आदेश किया गया कि वह भारत से दास-प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून बनाये।

(९) इस ऐक्ट के अनुसार अब एक बिशप (Bishop) के स्थान पर तीन बिशप नियुक्त किये गये और कलकत्ते के बिशप को भारत का मेट्रोपोलिटन (लाट-पादरी) कहा गया।

अतः इस चार्टर ऐक्ट के पश्चात् कम्पनी व्यापारिक संस्था न रह कर एक राजनैतिक संस्था बन गयी और भारत के शासन का प्रबन्ध करने लग गयी।

१०. १८५३ का चार्टर ऐक्ट—यह चार्टर ऐक्ट भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार वैधानिक कार्यों (कानून बनाने के कार्यों) तथा कार्यकारणी कार्यों (शासन सम्बन्धी

कार्यों) को पृथक् करने का प्रयत्न किया गया। इस ऐक्ट द्वारा किये गये परिवर्तन निम्न थे :—

(१) कानूनी सदस्य को गवर्नर-जनरल की कौंसिल का पूर्ण सदस्य बना दिया गया। अब वह कार्य-कारिणी का विषयों से संबंधित बैठकों में भाग ले सकता था और अपना वोट भी दे सकता था।

(२) गवर्नर-जनरल को अपनी कौंसिल में एक उप-सभापति नियुक्त करने का अधिकार दिया गया।

(३) गवर्नर-जनरल को बंगाल के कार्य-भार से छूट मिल गई और बंगाल के लिये एक लेफ्टीनेण्ट-गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को दे दिया गया।

(४) गवर्नर-जनरल को नयी प्रेसीडेन्सी बनाने तथा वर्तमान राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

(५) कम्पनी को इंग्लैंड से सम्राट् की ओर के शासन कार्य चलाने का अधिकार प्राप्त हो गया। यह चार्टर ऐक्ट किसी निश्चित अवधि के लिए नहीं था वरन् यह कहा गया था कि कम्पनी तब तक शासन चलायेगी जब तक कि इंग्लैंड की पार्लियामेंट कोई अन्य व्यवस्था न करे।

(६) कम्पनी के डायरेक्टरों को अभी तक कम्पनी के कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त था। पर अब इस ऐक्ट के द्वारा उनसे यह अधिकार ले लिया गया और प्रतियोगिता परीक्षाओं (Competitive Examinations) द्वारा भर्ती की परम्परा चालू की गई।

(७) भारत के लिए पहली बार एक विधान परिषद् (कानून बनाने वाली सभा) बनाई गयी। विधान-कार्य के लिए गवर्नर-जनरल की कौंसिल में छः नये सदस्य बढ़ाये गये। इन सदस्यों को विधान-सदस्य कहा गया। इस प्रकार विधान कार्य के लिए १२ सदस्य हो गये—गवर्नर-जनरल, मुख्य सेनापति, गवर्नर-जनरल की कौंसिल के ४ सदस्य तथा छः नये सदस्य। इन छः सदस्यों में एक सदस्य कलकत्ते

की सुप्रीमकोर्ट का मुख्य न्यायाधीश, एक न्यायाधीश तथा चार सदस्य प्रांतों की सरकारों के सरकारी कर्मचारी होते थे।

(८) डायरेक्टरों की संख्या २४ से घटाकर १८ कर दी गयी, जिसमें से छः की नियुक्ति सम्राट् द्वारा होने लगी।

इस आज्ञापत्र को प्राये ५ वर्ष भी व्यतीत न हो पाये थे कि १८५७ ई० में भारत में एक महान् क्रांति हो गई। इस क्रांति का, जिसे "१८५७ ई० का गदर" कहा जाता है, उत्तरदायित्व कम्पनी पर थोपा गया और इंग्लैंड की पार्लियामेंट में मांग की गयी कि भारत में कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया जाये। इस प्रकार १८५८ ई० में ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया और कम्पनी को समाप्त कर दिया गया।

११. १८५८ ई० का भारत शासन ऐक्ट (Act of Better Govt. Of India)—इस ऐक्ट ने कम्पनी की शासन व्यवस्था को समाप्त करके एक नई व्यवस्था की। इसकी मुख्य व्यवस्थायें नीचे दी जाती हैं—

(१) इस ऐक्ट के अनुसार भारत का शासन कम्पनी के हाथों से निकल कर ब्रिटेन की सरकार के हाथों में चला गया।

(२) बोर्ड आफ कन्ट्रोल तथा बोर्ड आफ डायरेक्टर्स को अब तक जो अधिकार प्राप्त थे, वे अधिकार अब भारत-सचिव (Secretary Of State for India) के हाथों में आ गये। भारत-सचिव इंग्लैंड की पार्लियामेण्ट तथा मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता था। उसकी सहायता के लिए १५ सदस्यों की एक समिति बनाई गयी, जिसका नाम इण्डिया कौंसिल (India Council) रखा गया। भारत-सचिव इस कौंसिल का प्रधान होता था। भारत-सचिव को भारतीय राजस्व तथा सेवाओं के सम्बन्ध में अपनी इण्डिया कौंसिल की सम्मति माननी थी। अन्य बातों के सम्बन्ध में वह पूर्णतया स्वतन्त्र था। उसे प्रतिवर्ष भारत के आय-व्यय का वार्षिक ब्योरा ब्रिटेन की संसद् के सामने उपस्थित करना पड़ता था। भारत

सचिव अपने कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में पालियामेण्ट के सामने उत्तरदायी था।

(३) भारत-सचिव तथा इण्डिया कौंसिल के सदस्यों का वेतन भारतीय राजस्व से दिया जाता था।

(४) इण्डिया कौंसिल के १५ सदस्यों में से ७ बोर्ड आफ डायरेक्टर्स द्वारा चुने जाते थे और आठ की नियुक्ति ब्रिटेन के सम्राट् द्वारा होती थी। इस कौंसिल के सदस्यों में आधे सदस्य ऐसे होते थे, जो भारत में १० या १० से अधिक वर्षों तक रह चुके हों और जिनको (कौंसिल का सदस्य नियुक्त किये जाते समय) भारत छोड़े १० वर्ष से अधिक समय न हुआ हो। सदस्यों को १२०० वार्षिक पौण्ड वेतन मिलता था। कौंसिल की एक बैठक प्रति सप्ताह होनी आवश्यक थी।

(५) गवर्नर-जनरल के पास गुप्त समाचार भेजने तथा उसके पास से गुप्त समाचार मंगाने का भारत सचिव को अधिकार था। उनके लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह सभी संदेशों को कौंसिल के सदस्यों के सामने रखे।

(६) इस ऐक्ट द्वारा कम्पनी की स्थल सेना एवं जल सेना को ब्रिटिश सरकार की सेना में मिला दिया गया। अब से उसे "ब्रिटेन के सम्राट की भारतीय सेना" समझा जाने लगा।

(७) भारत के गवर्नर-जनरल को वायसराय की उपाधि दी गयी और वह भारत में ब्रिटेन के सम्राट का प्रतिनिधि समझा जाने लगा। उसे भारत सचिव की प्रत्येक बात माननी पड़ती थी।

(८) गवर्नर-जनरल की नियुक्ति सम्राट करता था, और उसे प्राण दण्ड देने का अधिकार दे दिया गया।

१२. १८६१ ई० का इंडिया कौंसिल एक्ट—१८६१ ई० में सर चार्ल्स वुड ने एक ऐक्ट पास कराया। यह १८६१ ई० का इण्डिया कौंसिल ऐक्ट था। भारत के वैधानिक विकास के इतिहास में इस ऐक्ट का बहुत महत्व है, क्योंकि एक तो इस ऐक्ट के द्वारा भारत के विधान कार्य में भारतीयों को भी भाग लेने का अधिकार मिल गया और दूसरे

बम्बई और मद्रास की सरकारों को फिर से विधान कार्य का अधिकार दिया गया। इस ऐक्ट के मुख्य-मुख्य उपबन्धों का वर्णन नीचे दिया जाता है :—

(१) इस ऐक्ट द्वारा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं (Provincial Legislatures) की स्थापना की व्यवस्था की गई।

(२) वैधानिक केन्द्रीयकरण की व्यवस्था को उलट दिया गया अर्थात् प्रान्तों को विधान कार्य का अधिकार दिया गया।

(३) वायसराय की कौंसिल में एक सदस्य और बढ़ा दिया गया। इस प्रकार पांच सदस्य हो गये। यह पांचवां सदस्य आर्थिक सदस्य (Finance Member) कहलाता था और उसका काम वायसराय को आर्थिक विषयों में परामर्श देना था।

(४) वायसराय को अधिकार था कि वह अपनी कौंसिल के विभिन्न सदस्यों को विभिन्न विभाग सौंप दे। इस प्रकार मन्त्रियों के विभाग (Portfolio) की प्रणाली शुरू हुई।

(५) प्रान्तीय विधान कार्य के लिए प्रान्तीय गवर्नर प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में एडवोकेट जनरल (महाधिवक्ता) और उसके अतिरिक्त चार से आठ सदस्य तक नियुक्त कर सकता था। इस प्रकार नियुक्त सदस्यों में से कम से कम आधे सदस्यों का गैर-सरकारी होना आवश्यक था। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं को प्रान्तीय विषयों पर विचार करने तथा प्रान्त के लिए कानून बनाने का अधिकार था। यातायात, निर्यात कर भारतीय दण्ड संहिता आदि के सम्बन्ध से उन्हें कानून बनाने का अधिकार नहीं था। गवर्नर-जनरल की पूर्व आज्ञा के बिना उन्हें कोई कानून पास करने का अधिकार नहीं था। गवर्नर-जनरल उसके कानूनों को रद्द कर सकता था।

१८६२ ई० में बंगाल में और १८८६ ई० में उत्तर प्रदेश में व्यवस्थापिका सभाओं का निर्माण किया गया।

(६) केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या ६ से बढ़ाकर १२ कर दी गई, जिसमें आधे सदस्यों का गैर-सरकारी होना आवश्यक

था। इन सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल दो वर्ष के लिए करता था। बन सदस्यों को बहुत कम अधिकार थे। वे भारतीय जनता के प्रतिनिधि नहीं थे। इस सभा में किसी विषय को उपस्थित करने के लिए गवर्नर-जनरल की अनुमति लेना आवश्यक था। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का कार्य केवल विधान सम्बन्धी था। सरकारी ऋण, वित्त, धर्म रक्षा तथा विदेशी सम्बन्ध वाले विषयों पर इसे विचार करने का अधिकार नहीं था।

(७) गवर्नर-जनरल को अध्यादेश (Ordinance) जारी करने का अधिकार प्रदान किया गया।

१३. १८६१ ई० से १८९१ तक—इन ३० वर्षों में समय-समय पर नये नियम बनते गये, जिनसे निम्नलिखित परिवर्तन होते गये :—

(१) इण्डिया कौंसिल के रिक्त स्थानों पर नियुक्त करने का अधिकार भारत मन्त्री को दे दिया गया।

(२) गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया कि वह प्रान्तीय गवर्नरों, चीफ कमिश्नरों और लेफ्टीनेन्ट-गवर्नरों की सिफारिश पर कानून बनाये।

(३) गवर्नर-जनरल को अधिकार दे दिया गया कि वह प्रतियोगिता परीक्षाओं के असफल उम्मीदवारों को भी सिविल सर्विस में नियुक्त कर सकता है।

(४) प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं को अधिकार दे दिया गया कि वे भारतीय न्यायाधीशों द्वारा यूरोपीय नागरिकों पर मुकदमा चलाने के संबंध में कानून बना सकती है।

(५) गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या ५ से बढ़ाकर ६ कर दी गयी।

(६) भारत के समाचारपत्रों पर नियंत्रण रखने के लिये गवर्नर-जनरल की कौंसिल ने प्रेस ऐक्ट जारी किया।

(७) स्थानीय स्वराज्य संबंधी कानून भी भारत सरकार ने बनाय।

१४. १८९२ **ई० का इण्डिया कौंसिल ऐक्ट**—१८६१ ई० के ऐक्ट से भारतीय नागरिकों को संतोष नहीं हुआ था। उन्होंने अपनी मांगें सरकार के सामने रखीं। इसी बीच १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। १८९२ ई० में ब्रिटेन की पार्लियामेंट ने इंडिया कौंसिल ऐक्ट पास किया, जिसके द्वारा निम्नलिखित परिवर्तन किये गये :—

(१) केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या १२ से बढ़ाकर १६ कर दी गयी, जिसमें कम से कम १० सदस्य गैर-सरकारी होने आवश्यक थे।

(२) प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में भी सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी और उनके अधिकार भी बढ़ाये गये। प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को सरकारी नीति की आलोचना करने का अधिकार मिल गया और बजट पर बहस करने तथा प्रश्न पूछने का भी अधिकार मिल गया, पर बजट पर मतदान करने का अधिकार नहीं मिला।

(३) गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति करने सम्बन्धी नियम बनाने तथा नियुक्ति करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को प्राप्त हो गया। जो नियम बने उनके अनुसार अप्रत्यक्ष प्रणाली से निर्वाचन करा कर गैर-सरकारी सदस्यों को मनोनीत किया जाता था।

इस ऐक्ट से भारतीय जनता की मांगें पूरी नहीं हुईं लार्ड कर्जन की नीति से जनता में बहुत असंतोष फैल गया। १९०५ ई० में बंगभंग हुआ। परिणामस्वरूप क्रान्ति का विस्फोट हो गया। भारतीय जनता की आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए १९०९ ई० का इण्डिया कौंसिल ऐक्ट पास किया गया, जिसे मिन्टो-मार्ले सुधार भी कहा जाता है। १९०९ ई० के इण्डिया कौंसिल ऐक्ट द्वारा किये गये सुधार बहुत महत्वपूर्ण हैं।

१५. १९०९ **ई० का इण्डिया कौंसिल ऐक्ट**—इस ऐक्ट में निम्नलिखित व्यवस्था की गई थी।

(१) व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ६० कर दी।

गई और प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं की अधिक से अधिक ५०. (मद्रास, बंगाल, यू० पी०, बम्बई, बिहार और उड़ीसा में अधिक से अधिक ५० तथा पंजाब, बर्मा तथा आसाम में अधिक से अधिक ३०) कर दी गयी।

(२) इस ऐक्ट द्वारा कहा गया कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में सरकारी सदस्यों को बहुमत होगा। ३७ सरकारी और २३ गैर-सरकारी सदस्य होंगे। सरकारी सदस्यों में २८ को गवर्नर-जनरल नियुक्त करेगा और शेष ९ पदेन सदस्य (Ex-Officio Member) होंगे, जिनमें गवर्नर-जनरल स्वयं भी सम्मिलित होगा। गैर-सरकारी सदस्यों में ५ को गवर्नर-जनरल नियुक्त करेगा तथा शेष चुने हुए होंगे।

(३) प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभाओं के लिए यह आवश्यक नहीं रखा गया कि वहां सरकारी सदस्यों का बहुमत हो। फिर भी ऐसी व्यवस्था की गई कि सरकारी और नियुक्त सदस्यों की कुल संख्या गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या से अधिक ठहरे। चुनाव के लिए वर्गों तथा हितों के प्रतिनिधित्व की बात को अपनाया गया। क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व को कोई महत्व नहीं दिया गया। साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन प्रणाली का आरम्भ इसी ऐक्ट द्वारा हुआ।

(४) व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों के अधिकार बढ़ा दिये गये। सदस्यों को बजट पर चर्चा करने प्रश्न पूछने तथा अनुरूपक प्रश्न पूछने व प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दी गयी।

१६. १९०९ ई० के इण्डिया कौंसिल ऐक्ट के दोष—इस ऐक्ट द्वारा व्यवस्थापिका सभाओं को प्रस्ताव पास करने का अधिकार अवश्य मिल गया, पर उन्हें मानना या मानना गवर्नर-जनरल या प्रान्तीय गवर्नरों के हाथ था। पृथक् निर्वाचन पद्धति से देश की एकता के विकास को बड़ी ठेस पहुंची। संसदीय आधार पर सरकार तो चलाई गयी पर सरकार किसी प्रकार भी विधान सभा के प्रति उत्तरदायी न थी। परिणामस्वरूप भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं की पूर्ति करने में यह ऐक्ट असफल रहा। इस ऐक्ट ने सच पूछा जाये तो एक "निरंकुशता" स्थापित कर दी।

१७. १९१९ ई० का गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट—१९०९ ई० का ऐक्ट सामान्य जनता को संतुष्ट न कर सका था। विदेशों में मुख्यतया दक्षिणी अफ्रीका में ट्रांसवाल और नेटाल में भारतीयों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। इसी बीच १९१४ ई० में यूरोपीय महायुद्ध शुरू हो गया। भारत ने असंतुष्ट होते हुए भी हर प्रकार से ब्रिटिश सरकार की सहायता की। १९१७ ई० में राज्य सचिव मि० मान्टेग्यु ने भारत आकर लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ सारे भारत का दौरा किया। उन्होंने घोषणा की कि सम्राट की सरकार की नीति, जिससे भारत सरकार सहमत है, यह है कि भारत में एक उत्तरदायी शासन स्थापित करने की दृष्टि से स्वशासी संस्थाओं का क्रमिक विकास किया जाये और शासन के सभी कार्यों मे भारतीयों को अधिक से अधिक स्थान दिया जाये।"

मान्टेग्यु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर १९१९ ई० में ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक ऐक्ट पास किया गया, जिसे १९१९ ई० का गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट कहते हैं। इस ऐक्ट के अनुसार इण्डिया कौंसिल भारत की केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों में कई परिवर्तन हुए।

(क) **इण्डिया कौंसिल**—अभी तक भारत राज्य सचिव का वेतन भारत के राजकोष से दिया जाता था, पर अब उसे इंग्लैंड के राजकोष से वेतन दिया जायेगा। पर उसके कार्यालय तथा अन्य पदाधिकारियों का व्यय भारत के ही राजकोष से दिया जायेगा। इण्डिया कौंसिल के सदस्यों की संख्या ८ से बढ़ाकर १२ कर दी गयी। आधे सदस्य ऐसे होने चाहियें जो नियुक्ति के पूर्व १० वर्ष तक भारत में रह चुके हों। इन सदस्यों का कार्यकाल ५ वर्ष कर दिया गया। इस ऐक्ट के अधीन भारतीय हाई कमिश्नर नाम का एक नया पद बनाया गया। भारतीय हाई कमिश्नर को कोई राजनैतिक कार्य नहीं करने पड़ते थे। वह ब्रिटेन में रहने वाले भारतीय विद्यार्थियों की देखभाल करता था और साम्राज्यीय या अन्य सम्मेलनों में भारत के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेता था।

भारत सचिव के अधिकारों में कुछ कमी कर दी गयी। कुछ बातों के संबंध में उसे गवर्नर-जनरल के काम में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं रह गया। केन्द्रीय सरकार पर से कुछ नियंत्रण कम कर दिया गया, पर ब्रिटेन पार्लियामेण्ट का नियंत्रण अभी वैसा ही रहा।

(ख) केन्द्रीय सरकार—इस ऐक्ट द्वारा भारत की केन्द्रीय सरकार में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। केन्द्र में दो सदनों की व्यवस्थापिका सभा बनाई गई—एक विधान सभा, दूसरी राज्य परिषद्। विधान सभा में १४४ सदस्यों की व्यवस्था की गई, जिनमें १०३ निर्वाचित और ४१ गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये हुए होंगे। राज्य परिषद् के सदस्यों की संख्या ६० रखी गई जिनमें २७ गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये गये और तेंतीस निर्वाचित हों। विधान बनाने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के अधिकार बढ़ गये पर अभी भी केन्द्रीय सरकार को उत्तरदायी सरकार नहीं बनाया गया। गवर्नर-जनरल अभी भी अपनी कार्यकारिणी के बहुमत तथा निर्णय के विरुद्ध काम कर सकता था। उसके अधिकार बहुत विस्तृत रखे गये। वह कौंसिल का सभापति और शासन का केन्द्र था। विधान-मंडलों के अधिवेशन बुलाना उनका समय निर्धारित करना, बढ़ाना तथा उन्हें विगठित करना गवर्नर-जनरल के अधिकार में था। विधान सभा एवं विधान-परिषद् द्वारा पास किए गये कानूनों को अस्वीकार करने का अधिकार उसे प्राप्त था। गवर्नर-जनरल अध्यादेश भी निकाल सकता था, जिस की अवधि सामान्यतया ६ महीने होती थी, पर उस अवधि को आगे बढ़ाया जा सकता था। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या ८ निश्चित कर दी गई और यह भी निश्चित किया गया कि तीन सदस्य भारतीय होंगे।

(ग) प्रान्तीय सरकार—प्रान्तीय सरकारों में भी बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गयी। उनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या ७०

प्रतिशत और नियुक्त किये सदस्यों की संख्या ३० प्रतिशत रखी गयी। इनका कार्यकाल ३ वर्ष निर्धारित किया गया। इन सभाओं को अपना सभापति चुनने का अधिकार था। मत देने वालों की योग्यता में कमी कर दी गयी, जिससे मतदाताओं की संख्या में बड़ी वृद्धि हो गयी। प्रान्तीय शासन के विषयों को २ भागों में विभक्त कर दिया गया—(१) रक्षित (Reserved) और (२) हस्तान्तरित (Transferred)। हस्तान्तरित विषयों का शासन गवर्नर अपनी मंत्रि-परिषद् की सहायता से करता था और इन विषयों के लिए मंत्री विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे। रक्षित विषयों का शासन गवर्नर अपनी कौंसिल के सदस्यों की सहायता से करता था। कौंसिल के सदस्य व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे। इस प्रकार प्रान्तों में द्वैध-शासन की प्रणाली आरम्भ हो गई। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में मंत्रियों की संख्या निर्धारित कर दी गयी। सभा के अधिकारों में भी वृद्धि कर दी गयी थी। गवर्नर को अधिकार था कि वह अपनी कौंसिल की सम्मति माने या न माने। उसे अध्यादेश निकालने का भी अधिकार प्राप्त था।

१९१९ के ऐक्ट के दोष—इस ऐक्ट की सबसे बड़ी त्रुटि यह थी उसमें गति लाने की कोई व्यवस्था नहीं थी, पर रुकावटें हर प्रकार की थीं। केन्द्रीय विधान-मंडल तो बिल्कुल गवर्नर-जनरल के अधीन था। अपनी इच्छा से वह कोई कानून नहीं बना सकता था। गवर्नर-जनरल भारत की किसी संस्था (लोकतंत्रात्मक संस्था) के अधीन नहीं था। साथ ही भारत के बजट में ८० प्रतिशत मतों पर मतदान का अधिकार नहीं था। प्रान्तों में भी विभक्त कार्य-कारिणी की व्यवस्था की गई थी। गवर्नर की कार्यकारिणी तथा मंत्रि-मण्डल के सदस्यों में कोई सहयोग की भावना नहीं थी और न वे सम्मिलित रूप से उत्तरदायी ही थे। राजकोषीय या वित्तीय मामले कार्य-कारिणी के सदस्यों के हाथों में थे और लोक-कल्याण सम्बन्धी विषयों का भार मंत्रियों को दिया गया। इस प्रकार मंत्रियों की स्थिति बड़ी विचित्र थी। उन्हें विधान-मण्डलों तथा गवर्नर दोनों की आज्ञा का पालन करना पड़ता

था। गवर्नर, सच पूछा जाये तो, एक तानाशाह की स्थिति पर था। अतः इन परिस्थितियों में १९१९ ई० का यह सुधार ऐक्ट कुछ सफल न हो सका। जनता की आशायें इस ऐक्ट से पूरी न हो पायीं। निःसन्देह भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं के साथ यह बहुत बड़ा परिहास था।

१८. १९३५ ई० का **गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया ऐक्ट**—यह ऐक्ट बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(क) इण्डिया कौंसिल—इण्डिया कौंसिल में भी इस ऐक्ट ने अनेक परिवर्तन किये। जिन विषयों पर गवर्नर अपने मंत्रियों की सहमति से काम करता था, उन पर से भारत सचिव का नियंत्रण समाप्त हो गया। अतएव इस ऐक्ट द्वारा इण्डिया कौंसिल का अन्त कर दिया गया। भारत सचिव को सम्मति देने के लिए परामर्शदाताओं की नियुक्ति का प्रबन्ध किया गया। इनकी संख्या तीन से कम और ६ से अधिक नहीं हो सकती थी और ऐसे ही व्यक्ति परामर्शदाता नियुक्त किये जा सकते थे, जो भारत में १० वर्ष तक उत्तरदायी पदों पर रह चुके हों और उन्हें भारत छोड़े २ वर्ष से अधिक समय न हुआ हो। हाई कमिश्नर की नियुक्ति का अधिकार गवर्नर-जनरल को सौंप दिया गया। उसकी कार्य अवधि ५ वर्ष कर दी गई। उसका कार्य केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के लिए आवश्यक वस्तुओं का क्रय करना तथा इंगलैंड स्थित भारतीय विद्यार्थियों के हितों की देखभाल करना था। पालियामेंट को अधिकार था कि वह भारत के लिए किसी भी समय कानून बना सकती थी।

(ख) केन्द्रीय सरकार—केन्द्र में इस ऐक्ट के अनुसार संघीय सरकार की व्यवस्था की गई। केन्द्रीय विधान सभा के सदस्यों की संख्या ३७५ निश्चित की गयी, जिसमें २५० का चुनाव ब्रिटिश भारत की जनता करती थी और १२५ को भारतीय राज्यों के शासन नामजद करते थे। सभा का कार्यकाल ५ वर्ष रखा गया। केन्द्रीय विधान परिषद के सदस्यों की संख्या २६० निश्चित की गई, जिसमें १५६ ब्रिटिश भारत के तथा १०४ देशी राज्यों के प्रतिनिधि थे। संघ सरकार के

विषयों को दो भागों में बाँट दिया गया। हस्तान्तरित विषयों पर गवर्नर-जनरल एवं मंत्रि-परिषद का अधिकार था और रक्षित विषयों पर गवर्नर-जनरल एवं उसकी कार्यकारिणी का अधिकार था। इस प्रकार केन्द्रीय शासन में द्वैध-शासन की व्यवस्था हो गई, कानून बनाने, वित्त सम्बन्धी एवं प्रशासन सम्बन्धी बहुत अधिक अधिकार गवर्नर जनरल को प्राप्त थे। उसे अध्यादेश निकालने का अधिकार प्राप्त था। साथ ही उनकी अनुमति के बिना कोई वित्तीय प्रस्ताव सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। सभा की बैठक बुलाने, और स्थगित करने या बैठक की अवधि घटाने एवं बढ़ाने का अधिकार गवर्नर-जनरल को था।

(ग) **प्रान्तीय सरकार**—प्रान्तों के शासन में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन स्थापित किया गया। गवर्नरों को अधिकार दिया गया कि वे व्यक्तिगत स्वविवेक, मंत्रियों की सलाह तथा बिना सलाह के शासन का कार्य चला सकते हैं। वे अध्यादेश भी बना सकते हैं और आपात काल या वैधानिक संकट के समय सारा शासन अपने हाथ में ले सकते हैं। प्रान्तों में भी दो सभायें—विधान सभायें एवं विधान परिषदें—बनाई गईं। विधान सभाओं तथा विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न निर्धारित की गई। विधान सभाओं में साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचित सदस्य होते थे और विधान परिषदों में कुछ चुने हुए और कुछ गवर्नर द्वारा नियुक्त। कुछ राज्यों में केवल एक ही सभायें थीं। जमींदारों, मजदूरों, व्यापारियों, विश्वविद्यालयों तथा महिलाओं के लिए कुछ सीटें सुरक्षित कर दी गयीं। सभाओं का सामान्य कार्यकाल ५ वर्ष था। गवर्नर का सम्बन्ध अब भारत सरकार से नहीं, वरन् सीधे ब्रिटिश सम्राट के साथ हो गया। विधान सभाओं के अधिकार बढ़ा दिये गये। उन्हें बजट में भी काट-छांट करने की अनुमति मिल गई। सदस्यों को सरकार की आलोचना करने तथा प्रश्न पूछने का भी अधिकार मिल गया। मंत्रि-मण्डल अपने कार्यों के लिए विधान सभा के प्रति उत्तरदायी थे। पर गवर्नर विधान-मण्डल से सर्वथा स्वतन्त्र था।

१९. १९३७ से १९४६ ई० तक—१९३५ ई० का गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट पूर्ण रूप से लागू नहीं किया गया। प्रान्तीय स्वतन्त्रता वाला भाग १९३७ ई० में लागू किया गया। प्रान्तों में सार्वजनिक चुनाव हुये। ७ प्रान्तों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। कांग्रेस ने अपने मंत्रि-मण्डल बनाने के लिए एक शर्त रखी, कि जब तक उसे यह आश्वासन नहीं दिया जायेगा कि प्रान्तों में पूर्णतया उत्तरदायी शासन होगा, तब तक वह सरकार नहीं बनायेगी। आश्वासन मिलने पर कांग्रेस ने अपनी सरकार बनाई। १९३९ ई० तक काम ठीक चलता रहा। इसी बीच द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। ब्रिटेन सरकार ने भारत को युद्ध में सम्मिलित घोषित कर दिया। कांग्रेस ने इस पर आपत्ति उठाई। मतभेद होने पर कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों ने त्यागपत्र दे दिए। शासन गवर्नरों के हाथ में आ गया। सारे देश में असंतोष की लहर फैल गई। १९४० ई० में लार्ड लिनलिथगो ने कांग्रेस से सहयोग की मांग की, पर कांग्रेस ने सहयोग नहीं दिया। १९३२ के लगभग सिंगापुर, रंगून तथा कोलम्बो तक युद्ध की लपटें आ गई। भारत को भी बहुत भय हो गया। कलकत्ते के लोग डर के मारे भागने लगे। मार्च १९४२ ई० में क्रिप्स भारत आये। उन्होंने घोषणा की कि युद्ध के समाप्त होने पर भारत के लिए नया संविधान बनाने हेतु एक निर्वाचित समिति बनाई जायेगी, पर क्रिप्स की घोषणा भी व्यर्थ रही। इसी बीच १९४२ ई० में कांग्रेस का "भारत छोड़ो" आन्दोलन आरम्भ हो गया। देश भर के नेताओं को बन्दी कर लिया गया। जेलें ठसाठस भर गई। १९४५ ई० में देश के राजनैतिक नेताओं को छोड़ा गया। १९४५ ई० में लार्ड वेवल ने शिमला सम्मेलन में राजनैतिक तनाव को कम करने का प्रयत्न किया, पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के मतभेदों के कारण कुछ भी सफलता न मिली। १९४५ ई० में प्रान्तीय व केन्द्रीय विधान-मण्डलों के चुनाव हुए, जिसमें कांग्रेस को ७ प्रान्तों में बहुमत हुआ। अगस्त १९४५ ई० में इंग्लैंड में मजदूर दलीय सरकार बनी। वहां के मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों का एक मिशन भारत आया।

१६ मई, १९४६ ई० को इस मंत्रि-मंडल मिशन ने गवर्नर-जनरल के साथ एक घोषणा निकाली, जिसमें कहा गया था कि भारत में एक संघ राज्य स्थापित किया जायेगा, जिसमें ब्रिटिश भारत एवं देशी राज्य सम्मिलित होंगे। संघ सरकार में एक मन्त्रि-मण्डल होगा। संघ के अधीन वैदेशिक मामले, रक्षा तथा संचार के विषय होंगे, शेष विषय राज्यों के अधीन होंगे। इसी घोषणा में अन्तरिम सरकार (Interim Government) की भी योजना बनाई गई थी। यह भी कहा गया था कि गवर्नर-जनरल की कौंसिल का संगठन फिर से किया जायेगा और उसमें भारत के राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों को स्थान दिया जायेगा।

मंत्रि-मंडल मिशन की उक्त घोषणा के अनुसार गवर्नर-जनरल ने अपनी कौंसिल का संगठन फिर से किया और उसमें सभी सदस्य भारतीय रखे। लार्ड वेवल ने पंडित नेहरू को अन्तरिम सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया। २ सितम्बर, १९४६ ई० को अन्तरिम सरकार ने पद ग्रहण किया। इसी समय संविधान सभा के चुनाव जुलाई १९४६ ई० में हुए और सितम्बर १९४६ ई० में संविधान सभा की बैठक दिल्ली में आरम्भ हुई। इसी बीच ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वह जून १९४८ ई० तक भारतीयों को सत्ता सौंप देगी।

२०. **१९४७ ई० का भारतीय स्वतन्त्रता ऐक्ट**—मार्च १९४७ ई० में लार्ड माउण्टबेटन को भारत का गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा गया। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के नेताओं के साथ अच्छी प्रकार चर्चा करने के पश्चात् उन्होंने अपनी ३ जून की योजना प्रस्तुत की। इस योजना द्वारा उन्होंने भारत के विभाजन—भारत और पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव रखा। दोनों राजनैतिक दलों ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। इस योजना के आधार पर ब्रिटेन की पार्लियामेंट ने १९४७ ई० में भारतीय स्वतन्त्रता ऐक्ट पास किया। इस ऐक्ट की मुख्य-मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) १५ अगस्त, १९४७ ई० से भारत को दो उपनिवेशों—भारत और पाकिस्तान—में विभाजित कर दिया गया। इसके पश्चात्

ब्रिटिश सरकार का इन उपनिवेशों अथवा इनके किसी भाग के शासन पर किसी प्रकार का नियंत्रण न रहा।

(२) दोनों उपनिवेशों को नये संविधान बनाने का अधिकार दे दिया गया, और यह भी कहा गया कि जब तक उनके संविधान बनकर तैयार न हो जायें, उनका शासन १९३५ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट के अनुसार होगा।

(३) ऐक्ट में यह भी कहा गया कि प्रत्येक उपनिवेशों में एक गवर्नर-जनरल होगा, जिसे उपनिवेश के मन्त्रि-मण्डल की राय से ब्रिटेन का सम्राट् नियुक्त करेगा। यदि दोनों उपनिवेश सहमत हों, तो एक ही व्यक्ति दोनों उपनिवेशों का गवर्नर-जनरल हो सकेगा।

(४) दोनों उपनिवेशों की संविधान सभायें विधान-मण्डल के रूप में काम करेंगी और उन्हें १९३५ ई० के ऐक्ट के अनुसार सभी अधिकार प्राप्त होंगे।

(५) उपनिवेश के विधान-मण्डलों को अधिकार दिया गया कि ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा पास किए गये और भारत पर लागू किसी भी कानून को वह रद् या संशोधित कर सकेंगे और १५ अगस्त १९४७ ई० के पश्चात् ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट द्वारा पास किया गया कोई भी कानून भारत पर लागू नहीं होगा।

(६) भारत सचिव का पद समाप्त कर दिया गया। उनके स्थान पर राष्ट्र-मण्डल सम्बन्ध सचिव (Secretary of Common-wealth Relations) के पद की नियुक्ति की गई।

(७) इस ऐक्ट के द्वारा भारतीय रियासतों पर से सम्राट् का प्रभुत्व समाप्त कर दिया गया और उनके साथ की गई सभी संधियाँ और समझौते आदि रद् कर दिये गये।

(८) इंग्लैंड के शासक की उपाधियों में से "भारत सम्राट्" शब्द हटा दिये जाने का निश्चय हुआ।

२१. **संविधान सभा**—९ दिसम्बर १९४६ ई० से संविधान सभा का काम प्रारम्भ हो गया था। इस सभा में देशी राज्यों के ९३ प्रति-

निधियों को मिलाकर कुल ३८९ सदस्य थे। मुस्लिम लीग के सदस्यों ने इसका बहिष्कार कर दिया था। अगस्त १९४७ ई० में संविधान का ढांचा प्रस्तुत करने के लिये एक समिति नियुक्त की गई और श्री बी० आर० अम्बेडकर को इस समिति का अध्यक्ष बनाया गया। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के प्रधान चुने गये। २६ नवम्बर, १९४९ ई० को संविधान बनकर प्रस्तुत हो गया, और २६ जनवरी १९५० ई० अर्थात् गणतन्त्र दिवस से उसे लागू कर दिया गया। भारत का संविधान एक विस्तृत अभिलेख है, जिसमें ३९५ अनुच्छेद और ८ अनुसूचियाँ हैं। संविधान में भारत के गणतन्त्र के लिए एक राष्ट्रपति की व्यवस्था की गई है, जिसका निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचन मण्डल द्वारा होता है। संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति की सहायता देने के लिए एक मन्त्रि-मण्डल होगा। प्रधान मन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति स्वयं करता है। संविधान के अनुसार भारतीय संसद में दो सभायें—लोकसभा और राज्य सभा हैं। लोकसभा के सदस्यों की संख्या ५०० और राज्य सभा के सदस्यों की २५० है।

१९५२ ई० में केन्द्रीय और राज्य के विधान-मंडलों के नए चुनाव हुए और कांग्रेस को केन्द्र तथा राज्यों में भी बहुमत प्राप्त हुआ। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति और पं० नेहरू उनके प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए। १९५७ ई० में भारतीय गणतन्त्र में दूसरी बार सामान्य चुनाव हुआ। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद को एक बार फिर भारत गणतन्त्र का राष्ट्रपति चुना गया और पं० नेहरू को भी एक बार फिर प्रधान मन्त्री का पद प्रदान किया गया।

प्रश्न

1. Discuss the merits and demerits of the Act of 1773 as disclosed by its working.

१७७३ ई० को व्यवहार में लाने पर उसके जो गुण और दोष प्रगट हुए, उनका वर्णन कीजिए।

2. Describe the position and power of Governor-General under the Act of 1773.

१७७३ ई० के ऐक्ट के अधीन गवर्नर-जनरल की क्या स्थिति थी और उसे क्या अधिकार प्राप्त थे ?

3. What were the main features of Pitt's India Act of 1784.

१७८४ ई० के पिट के इण्डिया ऐक्ट की मुख्य-मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

4. "The Charter Act of 1833 is the most important constitutional and mark of the 19th century" Discuss.

"१८३३ ई० का चार्टर ऐक्ट उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण संवैधानिक विधान है।" समझाइये।

5. Describe the constitutional development from 1784 to 1833.

१७८४ से १८३३ ई० तक के संवैधानिक विकास का वर्णन कीजिए।

6. What were the reasons that led to the Act of 1858.

१८५८ ई० के ऐक्ट के पास किये जाने के क्या कारण थे ?

7. Give an account of the changes introduced in the administration by the India Councils Act of 1861.

१८६१ ई० के इण्डिया कौंसिल ऐक्ट द्वारा शासन में जो परिवर्तन हुये उनका वर्णन कीजिए।

8. Keeping in view the later political development in India, analyse the significance of the Indian Councils Act of 1909.

बाद में होने वाली राजनैतिक घटनाओं को देखते हुए, १९०९ के इण्डिया कौंसिल ऐक्ट के महत्व पर प्रकाश डालिए।

9. Explain the main features of the Mont-Ford Reforms of 1919 with particular reference to the system of Dyarchy as introduced by this Act.

१६१६ के मांटेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधार की मुख्य-मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये और इस ऐक्ट द्वारा जो द्वैध-शासन प्रणाली चालू हुई, उसका वर्णन कीजिए।

10. What were the main provisions of the Government of India Act of 1935 and the Indian Independence Act of 1947.

१६३५ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट तथा १६४७ ई० के स्वतन्त्रता ऐक्ट की मुख्य-मुख्य व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

11. Write short notes on :—

1. Fox India Bill;
2. India Council;
3. Dyarchy ; and
4. The Mountbatten Plan of June 3, 1947.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए :—

१. फाक्स इण्डिया बिल,
२. इण्डिया कौंसिल,
३. द्वैध-शासन,
४. माउन्टबेटन की ३ जून, १६४७ की योजना।

—: ० :—